श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक महानुभावः—

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
संरक्षक, अध्यक्ष एव प्रधान ट्रस्टी।

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद ज
जैन बेंकर्स, सदर मेरठ, सरक्षिका।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावः—

१	श्रीमान् लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ		सहारनपु
२	"	सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्डया	झूमरीतिलैय
३	"	कृष्णचन्द जी रईस	देहरा
४	"	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्डया	झूमरीतिलैल
५	"	श्रीमती सोवती देवी जैन	गिरीड
६	"	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	"	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	
८	"	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फ
९	"	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादू
१०	"	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	"	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	"	केवलराम उग्रसैन जी जैन	जगाधरी
१३	"	गेंदामल दगडू शाह जी जैन	सनावद
१४	"	मुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	"	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	"	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	"	मन्त्री दिगम्बर जैन समाज	खण्डवा
१८	"	बाबूराम अकलङ्कप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	"	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	"	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	"	सौ० प्रेम देवीशाह सु० बा० फतेहलाल जी जैन सघी	जयपुर
२२	"	मन्त्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	खण्डवा
२३	"	सागरमल जी जैन पाण्डया	गिरीडीह
२४	"	गिरनारीलाल चिरञ्जीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	"	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	"	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	"	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बडौत
२८	"	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
२९	"	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेन्डेण्ट इञ्जीनियर	कानपुर

३०	श्रीमान् लाला	मन्त्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी	आगरा
३१	,,	सचालिका दि० जैन महिलामण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द्र जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	,,	मोल्हड़मल श्रीपाल जी जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	,,	❀ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबडा	झूमरीतिलैया
३८	,,	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूपनगर	कानपुर
३९	,,	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४०	,,	❀ दयाराम जी जैन आर ए डी. ओ	सदर मेरठ
४१	,,	❀ मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
४२	,,	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सहारनपुर
४३	,,	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला
४४	,,	+ बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला

नोट.—जिन नामोंके पहिले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बाकी है।

●

सम्पादकीय

जैन न्यायके महान् प्रतिष्ठापक कुशाग्रबुद्धि तार्किकशिरोमणि वादीभकेशरी श्री समन्तभद्र श्री अकलङ्कदेव आदि महापुरुषोंने जैन न्यायके मौलिक तत्त्वोकी समीचीन विवेचना आप्तमीमासा, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चयादि कारिकात्मक रचनाओके द्वारा की। जैनदर्शनके प्रणेता भगवान उमास्वामीके दार्शनिक शास्त्र श्री तत्त्वार्थसूत्र के सदृश जैन न्यायको सूत्रबद्ध करने वाली "जैन न्याय सूत्र ग्रन्थ" जैन परम्परामे नहीं बन पाया था। इसी कमीको आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनन्दीने आचार्य स्मृति-परम्परासे आये हुए जैन न्यायरूप सागरको परीक्षामुखसूत्ररूप गागरमे पूर्ण करके जैन न्यायका गौरव बढाया है। यह जैन न्यायका प्राथमिक सूत्रग्रन्थ है जो कि भारतीय न्याय विषयक कृतियोमे अद्वितीय है।

यह ग्रन्थ ६ परिच्छेदोंमें विभाजित है। इसके सूत्रोंकी सख्या २१२ है। ये सूत्र सरल, विशद एव नपे–तुले हैं। वस्तु विचारमें अति गम्भीर, अन्तस्तलस्पर्शी तथा अर्थ–गौरवसे ओत प्रोत हैं। सभी सूत्र सस्कृत गद्यमें हैं, किन्तु उनके आदि

प्रमाणादर्थससिद्धिस्तदा भासाद्विपर्यय ।
इतिवक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्प लघीयस ॥

परीक्षामुखमादर्श हेयोपादेयतत्त्वयो. ।
सविदे मादृशो वाल. परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥

आद्य श्लोकमें ग्रन्थ प्रयोजन तथा उसकी रचनाकी प्रतिज्ञा की है । और प्रतिज्ञानुसार ग्रन्थ रचना की है । सूत्रकारने हेय-उपादेय तत्त्वका यथार्थ बोध कराने के लिये परीक्षकके समान दर्पणवत् कृति बनाई ।

प्रतिपाद्य विषय —प्रथम परिच्छेद १३ सूत्रों द्वारा प्रमाणका स्वरूप तथा प्रमाणके प्रामाण्यके स्वतस्तत्व परतस्त्वका निर्णय किया है । द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष दो भेद बताये हैं । प्रत्यक्षके सांव्यवहारिक तथा मुख्य भेदोको १२ सूत्रोंसे प्रतिपादन किया है । तृतीय परिच्छेदमें परोक्ष प्रमाणके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगमका १०१ सूत्रोंमें कथन है । चतुर्थमें ६ सूत्रो द्वारा प्रमाणके विषय सामान्यविशेषात्मकको समझाया है । सामान्य विशेषके भेद भी दर्शाये हैं । पाँचवें परिच्छेदमें ३ सूत्रों द्वारा प्रमाणका फल साक्षात्, अज्ञाननिवारण, परम्परा दान-उपादान उपेक्षा कहकर उसे प्रमाणसे कथचित् भिन्न अभिन्न सिद्ध किया है । छठे परिच्छेदोंमें प्रत्यक्षाभास परोक्षाभासका स्वरूप बताकर जय-पराजय व्यवस्था बताई है । इसमे ७४ सूत्र हैं । इस प्रकार इस ग्रथमे जैन न्यायके सभी मौलिक ग्राह्य विषयोंका पूर्ण व्यवस्थित चयन हुआ है ।

न्याय विषयके ऐसे कठिन दार्शनिक विषयका आध्यात्मिक सम्बन्ध दिखाकर न्यायादि अनेक विषयके पारखी, मनीषी, विद्वान् श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द मालाने परीक्षामुखसूत्रप्रवचन द्वारा सरल सुबोध स्पष्ट किया है । समय-सारादि अनेक ग्रन्थोंपर प्रवचन करने वाले विद्वान्के प्रौढ़ ज्ञानने इसे दुरूहतासे बचाया है जो कि न्याय विषयक गम्भीर अध्ययन चिन्तन एव सुयोग्य विद्वत्ताका ही सुन्दर मधुर फल है । न्यायविषयक क्षेत्रमे तत्त्व निर्णयका आधार प्रमाण ही होता है । इसलिये प्रमाण और प्रामाण्यकी परीक्षा करना अत्यावश्यक है । इन प्रवचनो द्वारा लोकमें प्रमाणविषयक विपरीत धारणायें दूर होंगी ।

मुझे इन प्रवचनोंका प्रूफ शोधनका अवसर मिला है । मैं आशा करता हू कि आध्यात्मिक तत्त्वके विज्ञ रसिक जन इनके स्वाध्याय द्वारा लाभ उठायेंगे ।

—देवचन्द जैन, एम० ए०

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(११, १२, १३, १४ भाग)

[एकादश भाग]

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

अज्ञानतिमिरान्धानाम ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम ॥

विश्वका स्वरूप— लोकमे दो प्रकारके पदार्थ होते हैं-एक चेतन, दूसरा अचेतन, जीव और अजीव। इन दो प्रकारके पदार्थोंमे समस्त पदार्थ गर्भित होते है। चेतनमे आया एक चेतन और अचेतनमे आये पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। पुद्गल उसे कहते है जो पूरे और गले। मिलकर बडा बन जाय, बिछुडकर घट जाय। ऐसी बात जिनमे सम्भव है उनको पुद्गल कहते है। पुद्गलमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये चार गुण नियमसे होते हैं। हम आपको जो कुछ दिख रहा है यह सब पुद्गलका मायारूप है, इन दिखने वाले पदार्थोंमे जो परमार्थ अणु है वह तो पुद्गलका परमार्थ स्वरूप है, पर उन अणुवोके मिल जानेसे जो एक यह स्कध बन गया है यह मायारूप है। इसमे पुद्गल तत्व है। धर्मद्रव्य, जो समस्त लोकमे व्यापक है जिसके होनेके कारण जीव पुद्गल जब गमन करना चाहे तो गमन कर सकते हैं। जहा धर्म द्रव्य न हो वहा जीव पुद्गलका गमन नही हो सकता है। जैसे लोकके बाहर धर्म द्रव्य नही है तो वहा जीव पुद्गलभी नही है। धर्म द्रव्यकी तरह अधर्म द्रव्य भी इस लोकमे व्यापक है, जो चलते हुए जीव पुद्गलके ठहरनेमे सहायक होता है। आकाश द्रव्य तो सर्वव्यापक है, जहां पदार्थ ठहर सके यह आकाश द्रव्य है। काल द्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु है जो कि प्रति समय समय-समयरूप पर्यायसे परिणमन करता रहता है। इस कालद्रव्यके निमित्तसे समस्त पदार्थोंका परिणमन होता है। यो जगतमे चेतन और अचेतन दो प्रकारके पदार्थ पाए जाते हैं।

चेतन का सामर्थ्य—विश्व के समस्त पदार्थोंमे चेतन तो प्रतिभास स्वरूप है,

ज्ञानमय है, आनन्दका उपभोक्ता है और शेष अचेतन पदार्थ ज्ञान और आनन्दसे शून्य हैं। वे सब जड हैं, चेतन पदार्थमें क्या सामर्थ्य है उस सामर्थ्यपर विचार किया जाता है तो जो कोई पुरुष निष्पक्ष दृष्टिसे एकमात्र जानकारी ही करता है, किसी धर्म मजहबका कुछ भी परिचय रखे बिना अपने आप की जानकारी मात्रसे प्रयोजन है, इतना अभिप्राय रखकर समस्त पर पदार्थोंमें विकल्प हटाकर विश्राममें रहकर यदि अन्त निरीक्षण करता है तो प्रत्येक मनुष्यको और मनुष्य ही क्या, पशुओं और पक्षियोंको भी अपने आपके स्वरूपका और सामर्थ्यका बोध हो सकता है। आत्मामें ज्ञान और आनद स्वभाव है। ज्ञानका काम जानना है। जो भी हो सब जाननेमें आ जाय ऐसा यह ज्ञान स्वभाव सबको स्पष्ट जाननेके लिये, मानो गर्भित कर दे, इसके लिये तैयार बैठा रहता है। ज्ञानमें सारा लोकलोक भी आ जाय वह भी बिन्दुवत भासता है। ज्ञानकी ऐसी सामर्थ्य है कि ऐसे लोकालोक यदि अनगिनते भी होते तो भी सब ज्ञानमें समा जाता ज्ञान एक भाव है और भावस्वरूप द्रव्यमें है इसलिये कितनेही पदार्थ जाननेमें आ जायें यहाँकी जगह भरती नहीं है, क्योंकि यह अमूर्त है, एक जाननभावको लिए हुए है। तो ज्ञानमें इतनी सामर्थ्य है कि समस्त सत पदार्थ इसके ज्ञानमें आ जाये और तिसपर भी अनगिनतें गुने भी पदार्थ होते तो वे भी सब ज्ञानमें आते।

आत्मसामर्थ्य और वर्तमान दशा—ज्ञानस्वरूपका अतुल सामर्थ्य रखने वाले आत्मा की, हम आप सबकी जो कुछ आज दशा बन रही है वह दयनीय दशा है। कहाँ तो हम आपका वह वैभव, कि निस्तरंग नीरंग क्षोभ कषायरहित विशुद्ध ज्ञानके विकाससे पावन रहते और आत्मीय स्वाभाविक आनन्दका अनुभव करते और कैसी यह दशा बन रही है कि कोई कीडा मकौडा बन रहा है, कोई पशु सूकर, कुत्ता, गधा आदि बन रहे हैं, कोई मनुष्य भी बना है तो वह भी निरंतर आकुलित रहता है। क्या स्थिति बन रही है इस भगवान आत्माकी ? हम अपने वैभवका सामर्थ्य नहीं समझना चाहते और बाहरी विषय प्रसगोंमें ही सुख मानते हैं जिनमें सार रंच भी नहीं है, क्या कर रहे है ? धन जोडकर क्या कर लिया जायगा ? अपने आत्माको निरखकर उत्तर तो दीजिए जिसके लिए रात दिन व्यग्र रहते हैं इन मायामयी पुरुषोंमें जो स्वय सब स्वार्थी हैं, अपने प्रयोजन बिना किसीका कुछ यश नाम भी कभी कह नहीं सकते, इन मायामयी जीवोंमें इस असार लोकमें तुम अपना क्या बनाना चाहते, और अपना भी क्या, इस शरीरका। ये सब असार बातें हैं। इनसे मुक्त होनेका साहस जगेगा और ज्ञान वैभवके आवरणका विनाश होगा तो अतुल वैभव मिलेगा जो प्रभुमें विकसित है।

निरावरणताके विरोधमें अनादिमुक्तताकी कल्पना - अतुल वैभवकी चर्चा सुनते हुएमें सर्वज्ञका अलौकिक वैभव क्या है उस विभूतिको सुनते हुए कोई पुरुष शंका कर रहा है कि ऐसा भी कोई प्रभु सर्वज्ञ होता है क्या कि जिसके पहिले तो

आवरण हो, कर्मोंसे दवा हो और फिर कर्मोंका वियोग हो तव वह सर्वज्ञ बने, प्रभु बने, ईश्वर बने यह बात हमारी समझमे नही आती। शकाकारका आशय यह है कि ईश्वर तो एक ही होता है लोकमे, और वह अनादि कालसे कर्मोंसे, आवरणोसे, बन्धनोसे मुक्त रहा करता है वह इस सारे विश्वका मालिक है और वही इस लोककी रचना किया करता है। ऐसे आशयको रखकर शकाकार कह रहा है कि कर्मोंका आवरण हो और फिर उसका वियोग हो तब सर्वज्ञ बने, उसका ज्ञान बने यह बात गलत है क्योकि ईश्वर तो अनादिकालसे हो मुक्त है। उसमे आवरण सम्भव नही है।

यथार्थश्रद्धानसहायक उपयोगी प्रकरणोको समझनेका अनुरोध— देखिये अब जो प्रकरण चलेगा–१०-१५ दिन, यह प्रकरण अपने आपकी श्रद्धा सही बनानेके लिए और भ्रमभरी बातोका सस्कार मिटानेके लिए बहुत उपयोगी प्रकरण होगा। जिसके अभिप्रायमे यह बात बैठी है कि हम लोग किसी गिनतीके नही हैं, हम मे कुछ सामर्थ्य नही है, हम तो एक दास है ईश्वर जिस प्रकार हमे बनायेगा, नरक स्वर्ग जहाँ पटकेगा, जो सुख दु ख देना चाहेगा, सब उसकी मर्जी पर है, हम अपनेमे कुछभी पुरुषार्थ कर सकने वाले नही है, इस प्रकारका अभिप्राय रखकर जो अपनेको कायर बना रहे हैं, दीनता रखते है और अतुल जो समाधि है, ज्ञानप्रकाश है उस प्रकाशमे रहनेका, पहुँचनेका साहस भी नही जिनके जग पाता है, ऐसा भ्रमका सस्कार जब तक रहता है तब तक यह जीव क्या कर सकता है ? यह आत्मा स्वय ज्ञानानन्द-स्वरूप है। यहा ज्ञान जब पूर्ण विकसित हो जाता है, आवरण समस्त हट जाते हैं तो यह ज्ञान परिपूर्ण शुद्ध बनता है और वहाँ जन्ममरण आदिक समस्त सकट मिट जाते हैं। आत्माको तो हित चाहिए। जिस प्रकार हित हो उसी प्रकारकी बुद्धि और यत्न ही तो करना है। और वहभी बनावटसे नही करना, दिखावटसे नही करना है, किंतु जो यथार्थ है, स्वरूपमे है, स्वाभाविक है, सुगम है, स्वाधीन है वही तो करना है जब अपने आपके सत्वका ही निर्णय न हो, अपने सामर्थ्यका गुणका, विकासका, विलास का, लीलाका कुछ पता ही न हो। केवल एक किसी पर पदार्थकी आशा रखकर उस ही की भक्ति करके दीनता ही बनायी जाती रहे तो आत्मा जन्ममरणके सकटोंसे मुक्त कब हो सकेगा ? इन सब समस्याओको सुलझानेके लिये यह प्रकरण बहुत काम देगा।

कर्मोंसे छूटे बिना मुक्त कहनेकी असङ्गतता—यहाँ आत्माका सामर्थ्य न समझ सकने वाला शङ्काकार कर रहा है कि ईश्वर तो अनादिमुक्त होता है। उसके तो कर्मोंका आवरण भी कभी नही रहा। तब फिर यह कहना कि जब आवरण सब हट जाते हैं तो अशेष वेदी विज्ञान उत्पन्न होता है, यह बात अयुक्त है। समाधानमे कहा जा रहा है कि ईश्वर कोई भी अनादिमुक्त सिद्ध नही है क्योकि पहले तो मुक्त ही नाम किसका है ? जो छूट गया। किससे छूट गया, यह तो कुछ बताना चाहिए।
[illegible]

ही अनन्त काल पहिले जो भी मुक्त हुए वे यद्यपि अब तक भी मुक्त हैं और अनन्त काल तक मुक्त रहेंगे, किन्तु प्रारम्भमे वे भी कर्मोंसे सहित थे और रत्नत्रयके उपाय से कर्मोका आवरण उनका दूर हुआ और वे मुक्त हुए। ईश्वर अनादिमुक्त नही होता मुक्त होनेसे, अन्य मुक्तोकी तरह।

द्विविध मुक्त माननेवालोका आशय—इस सम्बन्धमें शङ्काकारका एक मतव्य भी जान लीजिये। शङ्काकार यह मान रहा है कि एक ईश्वर तो अनादिमुक्त होता है और बाकी इन जीवोमे जो कोई भी ईश्वरकी भक्ति करे और उसके नामपर तपश्चरण करे तो वह भी मुक्त हो जाता है। तो बाकीके जो लोग कर्मोंसे मुक्त हुए, मुक्त होकर प्रभु बने वे तो कर्मोंसे सहित थे पहिले, लेकिन वह मूलका एक ईश्वर कर्मोंसे अनादिकालसे ही रहित था। उस मुक्तमे इन मुक्तोमे एक फर्क भी मानना है कि कर्मोंसे मुक्त होकर जो प्रभु बने उसे तो किसी दिन वह ईश्वर ससारमे पुनर्जन्मके लिए भेज देगा कि फिर जावो और जन्म लो, क्योकि उसके सामने एक समस्या है कि ऐसे सभी मुक्त हो जायेगे। तो फिर ससारमे फिर करनेके लिए उसे काम ही क्या रहेगा? सो कर्ममुक्त प्रभु चिर काल तक मुक्त बना रहता है, पर बहुत समयके बाद वह ससारमे पुन जन्म लेता है। इसे यदि थोथा साम्य रखकर समझना है तो यो समझ लीजिए कि जैन शासनमे बताते हैं कि नवग्रैवेयकमे भी मिथ्यादृष्टि अथवा अभव्य पहुच जाते हैं लेकिन सदा तो नही रह सकते। भले ही वहाँ ३१ सागर तककी आयु है। आखिर अन्त उसका भी होता है। यहाँ जन्म मरण लेना पडता है। तो कुछ ऐसा ही समझकर उन्होने प्रभुका स्वरूप यो माना है।

निरावरण होनेके कारण मुक्ति और अशेषवेदित्व—अब प्राकरणिक बात कहते हैं कि जैसे अन्य मुक्त कर्मोंसे मुक्त हुए हैं इसी प्रकार यह ईश्वर भी मुक्त है, सो कर्मोंसे मुक्त हुआ है। मुक्त नाम ही उसका है जिसको पहिले बन्धन था और और अब बन्धन नही रहा तो वह मुक्त हो गया। जिसमें बन्धन नहीं है, उसे मुक्त तो नही कहा जा सकता। कोई पुरुष किसी कहे जिसका घर बडा कुलीन है, सदाचारी है और कह दे कि आपके पिता तो जेलखानेसे मुक्त हो गए तो वह अच्छा तो न मानेगा। और असत्य भी है जेल कभी गया ही नहीं है तो मुक्त कैसे कहा जा सकता है। मुक्त नाम उसमे ही पडता, जो कर्म बन्धनसे लिप्त था अनादिमुक्त कोई ईश्वर नही है तब यह मानना चाहिए कि इस जीवपर अनादिसे आवरण पडा हुआ उस आवरणका वियोग होनेसे उसके अशेषवेदी विज्ञान उत्पन्न होता है। ऐसा ज्ञान समस्त विश्वको, लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जान लेता है।

सृष्टिकर्तृत्व हेतु देकर ईश्वरको अनादिमुक्त माननेका अभिमत—अब शङ्काकार कहता है कि ईश्वर वह एक अनादि मुक्त ही है। यदि अनादिमुक्त न होता तो अनादिकालसे इन पृथ्वी पहाड आदिकको जो करता आया है, बनाता आया

है यह कैसे सम्भव होता ? चूँकि ईश्वरने नदी पहाड, जमीन, सूर्य, चन्द्र आदिक सब कुछ बनाया है इस कारणसे वह अनादि मुक्त है और सबसे विशिष्ट है, फिर यह शङ्काकार कह रहा है, और यह भी नही कि ईश्वर इस सब लोकका कर्ता नहीं होता है, क्योंकि अनुमान बनाकर देख लीजिए पृथ्वी आदिक समस्त पदार्थ, पदार्थ किसी न किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं क्योंकि कार्य होनेसे। सब काम हैं ना। जैसे खम्भा छत ये सब काम हैं तो किसीके द्वारा बनाये गए है ना ये जमीन आकाश सूर्य चन्द्र पहाड नदिया आदिक भी कार्य है सो किसी न किसी ज्ञान वालेके द्वारा बनाये गये हैं। जो जो कार्य होते है वे वे किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए देखे जाते हैं, जैसे ये जमीन आदिक इस कारण किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। कोई कहे कि पृथ्वी पहाड आदिक तो कार्य हैं ही नही, तो शङ्काकार कह रहा है कि पृथ्वी पहाड आदिक कार्य हैं क्योंकि ये अवयव सहित है प्रचयरूप है, जो जो पदार्थ अवयव सहित हैं, प्रचयरूप है वे कार्य हुआ करते है। जैसे ये घडी तखत खम्भा ये अवयव सहित हैं तो कार्य हैं ना, तो ये पृथ्वी आदिक भी अवयव सहित हैं। अतएव कार्य है। शङ्काकारका आशय यह है कि इन खम्भा घडी आदिकको तो यह मनुष्य बना लेता है पर ये जो पर्वत आदिक हैं ये मनुष्यके द्वारा नही बनाये जा सकते है। इतनी सामर्थ्य मनुष्यमे नहीं है सो किसी बहुत बडे शक्तिमान अनादिमुक्त ईश्वरद्वारा बनाया गया है।

पदार्थस्वरूपके निर्णय बिना शान्तिमार्गका अलाभ — देखिये—जब तक पदार्थके स्वरूपका निर्णय न होगा तब तक कल्याण नही हो सकता। अपने आपका ज्ञानबल बढाये बिना, स्वरूपका यथार्थ निर्णय किये बिना जो जैसा कह देगा भक्तिमे आकर, बहुती श्रद्धामे आकर वह सब मान जायेगा। आजकल पुराणोके नामपर, मजहबोके नामपर ऐसी ऐसी बातें भी मान डालते हैं जो कल्पना तकमे नही आ सकती पदार्थके स्वरूपका निर्णय करिये। ये समस्त पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक हैं। कोई इसे त्रिगुणात्मक भी कहते—पदार्थ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणकरि व्याप्त हैं। पदार्थमे यह स्वरूप पडा हुआ है हाथमे लेकर भी इस बातको बताया जा सकता है। कोई छोटा फल, रसीला फल ले लो और बतावो-देखो यह फल है, गोल है, इस सकलमे है और वही मसल कर बतादो कि देखो यह फलका व्यय हो गया है, अथवा बादामको ही फोडकर जलाकर बता दो कि देखो यह राख हो गया। बादाम तो न रहा, लेकिन जो आधारभूत तत्त्व, द्रव्य, उसकी शक्ति अथवा पदार्थ जो भी है वह तो कहीं नही गया। वह तो पहिले भी था और अब भी है। तो उस शक्तिकी अपेक्षा तो वह ध्रुव रहा किन्तु उसने अपनी सकलको परिवर्तित कर दिया तो वहा एक पर्यायका व्यय हुआ और एक पर्यायका उत्पाद हुआ। ऐसा समस्त पदार्थोंका स्वरूप है, चाहे उसका यह परिवर्तन समझमे आये तो, न आये तो। जहा उत्पादव्यय ध्रौव्य नही होता वह सत् ही नही है चाहे कोई चेतन हो, निगोद हो, सिद्ध हो, प्रभु हो, आकाश हो कोई भी सत् हो वह नियमसे उत्पादव्यय ध्रौव्य वाला है। किसीका उत्पाद व्यय समान

चल रहा है तो समझमें परिवर्तन नहीं आता।

शुद्ध पदार्थमे उत्पादव्ययध्रौव्ययकी झांकी – सिद्ध पदार्थ हैं अनादि सिद्ध है, उसका परिणमन भी समझमे नही आ पा रहा क्योंकि वह एक तो अमूर्त है और पर पदार्थ है, दूसरे उसका समान समान परिणमन है, और इस ही बुनियादपर कि समान समान परिणमन होता है सिद्ध पदार्थमें हमे सिद्धमा भी उत्पादव्यय समझमें नहीं आता। लेकिन यह तो बतावो कि कोई पुरुष एक मनका बोझ शिरपर रखकर खडा हो और वह ५ मिनट तक बराबर निष्कम्प उसी तरह खडा है तो उसके सम्बधमें क्या यह कहा जाना युक्त है कि पहिले सेकेण्डमें इसने जो काम किया, बोझ लादा वही काम तो ५ मिनटसे कर रहा है, कोई नया काम तो नहीं कर रहा। अरे नये कामके निषेध करने वाले पर वह बोझ उठाकर धर दो, फिर पूछो कि तुम अब ५ मिनट तक नया नया काम कर रहे हो कि नहीं। अगर नहीं कर रहे तो बाधकर ऐसे ही छोडकर चल दो, पडा रहेगा दो चार घटे तो वह चिल्लायेगा अरे बोझ उठालो, मरे जा रहे हैं। अरे कहां मरे जा रहे 'तुम तो कुछ नया काम ही नहीं कर रहे' अरे जो बार बार अपनी शक्ति लगा रहा है वह प्रति समयका नया नया काम है या नहीं ? यो ही प्रभु जानगए एक ही समयमे सारे विश्वको, पर प्रति समयमे जानते रहें, जानते रहें, क्या यह नया, नया परिणमन, सो हम उसमें परिवर्तन नहीं समझ पाते। लेकिन उत्पाद व्यय सर्वत्र चलता है। तो ये पृथ्वी आदिक पदार्थभी उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाव वाले हैं। सो अपने ही स्वभावके कारण बनते हैं बिगडते हैं, रहते हैं, अनादिसे व्यवस्था है। इस मर्मके पहिचाने बिना दुनिया कहती है कि हम सबको तो किसी एक भगवानने बनाया है। उस ही प्रसगका यह प्रकरण चल रहा है।

असत्की उत्पत्तिकी असभवता—जगतके प्रत्येक पदार्थ अपना अपना सत्व रखते हैं और उस ही सत्वके कारण उनमे यह प्रकृति पडी हुई है कि वह प्रतिसमय नवीन पर्यायमे आये और पुरानी पर्यायका विलय करे। इस मर्मको न जानकर ही विमुग्ध पुरुषोंको ऐसी कल्पना जगती है कि आखिर ये सब कोई चीज हैं तो इनका कोई बनाने वाला है। एक मूल बातपर ही दृष्टि दे कोई तो भी यह बात नहीं ठहर सकती है। जो असत् है, जो है नही वह त्रिकालमे भी सत् नहीं हो सकता है। कुछ भी बने तो किस रूपमें बने, क्या आधार पाकर बने किसमे परिणति बने, और कुछ यदि पहिले सत् है जिसका कि कुछ बनाया गया, जैसे कुम्हार घडा बनाता है तो पहिलेसे सद्भूत मिट्टी है, उसका परिणमन रचता है तो इस प्रकार यदि कुछ सत् है, जिसे किसी एक ईश्वरने बनाया है तो वह सत् था ही, सत्की उत्पत्ति तो नही हुई। तो असत्का कोई सद्भाव नही होता, सत्का कभी विनाश नहीं होता। साथ ही जो सत् है उस सत्मे ये तीन बातें पायी ही जाती हैं। अन्यथा सत् नाम किसका ? सत् का लक्षण ही यह है—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्। किन्तु, तत्वज्ञता जब नहीं होती

है जब इतनी बात समझमे नही बैठती तो तब कोई कर्ता है, ईश्वर अथवा बुद्धिमान, ऐसी कल्पना जगती है।

ईश्वरकी उत्कृष्ट आदर्शरूपताके समर्थनका प्रयास—भैया! इस प्रसगमे यह दृष्टि रखकर सुनना है कि इसमे ईश्वरका निराकरण नही है किन्तु ईश्वरका उत्कृष्ट रूप रखनेके लिये यह प्रसग बना है। प्रभु अनन्त ज्ञानमय है, अनन्त दृष्टा है। अनन्त शान्ति है उनमे और वे प्रभु अनन्त आनन्दमय रहते हैं। वे समस्त कलकोसे मुक्त है, वे योगीश्वरोके लिये आदर्श रूप हैं। वे योगीश्वर दीनतापूवक भगवानकी भक्ति नही किया करते कि हे प्रभो, तेरे ही हाथ मेरा जन्म मरण है, तेरे ही हाथ मेरी सुगति दुर्गति है, तेरे ही हाथ मेरा सुख दु ख है, इसलिए प्रभु दया कर। इसमे भक्ति कहा उमडी है। भक्ति उमडती है गुणोके प्रेमसे। कोई यदि कर्ता धर्ता है तो उसकी भक्ति तो डरसे बनेगी। जैसे छोटे बालक लोग पिताके गुणोके प्रेमसे वशीभूत नही रहते किन्तु पीटेंगे डाटेंगे, दण्ड देंगे, इन डरोसे वे उनकी आज्ञामे रहते हैं, किन्तु शिष्य जन अपने गुरुके प्रति डरसे भक्ति नही करते किन्तु वे गुणानुरागसे भक्ति करते हैं। तो प्रभु आदर्शरूप हुआ, ज्ञानदर्शन शक्ति आनन्दमय है, कृतकृत्य है, अनन्त निराकुलता है, यह स्वरूप समझमे आये तो प्रभुके सच्चे हृदयसे भक्त बन सकते हैं। और, वे हम लोगोको सुख दु ख देते है ऐसा भाव रखकर भक्ति करे तो डरकी वजह से भक्ति हुई। ईश्वरका उत्कृष्ट विशुद्ध आदर्श रूप बनानेके लिए यह प्रकरण है।

लोककर्तृत्वके अनुमानमे शकाकार द्वारा दिये गये कार्यत्व हेतुके समर्थक सावयवत्व हेतुमे तीन विकल्प पदार्थोके स्वरूप अथवा धर्मसे अनभिज्ञ पुरुष यह शका कर रहे थे कि ये पृथ्वी, पर्वत आदिक जितने भी पदार्थ हैं ये किसी न किसी उत्कृष्ट बुद्धिमानके द्वारा बनाए गए हैं क्योकि ये कार्य हैं। ये सब पदार्थ कार्य है क्योकि सावयव है अवयव सहित हैं, जिसकी लम्बाई, चौडाई मोटाई है, यह पिण्ड रूप है, इसमे अनेक अवयव हिस्से पाए जाते है, जो अनेक हिस्सोका पिण्ड हो वह किसी न किसीके द्वारा किया गया है। जैसे घडा अनेक हिस्सोंका पिण्ड है, सावयव है तो देखो ना—वह कुम्हारके द्वारा किया गया है तो ये पहाड, पृथ्वी आदिक ये सावयव है तो ये भी किसीके कार्य हैं। इस शकाके समाधानमे वस्तुस्वरूपवादी यह पूछ रहा है कि तुमने सावयवताका क्या अर्थ समझा? क्या उसका यह अर्थ है कि ये सारे पदार्थ हिस्सोके साथ वर्तमान हैं, अपने अवयवोके साथ रहते हैं। अथवा यह अर्थ है कि अवयवोसे हमारी उन्नति हुई है, या यह भाव समझा है कि यह सावयव है ऐसा हमारे ज्ञानमे विषय हुआ है। इस कारण यह कार्य है। तीन विकल्प रखे गए हैं—कार्यत्वहेतु को सिद्ध करनेके लिए जो सावयत्वकी युक्ति दी उसके अर्थमे।

अवयवोके साथ वर्तमान होनेरूप सावयत्वहेतुका निराकरण—सावयवका अर्थ तो ठीक नही बैठता यह, कि अवयवोके साथ वर्तमान है पदार्थ इस कारण

यह कार्य है । जो जो सावयव होते हैं, आकार वाले पदार्थ जितने भी हैं इस कारण सावयव माना जाय और विशेष कार्य माना जाय तो उसमें व्यभिचार दोष आता है । अनुगत सामान्य, गोत्व सामान्य, यह अवयवोंके साथ रहता है, पर विशेष कार्य नहीं है । जैसे गायको ले लो—गाय है, काली है, चितकबरी है, छोटी है मोटी है, बड़ी है, बूढ़ी है, कुमार है जितनी भी गायें हैं उन सब गायोंमें जो गोत्व सामान्य है वह सामान्य उन गायोंमें एकसा पाया रहता है उन ही अवयवोंके साथ, उन ही आकार वालोंके साथ यह गोत्व सामान्य है तो यहां जो जो अवयवोंके साथ वर्तमान है वह विशेष कार्य होता है इसको सिद्ध कर सकते हैं यहां । गोत्व सामान्य विशेष कार्य नहीं है और वह रहा अवयवोंके साथ इस कारण यह कहना कि जो सावयव हो वह विशेष कार्य होता ही है यह असार हुआ ।

अवयवोंमें अणुसमानत्वरूप सावयवत्वरूप हेतुका निराकरण—यदि कहो कि हम सावयवताका यह अर्थ समझते हैं कि अवयवोंके द्वारा ये पदार्थ उत्पन्न हुए हैं सो यह अवयव प्रत्यक्षसे सिद्ध ही नहीं है । परमाणु आदिक अवयव जिनके द्वारा ये पदार्थ रचे गए माने जा रहे हैं वे परमाणु आदिक पदार्थ प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं हैं, फिर यह पृथ्वी आदि उन अवयवोंसे उत्पन्न होती है यह सिद्ध कैसे हो सकता है ? अब शङ्काकार इस विषयमें कह रहा है कि ये सब परमाणुवोंसे अवयवोंसे उत्पन्न हैं, इसकी सिद्धि हम करते हैं । देखिये ! द्वयणुकादिक जितने भी ये पदार्थ हैं, दिखने वाले जितने पदार्थ हैं ये सब महा परिमाण वाले पदार्थ छोटे परिमाण वाली किसी चीजसे रचे गए हैं, क्योंकि कार्य होनेसे । जो जो कार्य होते हैं और जितने बड़े परिमाण वाले कार्य होते हैं वे अपनेसे छोटे परिमाण वाली चीजसे मिलकर रचकर बनते हैं । शङ्काकार उदाहरण भी दे रहा है, जैसे कपड़ा बहुत बड़ी चीज है, पर वह तन्तु जैसे अल्प परिमाण वाले सूतसे बना है ना, तो जो बड़ी चीज होती है वह अल्प परि. माण वाली चीजसे मिलकर बनती है । और ये पृथ्वी पर्वत आदिक बड़े परिमाणकी चीजें हैं तो ये छोटे परमाणुकी चीजोंसे बनाये गए हैं और जो छोटे परमाणु वाली चीज है बस वह अवयव है, वह ही परमाणु है । इस अनुमानसे शङ्काकार कार्यपना सिद्ध तो कर रहा है, किन्तु इसमें एक चक्रक दोष आता है, वह किस प्रकार कि जब परमाणु सिद्ध हो जाय कि परमाणु होता है कुछ तब तो यह सिद्ध हो कि उन परमाणुवोंके द्वारा ये स्कंध रचे गए हैं, इस कारण ये सावयव हैं, और जब ये पृथ्वी आदिक सावयव हैं यह सिद्ध हो जाय तब यह पृथ्वी कार्य है यह सिद्ध होगा और जब ये सब कार्य सिद्ध हो जायें तब परमाणुकी सिद्धि होगी । शङ्काकारका यह कहना है कि जो बहुत बड़े परिमाणकी चीज होती है वह छोटे परिमाण वाली चीजसे बनती है तो आटेके ही छोटे छोटे कण उन सब कणोंके कारणसे बनी है, तो चूंकि यह महा परिमाण वाली चीज है रोटी तो छोटे परिमाण वाले आटेसे कणोंसे उस रोटीकी उत्पत्ति हुई है । तभी इस आटेका नाम बुन्देलखण्डमें कनक पड़ा । कनकका अर्थ है कणक ।

कण और कणक । अत्यन्त छोटे छोटे कणोको कनक कहते हैं । उन कनकोसे उस महा परिमाण वाले भोजनकी उत्पत्ति हुई है तो ये भी पर्वत, पृथ्वी आदिक ये सब बड़े बड़े परिमाणकी वस्तुवें है । यह ही यहा शकाकार सिद्ध कर रहे हैं कि छोटे २ आकार प्रकार वाली चीजोसे रचा गया है पर इसमे चक्रक दोष आता है ।

अल्पपरिमाणीसे महापरिमाणीकी जन्यताका अनियम —अल्पपरिमाण से महापरिमाणकी जन्यतासे अवयवोसे जन्यता माननेमे दूसरी बात यह है कि तुम कहते हो कि छोटे परिमाण वाली चीजसे बडे परिमाणकी चीज बनती है किन्तु बात कही कही उससे उल्टी भी देखी जाती है । बहुत बडे परिमाण वाली चीजसे छोटे परिमाण वाली चीज बनती है । जैसे रूई बहुत बडे विस्तार वाली चीज है, एक किलो रूई बहुत सी जगह घेरती है, पर उस बडे परिमाणवाली रुईसे एक चार अगुल लम्बी चौडी मोटी चीज बनायी जा सकती है । उस परमाणुको घटाकर दबाकर प्रेस करके बहुत छोटे रूपमे उसे किया जा सकता है, तो बहुत बडे परिमाणकी चीजसे भी छोटे परमाणकी चीज बन जाती है अत यह नियम नही बना कि महा परिमाण वाले पदार्थ अल्प परिमाण वाले पदार्थसे रचे गए हैं इस कारण ये सावयव हैं और कार्य हैं और कार्य है तो किसी न किसीके द्वारा रचे गए हैं, यह बात सगत नही बैठती है । तो उन परमाणुओकी ही सिद्धि नही है जिन परमाणुओ से सावयव पदार्थोंकी कल्पना की जाय । तो ये पदार्थ सावयव हैं, पिंड वाले हैं यह बात सही नही बैठी ।

सावयवरूपसे ज्ञानविषयताकी सावयवताका निराकरण यदि तीसरा पक्ष लोगे कि हम तो सावयवका यह अर्थ करते हैं कि हमारे ज्ञानमे जिस पदार्थके सम्बन्धमे ऐसी बात बैठ जाय कि यह पदार्थ सावयव है तो सावयव है ऐसी बुद्धिका विषयपना आनेका नाम ही सावयव है । यो इसका आत्मा आदिक पदार्थोंके साथ अनैकान्तिक दोष होगा । आत्माके सम्बन्धमे विचार करो—क्या यह आत्मा परमाणुकी तरह एक बिन्दु मात्र है ? अथवा कुछ बडे परिमाणको लिए हुए है । जरा अनुभवमे भी विचारो । अनुभव यह कहता है कि इस समय हम जितने बडे शरीरको लादे हुए हैं बस उतनेमे फैले हुए हम हैं । कही वेदना हुई तो वह वेदना केवल उस जगह नही होती जिस जगह काटा लगा हो या कुछ बात हुई हो ? वेदनाका अनुभव समस्त प्रदेशोमे होता है, इसी प्रकार ज्ञानका भी अनुभव है । जब कभी ऐसा लगता है कि मेरी इस अगुलीमे दर्द है तो उस अगुली भरमे वह दर्द नही है । अरे उस समय उस वेदनाका अनुभव यह दिलमे भी तो कर रहा है । दिलमे ही क्या सर्वत्र आत्म प्रदेशमे अनुभव हो रहा है । अगुलीमें तो वह यो समझता है कि उस वेदनाकी उत्पत्ति इस अगुलीके फोडेके निमित्तसे हुई है तो जिस निमित्तको पाकर वेदना जगी है इस मोही की दृष्टि उस निमित्त पर अधिक रहती है और ऐसी आकृष्ट दृष्टि हो गई है कि यह

समझता है कि यह वेदना है, और कोई पूछे तो बताता भी है कि यहां नहीं, जरा और सरको, यहां है वेदना। उस वेदनाके जाननेका जो प्रयोग किया गया है वह निमित्तसे छूटनेका प्रयोग है। निमित्त वेदनाको माननेका प्रयोग नहीं है। जब आत्मा महा परिमाणवाला हुआ, जितने जितने देहमें जो जो रम रहा है यह वह आत्मा उतने परिमाणवाला तो है ही। तो अब जो महापरिमाण वाला हुआ उसमें सावयवकी कल्पना हो सकती है ना। अब देखो आत्मा सावयव है फिर भी किसीका कार्य नहीं इससे सावयव हेतु सदोष है।

अखण्ड आत्माकी असंख्यात प्रदेशकल्पना—आत्मा असंख्यातप्रदेशी है। एक प्रदेशके मायने एक परमाणु आकाशके जितने हिस्सेको रोक सके उतनेको एक प्रदेश कहते हैं। एक सूईकी नोकसे कागज पर छोटासा बिन्दु बना दिया जाय, जरा सा निशान कर दिया जाय तो उस उतने निशानमें असंख्यात प्रदेश हुआ करते हैं हजार लाख प्रदेश की बात नहीं, असंख्यात प्रदेश हुआ करते हैं और यह सारा लोक जो ३४३ घन राजू प्रमाण है इतने बड़े लोकमें भी असंख्यात ही प्रदेश हैं। असंख्यात असंख्यात प्रकारके होते हैं, तो ऐसे ऐसे एक एक प्रदेशकी कल्पनाके माध्यमसे इस आत्माको निरखा जाय तो यह आत्मा असंख्यात प्रदेशी है लेकिन है अखण्ड। असंख्यात प्रदेशी होने पर कभी भी यह न हो सकेगा कि जैसे यह अनन्तप्रदेशी आत्मा अनन्त परमाणु वाले स्कंध टूट फूटकर अलग हो जाते हैं, बिखर जाते हैं। इस तरह असंख्यातप्रदेशी आत्मा टूट फूटकर बिखर जाय, खण्ड खण्ड हो जाए, यह कभी नहीं हो सकता। वह तो समस्त एक अखण्ड आत्मा है।

आत्माकी अखण्ड सावयवताके सम्बन्धमें एक प्रश्नोत्तर—कभी कोई यह शङ्का कर सकता है कि जब छिपकलियाँ परस्परमें लड़ती हैं तो किसी न किसी किसी छिपकलीकी पूँछ टूट जाती है। छिपकली अत्यन्त हिंसक जानवर है, कीड़ोंके सिवा उसका अन्य कोई भोजन नहीं, साथ ही वह मायाचारिणी भी अत्यन्त अधिक है। कीड़ोंको छिप छिपकर लेती है इससे इसका नाम है छिपकली - अर्थात् छिपकर ली। तो परस्पर लड़नेपर पूँछ टूटकर गिर जाती है। पूँछका हिस्सा अलग तड़फता रहता है और बाकी धड़ अलग तड़फता रहता है। तो क्या वहां आत्माके खण्ड हो गए? कोई कह सकता है कि जब दो हिस्से करीब ८–१० हाथकी दूरीपर अलग अलग तड़फ रहे हैं तब तो आत्माके खण्ड हो गए, पर ऐसा नहीं है। बात वहाँ यह है कि जितनी दूरीपर वे दोनों खण्ड पड़े हुए तड़फ रहे हैं उतनी दूरीमें वे आत्मप्रदेश फैल गए। यह एक समुद्घात जैसी स्थिति है। कुछ कालमें ही पूँछके आत्मप्रदेश सिकुड़ करके उस मूल शरीरमें आ जाते हैं तब वह पूँछ फिर निष्कम्प रह जाती है। आत्मा एक अखण्ड है, यह प्रदेशोंकी दृष्टिसे आत्माके सम्बन्धमें कुछ कहा जा रहा है। वैसे तो आत्माकी पहिचान प्रदेशोंसे नहीं हो पाती, प्रदेश हैं आत्मामें। अगर पहिचान

हो सकती है तो आत्माके असाधारण गुणसे होती है और वह असाधारण गुण है है ज्ञान। आत्माकी पहिचान ज्ञान गुणसे होती है। किन्तु इस प्रकरणमे कार्यत्व सिद्ध करनेके लिए सावयवताकी युक्ति दी गई थी और अवयवोकी रचना होती है प्रदेशोंमे, तो आत्माका प्रदेशोसे वर्णन करके यह कहा जा रहा है कि देखो आत्मा भी सावयव है लेकिन किसीका कार्य नही है। तब यह कहना अयुक्त है कि जो सावयव होता है वह कार्य होता है। सावयय तो आत्मा भी है परन्तु किसीका कार्य नही है।

परमार्थसे सावयव आत्मामे कार्यत्वकी अनुपलब्धिसे अकर्तत्वका समर्थन—इस सम्बन्धमे शकाकार एक अपनी युक्ति दे रहा है। दोष यह कहा गया था कि आत्मा सावयव है किन्तु वह कार्य नही है, इस पर शकाकार यह कह रहा है कि आत्मा तो निरावयव है, सावयव नही है, किन्तु सावयव जो शरीर है, जिसमे भाग है, अवयव है, हिस्सा है, ऐसे अनेक हिस्सो वाला जो यह शरीर है इस शरीरके सयोग से निरावयव होने पर भी आत्मामे ऐसा जानकारी होती है कि यह आत्मा सावयव है तो आत्मा सावयव है ऐसी बुद्धिका विषय होना यह औपचारिक है। वास्तवमे आत्मा सावयव नही है, और जब सावयव नही है तो सावयव न होते हुए कार्य भी नही है। फिर सावयवत्व हेतुमे दोष नही आ सकता। अब बात बनाकर हमारे इस अनुमानमे कि ये पृथ्वी आदिक समस्त पदार्थ किसी न किसीके द्वारा रचे गये है कार्य होनेसे इसमे दोष देना युक्त नही है। समाधानमे कहते है कि आत्मा यदि निरवयव है तो निरवयव चीज कभी व्यापकर रह ही नही सकती, जहा फैलाव नही, परिमाण नही, प्रदेश नहीं, अस्तिकाय नही, तो जो पदार्थ अस्तिकाय नही है वह व्यापकर नही रह सकता परमाणुकी तरह। परमाणु चीज चू कि निरावयव है, अस्तिकाय नही है तो क्या परमाणु कही फैलकर रह सकता है, व्यापकर रह सकता है। ग्रन्थोमे पुदगल को अस्तिकाय बताया है वह परमार्थसे नही बताया गया है, किन्तु उपचारसे कहा गया है। वास्तवमे तो पुद्गल एक एक अणु परमार्थ पुद्गल है और अणु होता है एक प्रदेशी तो परमार्थभूत सही सकल मे रहने वाले पुद्गलको अस्तिकाय न कहेगे, किन्तु उन परमाणुओके मेलमे स्कंध बनता है। स्कध बनने पर यदि अस्तिकाय होता है तो यह अस्तिायपना बनानेका सामर्थ्य परमाणुओमे न होता तो मिलकर भी न बनता। इस युक्तिसे समस्त पुद्गलोको अस्तिकाय कह दिया गया है। जब निरवयव आत्माको सम्बन्धसे सरायव कहकर उपचारसे अवयव बताया, तो यो शरीरको भी सावयव उपचारसे कहना पडेगा। तो ये पृथ्वी आदिक सावयव सिद्ध नहीं होते। कार्य सिद्ध नही होते। बात तो परमार्थसे यह है कि आत्मा तो सावयव परमार्थसे है और पुद्गल सावयव उपचारसे है। तो सावयव आत्मा किसीका कार्य नही है। अत क्षित्यादिक कार्य हैं सावयव होनेसे यह कहना अयुक्त रहा।

कार्यत्व सिद्धिके आधारमे विकल्प– जितने भी जगतमे ये पदार्थ दिखते

है—पृथ्वी, पर्वत, नदी समुद्र आदिक ये सब चूंकि कार्य है अतएव किसी न किसी बुद्धिमान द्वारा बनाये गए हैं ऐसी बात शंकाकारने रखी थी और उस कार्यत्व हेतुकी सिद्धिके लिए सावयवपना साधन बताया था किन्तु किसीके द्वारा कृत हो इसमें नियत-पना रखने वाले सावयवत्वकी सिद्धि तो नहीं हुई उसी प्रसंगमें यह पूछ रहे हैं कि अब जिन पदार्थोंको तुम कार्य कह रहे हो ये पृथ्वी, आसमान, सूर्य, चन्द्र पर्वत आदिक तो इनके कार्यपनेकी सिद्धि क्या पहिले असत रहे पदार्थमें कारणका समवाय होनेसे हुआ। अथवा सत्त्वका समवाय होनेसे हुआ। इस सम्बन्धमें ये दो प्रश्न किए जा रहे हैं शंका कारसे कि जो जमीन पर्वत आदिक कार्य बन बैठे ये कार्य हैं तो ये कैसे कार्य बने। ये पहिले असत् थे और फिर इनके कारणोंका समवाय जुटा तब ये कार्य बने क्या ऐसा भाव है? अथवा ये पहिले असत् थे और इनको सत्ताका समवाय सम्बन्ध जुड गया तब ये कार्य बने? जैसे कि लोकमें एक प्रश्न तो किया जा सकता ना, कि जैसे घडा कार्य है तो उस घडेके सम्बन्धमें यह लोगोकी धारणा है ना, कि घडा पहिले न था और जब घडा बना तो क्या इस प्रकार ये पृथ्वी आदिक पहिले न थे और इनके कारणोंका सम्बन्ध बना तब ये कार्य बने, क्या ऐसी बात है इन पृथ्वी पर्वत आदिकमें अथवा ये पहिले न थे। अब इनमें एग्जिस्टेंस डाला गया है, पहिले न था क्या ऐसी बात है?

प्राक् असत् पदार्थका कारण समवायसे कार्यत्व माननेका निराकरण

कार्यत्व सिद्धिमें कारण समवाय या सत्ता समवाय इन दो विकल्पोंमें से कुछ भी मानो पहिले यही बताओ कि पहिले न था, इस पहिले शब्द का तुम क्या अर्थ लगाते हो? क्या कारणोंका समवाय सम्बन्ध जुडनेसे पहिले न था, असत् था, यह अर्थ है? यदि यह है तुम्हारा तो कारणोंका समवाय सम्बन्ध होनेके समयमें भी पहिलेकी ही तरह अब भी स्वरूपका सत्त्व नहीं हो सकता? या हो सकता है? क्या मतलब है? जो असत है वह तो असत् ही है। कोई कारण जुट जाय, कारण जुट जानेके बाद भी उसमें स्वरूप सत्त्व नहीं आ सकता। नहीं आ सकता ना यदि कारणके जुट जाने पर स्वरूपमें सत्त्व ही आ सकता है तो फिर प्राग कहना, पहिले कहना, ये शब्द व्यर्थ हैं क्योंकि असत् तो असत् ही है? जो असत् है वह कारण जुटनेसे पहिले भी असत् है और कारण जुट जानेके बाद भी असत् है। यदि यह कहो कि जब कारण समवाय होता है तब कार्यका स्वरूपसे सत्त्व आ जाया करता है अर्थात कारण जुट जाने पर कार्यमें अस्तित्व आ जाया करता है। तो ऐसा माननेकी अपेक्षा यह मानो ना, कि सत् तो था, मगर पहिले उस सत्में कार्यपना आया। यह बात यहांकी बातोंमें स्पष्ट दिखती है। मिट्टी है, सत् है अब इसमें कारण कार्यपन न रहा और कारण जुटने पर उस सामग्रीकलापके होने पर कुम्हारने नाना साधक बनाकर तो अब उसही सत् पदार्थ में जो घडा बननेसे पहिले किसी रूपमें वह था उसमें कार्यपना आ जाता है यों मानने पर तो कुछ कहीं ठीक बैठता किन्तु पृथ्वी आदिमें कृतत्व फिर भी न बैठेगा।

प्राक् असत्‌मे कारण समवाय होनेसे कार्यपना मानने पर दोषोका कुछ विवरण—यदि यह मानोगे कि पहिले कुछ न था और कारण जुट जाने पर अब कार्यका अस्तित्व हो गया तो यहा यह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। घडा बना, तो यह पहिले कुछ न हो और फिर घडा आ जाय तब तो कहना ठीक है पर पहिले कुछ भी न था यह तो अयुक्त है मिट्टी थी उसमे घटकार्यपना न था, जब कारण जुटे तब घटकार्यपना आया। ऐसा ही तुम मानो! जो कसर रहेगी उसे पीछे बतायेंगे, पर इतना तो तुम्हें भी मानना ही होगा कि ये जमीन पर्वत आदिक पहिले थे, पर इस रूप न थे, तो कारण जुटाकर फिर ईश्वरने किस किसको इस रूपमे तैयार कर दिया यदि ऐसा कहो कि असत् तो हमारा एक मूलवाला उत्तर आ ही गया है कि यह पहले सत् था, असत् बात तो रही नही और यदि यह कहो कि असत् तो असत् ही है, जैसे पहिले असत् था उसी प्रकार कारणका समवाय होने पर भी सम्बन्ध होने पर भी वह स्वरूपासत्त्व नही आता तो असत् इतना ही कहो प्राक् (पहिले) शब्द क्यो कहते? एक बात और है जो बिलकुल असत् है उसमे कारणोका समवाय सम्बन्ध भी नही जुटता। अगर असत् पदार्थमे कारण जुटे और उसका कार्य बन जाय तो फिर आप जाइये आकाशके फूलकी माला बनाकर ले आइये। आप ला सकते हैं क्या? आकाश के फूलोकी माला असत् है आकाशके फूल ही नही होते तो कहासे आकाशके फूल ले आवोगे? अच्छा—बाँझका लडका ले आओ—हम उसे पढायगे। तो लावो आप, कहासे लाओगे। जो असत् है, है ही नही, उसमे कारणकलाप क्या जुडावोगे? तो असत् पदार्थमे कारण नही जुडा करते। गधेके सीगका धनुष बनाकर लाइये, क्या आप ला सकेंगे? लाया ही नही जा सकता। असत् है, उसमे कारणकलाप ही नही जुड सकते। यदि यह कहो कि कि गधेके सीग आदिकमे कारणोका अभाव है इसलिये यह दोष न कहेंगे। तो कहते हैं कि पृथ्वी आदिकमे भी कारणोका समवाय सम्बन्ध नही जुड सकता इसलिये उसमे भी कार्यपना न आ सकेगा।

लोक परिणमन व्यवस्थाका मूल कारण वस्तुस्वरूप - भैया! बात तो सीधी है कि जगतमे ये सब पदार्थ हैं और, हैं मे ही ऐसा गुण भरा हुआ है कि प्रतिसमय नया बनता रहे पुराना बिगडता रहे और उसका सत्त्व बना रहे, यह बात तो सत्त्वमे ही पडी हुई है। चू कि ये सब सत् हैं इस कारणसे ये निरन्तर बनते हैं, बिगडते हैं बने रहते हैं। बनना बिगडना बना रहना है। यह सब प्रत्येक पदार्थमे एक साथ होता है। जैसे देखो यह अगुली अभी सीधी है और इसको अब टेढी कर दिया तो बतलाओ बन क्या गया? टेढी अगुली बन गई। और, बिगड क्या गया? सीधी अगुलीका विनाश हो गया। और, अगुली सामान्य तब भी था और अब भी है। तो क्योजी यह बतावो कि पहिले सीधका विनाश हुआ फिर टेढी हुई अगुली पहिले टेढी अगुली हुई तब सीधी मिटी? कुछ कह ही नही सकते। और, इसमे तो कुछ समय लगता है सीधीको इतनी टेढी करनेमे, एक समयके बाद जो पर्याय देखो चाहे

वह कितना ही छोटा ममय हो पर एकदम पहिले समयमे जो परिणति बनी है उम परिणतिका बनना और पहिनेकी परिणतिका विलय होना ये दोनो एक साथ हैं। और वस्तु भी वही सदा है। अच्छा—यह भी बतावो टेढी अंगुली किए बिना अंगुली का विनाश हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता। और, सीधी अगुलीका विनाश किए बिना टेढी हो सकती है क्या ? नही हो सकती। तो उत्पाद बिना व्यय नहीं होता, व्यय बिना उत्पाद नहीं होता और ध्रौव्य बिना ये उत्पाद और व्यय दोनों नहीं होते। यदि अगुली ही न हो और कहें कि सीधी अगुली टेढी कर दो तो क्या कर दें ? तो ये तीनों चीजें पदार्थमे एक साथ गुम्फित हैं। यह पदार्थका स्वरूप है और इमीसे सारी व्यवस्था बन रही है। एक पदार्थके किसी प्रकारके परिणमनमें अन्य परपदार्थ निमित्त हो रहे हैं और उस निमित्त नैमित्तिक भावमे।

प्रभुके पावन स्वरूपके अवगमसे ही चित्तकी समाधानता - पदार्थके स्वरूपसे ही लोककी सारी व्यवस्था बन रही है। अब इस मर्मको तो कोई जाने नहीं और कल्पना करलें कि इतना बडा लोक है तो इसके बनाने वाला कोई होगा। इस लोकको ईश्वरने बनाया है। तो ऐसा कहनेमें उस ईश्वरकी कोई तारीफ नहीं हुई। ईश्वरकी तारीफ तो इसमें है कि वह समस्त लोकालोकका ज्ञाता रहे और अनन्त निराकुलतामें सतत् विराजमान रहे। तारीफ तो इस स्वरूपमें है। और इस ही स्वरूपको आदर्श मानकर योगीजन अपने विकल्पोका विलय किया करते हैं। कई वर्ष पहिले जब रेलगाडी प्रथम ही प्रथम निकली थी तो ग्रामीण लोग उन गाडियोंको देखनेके लिए इकट्ठा हो जाते थे, और उसके आगेके काले भागको देखकर यह कल्पना कर लेते थे कि इसको चलाने वाली काली देवी है। आजके समयमें यदि कोई इस तरहकी बातको कह दे तो लोग उसे बुद्धू कहेंगे। देखो बात वहाँ क्या है कि किसी एक पुर्जेने दूसरे पुर्जेमे धक्का मारा। दूसरेने तीसरे पुर्जेमे धक्का मारा, यो पहिये चल उठे, फिर सारी गाडी उस निमित्त नैमित्तक सम्बन्धवश चल उठी। तो जो बात समझमे नहीं आती उसमें लोग अपनी बुद्धिपर जोर नहीं देना चाहते और सीधा वह मान लेते हैं कि यह तो ईश्वरकी की हुई बात है, उसकी मर्जी है। सुख दुःख जो भी होते हैं वे उसकी मर्जीसे होते हैं पर यह तो बतावो कि वह ईश्वर इन खटपटोंमें पडेगा क्या ? ईश्वरका तो कैसा विशुद्ध स्वरूप है, कितना पवित्र स्वरूप है वह तो निराकुलतासे और कृतार्थतासे बन सकता है। जो पुरुष करने करनेका विकल्प लादे हैं—मुझे यह करना है अब यह करना है उसे चैन तो नहीं मिलती। वह तो अपने ऊपर एक विकल्पोका बहुत बडा बोझ लादे फिरता है। इतने कठिन विकल्प वह लाद लेता है कि कहीं हार्ट फैल हो जाता और मरणको भी प्राप्त हो जाता। तो करनेका काम जिसके लिए पडा हो उसका तो कोई पावन स्वरूप नहीं हुआ। जो कृतार्थ हो, अनन्तआनन्दमय हो, विशुद्ध ज्ञायक हो वह ही आत्मा पावन हो सकता है।

कर्तृत्वके आशयमे व्यसनसपात - कोई एक धुनिया कहीं विदेशसे आ

रहा था, समुद्री जहाजका रास्ता था। उस जहाजमे वह आदमी तो अकेला था, पर हजारो मन रूई उसमे लदी हुई थी। उस इतना अधिक रूईको देखकर उसका सिर दर्द करने लगा, सोचा ओह ! यह सारी रूई हमीको धुननी पडेगी। सो इस सकल्प से उसके दिलपर इतना असर बढता गया कि उसके बुखार हो गया। आखिर घर पहुँचते-पहुँचते वह बहुत अधिक बीमार हो गया। कई लोगोने उसको औषधिकी, पर वह ठीक न हुआ। एक बुद्धिमान पुरुष आया बोला,—आप लोग यहासे जावो, इसकी औषधि हम करेंगे। पूछा—भाई तुम कबसे बीमार हुए ? दो तीन दिनसे कहासे बीमार हुए ? विदेशसे आते समय रास्तेमे समुद्री जहाजपर बीमार हुए।·· जिस समुद्री जहाजसे आप आ रहे थे उसपर कितने आदमी थे ? उसमे आदमी तो एक भी न था, सिर्फ मैं था, पर उसमे हजारो मन रूई लदी हुई थी। उसकी उस दर्द भरी आवाजको सुनकर वह पहिचान गया कि इसको कौनसी बीमारी है ? बोला—अरे तुम उस जहाजसे आये। वह तो आगेके बदरगाहपर पहुँचते ही न मालूम कैसे क्या हुआ कि उसमे आग लग गयी और सारी रूई भी जल गई व साथ ही जहाज भी जल गया। लो इस बातको सुनकर उसकी सारी बीमारी दूर हो गई। तो जिसके मनमे यह भाव पडा है कि मुझे तो अमुक काम करनेका पडा हुआ है उसको निराकुलता कहासे सम्भव है।

यथार्थ स्वरूपमे निरखकर प्रभुकी भक्ति किये जानेका लाभ—प्रभुका स्वरूप—जो कृतार्थ हो, सर्वज्ञ हो, वीतराग हो, अनन्त आनन्दमय हो, सो ही प्रभु का स्वरूप है। यहा ये पदार्थ तो सब स्वय सत् होनेके कारण और जिसके जैसी योग्यता पडी है उस योग्यताके अनुकूल परपदार्थोंका निमित्त पाकर परिणमते रहते हैं, इनके रचने वाला कोई अलग पुरुष नहीं है। देखिये—प्रभुभक्ति प्रभुके गुणोका आदर्श स्वरूप समझमे आनेपर ही हुआ करता है और अपने कल्याणका चाव प्रभुके स्वरूप की भाति अपनी शक्ति समझमे आनेपर जगती है और यह वस्तुस्वरूप जब यथार्थ समझमे आता है कि यह पदार्थ सत् है स्वय ही परिणमनशील है परिणमता है तो इस ओरका विकल्प हट जाता है। इससे अपने लिये भी तो यह शिक्षा लेना चाहिए कि होता स्वय जगत परिणाम। मैं जगका करता क्या काम। समस्त पदार्थोंका परिणमन उनका उपादान, उनकी योग्यतामे होता रहता है, मैं उनमे क्या कर सकता हूँ। तो ये समस्त पदार्थ स्वय परिपूर्ण हैं, स्वय परिणमते रहते हैं, इनके करने वाला कोई बुद्धिमान है ऐसा माननेमे न तो युक्तिया गवाह देती है न अनुभव गवाह देता है और न लोक व्यवस्था बन सकती है।

प्राक् असत् पदार्थमे सत्तासम्बन्धसे कार्यत्व माननेका निराकरण—शकाकारसे यह पूछा गया था कि ये पर्वत आदिक कार्य हैं, उनमे कार्यपनाकी सिद्धि कैसे हुई। क्या पहले असत् रहे पदार्थमे कारण समवाय होनेसे कार्यपना आया।

था उनमें सत्त्वका समवाय होनेसे हुआ। यदि कहो कि जो पहिले असत् था, उनमे अस्तित्वका समवाय सम्बन्ध जोड़ा गया तब उनमे सत्पना आया। तो इसमें भी उतने ही दोष समानतासे आ पड़ते हैं। जितने दोष अभी दिए गए थे कि पहिले असत् था फिर सत् कैसे हुआ, अथवा आकाश कहनेकी अनवस्था दशा आदिक जो जो बातें कही गई थी वे सब दोष इस पक्षमें भी आते हैं। शंकाकार कहता है कि वे दोष इस पर नही आ सकते क्योंकि गधेके सींग आदिकसे इस पृथ्वीके सत्पनेकी विशेषता है। वह क्या विशेषता है कि गधेके सींग, आकाशके फूल, बांझका पुत्र, ये तो सर्वथा असत् हैं, परन्तु पृथ्वी आदिक ये न सत् हैं न असत् हैं किन्तु सत्ताके समवाय होनेसे सत् बनते हैं। गधेके सींग तो सर्वथा असत् हैं। उनमे तो सत्ताका सम्बन्ध भी नही पड़ सकता। वे तो कोई सत् ही नहीं बन सकते परन्तु पर्वत आदिक ये सत् ही नही बन सकते और इसे सर्वथा असत् भी न कह सकते थे क्योंकि आगे सत्ताका सम्बन्ध जुड़नेसे ये सत् बन जाया करते हैं। उत्तरमे कहते हैं कि यह भी कथन मात्र है। इस युक्तिमें दम कुछ नही है तुम कहते हो कि पृथ्वी आदिक गधेके सींगकी तरह न सर्वथा सत् है न सर्वथा असत् है किन्तु सत् भी है असत् भी है। तो सत्ता और असत्ताका तो एक जगह सम्बन्ध नही बनता। अपेक्षा दृष्टिसे सत्त्व और असत्त्व सिद्ध करे तो बात और है पर एकान्तवादमे यहां अपेक्षाको तो आधार ही नहीं दिया गया। वह तो स्याद्वादमे माना गया। यह घड़ा पहिले सत् थी कि असत् बतलावो। या यह चौकी जिस पर शास्त्र रखा है बतलावो यह चौकी बननेसे पहिले कुछ थी कि न थी। उत्तर है पहिले भी थी और न भी थी। काष्ठके रूपमे थी, चौकीके रूपमे न थी। तो यह अपेक्षावाद तो स्याद्वादमे आ गया। पर स्याद्वादके आश्रय बिना उसमे अपेक्षावाद का क्या अवकाश ? असत् है तो वह कभी उत्पन्न हो नही सकता और सत् है तो कारण कलापसे उसकी परिणति सकल बदल जायगी मगर एकदम असत्की उत्पत्ति न होगी।

सत्तामे सत्त्वके सद्भाव व अभावका पृष्टव्य विकल्प—और, बतलावो आपका (शंकाकार) जो यह कहता है कि जमीन पर्वत आदिक पहिले सत् न थे। कुछ न थे, उनमें सत्ताका सम्बन्ध जुड़ा सत्ताका सम्बन्ध होनेसे ही तो व सत् हुए जुड़ा तब वे सत् हुए। नन् एग्जिस्टेंसमें एग्जिस्टेंट का सम्बन्ध जुड़ा तब वे एग्जिस्टेंट हुए। तो क्या यह बिलकुल ही असत् था जिसमे सत्ताका सम्बन्ध जुड़ गया वह सत्ता भी सत् है या नही। एग्जिस्टेंसमें एग्जिस्टेंट है कि नहीं। यह पूछा जा रहा है। यदि उस सत्ताका भी अस्तित्व नही, वह भी असत् है तो असत्के सम्बन्धसे अन्य पदार्थ कैसे सत् बन जायेंगे, जो कुछ है ही नही, एग्जिस्टेंस में एग्जिस्टेंस रखा ही नहीं तो उसके सम्बन्धसे दूसरा एग्जिस्टेंट क्यों हो जाएगा ? और यदि कहो कि सत्ता सत्त्व सहित है, सती है, है वह मौजूद, तो उसमे जो सत्त्व आया वह किसी अन्यके सम्बन्ध से आया या स्वत आया ? यदि कहो कि अन्य सत्त्वके सम्बन्धसे आया तो उसमें सत्ता-

किससे आयी ? अन्यसे आना मानोगे तो यो अनावस्था दोष होगा । और स्वय आया तो बातें घुमाने फिरानेका इतना परिश्रम क्यो कर रहे हो ? इन पदार्थोंको ही सत् मान लो । पदार्थ नही है फिर इसमे सत्ताका सम्बन्ध जुटे तब ये पदार्थ सत् हुए और फिर इस झूठको सिद्ध करनेके लिये अनेक झूठ बातें लावो इससे न तो यथार्थ निर्णय होगा न कोई भलाई होगी ।

विपरीत बातके पोषणमे भलाईका अभाव—जो सीधी बात है उसे मानो झूठसे यथार्थका निर्णय नही होता । एक साहुकारने किसी बाबूको जगलमे बडके पेडके नीचे उसके मागने पर उसे ५०० रु० उधार दे दिये । लिखा पढी कुछ न हुई । साल दो साल बादमे जब उसने अपने रुपये मागे तो उसने मना कर दिया, कहा कि तुमने हमे रुपये नही दिये । तो उसने अदालत की । वहा बहुतसे प्रश्न किये जजने, पर बाबू ने हर बातमे यही कहा कि मैं जानता ही नही कि इन्होने कहा कब रुपये दिए । हमको नही दिये इन्होने रुपये । तो जज बोला—सेठ तू बिल्कुल झूठ बोलता है, तूने रुपये दिए नही हैं । इन बातोको सुनकर बाबूजी मन हीं मन खुश हो रहे थे कि अब तो हमारा मामला ठीक बन गया । तो जज बोला अच्छा सेठ तुम उस पेडको हमारे सामने लाओ जिसके नीचे तुमने रुपये दिए थे । तो वह कहता है कि वह पेड हम यहा कैसे ला सकते हैं । वह यहा हमसे न आ सकेगा । तो जजने कहा-अरे तू जा तो सही आएगा क्यो नही । वह बेचारा सेठ चला गया उस वट वृक्षके पास जानेके लिये । वह था वहासे बडी दूर । जब उसे बहुत देर हो गई, न आया तो जजने पूछा क्यो बाबूजी वह सेठ अब तक क्यो न आया ? तो बाबूजी बोल उठे —अरे अभी कैसे आ पाये—वह पेड तो यहासे करीब दो मील दूर है । लो निर्णय हो गया । तो झूठ विकल्प जोडे जायें, यथार्थ बात एकदम स्वीकार न की जाय तो उससे कुछ भलाई नही होती । तो तुम सीधा ही मान लो कि पदार्थ सत् है और परिणमता रहता है, इसमे किसी कर्ता को ढानेका प्रयास क्यो करते ?

पदार्थके स्वरूपसे लोकव्यवस्था—यह सारा लोक अनन्त द्रव्योका समूह है अनन्तानन्त जीव, उनसे भी अनन्त पुद्गल, एक धर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असख्यात काल द्रव्य । इन समस्त द्रव्योके समूहका ही नाम लोक है लोक कहते हैं उसे—यत्र लोक्यते पदार्था स लोक । जहा पदार्थ देखे जायें उसे लोक कहते हैं । सब पदार्थोंके समूहका नाम लोक है । ये समस्त पदार्थ अपने ६ साधारण गुणोसे युक्त हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, प्रमेयत्व । प्रत्येक पदार्थ 'है' अपने स्वरूपसे नही 'है' और परिणमते रहते है, अपनेमे ही परिणमते रहते हैं दूसरेमे नही, और उसका कुछ न कुछ आकार है, विस्तार है, और वह किसी न किसीके द्वारा प्रमेय है । इस प्रकार प्रत्येक द्रव्यमे ये ६ साधारण गुण पाये जाते हैं और इसी गुणके कारण ससारकी रचनाकी व्यवस्था अपने आप बन रही है । किन्तु, यह मर्म जब तक परिचय

में नही होता है तब तक कल्पनाएँ उठती हैं।

नास्तिक और कर्तावादियोके लोकमे स्वरूपदर्शियोकी विरलता— देखिये अनेक प्रकारोके लोगोका समूह इस लोकमे है। कुछ तो लोग ऐसे हैं जिनकी यह धारणा है कि जो कुछ दुनियामे दिख रहा है वही मात्र है सब कुछ। अदृष्ट तत्व अन्य कुछ नहीं हैं न आत्मा है न परमात्मा है। न ईश्वर है न स्वर्ग नरक है, न पुण्य पाप है। जो कुछ है वह सब यही है जो दिखनेमे आ रहा है। बहुतमे लोग तो इस आशयके हैं और बहुतसे लोग इस आशयके हैं कि हम लोग जीव हैं और हम सबका निर्माता, सारे जगतका निर्माण करने वाला कोई एक ईश्वर है। बस इन दो भागोमें विभक्त प्राय मनुष्योके दिमाग हैं। कुछ ही विरले पुरुष ऐसे हैं जो पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपपर ध्यान देते हैं आत्मा है वह ज्ञान गुण निर्भर है जैसे घडेमे पानी भरा हो तो वह घडा पानीसे परिपूर्ण है। उसके अन्दर कही एक सूत भी जगह अपूर्ण रह जाय ऐसी बात नही है। उस घडेके अगल बगल सब जगह पानी समाया हुआ है। उस घडेके अन्दर पानी जितनेमे भरा हुआ है वह घनरूपसे सर्वत्र भरा हुआ है। उसके बीच कही अन्तर नही है। इस ही प्रकार यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है।

पूर्णकलशवत् आत्माकी ज्ञानभरितावस्थता आत्माके सर्वप्रदेशोंमे वही ज्ञान स्वरूप घनरूपसे भरा हुआ है इसी कारण लोग भरे कलशको सगुन मानते हैं। यदि कोई पुरुष अथवा महिला सामनेसे जलसे भरा हुआ घडा लिए दिख जाय तो लोग कहते हैं कि आज मुझे सगुन हुआ है। अरे वह घडा तो है मिट्टीका, उसके अन्दर भरा है पानी, और जो उसको लिए जा रहा है वह एक ससारी मलिन प्राणी है, उसमे सगुनकी बात क्या हो गई ? सगुनकी बात यह हुई है कि उस भरे हुए घडेका निरखकर देखने वालेने अपने आपके आत्माकी सुध ली। जैसे यह घडा पानीसे अत्यन्त भरा हुआ है, कहीं कोई प्रदेश खाली नही है इसी प्रकार यह मैं आत्मा ज्ञानरससे पूर्ण भरा हुआ हू। यहा कोई प्रदेश ऐसा नही है जो उस ज्ञानसे खाली हो। ऐसी दृष्टि जिसके हो उसीका बेडा पार होगा। अपने आपका स्वरूप जिसे दृष्टिगत हो, मैं हूँ यह ज्ञान पुञ्ज और पूरा सर्वत्र प्रदेशोमे भरा हुआ हू ऐसे ज्ञानघन निज आत्मतत्त्वकी सुधि होती है उस पूर्ण कलसके देखनेमे, अतएव वह सगुन है। जलमे भरा हुआ कलश दिख जाय तो क्यो सगुन है ? अब पूर्ण कलश ज्ञाननिर्भर आत्माकी याद दिलाता है सो सगुन होता है यह बात तो भूल गए और कुछ कालके बाद क्यो सगुन है इसका कारण भूल हुए, उस पूर्ण कलसको निरखकर आत्माकी सुधि आती है अतएव सगुन है यह बात भूल गये, सगुन है यह पकड लिया। तो अब भी वही प्रथा चली आ रही है कि जल भरे कलशको देखकर लोक सगुन मानते हैं। तो यों आत्माकी ज्ञाननिर्भरता समझियेगा।

कर्तावादियोंके प्रति कार्यत्व हेतुमे दो विकल्प —आत्मा ज्ञान निर्भर है

और स्वय परिणमनशील है। निरन्तर परिणमता रहता है। ऐसे ही समस्त पदार्थ परिणमनशील हैं, परिणमते रहते हैं और इस अर्थक्रियामे इस लोककी बराबर व्यवस्था बनी चली आ रही है। ऐसा वस्तुस्वरूप जब दृष्टिमे नही रहता है तो लोग मन मे तो जिज्ञासा रखते ही हैं कि यह दुनिया क्या है, कैसी बनी है, जिसने बनाया है। बस इस जिज्ञासामे अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि कोई ईश्वर है अलग। वही हमसे सब कुछ कराता है वही हम सबको बनाता रहता है। इस सम्बन्धमें सृष्टिकर्तावादियो ने एक अनुमान बनाया था कि ये पर्वत आदिक समस्त पदार्थ किसी न किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाए गए हैं क्योकि कार्य होनेसे। ये चू कि सब कार्य है इस कारणसे किसी के द्वारा बनाये गए हैं। इस अनुमान ज्ञालमे विकल्पोका निराकरण अभी बहुत विस्तारसे किया गया है। अब एक बात यह पूछी जा रही है कि तुम जो पृथ्वी, पर्वत आदिकको कार्य बतलाते हो तो यह बतलावो कि ये कथंचित् कार्य है या सर्वथा कार्य हैं ? ये जमीन, आसमान, सूर्य चन्द्र, पर्वत आदिक कथंचित्कार्य हैं या सर्वदृष्टियों से कार्य हैं ?

कार्यत्वके सर्वथा अथवा कथंचित् दोनो विकल्पोकी असिद्धि यदि कहो कि सर्वदृष्टियोसे कार्य हैं तो भी यह बात सिद्ध नही होती। प्रत्येक पदार्थ चाहे कितना ही परिणमे, पर द्रव्य दृष्टिसे वह कार्यरूप नही है, पदार्थ द्रव्यदृष्टिसे न किसीका कारण है। हां आधार अवश्य है कि उसमे से पर्यायें उत्पन्न होती है, इस सिलसिलेमे अन्य पदार्थोंसे आत्मपदार्थकी कुछ विशेषता है। अन्य पदार्थ चू कि अचेतन हैं इस कारण उनके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमे उनसे कार्य होता रहता है, पर वे स्वय अपने आपको कुछ नही जान पाते किन्तु यह आत्मा समस्त परिणतियोका आधार भी है और यह आत्मा जब अपने आपके उस शुद्ध चैतन्य स्वभावका परिचय कर लेता है तो उसकी दृष्टि करनेसे उसका आलम्बन लिया जानेसे इसमे शुद्ध पर्याये प्रकट होने लगती है। प्रत्येक पदार्थ ये चू कि परिणमते रहते हैं अतएव कार्य कहलाते , और उनमे द्रव्यदृष्टिसे निरखा जाय तो उनका सत्त्व, उनका वह ध्रुव स्वभाव ये कोई कार्य रूप नही हैं, ये किसीके द्वारा नही बनाए गए हैं और न ये किसी भी प्रकार स्वयके द्वारा भी कार्यरूप हैं। तो सर्वथा कार्यरूप कोई पदार्थ नही है। यदि कहो कि ये पृथ्वी आदिक कथंचित् कार्यरूप हैं तो हेतु विरुद्ध अर्थात् अनैकान्तिक हो गया। कोई पदार्थ कभी कार्यरूप हो गया, कोई पदार्थ कभी कार्यरूप नही रहा, सर्वथा किसी बुद्धिमान का इसमे निमित्तपना है, यह जो साध्य विषय है उससे विपरीत अर्थात् बुद्धिमान निमित्तिक नही है, इस विपरीत साध्यके साथ पाया गया सो विरुद्धकी भी सिद्धि हो जाती है। तो न यह सर्वथा कार्य है यह कहा जा सकता है और न कथंचित् कार्य है यह कहा जा सकता है।

कार्यत्व हेतुकी आत्मादिकके साथ अनैकान्तिकता देखो आत्मा आदिक

पदार्थोके साथ इस अनुमानमे अनेकातिक दोप आताहै। इसमे हेतु यो समझना चहिये कि आत्मादिक पदार्थ किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाए नही गए फिर भी कार्य हैं। काय होने पर भी किसीके द्वारा बनाये नही गए। कार्यका अर्थ इतना ही नही कि कोई मनुष्य उसे करे सो कार्य है, किन्तु पदार्थमें पूर्व पर्यायसे विलक्षण अथवा अपूर्व नई पर्याय आये उनको कार्य कहते हैं तो आत्मा आदिक पदार्थ ये काय तो है। इनका परिणमन चलता है लेकिन ये किसीके द्वारा भी बनाए गए नही है। यदि यह कहो कि आत्मा आदिक पदार्थ भी कथचित् अकाय हैं, किसी दृष्टिमे ये कार्य नही है, तो जब इसमे कार्यकारिता न रही तो ये कुछ काम भी न कर सकेंगे, क्योकि पदार्थ अकर्ता रूपको त्यागकर कर्तारूपमे आये तब हो तो उसमे परिणमन होता है। पदार्थ स्वरूप स्वभावमे द्रव्यत अपरिणामी है पर पर्यायदृष्टिसे यह परिणमन करता है। तो अपनी उस अपरिणामिताके सकतरूपताको रूपमे त्याग कर (यह सब दृष्टियोंसे लगाना है) कर्तारूपमे आये अर्थात् द्रव्यदृष्टि गौण होकर पर्याय दृष्टि प्रधान बन अथवा पदार्थ मे पदार्थ अपने स्वरूपको न त्यागकर द्रव्य गुणके कारण उसमे ही कोई नवीन परिस्थिति बने, यदि यह बात नही मानी जायगी तो पदार्थ कुछ भी काम का न रहा। उसमे कोई अर्थक्रिया ही नही सम्भव है।

कर्तृत्वसिद्धिके प्रसगमे अकर्तृत्व सिद्ध करनेकी आपतित नौबत — यहा शकाकारके प्रति यह दोष दिया गया है कि आत्माको जो तुम अकर्ता मानते हो सो आत्मा अकर्ता नहीं है। आत्मामे पर्यायें नवीन बनती हैं पुरानी पर्यायें विलीन होती हैं अतएव आत्मामे कथचित् कार्यपना है। देखिए जैन शासनमे जो नीति स्याद्वाद की अपनाई गई है उससे वस्तुका सही परिज्ञान होता है। साथ ही यह भी समझिये कि स्याद्वादवादी अटपट धर्मोंको सिद्ध नही करता। पदार्थमें जो बात पायी जाती है उस पदार्थके स्वरूपसे स्वभावका वर्णन करते हैं और यह एक अपनी पावनताको लिए हुए है अर्थात् इस जैन शासनमे पहिले कुछ जैन शासनको बात मानी जाय और कुछ कुछ अन्य सिद्धान्तोकी भी बात मानी जाय ऐसा मिश्रण नही है जब अन्य अनेक शासनोंमे यह मिश्रण पाया जाता है तो कभी कुछ मान रहे हैं, कभी कुछ। शकाकार ने अभी माना था कि जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब किसी न किसीके द्वारा किये हुए होते हैं कहा तो सर्व पदार्थोंको कार्यपना माननेकी धुनि और अब कहा यह गले पड गया कि आत्माको अकार्य सिद्ध करनेकी नौबत आ गई क्योकि मिश्र सिद्धान्त है।

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत आत्मासे अर्थान्तरभूत कर्तृत्व व अकर्तृत्व रूपकी मीमासा— आत्मा चूकि अनेक परिणमनोसे नवीन अवस्था अगीकार करता है अतएव काय है, इस बातपर शङ्काकार *आत्माको अकर्ता सिद्ध करनेके लिए कह* रहा है कि भाई आत्मामे जो वे दो रूप हैं कर्तृत्व और अकर्तृत्व सो कर्तृत्व रूप और अकर्तृत्वरूप ये आत्मासे जुदे हैं। आत्मा तो कूटस्थ नित्य अपरिणामी है। और,

आत्मामे जो ये दो रूप आये—कर्तृत्व और अकर्तृत्व ये दोनो रूप आत्मासे भिन्न है इस कारणसे आत्माके कर्तृत्व रूपका अगर त्याग होता है, उत्पाद होता है और अकर्तृत्वरूपका विनाश होता है तो ऐसा होनेसे आत्माका भी उत्पाद और विनाश हो जाय यह बात युक्त नही है क्योकि आत्माके वे दो रूप हैं कि आत्मा अकर्ता है और अकर्तृत्वरूपको त्यागकर वह कर्तृत्वरूपमे आ गया। ये दोनो रूप आत्मासे जुदे है और उनकी आत्मासे जुदे है और उनकी उत्पत्ति होनेमे, विनाश होनेसे आत्मामे कुछ भी उत्पाद विनाश नही होता। तब आत्मामे कुछ भी कायपना नही है। यह समाधानमे कह रहे हैं कि यह कहना भी केवल अपनी मनगढंत बात है। हैं कि वे जो दो रूप है, अकर्तृत्व व कर्तृत्व सो दोनो आत्मासे अर्थान्तर है। ये दोनो कर्तृत्व होना और अकर्तृत्व होना यो समझे कि जैन शासन मानता है कि द्रव्यदृष्टिसे आत्मा अकर्ता है और पर्यायदृष्टिसे आत्मा कर्ता है यो कर्तृत्व—अकर्तृत्व दोनोको शङ्काकारके सिद्धान्तके अनुसार यदि आत्माको भिन्न मान लिया जाय तो इन दोनो रूपोका आत्मामे सम्बन्ध ही सिद्ध नही हो सकता जो चीज मुझमे निराली है उसका मेरेसे निराली है सम्बन्ध कैसे होगा और सम्बन्ध जबरदस्ती मानले तो उसका सम्बन्ध और भी अटपट हो जाना चाहिए अन्यत्र सम्बन्ध हो वैसे। अतएव यह कर्तृत्वरूप आत्मासे कथचित् भिन्न नही कहा जा सकता है।

स्याद्वादसे व्यवहार एक पदार्थस्वरूपकी व्यवस्था भैया! स्याद्वादके बिना गति नही है लोककी। जैसे कोई मानता है कि आत्मा सर्वथा अपरिणामी है, तो कोई मानता है कि आत्मा तो क्षण क्षणमे नया नया बना करता है। एक शरीरमे वहीका वही आत्मा नही रहता दिनभर भी, एक मिनट भी, किन्तु क्षण क्षणमे नवीन आत्मा आया करते हैं, लेकिन दोनो ही स्थितियोमे लोकव्यवहार सब खतम हो जाता है। किसीको आपने रुपया पैसा या अन्य कोई चीज उधार दे दें और दूसरे दिन आप उससे मागने लगे तो वह क्या जवाब देगा कि हमको तुम कब दिया था रुपया? अजी कल दिया था। अजी तब से लेकर अब तक अनगिनते आत्मा हो गए, उनके बाद मैं तो अब हुआ हूँ। तो यो सारा लेन देन खतम हो जायगा। अपरिणामी है कुछ उसमे क्रिया ही नही होती है यदि यह हठ किया जाय तो समझना, बोलना, सिखना, समझाना ये सब बातें कैसे हो जायेगी। स्याद्वाद बिना तो इनकी गति भी नही है बोल भी नही सकते, खा पी भी नही सकते और फिर मोक्षमार्ग, शान्तिका उपाय तो निकल ही नही सकता। आत्मा अपरिणामी है। सर्वथा, तो फिर कोई परल बदल ही नही होगी। तो ससार क्या और मोक्ष क्या, ऐसा कहने मात्रमे यह ससार तो नष्ट हो जायगा। यह यो निरपर चीज रही है। इस चक्करमे तो स्वय पडे हुए हैं और क्षणिक है तो यताजी— व्रत तप करनेमें फायदा क्या है? हम व्रत करें, तप करें, मरें और दूसरे आत्माको मोक्ष हो गया, क्योकि क्षण क्षणमे नया नया आत्मा बन रहा है ऐसा सिद्धान्त मान लिया। तो स्याद्वादके बिना न शान्तिका

मार्ग चल सकता है और न लोकव्यवहार चल सकता है। ये समस्त पदार्थ द्रव्यदृष्टि मे तो अकर्ता है और पर्यायदृष्टिसे कर्ता हैं।

निमित्त नैमित्तक भावके प्रति लोकोंका कर्तृत्व विकल्प—अब देखिये पदार्थमे जो जो कुछ भी परिणमन हो वह सब निमित्त नैमित्तक भाव पूर्वक होता है। ईन्धनमे अग्नि पड जाय तो ईंधन जल जाता है। किसी वस्तुमे किसी वस्तुकी ठोकर लग जाय यो वह वस्तु आगे निकल जाती है, कोई पदार्थ ऊपरसे गिर जाय अथवा कोई भीटकी ईंट निकलकर नीचे गिर जाय और वहां पडा हो कोई पदार्थ तो वह टूट जाता है। ये सब निमित्त नैमित्तक भावोसे स्वय कार्य हो रहे हैं, उनमे कौन कर्ताका व्यवहार करता है। देखो इस ईंटने हमारा कांच फोड दिया, यों तो कोई नहीं बोलता, क्योकि वह ईंट भी अचेतन है और यह दर्पण भी अचेतन है, ईंट गिर गई दर्पण टूट गया तिस पर भी कोई नहीं कहता कि ईंटने मेरा दर्पण तोड दिया। तो जैसे निमित्त नैमित्तिक भाव अचेतनमे चला करते हैं। अब कोई चेतन परम्परा किसी अचेतनके कार्यमे निमित्त बन गया तो लोग वहा उस चेतनको कर्तारूपमे पकड लेते हैं, किन्तु देखो तो जब निमित्त नैमित्तिक भावपूर्वक अचेतन अचेतनमें इतना कार्य बना वहां तो किसीको ये कर्ता नही कहना चाहते और यहा किसी चेतनके निमित्तसे परम्परा किसी अचेतनमे कोई परिणति बन गई तो यहा झट उस चेतनको कर्तारूपसे कह डालते हैं। निष्पक्षतया देखो तो जसे जो कुछ अचेतन अचेतनके प्रसगोंमे परिणमन होकर बात है वही चेतन और अचेतनके सम्बन्धमे प्रसगमें भी उसी किस्मकी बात है फिर इस चेतनको कर्ता क्यो कहा जाता? इसलिये कहते कि इसमें ज्ञान है। समझ है, यह विकल्प मचाता है, सोचता है, और मैं कर दूगा, ऐसा उसने भाव किया ऐसे ऐसे अनेक विकल्प यह किया करता हैं इस कारणसे उस चेतनके निमित्तसे बाह्य पदार्थोंमे कुछ परिणतिया दिख जायें तो झट चेतनको कर्ता कह डालते हैं। स्वरूपत देखो तो प्रत्येक पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे अकर्ता है और पर्यायदृष्टिसे कर्ता है। किसका कर्ता है? अन्यका कर्ता नही। अन्यका कर्ता तो निमित्तरूपसे कह सकते हैं पर प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय निरन्तर परिणमते रहते हैं, उन सब परिणमनोका कर्ता वह वह पदार्थ है।

परमात्मगुणभक्ति—अहा इन पदार्थोंके स्वरूपका जौहर तकिये। इसका चमत्कार निरखिये, अपने आपके स्वरूपका भी चमत्कार देखिये। यह कैसा अद्भुत ज्ञानप्रकाशमय है। यदि बाहरके विकल्प न रखे जायें, किसी भी अन्य पदार्थका ममत्व इस चित्तमें न बसे, किसी भी पदार्थमे, जीवमे, परिवारमे, मित्रमे यह मेरा कुछ है, यह मेरा भला है। इसका मुझपर स्नेह है, मेरे भी इसके प्रति बडा राग है, आदिक किसी भी प्रकारका लगाव न रखे और विश्रामसे ही अपने आपमे ठहर जाये तो ये सकट रह नही सकते। आत्माका स्वरूप है प्रतिभास करना। बाह्य प्रतिभास नो समाप्त कर दिया तो अब यह अन्तरङ्गमे ही अद्भुत प्रतिभास होना है और उस ज्ञान प्रकाश

मे यह स्वाभाविक आनन्दका अनुभव करता है। अहो ऐसा आनन्द तो मैंने अभी तक भी नही पाया था। कितना विलक्षण स्वाभाविक आनन्द जिसमे आकुलताका रच भी नाम नही है, ऐसा विशुद्ध आत्मीय ज्ञानका प्रकाश पा लिया जाता है। पदार्थके स्वरूपके परिज्ञानमे यत्न बढायें। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थका कर्ता नही है। लोक मे भी तो कर्तापनकी बात कही जाती हैं, वह भी औपचारिक है। अन्य कोई ऐसा आत्मा ईश्वर जो सारे जगतके जर्रे जर्रेको अणु अणुको इन सब अदृष्ट पदार्थोंको सब को किया ही करता रहे यह बात तो दूर रहो, ईश्वर तो अनन्त ज्ञानानन्दमय होनेसे आदर्शरूप है इस नातेसे प्रभुकी भक्ति करना योग्य है। न कि वह मुझे बनाता है सुखी दुःखी करता है। तो डरसे उसकी भक्ति करें। प्रभुके गुणोपर अनुरक्त होकर, झूमकर उसकी भक्ति करना नही है।

बुद्धिकी बुद्धिमानसे व्यतिरिक्तता या अव्यतिरिक्तताका विकल्प—पदार्थोंमे पदार्थके ही कारण स्वय परिणमनशीलता है इस मर्ममे अपरिचित लोग कैसे ये पदार्थ उत्पन्न हुए हैं ये पदार्थ कैसे आ गए किसने बनाये, बिना बनाये तो कुछ नजर ही नही आता। यह मकान बना है तो कारीगरने बनाया, ये ऐसे पहाड, कैसे पत्थर डटे हैं, कैसी इनकी सकल बनी है, ये किनके द्वारा बनाये गए हैं ऐसी आशका उत्पन्न होती है। तो इस सम्बन्धमे जो अनुमान बनाया गया कि पृथ्वी पर्वत आदिक किसी बुद्धिमन्निमित्तक हैं, अर्थात् इसका कारण कोई बुद्धिमान है, ऐसा अनुमान बनानेमे जो बुद्धिमान शब्द दिया है तो शकाकारसे कहा जा रहा कि बुद्धिमान शब्दको भी पहिले सिद्ध करलो। बुद्धिमानका अर्थ क्या है ? बुद्धिवाला। जैसे धनवानका अर्थ क्या है ? धनवाला। इसमे शब्द है बुद्धि और मत् प्रत्यय लगा है जिससे बुद्धि मत् बनता है और रूप चलनेपर प्रथमाकी विभक्तिके एक वचनमे बुद्धिमान बनता है। पहिले बुद्धिमान शब्दका अर्थ तो बताओ। यह बतलावो कि बुद्धिमानमे जो बुद्धिमान शब्द से प्रश्न किया जा रहा है। बुद्धिमानकी बुद्धि बुद्धिमानसे जुदी है या एकमेक है।

व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माने जानेके कारणोमे चार विकल्प—यदि कहा कि बुद्धिमानकी बुद्धि बुद्धिमानसे न्यारी है, ये दोनो परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। बुद्धि चीज जुदी है, बुद्धिमान जुदी वस्तु है। तो जब ये दोनो अलग अलग तत्त्व हो गए तो यह बुद्धि इस बुद्धिमानमे है यह सम्बन्ध कैसे जोडा जा सकता है ? बुद्धिमानकी यह बुद्धि है यह बात तुम किस कारणसे कहते हो ? क्या इस वजहसे कहोगे कि यह बुद्धि बुद्धिमानका गुण है। यह बुद्धि बुद्धिमानकी है इसलिए अथवा उस बुद्धिमानसे अर्थात् ईश्वरसे इस बुद्धिका समवाय सम्बन्ध हुआ है। अत यह बुद्धि बुद्धिमानकी है। समवाय सम्बन्ध एक घनिष्ठ सम्बन्धको कहते हैं। जैसे पानी मे रूपका सम्बन्ध है तो यह समवाय सम्बन्ध है। पानीसे रूपको अलग तो नही कर

सकते, पर रूप गुण नैयायिकोंके यहाँ अलग तत्त्व है और पदार्थ अलग तत्त्व है। तो बुद्धिमानमे बुद्धिका समवाय सम्बन्ध है यह नही कह सकते हैं फिर बुद्धिमानकी यह बुद्धि है यह कैसे सिद्ध किया जा सकता। क्या ईश्वरका वह कार्य है, अर्थात् जैसे बुद्धिमानने जगतको किया, क्या यो ही बुद्धिमानने बुद्धिका निर्माण किया जिसकी वजहसे यह कहेंगे कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है अथवा यह बुद्धि आधेय है और बुद्धि-मान आधार है। बुद्धिमानमे बुद्धि पायी जाती हैं इस कारणसे कह सकते है कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है। जैसे घी तीन-चार वर्तनोमे भरा है, मिट्टीके वर्तनमें भी है और अल्युमोनियमके वर्तनमे भी है। कोई अल्युमोनियनके वर्तनका घी ला दे तव कहे कोई कि अल्युमोनियमका घी क्यो लाया तो क्या वह घी अल्युमोनियमका हो गया। लोकमे आधार आधेय सम्बन्धके कारण आधारका आधेय कहा जाता है। तो क्या इस आधार मे यह बुद्धि रहती है इस कारणसे यह कह रहे हो कि यह बुद्धिमानकी है, इस प्रकार बुद्धिमानकी यह बुद्धि है ऐसा सम्बन्ध कैसे वन गया भिन्न होने पर। यो इस प्रसगमे चार विकल्प किए गए हैं।

बुद्धिमानका गुण होनेसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध मानने की असिद्धि—ये समस्त पदार्थ किसी बुद्धिमान अर्थात् ईश्वरके द्वारा बनाए गए हैं ऐसा कहनेमे भिन्न बुद्धिको बुद्धिमानके साथ सम्बन्ध बतलानेके लिए जो यह पक्ष किया गया था कि चू कि यह बुद्धि बुद्धिमानका गुण है इस कारण उस बुद्धिमानकी बुद्धि कहलाती है। उसमे उसका सम्बन्ध जुडता है। ऐसा नही कह सकते क्योकि जो चीज अत्यन्त भिन्न है उसमे यह उसका ही गुण है यह नही बताया जा सकता। हम पूछेंगे कि जव बुद्धि उस ईश्वरसे जुदी चीज है तो बुद्धिका सम्बन्ध ईश्वरसे ही क्यो जोडा गया आकाशसे क्यो नही जोडा गया ? आकाश बुद्धिमान वन जाता, ज्ञानवान हो जाता। जव बुद्धि जैसे ईश्वरसे जुदी है इसी प्रकार आकाशसे भी जुदी है। बुद्धिकी भिन्नताकी समता होने पर भी बुद्धिको ईश्वरसे जोड दिया जाय और आकाशसे न जोडा जाय यह तो एक पक्षको वात है।

बुद्धिका बुद्धिमानमे समवाय होनेसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्वन्ध माननेकी असिद्धि—यदि कहो कि बुद्धिमानकी यह बुद्धि है यह सम्वन्ध हमने समवायसे जाना है। चू कि उस बुद्धिमान ईश्वरमे बुद्धिका समवाय पाया जाता है, समवायका अर्थ है एक तादात्म्य जैसा सम्बन्ध, अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध। यह वात भी अयुक्त है क्योकि प्रथम तो समवाय सम्बन्ध ही कोई चीज नही है, या तो है तादात्म्य या है सयोग। समवाय ऐसी क्या चीज है जो पदार्थमे सदा तो रहे और फिर भी जुदी जुदे मानते। जैसे पुद्गलमे रूप है तो जैन शासन कहता है कि यह पुद्गलमे रूप गुणका तादात्म्य है। पुद्गल रूपमय है न कि पुद्गलका यह रूप है। वह पुद्गल ही रूपमय है इसी प्रकार जिन जिन पदार्थोंमे जो जो स्वभाव पाया जाता है

वह पदार्थ उस स्वभावसे तन्मय होता है। तो एक तादात्म्य भी होता है बाकी सब सयोग सम्बन्ध होता है। जीवके साथ रागादिक भावोका सयोग सम्बन्ध होता है। यद्यपि ये रागादिक भाव जीवमे एकरूप हो रहे हैं उस काल में, तिस पर भी ये मिट जाने वाले है, आत्माके स्वभाव नही है इस कारण उन्हे सयोग सम्बन्ध कहा है। जरा घनिष्ट शब्द लगा दो। घनिष्ट सम्बन्ध है, पर यह समवाय सम्बन्ध और कहासे आ पडा? समवायका और कोई स्वरूप नही है जिससे कि समवायसे बुद्धिमानकी बुद्धि के साथ जोड दिया जाय, और कदाचित मान लो कि समवाय सम्बन्ध है तो समवाय भी तो उन दोनोसे जुदा है ना, तुम तो भेद एकान्त पर तुल गए। समवाय मान भी लें तो वह समवाय भी तो दोनोमें जुदी चीज रही। और यह आपत्ति भी आयी कि जब समवाय बुद्धिसे भी निराला है, बुद्धिमान ईश्वरसे भी निराला है तो इस समवाय का उन दोनोमे सम्बन्ध जुटाना यह व्यवस्था नही बन सकती। क्योकि यो तो आकाश भी निराला है, फिर बुद्धिका आकाशमे समवाय क्यो नही हो जाता? उस बुद्धिसे क्यो ईश्वरका समवाय होवेगा? तो समवायसे भी यह बात न सिद्ध कर सकेंगे कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है।

बुद्धि बुद्धिमानका कार्य होनेसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि --यदि कहो कि उस बुद्धिमान ईश्वरका कार्य है वह बुद्धि जैसे बुद्धिमान ईश्वरने इस जगतकी रचना की है। तो वह बुद्धि ईश्वरका कार्य है इस कारणसे यह सम्बन्ध बता सकते हैं कि बुद्धि बुद्धिमानकी है, यह बात भी अयुक्त है। क्या कारण है, किस वजहसे आप कह रहे है कि यह बुद्धि बुद्धिमानका कार्य है? यदि यह कारण बताओगे कि बुद्धिमान होने पर वह बुद्धि हुई है इस कारणसे वह बुद्धि उस बुद्धि वालेका कार्य है तो वह बुद्धि आकाश आदिकके होने पर भी तो हुई है। जैसे ईश्वर नित्य है, व्यापक है, सदा रहता है इसी प्रकार ये आकाश आदिक भी तो नित्य हैं, व्यापक है, सदा रहते हैं, फिर यह बुद्धि उस ईश्वरका कार्य क्यो रहा, आकाश का कार्य क्यो नही बन बैठा? तो यह भी बात युक्त नही बैठी कि बुद्धिमानका कार्य है, इस कारण बुद्धिका सम्बन्ध हम बुद्धिमानमें मान लेते हैं और बुद्मिान शब्द सिद्ध हो जाता है।

अन्य व्यतिरेकसे भी व्यतिरिक्त बुद्धिका नित्य बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि - शायद यह कहो कि बुद्धि बुद्धिमानका कार्य है क्योकि बुद्धिमानके न होनेपर बुद्धि नही हो सकती, यह बात भी ठीक नही है, क्योकि तुम्हारा वह बुद्धिमान ईश्वर नित्य है, व्यापी है। ऐसा कोई सम्बन्ध आ ही नही सकता तुम्हारे सिद्धान्तके अनुसार क्योकि वह नित्य, व्यापक है। ऐसी कोई सभावना नही कि ईश्वरका कभी अभाव भी हो, और जो भी मुक्त हुए हैं उनका कभी भविष्यमे अभाव होता ही नहीं है अन्य शासनमे भी। आपके शासनमे तो भले ही यह माना

गया है कि कोई जीव मुक्त हो जायगा और बहुत कालके बाद उसे जायगा, जन्म मरण कराया जायगा, पर यह आनन्दमग्न ईश्वर तो नित्य है व्यापी है, कोई यह स्थिति नही आ सकती कि उसका कभी अभाव होगा। तब फिर उसका अभाव होनेपर बुद्धि नहीं होती है यह व्याप्ति नही बना सकते। जैसे जब हम यहा देखते है कि अग्निके होने पर धुवा नही होता। देखते हैं ना, तो हम यह दृढतासे कह सकते हैं किसी भी जगह कि अग्निके बिना धुवा नही होता इस कारणसे धुवा अग्नि का कार्य है पर ऐसा तो कभी देखा ही नही जा सकता कि बुद्धिमान ईश्वरके बिना बुद्धि न बन सके कभी ऐसी स्थिति कभी हो ही नही सकती, तो कैसे यह मान लिया जाय कि ईश्वरका अभाव होने पर बुद्धिका अभाव होता है। इस कारण बुद्धि ईश्वरका कार्य है।

आधार आधेयतासे भी व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि—यदि यह कहो कि बुद्धिमानमे बुद्धि पाई जाती है, बुद्धि आधेय है इस कारणसे यह कहा जाता कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है, यह भी ठीक नही क्योकि आधेयपनेका नाम क्या ? क्या समवाय सम्बन्ध से उस बुद्धिमान सृष्टिकर्ता मे बुद्धि रहती है इस कारण कहते हो कि यह बुद्धि बुद्धिमानका है। बुद्धिमान तो आधार है और बुद्धि उसका आधेय है। तो समवायका तो उत्तर पहिले दे ही चुके अगर कहो कि तादात्म्यका सम्बन्ध है तो यह बात तुम्हारी गलत है क्योकि तादात्म्य सम्बन्ध ही तुमने नही माना। जैन शासनमे तादात्म्य माना है जैसे आत्मामे ज्ञान-स्वरूपका तादात्म्य है अग्निमे उष्णताका तादात्म्य है। कहीं ऐसा नही होता कि अग्नि अलग रहे और उष्णता अलग रहे। तो चाहे अग्नि बुझ जाय, पर वह अपनी उष्णताका परित्याग नही करती क्योकि अग्निमे उष्णताका तादात्म्य है। तादात्म्य है तो उसका नाम सम्बन्ध न रखो, है ही तादात्म्य। तादात्म्य वस्तु है यह बात बताने के लिए तादात्म्य नाम रखा गया है, पर शकाकारके सिद्धान्तमें तादात्म्य कुछ नहीं हुआ करता है। तादात्म्य है या सयोग ? तादात्म्य शकाकारने माना ही नही है। समवायसे भी बुद्धिमान आधार है बुद्धि आधेय है यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

सम्बन्ध मात्रसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि—यदि कहो कि सम्बन्ध मात्रसे बुद्धि बुद्धिमानमें रहती है, चूकि सम्बन्ध है, जहा बुद्धिमान है वही बुद्धि है, इतने सम्बन्ध मात्रसे यदि किसीका कुछ मान लिया जाय तो घट आदिक पदार्थोमें पृथ्वी आदिकके गुणका प्रसग हो जायगा। घटमें वह गुण होना चाहिए जो पृथ्वीमे है। यह दरी जो बिछी है इस दरीमे पृथ्वीके गुण आ जाने चाहिए क्योकि इसमे पृथ्वीका सम्बन्ध है। पृथ्वी पर कोई मनुष्य बैठा है तो उस मनुष्यमे जमीनके गुण आ जाने चाहिएँ क्योकि पृथ्वीका सम्बन्ध है। सम्बन्धमात्र

से कोई किसीका कहलाने लगे तो यों तो बड़ी अव्यवस्था बन जायगी। तो यह सिद्ध नहीं हो सका कि बुद्धिमानकी यह बुद्धि है बुद्धि वाले इस शब्दको ही सिद्ध नहीं कर सक रहे फिर यह कहना कि यह सब जगत किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है यह बात तो बाद की है, पहिले बुद्धि वाला इसको ही तो सिद्ध कर दो।

सामस्त्यरूपसे या असामस्त्यरूपसे बुद्धिका बुद्धिमानमे सम्बन्ध माननेको विकल्प—थोडी देरको मान भी लिया जाय कि इस बुद्धिका सम्बन्ध उस ईश्वरमे है, उस बुद्धिमानमे है तो यह बतलावो कि उस बुद्धिका सम्बन्ध बुद्धिमानमें तादात्म्यरूपसे है, सर्वरूपसे है या अव्यापकरूपसे है। जैसे पानीमे दूध मिला दिया तो उस समय दूध और पानी सर्वरूप से सम्बन्धित हैं कि नही, सम्बन्धित हैं। और पानीमे चावल डाल दिया तो चावल पानीमे सर्वरूपसे सम्बन्धित नही है। ऐसे ही पूछा जा रहा है कि उस बुद्धिमानमे बुद्धिका जो सम्बन्ध मानते हो कि इसमे बुद्धिका सम्बन्ध है तो क्या सर्वरूपसे बुद्धि का सम्बन्ध है या कुछ कुछ मायनेमे बुद्धिमानकी बुद्धिका सम्बन्ध है।

दूध और पानीमे भी तादात्म्य सम्बन्धका अभाव—अभी जैसे बताया कि दूध और पानीका सर्वरूपसे सम्बन्ध है वहा भी सर्वरूपसे सम्बन्ध नही है, दूधमे दूधके कण अलग-अलग हैं और पानी मिलनेपर भी पानीके कण अलग हैं, इस बात को तो किसी यत्रसे अलग-अलग करके बताया जा सकता है कि दूध और पानी दोनो न्यारे न्यारे हैं। उनके गुण व फल भी न्यारे-न्यारे हैं दूध पीकर अन्य प्रभाव होता है जल पीकर अन्य और इसकी वजहसे जो भाव बनते हैं उन भावोका भी फल न्यारा-२ है। एक कोई महिला अपने गाँवसे किसी शहरमे दूध ले जाकर बेचती थी तो रास्तेमे एक नदी पडती थी उसमेसे वह जितना दूध हो उतना ही पानी मिला लिया करती थी और जितनेका भी बिके उसका हर महीने पैसा मिल जाता था। तो महीना भरमे मानो ६०) का दूध हुआ, तो क्या हुआ कि उन रुपयोको लेकर जब वह अपने गाव जा रही थी तो उस रास्तेमे पडने वाली नदीमे वह नहाने लगी। कपडे व रुपयोको उसने बाहर रख दिया था। उस जगह नदीके किनारेपर एक कोई पेड था, उसपर एक बदर बैठा था, तो वह बदर नीचे उतरकर वे कपडे व रुपये उठाकर उसी पेडपर चढ गया। अब बुढिया बडा हैरान हुई। बहुत बहुत मिन्नते की उस बदरकी, पर उस बन्दरने उसके रुपयोकी पोटली न दी उस पोटलीको खोल लिया और उन रुपयोंमेसे एक बार एक रुपया नदीमे डाले दूसरी बार बाहर डाले, फिर एक रुपया नदीमे डाले, एक रुपया बाहर डाले। वह बुढिया यह देखकर बहुत पछता रही थी—हाय! इतने दिन दूधमें पानी मिलाकर बेंचा तो भी देखो दूधके रुपये तो हमे मिल रहे हैं और पानीके रुपये पानीमे जा रहे हैं। तो दूध और पानीमे परस्परमे तादात्म्य नही है। दूधमे जो रूप है या जो कुछ है उसका तादात्म्य है।

सामस्त्यरूपसे बुद्धिमानमे व्यतिरेक बुद्धिके व्यापनेकी असिद्धि—यदि सामस्त्य रूपसे कोई तत्त्व रहता है पदार्थमें तो वह तादात्म्यरूपसे रहता है। पदार्थमें तो वह तादात्म्यरूपसे रहता है। सदा रहे ऐसा सम्बन्ध सम्बन्ध नहीं है क्योंकि तादात्म्य है। लेकिन तादात्म्य तो शङ्काकारने माना नहीं किन्तु सम्बन्ध मात्र मान रहा। तो उस सम्बन्धके सम्बन्धमें पूछा जा रहा कि बुद्धिका उस बुद्धिमानमें जो सम्बन्ध माना है क्या वह सामान्य रूपसे माना है या कुछ कुछ रूपसे माना है। समस्त रूपसे तो माना नहीं जा सकता क्योंकि बुद्धि आत्माका विशेष गुण है। जैसे हम लोगोंकी बुद्धि यह बुद्धि हम सबके आत्माओंका गुण है इस कारणसे यह बुद्धि समस्त रूपसे व्यापक नहीं इसी प्रकार बुद्धि ईश्वरके आत्माका गुण है तो वह भी ईश्वरमें सवरूपसे व्यापक नहीं हो सकती इस प्रसगमें शङ्काकारके सिद्धान्तको थोड़ा सुन लीजिए। बुद्धि आत्माका गुण है। आत्मा स्वयं बुद्धि रहित है। बुद्धि आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा तो एक चैतन्यमात्र है। उसमें जब बुद्धिका समवाय सम्बन्ध जुडता है तब आत्मामें जानकारी प्रकट होती है और वह आत्मा सर्वव्यापक है, एक है, बुद्धि आत्मामे सामस्त्यरूपसे रह ही नहीं सकती। बुद्धि आत्माका स्वरूप ही नहीं है। कभी रहा कभी न रहा। जिस समय मोक्ष होता है उस समय ज्ञान बुद्धि सब नष्ट हो जाते हैं खाली वह आत्मा रह जाता है ज्ञानरहित, उसका नाम मोक्ष माना गया है। तो ऐसे आत्माका जिसका ज्ञानस्वरूप ही नहीं, बुद्धिस्वरूप ही नहीं, फिर यह बुद्धि उस आत्मामें सर्वरूपसे रह जाय यह कैसे सम्भव है। तो व्याप करके सामस्त्य रूपसे बुद्धि आत्मामें व्यापी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता।

महापरिमाणके आत्मगुणत्वकी असिद्धि बुद्धिको सामस्त्यरूपसे प्रभुमे व्यापक सिद्ध करनेके लिये शङ्काकार कहता है कि आत्माके महापरिमाणके साथ हम लोगोंकी बुद्धिके उदाहरणका व्यभिचार आ जायगा अर्थात् यह कहना कि हम लोगो की बुद्धि जैसे सामस्त्यरूपसे नहीं रह रही है इसी प्रकार ईश्वर आत्माकी बुद्धि भी ईश्वरमें सर्वरूपसे नहीं रह सकती। यह बात इस तरह न बनेगी कि हम लोगोंका जीव महापरिमाण नहीं रखता, पर आत्मा तो महापरिमाण है वह तो सर्वव्यापक है। समाधानमें कहते हैं कि हम आत्माका महापरिमाण मानते ही नहीं। आत्मा तो देह प्रमाण है। किसी समय एक केवली समुद्घातकी अवस्थामें यह उसका सर्वव्यापक बन गया प्रदेशोंमें, पर वह एक समयके लिए बना और वह भी सकारण बना, आत्मा तो देहप्रमाण ही रहता है। आत्मामें आत्माकी ओरसे कोई निजी परिमाण नहीं है कि यह आत्माकी ओर से कोई निजी परिमाण नहीं है कि यह आत्मा कितना बडा होना चाहिये। जैसे प्रकाश, प्रकाशकी ओरसे प्रकाशका परिमाण नहीं, यदि घडेके अन्दर दीप जल रहा है तो घडेके परिमाण बराबर प्रकाश है और यदि कमरेमें प्रकाश जल रहा है तो कमरेके परिमाण बराबर प्रकाश है। तो इस प्रकाशका क्या परिमाण कहा जाय ? ऐसी ही ज्ञानकी बात है। ज्ञानका क्या परिमाण बताया जाय। ऐसे ही

आत्माका भी क्या परिमाण बताया है ? यह आत्मा जिस शरीरमें पहुंचा उस परिमाण आकारका हो गया। आत्माका महापरिमाण नहीं माना गया इस कारण महापरिमाण से भी दोष नहीं आता है उस बुद्धिकी असंकुचितताका। ईश्वरमें बुद्धि व्याप करके फैली हुई है सम्बन्ध है। यह सिद्ध किया जा रहा है शंकाकारकी ओरसे और उसमें आपत्तियां दिखाई जा रही हैं। इस तरह बुद्धिका बुद्धिमानमें सामस्त्यरूपसे रहना भी नहीं बनता। तो पहिले 'बुद्धिमान' इतने ही शब्दको सिद्ध करलो पीछे अपना अनुमान बनाना कि यह सारा लोक किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है।

प्रभुमें बुद्धिका सामस्त्यरूपसे न व्यापनेकी शंकाकार द्वारा असगत अर्थस्वीकृति—पृथ्वी पर्वत आदिक पदार्थ किसी बुद्धिमान प्रभुके द्वारा बनाये हुए हैं, इस सम्बन्धमें बुद्धिमान शब्दका अर्थ पूछा जा रहा है। बुद्धिमान शब्दका अर्थ क्या है ? बुद्धि वाला। तो वह बुद्धि प्रभुसे भिन्न है या अभिन्न है। भिन्न पक्षमें ये सब वर्णन चल रहे हैं, भिन्न बुद्धि है तो बुद्धिका बुद्धिमानके साथ सम्बन्ध जोड़ना अशक्य है। कदाचित् किसी प्रकार सम्बन्ध मान भी लिया जाय तो सामस्त्यरूपसे पूर्णरूपसे बुद्धिमानमें बुद्धिका सम्बन्ध बनना सिद्ध नहीं होता। उसमें आपत्तियां आती हैं। इस प्रकरणको सुनकर शंकाकार यह कह रहा है कि ठीक है। बुद्धिमानमें बुद्धि पूर्णरूप से अर्थात् समस्त दुनियामें व्याप करके बुद्धिमानमें न रहे, इस रूप कुछ स्वीकार भी करते हैं। जैसे कि हम लोगोंकी बुद्धि आदिकमें यह सामर्थ्य नहीं है कि समस्त अर्थों का ग्रहण करलें, ऐसे ही प्रकार समस्त अर्थोंको ग्रहण न कर सकनेकी बात प्रभुमें रही आये। इसका जवाबसे पहिले शंकाकारके मनमें कौनसा स्वार्थ पड़ा हुआ है इस पर निगाह दें। शंकाकारको ऐसा कहना न चाहिए था कि ईश्वरमें बुद्धि पूर्णरूप से नहीं हुई है, किन्तु कह रहा है तो इसका प्रयोजन यह है कि हम यदि यह सिद्ध कर देंगे कि जैसी बात हम लोगोंको दिखाई जाती है बुद्धिके बारेमें कुछ दूर तक जानना कुछ पदार्थोंका ग्रहण करना ऐसी बात ईश्वरमें भी हम मान लें इस समय तो हमें यह सिद्ध करनेमें बड़ी सुगमता होगी कि जैसे ये घट पट कुम्हार आदिकके द्वारा किये जाते हैं तो पृथ्वी पर्वत आदिक भी किसीके द्वारा किए ही जाते हैं। ऐसा सिद्ध करनेमें बल मिलेगा इस लाभसे शंकाकार यहां तक उतर आया है कि यदि बुद्धि प्रभुमें सामस्त्यरूपसे नहीं है तो न रहो, हमें मंजूर है, हम लोगोंकी बुद्धि भी समस्त पदार्थोंको ग्रहण नहीं कर पाती।

बुद्धिका प्रभुमें सामस्त्यरूपसे व्यापनेका शंकामें अनिर्णय—सामस्त्यरूप से बुद्धिको प्रभुमें न माननेकी अभिलाषा पर उत्तरमें कहते हैं कि तुम कुछ स्वार्थको लिए हुए बात कह रहे हो, सो तुम्हारी बात सही है, रहो क्योंकि ऐसा माने बिना तुम कार्यका हेतुपर ये ईश्वर के बनाये गए हैं यह भी तो सिद्ध न कर पावोगे, लेकिन जिस तरह प्रभु प्रभुमें हम लोगोंकी बुद्धिसे कुछ तो विलक्षणता है, केवल कहनेसे क्या

होगा ? इसमें भी प्रभुकी सत्ता व सर्वज्ञता सिद्ध होगी । सभी ऐसा मानते हैं कि बुद्धिमें कुछ विशेषता, कुछ निरालापन प्रभुकी बुद्धिमें है, मनुष्य होकर भी मानना पड़ेगा, ये ही विलक्षणता है, तो इसी तरह पहाड़ पर्वत आदिक ये कार्य किसी बड़े पुरुषके निमित्तसे बने हैं। किन्तु इसमें विलक्षणता है ये पृथ्वी पवन आदिक इनके बनाने वाला कोई नहीं है । यहाँ तो किसी कुम्हार जुलाहा आदिकके द्वारा कुछ चीजें बनाते हुए देखा भी जाता है पर ये पर्वत वृक्ष आदिक जो ऐसे अनेक पदार्थ दिखते हैं, वे किसीके द्वारा उत्पन्न किए जाते नहीं दिखते हैं। तो यह तो सिद्ध नहीं कर सके कि प्रभुमें बुद्धि सामर्थ्यरूपसे व्याप रही है ।

बुद्धिमान ईश्वरमें बुद्धिका सामर्थ्यरूपसे व्यापनेमें अभिमतकी असिद्धि — यदि कहो कि सामर्थ्यरूपसे बुद्धि नहीं व्यापार ही कुछ करती, कुछ जगह से बुद्धिमानमें बुद्धि है तो फिर मानलो बुद्धिमान इस नगरमें बैठा हुआ है और उसकी बुद्धि यहाँ व्याप रही है यहीं लग रही है तो अन्य देशोंमें जो कार्य उत्पन्न हो रहे हैं उन कार्योंमें इस प्रभुका व्यापार कैसे बनेगा, क्योंकि वह कार्य प्रभुके सामने तो नहीं है। जहाँ प्रभु बुद्धि लगा रहा है। जहाँ बुद्धिका प्रयोग चल रहा है वहाँके कार्य बनते रहेंगे और जहाँ बुद्धिका प्रयोग नहीं चल रहा है वहाँ कार्य कैसे बन सकेंगे ? यदि बुद्धिमान होनेपर भी कार्य वहाँ होने लगे तो एक बात सिद्ध करनेके लिये तुम ने जो आत्माको सर्वगत माना उस प्रकार सर्वगत मानना भी अयुक्त हो जायगा । शंकाकारका यह आशय है कि दूसरे देशमें जो धन पैदा हुआ है वह एक पुण्यवानके पास कैसे आ जाता है इसमें वह यह उत्तर देता है कि यह कि अदृष्ट व्यापक है भाग्य फैला हुआ है आत्मा फैला हुआ है तो यह भाग्य उस जगहकी विभूतिको खींचकर ले आता है । यदि भाई प्रभुकी बुद्धि सब जगह व्यापक न होकर भी सब जगहकी वह रचना कर लेता है तो आत्मा भी व्यापक न होकर भाग्य भी सर्व जगह न जाकर अपनी ही जगहमें रहकर उन सब सम्पदा वगैरहको खींच लेना आदिक कार्य करले तो क्या आपत्ति है । प्रभुकी बुद्धिसे बुद्धिमानका ज्ञान तो बुद्धिमानसे व्यतिरिक्त है तो बुद्धिका सम्बन्ध उस बुद्धिमानमें नहीं बन सकता यदि यह कहो कि उस बुद्धिमानसे बुद्धि अभिन्न है, एकमेक है सर्वथा एक है तब तो या तो आत्मा मात्र मानना या बुद्धि मात्र मानना क्योंकि ये दोनो एक हो गए । तो बुद्धिमान शब्दमें जो मतु प्रत्यय लगा है 'वाला' इस शब्दका कोई अर्थ नहीं बनता । तो पहिले बुद्धिमान शब्द ही तो सिद्ध करलो जब यह सिद्ध करना कि जगमे जो कुछ पदार्थ हैं वे किसी न किसी बुद्धिमानके द्वारा, ईश्वरके द्वारा बनाये गए हैं ।

बुद्धिमान प्रभुकी बुद्धिको क्षणिक माननेपर आपत्ति—अब दूसरी बात सुनो । प्रभुका यह ज्ञान, जिस ज्ञानके प्रयोगके द्वारा वह जगतकी रचना करता है वह ज्ञान क्या क्षणिक है या नित्य है । क्षण क्षणमे उसकी बुद्धि नष्ट होती रहती

है या वह बुद्धि सदाकाल ज्यो की त्यो बनी रहती है। यदि कहो कि बुद्धिमानकी बुद्धि क्षणिक है तो फिर बुद्धि तो उत्पन्न होकर मिट गई, अब दूसरी बुद्धि बुद्धिमानमे कैसे पैदा होती है उसका कारण तो बताओ। नैयायिक सिद्धान्तमे किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होनेके लिए तीन कारण बताये गए हैं—समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण। समवायि कारण तो वह उपादानभूत चीज कहलाती है जिसमें कार्य परिणमन होता है और असमवायि कारण जो कि कार्यके समयमे भी रहते है। किन्तु पहले न थे ऐसे तत्त्वोका सम्बन्ध असमवायि कारण कहलाता है और निमित्त कारण वे कहलाते है जो कार्यके साथ नही लगे हैं। कार्य होने पर वे बिछुडे हुए रहते हैं। जैसे कपडा बुना जाता है तो कपडा बुननेमे समवायि कारण तो है वह ततु, डोरा सूत जिसका कि कपडा रूप परिणमन हो जाता है और असमवायि कारण है उन सूतो का परस्पर सयोग होना, जो कार्यके समयमे भी रहता है पर कार्यसे पहिले न था। उन ततुओका सयोग बनाना यह असमवायि कारण है और जुलाहा व वीमसलाका आदिक जो हथियार हैं कपडा बुननेके वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं। इस प्रकार बुद्धिमान प्रभुमे नवीन बुद्धिया उत्पन्न होती हैं तो उसके ये तीन कारण तो बतावो। आप एक कारण तो बता देंगे, वह प्रभु है, वह समवायि कारण, जिसमे कि बुद्धि बनती है तो समवायि कारण तो आपका है किन्तु आत्मा और आपका सयोग बने, असमवायि-कारण मिले और निमित्त शरीरसे मनका सयोग बने तब बुद्धि बने है। नैयायिकके सिद्धान्तमे बुद्धिके निर्माणका तरीका यह है कि वह जीव तैयार रहे जिसमे ज्ञान बनता है। वह तो हुआ समवायि कारण और उस आत्मामे मनका सम्बन्ध जुट जाय यह है असमवायि कारण और फिर प्रकाश मिले, आँखें ठीक होना आदिक जो निमित्त हैं बाहरी चीजे वे निमित्त कारण है, तो ईश्वरमे जो बुद्धि उत्पन्न होगी अब नई, क्योंकि बुद्धि उत्पन्न होनेमे वहा न तो असमवायि कारण है, क्योंकि वहा आत्मा और मन का सयोग नही होता और न शरीर आदिक निमित्त कारण हैं। शरीर रहित है वह अनादिमुक्त ईश्वर और वह मनके सयोगसे परे है। वह तो केवल आत्मा ही आत्मा है तो उसमें बुद्धि कैसे उत्पन्न हो जायगी।

कारणत्रयके अभावमे भी प्रभुकी बुद्धिकी उत्पत्ति मानने पर शका-कारके अनिष्ट प्रसग—यदि कारणके अभाव होने पर भी यह कहेगे कि चूकि प्रभुकी बुद्धि हम लोगोमे विलक्षण है, विशिष्ट है तो हम लोगोके जैसे कार्य कारण पूर्वक होते है वैसे ही कारणपूर्वक प्रभुमे भी कार्य बने, बुद्धि बने, यह समानताकी बात नही ला सकते क्योंकि प्रभुकी बुद्धि हम लोगोसे विलक्षण है। हम लोगोकी बुद्धि तीन कारणोमे बनती है। हम हैं यह तो समवायि कारण है और मुझमें मनका सयोग होता है यह असमवायि कारण है और इन्द्रिय है, प्रकाश है ये सब निमित्त कारण हैं। तो हम लोगोमे तो इन तीन कारणो पूर्वक बुद्धि उत्पन्न होगी, पर प्रभुके लिए यह जरूरी नही है, क्योंकि प्रभुकी बुद्धि हम लोगोसे विलक्षण है, विशिष्ट है, यदि ऐसा

कहेंगे तो फिर यहा भी यह कह लो कि ये जो घट, पट, मकान, चौकी, कपडा आदिक कार्य हैं ये तो किसी पुरुषके कर्तापूर्वक हैं, ठीक है कहना किन्तु जो पर्वत आदिक हैं वे तो घटपटादिकसे विलक्षण हैं, उनको किसी बुद्धिमानके द्वारा किया गया है ऐसा न कहना चाहिए। जबकि जैसे कारणत्रयके बिना प्रभुकी बुद्धि उत्पन्न हो गयी है तो यहा जैसे काय वह नही है तो वे पवत आदिक भी किसी बुद्धिमानके बिना किए हुए बन जायें तो इसमें क्या विरोध है ?

कारणत्रयके अभावमे बुद्धिकी उत्पत्ति माननेपर कर्मयुक्त आत्माके ज्ञानानन्दविकासकी सिद्धि – कारणत्रयके अभावमे बुद्धिकी उत्पत्ति माननेमे दूसरी बात यह है कि शकाकारो तुम लोग ऐसा मानते हो कि वास्तविक मुक्त, सच्चा ईश्वर तो वह एक अनादि मुक्त ही है। बाकी लोग तपश्चरण करके मुक्त बन जायें सो भले ही मुक्त बन जायें, पर उनमे यह आनन्द नही है जो उस अनादि मुक्त ईश्वरमे आनन्द है। कार्यमुक्त ईश्वरोके शरीरका सम्बन्ध नहीं है, सो उनमे न तो आनन्द है और न ज्ञान है। ये मुक्तात्मा जो हुए हैं इनमे वह कला नहीं है जो कला अनादिमुक्त ईश्वरमें है, कि शरीरके बिना ही वह आनन्दमग्न रहा करता है और उसमें ज्ञानका विकास रहता है, बुद्धि रहती है। लेकिन जो और मुक्त हुए हैं वे चू कि कर्मसे मुक्त हुए हैं, अनादिमुक्त नहीं हैं, शरीर उनके हैं नहीं तो शरीरके बिना वे आनन्द कैसे पा सकेंगे, और वे ज्ञान कैसे बना सकेंगे ? कर्म मुक्तिका स्वरूप यही है जहाँ न आनन्द है और न ज्ञान है, वह शकाकारका आशय है। वह मुक्त तो एक इस अनादि मुक्त ईश्वरकी ज्योतिमें मिलनेके कारण कुछ कीमत रखत हैं, स्वय उनका कोई मूल्य नही है, क्योकि वे तो जगतके प्राणियोमेसे ही मुक्त हुए हैं। जगतके प्राणियोका ढग कैसे मिट जायगा ? तो यह बात भी अब तुम कह नही सकते क्योकि जब यह मान लिया तुमने कि ईश्वरमें बुद्धि क्षणिक होकर भी तीन कारणोंके बिना हो जाती है तो तब जैसे मान लिया कि जिस कारण त्रयके होनेपर हम लोगोंके बुद्धि होती है वैसा कारणत्रय न होनेपर भी ईश्वरमे बुद्धि होती हैं यो बुद्धिमानमे बुद्धि मान ली गई। तो चू कि वह भी मुक्तात्मा हम लोगोंसे तो विलक्षण हो ही गया है तो हम लोगोंके शरीरके कारण ज्ञानानन्द मिलता है तो उनकी यहाँ समानता नहीं लायी जा सकती है तब मुक्तका स्वरूप ज्ञानानन्दात्मक मानो। ज्ञान रहित उन्हे मानना भी युक्त नही है।

बुद्धिमानकी बुद्धिको नित्य माननेपर अनैकान्तिक दोष—यहाँ यह प्रतिपादन किया है कि बुद्धिमानकी बुद्धि, प्रभुका ज्ञान जिस ज्ञानके प्रयोग द्वारा ससारकी रचना करता है वह बुद्धि प्रभुकी क्षणिक है या नित्य ? क्षणिक तो मान नही सकते। अभी ही अनेक आपत्तियाँ दी हैं। यदि कहो कि वह ईश्वरकी बुद्धि नित्य है तो इसमें याने अक्षणिक बुद्धिके पक्षमे भी इस ही बुद्धिके द्वारा अनेकान्त

दोष आता है, व्यभिचारित्व दोष आता है। कैसे ? एक अनुमान बनाया जाय कि शब्द क्षणिक है। क्योकि हम आप छद्मस्थ जीवोके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर यह शब्द व्यापक द्रव्य जो आकाश है उसका गुण है। शब्दोको नैयायिक लोग आकाशका गुण मानते हैं। तो आकाशका विशष गुण होनेसे और हम आप छद्मस्थोके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे ये शब्द क्षणिक होगे, सुख आदिककी तरह। जैसे सुख एक व्यापक आत्माका विशेप गुण है, पर हम आप लोगोके द्वारा प्रत्यक्ष हो गया इस कारण क्षणिक है सुख। तो इस अनुमानमें देखिये–बात तो सिद्ध हो जाती है सही, लेकिन आप फिर भी शब्दको नित्य मानते हो।

शब्दनित्यत्ववादका विचार—नैयायिक सिद्धान्त शब्दको नित्य मानता है शब्द सदा रहते है, ज्यो के त्यो रहते हैं। सभी जगह पूरे भरे हुए हैं। हम आप लोगो की जीभ हिलती है पर शब्दोका भण्डार सर्वत्र पूरा पडा हुआ है। एक उन शब्दोको उघाडते हैं। जैसे कभी किसी त्यागीके लिए आहार जब किसी कमरेमे लगाया जाता है तो कमरेकी बहुत सी चीजे जो कि पासमे ही अनेक प्रकारकी अटपट रखी हुई है उनको लोग किसी अच्छे कपडेसे ढक देते हैं ताकि उस जगह देखनेमे बुरा न लगे। पर कही उन चीजो पर कपडा डाल देनेसे वे चीजे गायब तो नही हो गई, सो जो चीजें वहा पर रखी हुई थी उनका उस कपडेके हटनेसे आविर्भाव हो गया। इस प्रकार नैयायिक सिद्धान्तमे माना गया है कि शब्द तो दुनियामे सर्वत्र भरे पडे हैं। बस बोल चाल करके उन शब्दोको उघाडा जाता है। कोई भाई इस सम्बन्धमे यो विश्वास भी कर सकते हैं कि बात तो ठीक कह रहे हैं वे शब्द भरे पडे हैं तभी तो देखो रेडियोसे शब्द सुन ले, टेपरिकार्डरसे शब्द सुन लें, ग्रामोफोनसे शब्द सुन ले। सभी जगह शब्द भरे है दबे है सो उनका विकास किया जाता है यह बात नही है। ग्रामोफोनके रिकार्ड आदिमे शब्द नही भरे हुए है, किन्तु कुछ ऐसे मसाले हैं व विधिया हैं कि जिनका सयोग करने पर उनसे शब्द उत्पन्न होने लगे और जितनी बार सुई रखे, जितनी बार उनका प्रयोग करें उतनी बार उससे उस ही प्रकारके शब्द निकले ऐसा आविष्कार किया है। शब्द भरे पडे हो और उनसे अच्छे अच्छे शब्द निकलते हो ऐसी बात नही है। यही बात टेप रिकार्डमे भी है। उस टेप रिकार्डके टेपमे शब्द भरे हो और जब उसे चलाया तो उनसे शब्द निकल बैठे। उघड बैठे ऐसी बात नही है, किन्तु यह एक ऐसी कलापूर्ण आविष्कृति है कि वह ढग बन गया है कि उनका सयोग करनेपर यहा उन शब्दोको उत्पन्न करले और जितनी बार सयोग बनाये उतनी बार शब्दोको उत्पन्न कर ले।

मुखसे भी प्रतिनियत साधनो द्वारा प्रतिनियत शब्दोकी उत्पत्ति—ये शब्द तो इस मुखमे से भी उसी विधिसे उत्पन्न होते हैं जिस विधिसे अचेतनका सम्बन्ध करके आप उत्पन्न कर सकते हैं। आप ओठोको चिपकाकर बोलेगे तो प फ

व भ म वोलनेमे आयेंगे । वे तो हारमोनियम जैसे स्वर हैं । जो शब्द दबाये जायेंगे उसी तरहके शब्द निकलेंगे, जिस प्रकारकी धुन निकाली जायगी उस प्रकारकी धुन निकलेगी । ऊपरकी कठोर लकडी वाले कठोर स्वर उत्पन्न करते हैं और नीचेकी सफेद लकडी कोमल स्वर उत्पन्न करती है । तो जिस स्वरके बाद जो स्वर दबाने पर जिस प्रकारकी धुन निकाली जाती है उसके दबानेसे उसी प्रकारकी धुनि निकलती है । तभी बजाने वालेको सदेह नही रहता कि यदि हम इस सरगमके प्रयोगसे बजायेंगे तो अन्य तरहकी धुनि कही न निकल पडे । यदि स रे ग म प ध नी स यो सीधा बजायेंगे तो उसी प्रकारके शब्द निकलेंगे । कभी स रे ग, रे ग म, कभी स रे स रे ग आदि जिस तरहके शब्द निकालेंगे तो उसी तरहके शब्द निकलेंगे, जब जैसे बजावेंगे तब वैसे शब्द निकलेंगे । इस बातमे बजाने वालेको रच भी सदेह नही रहता । क्योकि जिस कारणपूर्वक जो कार्य होता है वह उस प्रकार होता है । तो शब्द जो मुखसे निकलते हैं सो भरे हुए हो मुहमे शब्द और उनको उभाड रहे हैं यह बात नही है । ताजे उत्पन्न होते हैं । रेडियोमे, टेपरिकार्डमे, सब जगह ताजे ही शब्द उत्पन्न होते हैं, वह कारण इस प्रकारका बनाया गया है । जीभको तालूसे लगाये बिना कोई च छ ज झ ञ आदि नही बोल सकता । मूर्धामे जीभकी ठोकर मारे बिना कोई ट ठ ड ढ ण आदि नही बोल सकता दतोमे जीभकी नोक टिकाये बिना कोई त थ द ध न आदि नही बोल सकता । यही बात तो हारमोनियममे है । जो शब्द निकालना च हो वही उससे निकलेगा । तो शब्द भरे हुए हो और वे उघाडे जाते हैं यह बात नही है ।

अक्षणिक बुद्धि माननेपर भी बुद्धिमत्ताकी असिद्धि—प्रकरणमें चलो, देखो ये शब्द विभु द्रव्यके विशेष गुण हैं और हम लोगोके प्रत्यक्ष हुए, तब तो अनित्य होना चाहिये था, पर ये नित्य हो गए । तो इस प्रकार प्रभुकी बुद्धि नित्य हो और फिर प्रभुमे समा जाय और उससे वह बुद्धि वाला कहलाय और फिर अनुमान बनाये कि यह बुद्धिमानके द्वारा रचा गया है यह बात सिद्ध नही हो सकती । पहले बुद्धिका सम्बन्ध हो तो सिद्ध करलो । तो इस प्रकार जगत किसी बुद्धिमान ईश्वरके द्वारा बनाया नहीं गया, किन्तु अपने स्वरूपसे ही उपादाननिमित्तविधिसे उत्पन्न है यह बात सिद्ध होती है ।

बुद्धिमानमे मानी जाने वाली बुद्धिके स्वरूपकी सिद्धिकी अशक्यता यह सारा जगत अनन्त पदार्थोंका समूह है इसमे प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतानुसार योग्य निमित्तका सन्निधान पाकर परिणमन किया करते हैं इस तत्वसे अनभिज्ञ पुरुषोको इनकी उत्पत्तिके कारणोकी जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह सारा विश्व आखिर बनाया किसने है और जब इसके कर्तापनकी बात कोई युक्तिसे नही उतरती है यो प्रभु पर बात छोड दी जाती है । यह लोक तो किसी एक ईश्वरने बनाया है, किसी बुद्धिमान पुरुषके द्वारा यह जगत बनाया गया है तो पहिले उस

बुद्धिमानका स्वरूप ही सिद्ध करियेगा। बुद्धिमान कहते हैं बुद्धि वालेको। क्या वह बुद्धि बुद्धिमानसे जुदी है अथवा अभिन्न है। उसका बुद्धिमानमे सम्बन्ध कैसे हुआ आदिक परिणाम ो ा विचार किया गया था, और यह सिद्ध नही किया जा सका कि बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध होना वाजिब है। उसके प्रसगमे यह भी पूछा गया था कि उस बुद्धिमान ईश्वरकी बुद्धि क्षणिक है अथवा नित्य है। क्षणिक माननेमे तो उत्पत्तिका विरोध है, नित्य माननेमे अनैकातिक दोप दिया गया था।

विश्वकर्ताकी बुद्धिको नित्य माननेमे अनुमानवाधा—अब यह बतला रहे हैं कि बुद्धिमानकी बुद्धिको नित्य माननेमें इस अनुमानसे विरोध आता है। महेश्वरकी बुद्धि क्षणिक होनी है बुद्धि होनेसे। जैसे हम लोगोकी बुद्धि चूंकि बुद्धि है इस कारण वह क्षणिक है। ज्ञान होता है, बुद्धि जगती है, नष्ट होती है, फिर दूसरी बुद्धि आती है, वह भी नष्ट होती है इस प्रकार जैसे हम लोगोमे बुद्धि नष्ट होती है, उत्पन्न होती है इसी प्रकार महेश्वरकी बुद्धि भी तो बुद्धि ही है। अतएव वह भी क्षणिक है। बुद्धिको नित्य नहीं सिद्ध किया जा सकता। अब शकाकार कहता है कि यद्यपि बुद्धिपनेकी बात समान है। बुद्धि हम लोगोमे भी है बुद्धि महेश्वरमे भी है लेकिन बुद्धिपनेकी समानता होने पर भी महेश्वरकी और हम लोगो की बुद्धिमें तो भेद है। हम लोगोकी बुद्धि क्षणिक है किन्तु महेश्वरकी बुद्धि हमसे विलक्षण है वह नित्य है, इस प्रकार बुद्धिमे अन्तर डालने पर समाधान किया जाता है कि इस तरहकी बुद्धिपनेकी समानता होने पर भी यह भेद डालते हो कि हमारी बुद्धि हमारी ही चीज है। इस कारण वह क्षयिक है किन्तु महेश्वरकी बुद्धि हम लोगोसे विलक्षण है इस कारण वह नित्य है तो इस ही प्रकार यहा भी भेद परख लीजिये, घट पट मकान आदिक कार्य और पृथ्वी पर्वत आदिक कार्य यद्यपि ये दोनो कार्य कहलाते हैं। कार्यपनेकी दोनोमे समानता है तिस पर भी घट पट आदिक कार्य तो कर्तापूर्वक हुआ करते हैं और पृथ्वी पर्वत आदिक कार्य विना कर्ताके हुआ करते है। यह भेद यहा भी क्यो नही मान लिया जाता। जैसे कि बुद्धिपनेकी समानता होने पर हमारी और प्रभुकी बुद्धिमे अन्तर डाला जा रहा है इसी तरह तो ये घट पट आदिक कार्य भी कार्य हैं और पृथ्वी पर्वत आदिक भी अवस्थायें हैं कार्य हैं, तिस पर भी उनमे यह भेद है कि ये घट पट आदिक कार्य तो कुम्हार आदिक कर्तापूवक हुए, किन्तु पृथ्वी पर्वत आदिकमे किसी पुरुषका हाथ नही है, वह किसी कर्ताके द्वारा नही होता। इस तरह फिर कार्यत्व हेतुमे अनैकांतिक दोष होगा अर्थात् घट पट आदिक कार्य हैं और वे कर्तापूर्वक नही रहे, इस प्रकार बुद्धि को नित्य मानकर भी कर्तृत्व सिद्ध नही किया जा सकता। इस तरह जब बुद्धिवालापना ही असिद्ध है तो यह सारा जगत बुद्धिमन्निमित्तक है, इसकी तो सिद्धि ही क्या होगी।

पृथ्वी आदिकमे कृतबुद्ध्युत्पादक कार्यत्वका अभाव—विश्वकी बुद्धि-

सन्निमित्तिकताको किसी तरह थोडी देरको मान भी लें, यद्यपि मानने योग्य तो नहीं है, जब तक उस पर विचार नही करते तभी तक यह बात सुन्दर सी जचती है कि यह सारा जगत किसी एक बुद्धिमान महेश्वरके द्वारा बनाया गया है, लेकिन मान भी ले तो भी जिस प्रकारका कार्यपना इन नये कुवा मकान आदिकमे पाया जाता है किसी पुरुषके द्वारा बनाये गए हैं व इस प्रकारकी कार्यत्वतामे व्याप्त हैं पदार्थ इन ही कारण से ये पुराने भी हो जायें कुवा मकान आदिक, १०० वर्षके भी हो जायें और उनके करने वालेका बनाने वालेका नाम भी न पता हो तो भी हर एक कोई टूटे फूटे मकान को कुवेंको देखकर मानी बुद्धि बना ही लेते हैं कि इनको किसीने बनाया था। चाहे उनका नाम विदित नही है लेकिन वे इस प्रकारके कार्य हैं कुवा मकान आदिक कि इनके कर्ताके नामका भी पता न हो तो भी देखकर किसीको यह सशय नही होता कि ये अपने आप बने हैं या किसीने इन्हे बनाया था। सबके चित्तमे यह बात शीघ्र समझ मे आती है कि ये किसीने बनाये, तभी तो कहते हैं देखो ये कितने बडे मकान, कितने पुराने मकान, टूटे फूटे पडे हैं, जिसने बनवाया उनका नाम भी नही रहा तो न जैसे ये कुवा मकान आदिक कार्य हैं, एक कर्तृबुद्धिके उत्पन्न करने वाले हैं इस प्रकारके कार्य, वैसे ये पृथ्वी पर्वत आदिक नहीं हैं। पर्वतको देखकर किसीके मनमे यह बात नहीं आती कि देखो इस पर्वतका बनाने वाला भी न रहा, कैसा पडे हुए हैं पर्वत। उन पदार्थोंके बनाने वाला है कोई, ऐसी बुद्धि नही उत्पन्न होती इनको निरख करके और यदि मानलो कि इस ही प्रकारके ये कार्य माने इन पर्वत आदिकको तो जैसे जैसा कुवा मकानको देखकर यद्यपि इनके बनाने वालेका भी कुछ नाम पता नही है न बनाते देखा है फिर भी ये किए गए हैं किसीके द्वारा, यह दृढ निश्चय रहता है। तो इस प्रकार उन पृथ्वी पर्वत आदिकमे भी 'किए गए हैं किसी पुरुषके द्वारा' यो निर्णय आना चाहिए। केवल कार्यत्व है, कार्य है यह, इस कारण किसीने बनाया है इतने से शब्द मात्रसे वो अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें जुदा किस्मके पदार्थोंमें अपना इष्ट अभिमत सिद्ध नही कर सकते। अन्यथा हर चीजमें आशका उत्पन्न होने लगेगी। जैसे कोई बामी होती है मिट्टीकी, अपने आप एक लम्बीसी बनी हुई होती है, उस बामीमे भी यह हेतु दे देंगे कि इसे भी कुम्हारने बनाया है क्योंकि मिट्टीका विकार है। जैसे घडा मिट्टी का विकार है, अवस्था है, परिणमन है तो कुम्हार आदिकने बनाया इसी प्रकार यह जो बामी उठी है यह भी मिट्टीका विकार है अतएव कुम्हारने बनाया यो जो चाहे सिद्ध कर ले।

विशिष्ट कार्यत्वके विकल्पमें कार्यसम जातिदोषकी आशका—अब यहा शकाकार कहता है कि हेतु या साध्यमे विशेषण लगाकर विकल्प उठानेसे तो कुछ भी सिद्ध नही किया जा सकता। यह तो कार्यसम नामका जातिदोष है। अच्छा लो तुम कुछ सिद्ध करके दिखाओ। शब्द अनित्य हैं इसकी ही सिद्धि कर दो, अनुमान बताया जाता है कि शब्द अनित्य हैं क्योंकि ये किये गए हैं। जो जो किए गए पदार्थ होते हैं

वे अनित्य होते हैं। तो हम पूछेंगे कि यह जो शब्दका अनित्यपना साध्य बता रहे हो और उसमे हेतु दे रहे हो कि ये किसीके द्वारा किए गए हैं—जैसे घट। तो क्या यह कृतकत्व (किया गया पना) घटगत है या शब्दगत है या उभयगत है अर्थात् शब्दोको अनित्य सिद्ध करनेके लिए ये कृतक है, यह जो हेतु दिया गया है तो यह कृतकपना क्या घटमे रहने वाला कृतकपन हेतु है या शब्दमे रहने वाले कृतकपन हेतु है या दोनो मे रहने वाले कृतकपन हेतु है। कृतकपना कहते हैं किया गया है, इस कारणसे यदि कहो कि कृतकत्व घटगत है तो बिल्कुल विरुद्ध बात है। घटमे रहने वाले कृतकपनको हेतु को देकर अन्यत्र याने शब्दमे अनित्यपना सिद्ध करते हो तो यह तो बडी बेहूदी बात है, फिर तो जहा चाहे अग्नि सिद्ध कर दी जाएगी। रसोईघरमे उठने वाले धुवाको हेतु बनाकर लो मदिरमे भी आग है, दुकानमे भी आग है, जहा चाहे सिद्ध कर बैठो। दूसरी जगह रहने वाले धर्मको दूसरी जगहके धर्ममे सिद्ध नही किया जा सकता। यदि कहो कि शब्दगत कृतकपनको हेतु कहते है तो इसके लिए फिर तुम दृष्टान्त कुछ नही दे सकते, तुम दोगे दृष्टान्त जैसे कि घडा, तो घडेमे शब्दगत कृतकपना कहा है तो कोई दृष्टान्त न मिलेगा जिसमे कि साधन मिल जाय। यदि कहोगे कि यह किया गया पना दोनोमे रहता है शब्दमे भी और घडेमे भी, तो जो दोनोमे दोष दिया गया वह दोष इसमे आया। सो कार्यत्वके विकल्प करना युक्त नही है।

कार्यत्व हेतुके विकल्पोमे कार्यसम जातिदोषका अभाव - अब कार्यत्व हेतुके विकल्पोको कार्य न बतानेका समाधान दिया जाता है कि हम जो शब्दमे कृतकपना हेतु दे रहे हैं कि किया गया है तो हम कृतकत्व सामान्य हेतु दे रहे हैं। शब्दमे रहने वाला कृतकपना है या घटमे रहने वाला कृतकपना है ऐसा नही कह रहे, किन्तु सामान्य हेतु दे रहे है। सामान्य हेतुका पक्षमे अभाव नही है। परन्तु इस तरहका कार्य सामान्य हेतु देकर विशेष कारण बताना, किसीके द्वारा बनाया गया है, विशेष बुद्धिमानके द्वारा यह तो नही कहा जा सकता। घट आदिक कार्य हैं और वे पुरुषके द्वारा बनाये गए हैं परन्तु पृथ्वी पर्वत आदिक कार्य अर्थात् परिणमन है इस कारण कार्य कहलाते है, वे तो किसीके द्वारा नही बनाये गए यदि बनाये गए हैं तो फिर इनका बनाने वाला है कोई ऐसी बुद्धि सबको होनी चाहिए। किसी भी मतका कोई पुरुष हो टूटे-फूटे मकान कूप आदिकको देखकर सबमें यह बुद्धि आती है कि ये किसीके द्वारा बनाये गए थे। ये बहुत पुराने हो गए और अब ये मिट रहे हैं, पृथ्वी पर्वत आदिकके बारे मे सबको यह कहा बुद्धि उत्पन्न होती है कि ये किसीके द्वारा बनाए गए हैं और हो अगर तो विवाद क्यो ?

एकत्र दृष्ट विशेष कार्यसे सर्वत्र कार्यत्व हेतुसे कर्तृनिमित्तकता मानने की असिद्धि—शकाकार कहता है कि हम जब इन घट आदिक विशिष्ट कार्योमे ये देख रहे हैं कि ये किसीके द्वारा बनाए गए है। यह जानकर याने जो विशिष्ट कार्य है

इन घट आदिकको निरखकर ये कुम्हारके द्वारा देखो वनाये गए है तो यह विशिष्ट कार्य किसीके द्वारा वनाया गया है ऐसा जानकर हम पर्वत आदिकमे भी यह निर्णय वना लेते है कि ये भी कार्य है, पिण्ड हैं, आकारवान हैं, इस कारण ये भी किसी वुद्धिमानके द्वारा वनाए गए हैं। समाधान --इस तरह यदि एक जगहकी विशेषता देखकर अन्य जगहमे भी जो कि अदृष्ट है वहा भी उस विशेषताको लपेटोगे तो फिर बतावो पृथ्वीमे रूप, रस, गध, स्पर्श हैं ना, तो फिर पृथ्वी आदिकमे रूप, रस गध, स्पर्श मयता निरखकर चू कि पृथ्वी भूत है और वायु भी भूत है, भूत शब्दका अर्थ यहा राक्षस नहीं है, भूत मायने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार चीजें। सो वायुमे भी रूप, रस, गध, स्पर्श मयता मान लेना चाहिए। शकाकार नही मानता है कि हवामे भी रूप, रस, गध, स्पर्श ये चारो हैं, यह केवल वायुमे स्पर्श मानता है, लेकिन जैसे घट आदिकमे किसीके द्वारा ये वनाए गए ऐसा जानकर पृथ्वीमे भी किसीके द्वारा ये वनाए गए ऐसा सिद्ध कर रहे हो तो पृथ्वीमे रूप रस, गध, स्पर्शमयताको जानकर भूत है अतएव वायुमें भी चारोका सम्बन्ध माना जाना चाहिए। यदि कहोगे कि इसमें तो प्रत्यक्ष वाधा है, वतलावो कहां है हवामे रूप। वतलावो कहा है हवामे रूप। वतलावो यह हवा खट्टी है कि मीठी, यह हवा काली है कि नीली, रस तो नही जानने मे आता, रूप तो नहीं देखनेमे आता है, तो यहा प्रत्यक्ष वाधा है, तो समाधानमे कहते हैं कि यहा भी तो विलकुल प्रत्यक्ष वाधा है। कुम्हार आदिक द्वारा घट पट आदिक वनते देखे जाते हैं, परन्तु इन पृथ्वी पर्वत आदिकका वनाने वाला कोई नहीं देखा जाता। तो स्पष्ट मान लेना चाहिए कि दुनियामे जितने भी पदार्थ सत् है वे अपने आप सत् हैं, जितने सत् हैं उनमेंसे कोई कम होता नहीं। जो असत् हैं वह कभी भी उत्पन्न किया जा सकता नही।

पृथ्व्यादिककी कार्यता व सावयवतासे घटादिककी कार्यता व सावयवताका पार्थक्य --ये समस्त पदार्थ सत् है इस ही नातेसे समस्त पदार्थोमें यह विशेषता है कि ये सारे पदार्थ निरन्तर अपने नवीन परिणमनसे उत्पन्न होते हैं और पुराने परिणमनका विलय करते रहते हैं। जब कार्यपना और सावयवपना यद्यपि घट पट कूप प्रासाद आदिकमें भी देखा जा रहा है और पर्वत पृथ्वी आदिकमें भी देखा जा रहा है तो ये घटपट आदिक भी आकारवान हैं और अपनी पूर्व अवस्थाका त्यागकर नवीन अवस्थामें आए हुए हैं इसी प्रकार ये पृथ्वी पर्वत आदिक भी पिण्ड रूप हैं, आकाररूप हैं और अपनी पूर्व अवस्थाको त्यागकर नवीन अवस्थामें आते रहते है. इस नातेसे यद्यपि घट पट आदिकका कार्य है और सावयव है और पृथ्वी पर्वत आदिक का कार्य है और सावयव है लेकिन पृथ्वी पर्वत आदिकमें पाया जाने वाले कार्यपनेमे भिन्न निराला विलक्षण कार्यपना घट पट आदिकमें है, इस ही प्रकार पृथ्वी पर्वत आदिकमे पाए जाने वाले सावयवपनेसे विलक्षण भिन्न सावयवता इन घट पट आदिक में है। तभी तो इन घट पट कूप मकान आदिकमें, न भी इनके वनाने वाला दीखे

िस पर भी सब लोगोको इसमें कृतबुद्धिकी बात आती है अर्थात् सबके चित्तमे यह निर्णय रहता है कि य पदार्थ किसी पुरुषके द्वारा बनाए गए है, लेकिन न पर्वत आदिक मे कृ। बुद्धि उत्पन्न होती है और न यह कृतक पदार्थों की भाति कार्य है और सावयव है तब दृष्टान्तमें देखिए-क्या हेतुका पक्षमें अभाव होनेसे यह अनुमान असिद्ध है, यह जगत किसीके द्वारा बनाया गया है यह भी युक्ति सगत नही बैठती ।

व्युत्पन्न या अव्युत्पन्नोके प्रति कार्यत्वके विकल्पोका शकाकार द्वारा प्रश्न —अब शकाकार कहता है कि जो यह बात कही गई है कि पृथ्वी पर्वत आदिक म कृत बुद्धि नही जगती अर्थात् ये किसीके द्वारा बनाए गए हैं ऐसे विकल्प इसमे लगे नही होते हैं तो यह तो बतलावो कि ऐसा कथन भी व्युत्पन्नजनोके लिए है या अव्यु-त्पन्नजनोके लिए ? व्युत्पन्न कहते है समझदारको, जो नियमोको जानते है तर्क वितर्क समझते है और अव्युत्पन्नजन कहते हैं मूर्ख अविवेकीजनोको । यदि कहो कि हम तो अव्युत्पन्न लोगोका कह रहे है तो यो तो धूम आदिक हेतुवोमे भी अव्युत्पन्नका दोष होनेसे सारे अनुमान नष्ट हो जायेगे । हम पूछने लगेंगे कि जैसे यह अनुमान बनाया कि इस पर्वतमे अग्न होनी चाहिए । धुवा होनेसे तो वहा पूछ डाला जायगा कि क्या रसोईघरमे रहने वाले धुवाका हेतु दे रहे हो या पर्वतमे रहने वाले धुवाका हेतु दे रहे हो ? अरे पर्वतमे रहने वाले धुवाको हेतु दोगे तो दृष्टान्त न मिलेगा और रसोईघरके धुवाका हेतु देकर यदि पर्वतकी अग्नि सिद्ध करोगे तो फिर सारी दुनियामे जहा चाहे अग्नि सिद्ध कर लें । कोई भी अनुमान खण्डित किया जा सकता इस तरहके विकल्प उठाकर और यदि यह मतव्य है कि हम तो बुद्धिमान पुरुषोको कह रहे हैं जिनने कि अविनाभाव सम्बन्ध जाना है तो सही बात है । जो बुद्धिमान जन हैं, जिन्हे तर्क वितर्क आता है वे कार्यत्व हेतु दे करके जब उन्होने घट पट आदिकमे यह किसी कारणपूर्वक बना है, यह अविनाभाव समझ लिया है, चूकि घट पट आदिक कार्य हैं तो किसीके द्वारा अवश्य बनाये गए है । तो ऐसा अविनाभाव जानकर उन व्युत्पन्न लोगोने, तर्कशील पुरुषोने यह जाना कि ये पर्वत पृथ्वी आदिक भी किसी बुद्धिमान पुरुषके द्वारा रचे गए हैं । दृष्टान्तमे दिए गए कार्यपनेको ही पक्षमे बैठाए तो कोई अनुमान नही बनाया जा सकता । तो हमारा यह मतव्य सही है कि यह जगत किसीके द्वारा बनाया गया है क्योकि कार्य होने से । जो जो कार्य होते हैं वे किसीके द्वारा बनाए गए होते हैं, और चूकि कार्य ये सब पृथ्वी आदिक है अतएव ये भी किसीके द्वारा बनाए गए है ।

व्युत्पन्न प्रतिपत्ताकी व्युत्पत्तिके लक्षणके विकल्प करते हुए शकाका समाधान—अब उस शकाका समाधान किया जा रहा है । अभी अभी कार्यत्वका विश्लेषण करके जगतको कोई रचता है इस बातका निराकरण किया गया था उस पर जो शकाकारने यह आपत्ति दी थी कि तुम यह विश्लेषण व्युत्पन्न लोगोके प्रति

कर रहे हो या अव्युत्पन्न लोगोंके प्रति ? व्युत्पन्न ज्ञानी पुरुषों के लिए तो कार्यत्व आदिक हेतु असिद्ध नहीं है यों शंकाकारका कहना ठीक नहीं है, शंकाकारका प्रयोजन तो यह था कि यह समस्त जगत किसी बुद्धिमान पुरुषके द्वारा बनाया गया है कार्य होनेसे, तो अब उन्हें कार्यका और रचनाका अविनाभाव बताना चाहिए ना कि जो जो कार्य होते हैं वे किसीके द्वारा अवश्य बनाए गए होते हैं। पर कार्य घट पट आदिक हैं वे तो किसी द्वारा बनाये गई बुद्धिमे आते हैं पर पृथ्वी पर्वत आदिक भी परिणमते हैं अतएव, वे कार्य है किन्तु यह बुद्धिमे नहीं आता है कि इनको भी किसीने बनाया है तो इस अविनाभावको जानने वाले पुरुषोंका तो नाम है व्युत्पन्न और जो अविनाभाव नहीं जानते उन्हें कहते हैं अव्युत्पन्न। तो पूछ रहे हैं कि क्या व्युत्पत्तिनाम इसका हो है ना, कि साध्य और साधनमे अविनाभावका परिज्ञान कर लेना अथवा इस अविनाभावके परिज्ञानसे भिन्न किसीका नाम व्युत्पत्ति है।

पृथ्वी आदिमे कर्ता कार्यकी अविनाभावरूप व्युत्पत्तिकी असिद्धि— यदि कहो कि इसीका नाम व्युत्पत्ति है कि साध्य और साधनके अविनाभावका ज्ञान हो जाना जैसे कि जहाँ जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है जहा अग्नि नहीं होती वहा धुवा नहीं होता है, यों साध्यके बिना साधनके न होनेका अविनाभाव कहते हैं इसीके ज्ञानका नाम व्युत्पत्ति हो तो पृथ्वी आदिकके कार्यपनेकी और किसीके द्वारा बनाए गए इस साध्यमे कोई अविनाभाव नहीं है और यदि अविनाभाव मान लिया जाय कि ये पर्वत आदिक किसीके द्वारा रचे गए हैं, कार्य होनेसे, इस प्रकार कार्यपने का और कृतपनेका अविनाभाव मान लिया जाय तो यह अविनाभाव केवल घट पट आदिकमे ही ठीक बैठ सकेगा। जो शरीर सहित है। हम आपके इन्द्रिय आदिकके द्वारा ग्रहणमे आता है, अनित्य बुद्धि ज्ञान बना करके रहते हैं जो सत् है ऐसे पुरुषके द्वारा रचे गए घट आदिकमे ही यह बात विदित होती है कि यह कार्य तो किसीके द्वारा बनाया गया है, इस हेतुकी व्यापकता केवल घट आदिक पदार्थोंमे तो आ गयी पर पृथ्वी आदिकमें इसकी व्यापकता नहीं आ सकती। जो हेतुके साथ व्यापक है उसे छोडकर यदि अन्य चीजको भी धर्मीमे सिद्ध करने लगें तो यह तो अव्यवस्था बन जायगी। हेतुके साथ जो चीज लगी है उसे छोडकर अन्यको सिद्ध करदें, यदि ऐसा होने लगे तो यही हो गयी टढी खीर। खीर सफेद होती है यह बात किसी अन्धेको बताना है और बताए इस तरह कि देखिए खीर सफेद होती है। कैसी सफेद ? जैसे बगला। कैसा बगला तो हाथ बगला की तरह टेढा करके बता दिया कि ऐसा बगला, तो वह अधा उस हाथको टटोल कर कहता है कि हमें नहीं खाना है ऐसी खीर। यह तो पेटमे भी गडेगी। तो यहा आकार हेतुके साथ रूप व्यापक नहीं है, उस बगलेके आकारके साथ आकार व्यापक है, रूप व्यापक नहीं है तो आकारको देखकर रूपको सिद्ध करना जैसे एक अविवेक है इसी प्रकार कार्यत्व हेतुको बताकर पर्वत आदिकमे ये किसीके द्वारा किए गए हैं यह सिद्ध करना उस ही तरहका अविवेक है।

पृथ्वी आदि कार्यमे कारण कारणमात्रको माननेमे विवादका अभाव -- यदि यह कहो कि हम कार्यत्व हेतु दिखाकर केवल कारणमात्र सिद्ध कर रहे हैं कि ये पृथ्वी आदिक किसी न किसी कारणसे उत्पन्न हुए हैं क्योंकि ये कार्य हैं अवयव सहित हैं इनमे आकार पाया जाता, तो यह बात मानी जा सकती है, कारण तो अवश्य है, कारण बिना विषय भिन्न कार्योंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। लेकिन कारण क्या है इसे भी तो समझिए। पृथ्वी पर्वत आदिकमे जो उपादानपना पड़ा है वह तो है उपादान कारण और बाहरी संयोग, हवाका मिलना, जीवका रहना आदिक और अनेक वर्गणावोंका जुड़ना ये सब अन्य कारण हैं, इस कारणसे पृथ्वी आदिककी रचना है इसमे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु जैसे घड़ेको कोई कुम्हार बनाता है इस ही प्रकार इस पृथ्वी पर्वत आदिकको कोई एक अलगसे महेश्वर अथवा किसी भी नामका कोई पुरुष बनाता है यह बात नहीं फब सकती।

दुःखमूल मोहके मिटनेका उपाय तत्त्वपरिज्ञान – जगतके जीवोंको भावमात्र दुःख है वह सब मोहका दुःख है। और मोह मिट सकता है तो मोहको हटानेसे ही मिट सकेगा। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थसे परस्परमे कोई सम्बन्ध नहीं है, इतनी बात चित्तमे बैठे, ज्ञानमे आए तब ही तो मोह हट सकेगा। जैसे लोग मोहमे मानते हैं कि यह घर मेरा है, पर जब मोह छूट जाता है तब समझमे आता है, ओह! यह तो मेरा घर नहीं है, मोह हटने पर ही यह समझमे आयगा कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ नहीं है। यह समझमे आयगा वस्तुस्वरूपके परिज्ञानसे। प्रत्येक अणु अणु प्रत्येक जीव ने अपने असाधारण स्वरूपको लिए हुए हैं। कोई पदार्थ किसी किसी अन्य पदार्थके स्वरूपको ग्रहण करके नहीं रहता। वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है– जो सत् होता है उसकी विशेषता ही इसी तरहकी होती है, यह बात ध्यानमे आए तो मोह हटे। मेरा कहा पुत्र, मेरी कहा माँ, मेरा कौन भाई ? ये जगतके जीव है, संसारमे रुलते रुलते मनुष्य भवमें आए है और क्षणिक संयोग हुआ है। हुआ है संयोग फिर भी कर्म सबके न्यारे है और सभी जीव अपने अपने कर्मोदयसे पलते हैं, दुःख होता है, सुख होता है, इनका जीवन मरण सब कुछ इनके कर्मानुसार चलता है। मेरा इनमे किसीसे क्या सम्बन्ध है, यह बात ज्ञानमे आने पर मोह मिटेगा, उस मोहके मिटनेका उपाय वस्तुके स्वरूपका परिज्ञान है।

भिन्न वस्तुकी भिन्नमे मग्नताकी असम्भवता देखिए–कल्याण करनेके लिए करना क्या है ? एक ज्ञान प्रकाशमें मग्न होना है। इस पुरुषार्थको छोड़कर अन्य कुछ पुरुषार्थ नहीं किया जाना है। केवल एक ज्ञानप्रकाशमें मग्न होना है। अब उसकी विधि सोचिए कि यह मैं ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र उपयोग किस ज्ञानप्रकाशमें मग्न हो सकेगा ? मग्न जिसमें होना है वह तो हो दूसरेकी चीज और जो मग्न होना चाहता है वह हो कोई भिन्न चीज, सो ऐसी भिन्न चीज भिन्न चीजमें मग्न नहीं हो सकती।

धर लेना हैं। तो यह तो निमित्त नैमित्तिकपनेकी बात है कर्तृत्वपनेकी क्या बात हैं ? तो यदि पृथ्वी पर्वत आदिकमे कारणमात्रपनेका परिज्ञान कर रहे तो हमे विवाद नही है, किन्तु किसी एक पुरुष विशेषके द्वारा यह सारा जगत बन गया। यह परिज्ञान प्राणियोको मोहका उत्पादक होनेसे ज्ञानप्रकाशमें मग्न नही हो सकता अयथार्थ ज्ञान है अतएव ज्ञानप्रकाशमे यह प्राणी आ नही सकता।

कारणमात्रके परिज्ञानसे भी महेश्वरके कर्तृत्वकी सिद्धिकी आशका — अब शकाकार कहता है तुमने यह मान लिया ना कि कारणमात्र तो है, अब थोडा और आगे बढे। वह एक बुद्धिमानकारणमात्रक है अर्थात् कोई सामान्य बुद्धिमानके द्वारा रचा गया है और फिर चू कि कारणमात्रपना अथवा कोई सामान्य ऐसा नही होता कि किसी विशेष व्यक्तिका आश्रय न रखता हो तो कारणमात्रपना भी तो किसी विशिष्ट व्यक्तिके आधारमे रहेगा, तो बस वही बात आ गई कि कोई व्यक्ति इस विश्व का कर्ता है क्योकि विशेषरहित कोई सामान्य होता ही नही है और इन पर्वत आदिक का करने वाला कोई कुम्हार, जुलाहा आदिक होना होगा, यह बात सम्भव नही है क्योकि इन पदार्थोंके रचनेमे हम जैसे छद्मस्थ जीवोमे सामर्थ्य नही है, इससे सिद्ध है कि ये पृथ्वी आदिक किसी कारणसे बने हैं, इनका बनाने वाला कोई बुद्धिमान कारण है और कुम्हार आदिक जैसे हम लोगोकी सामथ्य नही है कि उसे बना सकें, तो है उनका कोई बनाने वाला महाप्रभु।

शकाकारकी पद्धतिसे ही प्रभुके अकर्तृत्वकी सिद्धि अब शकाका समाधान देते हैं कि इस तरहसे तो बात यह सिद्ध होती है कि पृथ्वी आदिकका रचनेवाला कोई नही है। वह कैसे कि इन पर्वत आदिकके रचनेकी सामर्थ्य तो हम जैसे लोगोमे है नही, और किसी अन्यमे कार्यत्वपनासे व्यापक प्रकृत साध्य आ जाय सो होता नही, अर्थात् ऐसे कार्योंका रचने वाला शरीररहित तो हो नही सकता। और, शरीरसहित हम आप लोगोकी सामर्थ्य है नही कि पर्वत आदिकको रच ले। तो इनसे यह सिद्ध हुआ कि ये सब पदार्थ हैं और अपने ही द्रव्यत्व गुणके कारण प्रतिसमय परिणमते रहते हैं। अब इसमे किसीकी सृष्टि माननेकी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता। ऐसा तो न हो बैठेगा कि कभी ऐसा मान ले कि गौ सामान्यका आधारभूत यहा कोई खडी मु डी, चितकबरी, पीली, नीली आदिक गाय तो है नही, तो वह गोत्वसामान्य उससे विलक्षण किसी भैंस आदिकमे लग बैठे यह तो सम्भव नही है इसी प्रकार यह भी सम्भव नही है कि वह सामान्यकारण चू कि वस्तुके बिना होता नही और शरीरसहित मे सम्भव नही हो सका तो किसी भी अदृष्ट प्रभुमे लग बैठे। अरे प्रभुका स्वरूप तो एक आदर्श है, अलौकिक जनो के द्वारा ध्येय है, बडे बडे ऋषि सत प्रभुकी जो उपासना करते हैं वे इस दीनतासे नही किया करते कि मैं प्रभुकी उपासना न करूगा तो प्रभु मुझे नरकमे ढकेल देगा, इस डरसे उपासना नहीं करते, किन्तु ज्ञानप्रकाशमय है

यह प्रभु, अनन्त आनन्दमय है वह प्रभु ना उसके ज्ञान और आनन्दगुण की महत्ताको जानकर उस पर मुग्ध होकर उसकी उपासना करते हैं योगी।

प्रभुकी कृतार्थता व आत्मकल्पना — न भैया! प्रभु तो कृतार्थ है, जो कुछ करने योग्य कार्य था वह कर लिया प्रभुने। जगतमें अब कुछभी कार्य करनेका उनके नहीं रहा। आनन्दमय वह हो ही सकता है जिसको कि जगतमें कुछ भी करनेके लिए काम न पड़ा हो। अब कि हम आप लोग जिस समय इस प्रकार जानते हैं कि जगत में मेरे करने के लिए कुछ भी नहीं पड़ा हुआ है तो कितना आनन्दमें रहा करते हैं। और, जब ही यह विकल्प उठ बैठता है कि मेरे करनेको तो यह काम पड़ा हुआ है, तो तुरन्त व्यग्रता हो जाती है। तो व्यग्रताका कारण है कामका करना, और कामके करनेकी धुनि, उसमें मुझे आगे ये काम करनेको पड़े हैं ये काम करनेको पड़े हैं, ऐसा विकल्प रहेगा और चूंकि ये सारे पदार्थ अनन्तकाल तक रहेंगे तो अनन्तकाल तक इनमें कुछ न कुछ किया जानेको रहेगा ही। कोई समय ऐसा नहीं आ सकता कि इन पदार्थोंमें कुछ कार्य किए जानेको नहीं रहे, कुछ कार्य होनेको नहीं रहे। अनन्तकाल तक इनमें परिणमन रहेगा। लोगोंमें पदार्थ सब मेरे किए जानेके लिए हैं ऐसा जो विकल्प रहेगा, ऐसा ही जिसका मन्तव्य बनेगा उसे आनन्द नहीं मिल सकता। प्रभु अनन्त आनन्दमय इसी कारण है कि उनके इतना विशुद्ध ज्ञान प्रकाशमें कार्य करनेका कुछ विकल्प ही नहीं रहा।

निमित्तनैमित्तिकभावसे कार्यव्यवस्था — न भैया! यह बात तो अव्युत्पन्न लोगोंकी बुद्धिकी है कि विधि विधान अन्वयव्यतिरेक निमित्त नैमित्तिक यह बात समझ में न आये तो एक यह निर्णय पकड़ रखा है कि यह तो प्रभुने बनाया है क्योंकि वह अनन्तशक्तिमान है। यदि कुछ प्रभुने बनाया तो सबको प्रभु ही बनाये, रोटी दाल भी वह प्रभु पकाये। क्यों व्यर्थमें रोटी दाल आदि बनानेके लिए महिलाओंको लगाते, प्रभुको ही बना देनी चाहिए क्योंकि उसे अपने सब चीजोंके बनाने वाला माना। अरे करे तो सब करे। तो तथ्य तो यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी योग्यतासे अपने उपादानमें निमित्त पाकर बराबर परिणमन करते चले जा रहे हैं। हम अब भी जिन चीजोंको बना रहे हैं लोकोक्तिमें, वहां भी हम उन पदार्थोंको नहीं बना रहे हैं क्योंकि पदार्थ बन रहे हैं और उस प्रसंगमें हमारी ये क्रियायें हमारे ये क्रमयोग निमित्त हो रहे हैं। तो जैसे घड़ा बना तो उस प्रकारके व्यापारमें परिणत कुम्हारका निमित्त सन्निधान पाकर और पानी आदिकका यथेष्ट संयोग पाकर मिट्टीमें घड़ारूप परिणमन हुआ है वहां भी कर्तापनकी क्या बात? कदाचित् कुम्हार चेतन वहां न बैठा होता और कोई उस आकारमें उस ढंगकी मशीनरी होती तो वहां भी उस ढंगके खिलौने, घड़े आदि बन जाते। और, बन ही रहे हैं। कई जगह घड़ा, बर्तन व खिलौना आदि लोहके व मिट्टीके इस तरह बन भी रहे हैं। तो ये सब पदार्थ अपने उपादान योग्यता

के अनुसार निमित्त स निधान पाकर अपने ही परिणमनसे परिणमते है। इसमे किसी भी परतत्वके कर्तृत्वकी बात नही है।

शकाकार द्वारा अनुमान द्वारा कारण सामान्यकी सिद्धि करनेका प्रस्ताव—सृष्टिकर्तावादी यह युक्ति दे करके किसी महान बुद्धिमानको जगतका कर्ता मान रहे है कि चूकि घट पट आदिक जैसे कार्य हैं तो ये किसीके द्वारा बनाए गए हैं तो ये पृथ्वी पर्वत आदिक भी किसीके कार्य हैं इस कारण ये भी किसी न किसीके द्वारा बनाए गए हैं तो इसमे समानताकी बात ठीक नही कही जा सकती। कारण यह है कि यहाँ तो बनाने वाले लोग शरीरसहित है तो इसमे तो यह अनुमान किया जा सकता कि जो काम किसी शरीरधारीके द्वारा किया जा सकता है बस उसका ही करने वाला कोई है। शरीररहित होकर फिर कोई इस सारे जगतको बनाने वाला हो जाय यह बात नही सम्भव हो सकती। अब इस स्थल पर शकाकार यह कह रहा है कि हम सरीखे लोगोके द्वारा किया गया यह जगत् है या हम लोगोसे विलक्षण शरीररहित किसी महान शक्तिके द्वारा किया गया है यह जगत, ऐसा विकल्प न करके केवल कर्तामात्रका अनुमान हमने बनाया कि चू कि यह कार्य है, सावयव है, अपनी सकल सूरत रखता है इस कारणसे यह किसीके द्वारा किया गया है। यो केवल कर्ता सामान्यका अनुमान कराया गया, आप इन विकल्पोको छोड दीजिए कि ये पृथ्वी आदि हम जैसे लोगोके द्वारा किए गए है या हमसे विलक्षण किसी अन्य जीवोके द्वारा किए गए हैं।

कार्यसामान्य हेतुसे कारणसामान्यके ही निर्णयकी सभवता—कारण-सामान्य व कर्तासामान्यके प्रस्ताव पर उत्तर देते हैं कि यदि कर्ताके सम्बन्धमे हम जैसे या हमसे विलक्षण विकल्पोका त्याग कराकर फिर कर्ताका अनुमान कराते हो तो फिर ठीक है, यहा भी क्यो नही ऐसा मान लिया जाता है कि इस जगतका चेतनकर्ता है या अचेतनकर्ता है यह विकल्प न रखकर हा कोई कारण मात्र जरूर है ऐसा माननेमे आपत्ति नही है क्योकि जो कुछ भी यह पिण्ड है, सावयव है, आकारवान पौद्गलिक स्कध है, यह परमाणुवोके द्वारा रचा गया है और इसमे जो रूप, रस गध आदिकका परिवर्तन होता है वह समय पर उस प्रकारकी उपाधिका निमित्त पाकर होता रहता है। तो कार्यमात्र हेतु देकर कारणमात्रको तो बता सकते हो पर यह नही कह सकते कि यह किसी प्रभुके द्वारा, चेतनके द्वारा बनाया गया है। हा यह काय है तो हमारा काय कारणपूर्वक है। उसका कारण है यह ही स्वय उपादान और बाह्य मे अन्य योग्य निमित्त। जैसे एक धुवा देखकर केवल अग्नि सामान्यका ही तो अनुमान बनता है कि कोई यह अनुमान कर बैठता है कि यह तो सागौनकी लकडीकी आग है क्योकि धुवा होनेसे पर्वतमे धुवा देखकर कोई विशेष अग्निका अनुमान नही किया जा सकता। धुवा दिख रहा है तो कोई अग्नि है ऐसा अनुमान हुआ। सामान्य हेतुसे सामान्य साध्य

की सिद्धि होती है। जैसे कि रसोईघरमे आग जल रही है और धुवा भी ऐसा हो रहा है कि जिससे कठ रुध जाय, आखमे भी विक्षेप हो जाय, काला नीला सा जिसका रग है ऐसे ही धुवाको निरखकर सामान्य लाल पीली आग है, इस पर्वतमें, इतना ही मात्र तो अनुमान बनता है, और हमारी व्याप्तिका ज्ञान करने वाला जो तर्क प्रमाण है वह तर्क प्रमाण सर्व धूम अग्निका उपसहार करके यो ही सामान्यतया ग्रहण करता है, कही उससे विलक्षण चीजका ज्ञान नही करता। कार्य विशेष देखकर तो कर्ता विशेष का अनुमान किया जा सकता है जैसे घडा कपडा कुवा मकान ये विशेष कार्य हैं। इनको निरखकर तो कर्ता विशेषका अनुमान किया जाता है। पर कार्य सामान्यको निरखकर कर्ता विशेषका अनुमान नही होता। कार्य विशेष वह कहलाता है कि जिसे निरखकर सहसा सभी लोगोकी बुद्धि मे यह बात समा जाय कि किसीके द्वारा की गई है। टूटा फूटा कुवा महल निरखकर प्रत्येक व्यक्ति यह समझ लेता है कि किसीने यह बनवाया था देखो-आज धराशायी हो रहा है। तो जिस कर्ताको हमने देखा नही, करते हुएको देखा नही और फिर भी जिसे निरखकर कर्ताकी बुद्धि हो जाती है वह तो है कार्य विशेष और सामान्य जितना लोकका परिणमन है वह सब कहलाता है कार्य सामान्य। कार्य विशेषसे तो कारण विशेषका अनुमान होता है पर कार्य सामान्य से कारण सामान्यका ही अनुमान बन सकता है।

पिशाच और शरीरावयवका उदाहरण देकर शरीररहित लोककर्तृत्वके प्रस्ताव—भैया! इस प्रसङ्ग मे एक सीधी बात यह है कि यहा जब हम कुम्हार जुलाहा आदिकको शरीरसहित ही कर्ता निरख रहे हैं तो इस सब जगतका भी कोई शरीरसहित ही कर्ता होना चाहिए, इसपर शकाकार कह रहा है कि यह कोई नियम नहीं है कि कार्यका करने वाला शरीरसहित ही हो। जैसे वृक्षोकी टूटी शाखाओपर पुराने पेडोपर पिशाच आदिक रहते हैं, उनके तो शरीर है नही और फिर भी कितने काम कर डालते है। अथवा अपने ही शरीरके किसी अवयवको हिलाते हैं, अगुली टेढी कर दी तो दूसरा शरीर तो इसके साथ चिपटा नही है और फिर भी कार्य देखा जा रहा है। शरीर बिना भी तो कार्य देखे गये है। शकाकारने शरीरसहित होकर भी कार्य किया जा सकता है यह सिद्ध करनेके लिये दो उदाहरण दिये एक तो दिया है पिशाचका कि जैसे पिशाच शरीरसहित नहीं है फिर भी अनेक कार्योंको करता है है, दूसरी बात—शरीरावयव स्वय अपनेमे गति करता है, क्रिया करता है। देखो ना हाथ हिला रहे। अगुली कापती हैं, आखें मटकती हैं, शिर हिलता है। दूसरा शरीर तो कोई लगा नही फिर इस शरीरकी क्रिया कैसे हो गई? तो शरीर नही है फिर भी शरीरके अवयवके द्वारा भी कार्य किया जा सकता है।

पिशाचादिकके शरीररहित होकर कार्यकारी होनेका निराकरण—शरीररहितके लोककर्तृत्वकी शकाका समाधान देते हैं कि यह कहना केवल बिना

विचारका है। पिशाच आदिक भी शरीरसम्बन्ध रहित होकर कार्य नही कर सकते। जैसे कर्म मुक्त आत्मा शरीररहित है तो वह कार्य तो नही कर सकता। इसी प्रकार शरीरसम्बन्धसे रहित पिशाच आदिक कार्य भी करनेमे असमर्थ होगे। वे कार्य करते है तो अवश्य शरीरसहित होगे। शरीरसहित होनेपर ही कुम्हार आदिकमे कार्य करने की बात देखी गयी है। शरीररहित कोई पुरुष किसी कार्यका करने वाला नही देखा गया, और पिशाच आदिकके साथ शरीरका सम्बन्ध है तो वह आखो दिख जाना चाहिये। जैसे कुम्हार आदिक आखो दिखते हैं शरीरसहित है और तब वे घट आदिक के काय करने वाले होते हैं। यदि यह कहो कि कुम्हारका शरीर तो दिखता है इस कारण हम शरीर मान लेगे, पर पिशाच आदिकका तो शरीर दिख ही नही रहा। कुम्हारका उदाहरण देकर पिशाचको भी शरीरसहित सिद्ध किए जानेकी बात ठीक नही बैठती, अथवा पिशाचका शरीर दिख ही जाना चाहिए ऐसा नियम नही बनाया जा सकता। हर एककी बात अलग अलग होती है। कुम्हारका शरीर दृश्य है। और भूतपिशाचका शरीर अदृश्य है। तो उत्तरमे कहते हैं कि जैसे शरीरपना सामने होने पर भी कुम्हारका शरीर भी शरीर है इस पिशाचका शरीर भी शरीर है, इस प्रकार शरीरपनेकी समानता होनेपर भी जैसे कि पिशाचके शरीरको हमारे शरीरसे विलक्षण मान रहे हो तो उसी प्रकार यहा भी यह मानलो कि कार्यपनेकी समानता होनेपर भी घट आदिक ये। किसीके द्वारा कृत होते है, किन्तु पर्वतादिक किसीके द्वारा कृत नही होते। तो इस तरह तो आपके ही अभिमतमे दोष आयगा।

शरीरावयवकी स्वशरीर सम्बन्धसे कार्यकारिता– दूसरा उदाहरण जो दिया गया था कि शरीररहित होकर भी कार्य कर सकता है कोई। जैसे कि खुदका शरीर। इस शरीरमे कोई दूसरा शरीर तो नही लगा हुआ है दूसरे शरीर के बिना ही यह शरीर अपने हाथ पैर हिला लेता है अगुली मटका लेता है, आखें हिला लेता है तो शरीरके बिना भी दिखा इस शरीर अपने अग हिला डाले तो शरीररहित होकर भी कोई कार्य कर सकता है। शकाकारने यह जो कहा है वह यो सही नही है कि शरीर ही कुछ न हो, और, फिर काय होना हो तो बतावो। ये अग जो हिल रहे हैं तो यह स्वय शरीर तो है। न रहो इसमे मिला हुआ कोई दूसरा शरीर जो कि उसको प्रेरणा करे हाथ हिलानेके लिये। इसका मतलब केवल इतना ही है कि शरीरका सम्बन्ध मात्र हो तो ये कार्य होते हैं। तो यह शरीर तो खुद हुआ ना। तो इस सम्बन्ध मात्रसे इसके अवयवोकी प्रेरता आ गई, इसमे दूसरे शरीरका सम्बन्ध आवश्यक नही। शरीर सम्बन्ध बिना चेतन कार्योंको नही कर सकता है जैसे कि मुक्त आत्मा, इतना ही मात्र हमारा प्रयोजन है तो यदि किसी महेश्वर या अन्य को ही तुम इस जगतका कर्ता मानना चाहते हो तो शरीरके सम्बन्धसे ही कर्ता माना जा सकता है। शरीररहित होकर कोई पदार्थक करने वाला नहीं होता।

सशरीरसहित होकर प्रभुके लोककर्तृत्वकी असिद्धि– कदाचित् मान

जो कि जगत्कर्ता महेश्वरके शरीर भी लगा हुआ है, किसी ने देखे न देखे, शरीर उसके भी है। यदि ऐसा मान लेते हो तो फिर यह बतलाओ कि प्रभुका वह शरीर किया गया है या बिना किया गया है। यदि कहो कि प्रभुका शरीर भी किया गया है तो उस शरीरको किसने किया ? किसी दूसरे शरीरधारीने किया है तो अनवस्था दोष आयगा। उस शरीरधारीने किया है, उसका शरीर भी किसी दूसरे शरीरधारीके द्वारा किया गया है और वह भी किसी अन्य शरीरधारीके द्वारा किया गया है तो यों एक शरीरके बनानेके लिए अनन्त शरीरोंकी कल्पना करनी पड़ेगी। तो पहिले शरीर ही बननेमे बड़ी देर लगेगी। उनकी जब अन्य अन्य शरीरोंके ही रचनेमें शक्ति लग जायगी तो इस जगतको बनानेके लिये उनका व्यापार ही क्या होगा ? यदि कहो कि वह शरीर बिना बनाया हुआ है, अपने आप है प्रभुका शरीर तो बतावो वह शरीर कार्य है कि नित्य है ? यदि कार्य है तो देखो कि कार्य भी है वह शरीर और बिना किया हुआ भी है। तो ऐसे ही इन पृथ्वी पर्वत आदिकको क्यों नहीं मान लेते कि ये कार्य भी हैं और बिना किए भी हैं यदि कहो कि वह नित्य है शरीर महेश्वरका शरीर सदा अवस्थित है, अपरिणामी है। तो देखो शरीर तो शरीरपनेके कारण अनित्य ही हुआ करता है यहा तक कि जो सकलपरमात्मा हैं, अरहंत भगवान हैं उनका भी शरीर नष्ट हो जाने वाला है। तो शरीर हम आप लोगोंके है और शरीर प्रभुका भी है। तो शरीरपनेकी समानता होनेपर भी हम लोगोंके अनित्य शरीरसे विलक्षण कोई नित्य शरीर यदि मान लिया गया है तो यों ही यहाँ मान लो कि कार्यपनेकी समानता होने पर भी घट पट आदिक तो किए गए हैं और पृथ्वी पर्वत आदिक बिना किए गए हैं। तो इन सब विशद युक्तियोंसे यह सिद्ध होता है कि कार्यत्व हेतुसे किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है पदार्थ इस साध्यकी व्याप्ति नहीं बनती। तो अविनाभाव सम्बन्ध रूप व्युत्पत्ति तो इसमे रही नहीं।

अविनाभावव्यतिरिक्त व्युत्पत्ति माननेकी असंगतता - शंकाकारने पहिले ये दो विकल्प उठाए थे कि तुम जो कार्यत्वका व्यभिचार सिद्ध करके कह रहे हो कि बुद्धिमानके द्वारा नहीं बनाया गया तो क्या यह व्युत्पन्न पुरुषोंके लिए कह रहे हो या अव्युत्पन्नजनोंके लिए कह रहे हो ? उस सम्बन्धमे व्युत्पत्तिकी परिभाषा पूछी गई। यदि कहो कि अविनाभाव सम्बन्ध वृत्ति ही कोई व्युत्पत्ति है तो न वह तो निराकृत कर दी अब यदि तद्व्यतिरिक्तको व्युत्पत्ति कहते हो तो वह व्यतिरिक्त क्या ? यह तो लौकिक आग्रह है। हमारे शास्त्रोंमे लिखा हुआ है इसलिए यह बात सही है यह तो अपने आगमकी हठ है, इतने मात्रसे तो कार्यत्व हेतुसे बुद्धिमानपनेके साध्यको सिद्ध नहीं कर सकते। यदि बिना अविनाभाव सम्बन्धके ही, बिना युक्तियोंके गठन किए ही किसी भी हेतुसे कुछ भी सिद्ध कर दें तो ऐसा भी कहनेमें क्या दोष है कि वेद अपौरुषेय होता है क्योंकि इसका अध्ययन चल रहा है तो यह भी उस अनुमानको सिद्ध करने वाला बन जायगा। तो यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता कि जैसे घड़े

मे काय है तो किसी कुम्हारके द्वारा बनाया गया है तो पृथ्वी आदिकको भी किसीने बनाया है यह बात सिद्ध नही होती।

निमित्त नैमित्तक व्यवस्थामे कार्योका विशद दर्शन--भैया ! स्पष्ट दिख रहा है सब कुछ कि ये अङ्कुरादिक स्वय ऐसे होते हैं कि बिना ही खेती किये खुद उत्पन्न हो जाते है। घासको कौन पैदा करता है ? और, कुछ मवा पसाईके चावल आदि ऐसे अनाज भी होते हैं जो बिना बोये ही पैदा हो जाते हैं, अथवा ये जो बडे बडे जगल हैं ये भी तो विना बोये हो पैदा हो जाते हैं। इनको भी कौन बोने आता है ? यदि कहो कि दाने बिखर जाते हैं और पानी कीचडे आदिकका सम्बन्ध पाकर ये उत्पन्न हो जाते हैं तो यह कहना तुम्हारा ठीक है। इसके माननेमे किंतु कोई शरीरवाला या शरीररहित कोई एक चेतन आता है वह उनका जन्म देता है, फिर उनको बडा करता है यह बात तो ठीक नही है। वहा तो एक निमित्त नैमित्तिक भावोंकी बात है। पर कुम्हार जैसे कोई अलग व्यक्ति है और इन अलग चीजोको कर डालता है इसमे युक्तियोसे बाधा आती है। यो तो सारा ही विश्व इस प्रकारका है कि एकका निमित्त पाकर दूसरेमें कार्य होता रहता है। तो एकत्व हेतुका किसी बुद्धिमानके द्वारा यह बनाया गया है यह अविनाभाव सम्बन्ध नही बनता।

अकर्तृत्वकी मान्यतामे हितकारी ज्ञानप्रकाश देखिये जगतका करने वाला कोई प्रभु नही है, इस मान्यतामे कितनी ज्ञान किरणें मिलती है। प्रथम तो यह बोध जगता है कि प्रत्येक पदार्थ अनादि सिद्ध है, चूकि वह सत् है अतएव वह अनादिसे ही अपना स्वरूप रखे हुए और वे सब पदार्थ परस्पर एक दूसरेका निमित्त पाकर अपने आपमें विकारभाव करते हैं, अपनी परिणतियोको बदलते है इस कारण से ये सर्व पदार्थ अपने स्वरूपमे अपने चतुष्टयमे अपना अस्तित्व रखते हैं। इसी कारण कोई पदार्थ किसी पदार्थका कुछ नही लगता। यहा तक कि हम आप जिस पर्यायमे पडे हुए हैं। यह पर्याय कितने पदार्थोंका समूह है। जो कुछ आपको नजर आता है यह समस्त शरीर कितने द्रव्योका समूह है, इसमे एक तो जीव है, और अनन्त पुद्गल परमाणु शरीर वर्गणावाले हैं उनसे भी अनन्तगुने पुद्गल परमाणु कार्माण वर्गनाओ की जातिके लगे होते हैं, तैजस वर्गणा नामके भी पुद्गलोका समूह इस शरीरमे बधा हुआ है। मनोवर्गना भी अनन्त परमाणु हैं मनकी रचना मनोवर्ग
इन सबका जो एक यह पिण्ड है वह है मनुष्यभव। वस्तुत देखो तो इन अनन्तानन्त पदार्थोंमे प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपास्तित्वको लिये हुए हैं और परस्परमे एकके परिणमनके लिये दूसरा निमित्त बन रहा है मगर जो परिणमन रहा है वह अपने उपादानसे ही परिणम रहा है। कभी जीवके भावोकी प्रेरणामे यह शरीर दौडता है, उस दौडते हुएकी दशामे आत्मा भी हिल रहा है और शरीर भी हिल रहा है फिर भी शरीरके हिलनेमे उपादान तो शरीर है और आत्म प्रदेशोके हिलनेमे उपादान आत्मा

ही है। एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका परिणमन कर देनेका अधिकारी नहीं है।

प्रेरित अथवा अप्रेरित समस्त घटनाओं वस्तुके स्वरूपकी विविक्तरूपता—जहां हम कुछ प्रेरणाके रूपमें भी कार्यरता निरख रहे हैं जैसे कुम्हार किसी मिट्टीमें कलश कटोरा आदि बनाता है ऐसी प्रेरणा वाले कार्यके बीच भी हम यह पा रहे हैं कि कुम्हार तो केवल अपने भाव और इच्छाका ही करने वाला हो रहा है। इच्छा और योगका निमित्त पाकर यह शरीर अपनी चेष्टामें लगा हुआ है और इस शरीर चेष्टाका सम्बन्ध पाकर मिट्टी अपने आपके परिणमनमें अपने ही उपादानमें सकोरा घड़ा आदि नाना कार्यरूप परिणमन रहा है। वस्तु स्वरूप पर दृष्टि दें तो प्रेरित कार्यके बीच भी आप यह पायेंगे कि जितने भी वे पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अपने आपमें अपना परिणमन कर रहे हैं। कोई भी अणु किसी भी दूसरे अणुका कोई भी परिणमन नहीं कर रहे है। जब बात ऐसी स्वतन्त्रताको समझने आती है तो मोह नहीं ठहर सकता। मैं किसका करने वाला कौन मेरा करने वाला ? मैं ही अपने भावोंमें गिरता हूँ, उठता हूं सुखी होता हूँ दुःखी होता हूं। मेरी रक्षा करने वाला कोई दूसरा नहीं है।

विश्वसृष्टिकर्तृत्वके अनुमानमें दिए गए कार्यत्वहेतुका व्यभिचारित्व—समस्त पदार्थ चूंकि हैं अतएव निरन्तर परिणमते रहते हैं। वे पदार्थ यदि अशुद्धोपादानी हैं तो योग्य निमित्त सन्निधान पाकर अपने प्रभावसे प्रभावित हो जाते हैं। किसी पदार्थका करनेवाला कोई अन्य नहीं है। और भी देखिए—इस समस्त पदार्थ समूहका किसी एक बुद्धिमानको कर्ता तो वैसे भी युक्तियोंसे माना ही नहीं जा सकता, क्योंकि कार्यत्व हेतुका बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्व साध्यके साध्यके साथ अविनाभाव प्रसिद्ध है। सभी लोग जानते हैं ये जंगलके जंगल ये बिना खेती किए हुए होने वाले घास, धान्य आदि, इन्हे कौन पैदा करता है ? देखो ये कार्य तो हैं किन्तु किसी एक बुद्धिमानके बनाए हुए नहीं हैं। सो जगतको बुद्धिमन्निमित्तक सिद्ध करनेमें जो कार्यत्व हेतु दिया गया है वह हेतु व्यभिचारी हो गया। यों युक्ति से भी ईश्वरकर्तृत्ववाद सिद्ध नहीं होता। ईश्वरका तो अनन्त ज्ञानानन्द और कृतार्थतामें भरपूर स्वरूप है।

शंकाकारद्वारा कार्यत्वहेतुके व्यभिचारित्वका निवारण—यहां शंकाकार कहता है कि यह सर्व विश्व बुद्धिमत्कारणपूर्वक है कार्य होनेसे इस अनुमानमें कार्यत्व हेतु व्यभिचारी नहीं है, कारण कि बिना जोते उत्पन्न हुए अंकुरादिक भी ईश्वरके द्वारा रचित हैं वहां कर्ताका अभाव नहीं है, किन्तु कर्ताका अग्रहण है। जो चीज उपलब्धिमें आ सकती है फिर वह न मिले तो उसके अभावका निश्चय किया जा सकता है, किन्तु ईश्वर चूंकि अशरीर है सो उसकी उपलब्धि हो ही नहीं सकती है तो अंकुरादिक सृष्टिके प्रसंगमें कर्ताका अग्रहण तो है लेकिन अभाव नहीं है। शंकाकार सृष्टिकर्तृत्वके समर्थनमें शंकाका पिष्टपेषण कर रहा है। देखो भैया ! वस्तुके

स्वत्वाकी महिमाका जब तक निनिश्चय नही होता है तब तक यह सब लोक कैसे आ गया इसकी जिज्ञासा रहती है और वस्तुगत समाधान न मिलने पर प्रभु पर कर्तृत्व छोड़कर सन्तोष करनेकी टेव हो जाती है।

प्रमाणके अविषयभूत कर्ताकी कल्पनामे अव्यवस्था—अब उक्त शकाका समाधान निरखिए–जगत्कर्ता प्रमाणसिद्ध नही है, प्रमाणका अविषय है, प्रमाणका अविषय होने पर भी यदि अ कुरादिके कर्ताके अभावका अनिश्चय होना माना जाय तो यो भी कहा जा सकता है कि आकाशादिकमे रूपादिके अभावका भी अनिश्चय है, क्योकि गगनादिकमे रूपादिक उपलब्धिलक्षण प्राप्त होकर फिर न मिलते तो अभाव कहा जाता। यदि कहा कि आकाशादिकमे रूपादिकके बाधक प्रमाण है इसे रूपादिक के अभावका निश्चय है, तो यही बात प्रकृतमे है अ कुरादिकके कर्तृत्वके बाधक प्रमाण है सो कर्ताके अभावका निश्चय है। अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त होनेसे लोककर्ताके अभाव का अनिश्चय है यह बात युक्तिसगत नही है, क्योकि शरीरके सम्बन्धसे ही कर्तापन बन सकता है, शरीरके सम्बन्ध बिना यदि कर्तापन माना जाने लगे तो मुक्त आत्मा को भी लोककर्ता मानना पडेगा। सो लोककर्ताको शरीर सम्बद्ध माना जायगा तो वह उपलब्धिलक्षण प्राप्त हो जायगा याने कुम्भकार आदिकी तरह मिलने लगेगा लोककर्ता, सो मिलता नही। बात तो वास्तविक यही है पृथ्वी आदिक इन पदार्थोंकी रचनामें इन्हीका अन्वय व्यतिरेक पाया जाता है। इस कारण इन पदार्थोंसे अतिरिक्त प्रभुके कारणत्वकी कल्पना व्यर्थ है। यदि अनावश्यक कारण कल्पना करने लग जाओगे तो अपने योग्य कारणोके सन्निधानमे घटकी उत्पत्ति होती है वहा भी जुलाहा के कर्तृत्वकी कल्पना करने लगो।

पुण्य पापकी कारणताके विषयमे आशका और समाधान शंकाकार कहता है कि इन पदार्थोंमे ही अन्वयव्यतिरेक माननेसे कारणता मानी जानेपर तो पुण्य पापकी कारणता भी न ठहरेगी। कोई कहे कि न रहे पुण्य पापमे कारणता, तो वृक्ष तृण आदि पदार्थ सुख दु खके साधन न रहेंगे, क्योकि अब तो पुण्य पापसे भी निरपेक्ष होकर इनकी उत्पत्ति मानी जाने लगी, लेकिन यह कैसे हो सकता है? स ससारमे कोई भी ऐसी वस्तु नही है जो साक्षात अथवा परम्परासे किसीके सुख या दु खका साधन न हो। अब इसका समाधान देखिये– पृथ्वी, अ कुर आदिकका परिणमन तो साधारण परिणमन है उसमे जो विचित्रता है वह अदृष्ट (पुण्य पाप, नामक विशिष्ट कारणके बिना नही होती। पुण्य पापकी कारणता नही मिटायी जा सकती। क्योकि पुण्य पापके बिना जीवलोककी इतनी विचित्रता बन नही सकती। और भी देखिए – जैसे पुद्गल पुद्गलोके सम्बन्धसे जो कार्य होता है वह तो होता है, साधारण परिणमन है, किन्तु जहा जीवका सम्बन्ध है और पृथ्वी अ कुर, कीट आदि विचित्र भवोका रहना है वह सो पुण्य पापके अनुसार होता है। सुख दु खकी साधनता तथा

विचित्र देहियोंकी आविर्भूति इन दोनों कारणोंसे पुण्य पापकी कारणता तो सिद्ध हो जाती है, किन्तु इस जीव लोककी, विश्वकी बुद्धिमत्कारणता सिद्ध नहीं होती।

लोककर्ताके अग्रहणके कारणका सन्दिग्धव्यतिरेकत्व— ईश्वरकर्तृत्ववादी यहा यह सिद्ध कर रहे थे कि जगतमें जो कुछ है वह सब किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है। क्योंकि कार्य होनेसे। इस सम्बन्धमें बहुत सा निर्णय तो हो गया है अब प्रासंगिक एक बात यहा चल रही है कि कोई ईश्वर है और वह रच रहा है किस तरह रच रहा है किसीको भी नहीं दीखता, अतः लोककर्ताका अभाव है। तो इस पर कर्तावादीने कहा था कि दिखे कैसे ? जो चीज दिखने लायक है और वह फिर न दिखे तो उसका तो अभाव मानना चाहिए। किन्तु जो चीज दिखने लायक नहीं है और न दिखे तो उसका अभाव नहीं माना जा सकता। सृष्टिकर्ता ईश्वरका अग्रहण अभावके कारण नहीं, किन्तु अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त होनेसे अग्रहण है। ईश्वर अनुपलब्धि लक्षण प्राप्त है अर्थात् वह उपलब्धिमें आ ही नहीं सकता है। तो इस सम्बन्धमें वही संशय हो गया कि जितने ये अंकुर उत्पन्न होते हैं बिना बोये हुए, इन अंकुर उत्पन्न होते हैं बिना बोये हुए इन अंकुरोंका उत्पादक कोई बुद्धिमान नहीं देखा जा रहा। सो बुद्धिमान जो नहीं पाया जाता है वह उस बुद्धिमानके अभावसे है या वह अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त है। याने उसकी उपलब्धि होना लक्षण ही नहीं है। इस तरह तो उसमें सन्देह हो जाता है। सो सन्दिग्धव्यतिरेक होनेसे अग्रहणकी युक्ति असंगत हो जाती है।

लोककर्ताके अग्रहणको अन्यथका पुनः समर्थन— इस प्रसंग पर शंकाकार कहता है कि यों अगर किसीके अग्रहणमें सन्देह करने लगोगे कि अभावके कारण अग्रहण है या अनुपलब्धि लक्षण प्राप्त होनेसे तो कोई भी अनुमान नहीं बनाया जा सकता। जहा अग्नि नहीं दिखती पर धूम देखा जा रहा है वहा अनुमान ज्ञान किया जाता है। जहा हेतु स्पष्ट रहता है और साध्य सिद्ध नहीं होता है तब अनुमान ज्ञान किया जाता है। जहा हेतु स्पष्ट रहता है और साध्य सिद्ध नहीं होता है तब अनुमान ज्ञानका अवतार होता है। जैसे इस पर्वतमें अग्नि होना चाहिए—धुवा होनेसे, तो धुवां स्पष्ट नहीं है तो साध्यका वहा अदर्शन है। अग्नि आखोंको नहीं दिख रही और धुवा दिख रहा है। तो उस सम्बन्धमें भी हम अनुमान न बनने देंगे, झट यहा यह रोक लगा देंगे कि यह बताओ कि वहा जो अग्नि नहीं दिख रही है वह अग्निके अभावसे नहीं दिख रही है या वह अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त है। इस तरह हम सन्देह तो प्रत्येक अनुमानमें लगा सकते हैं। शायद यह कहें समाधान करने वाले लोग कि जिस सामग्री के द्वारा धूम उत्पन्न हुआ देखा जाता है, उस धूमज्ञान सामग्रीका उल्लंघन नहीं कर रहा है। सो यह बात तो हम अन्यत्र भी कह सकते है कि कार्य जितने भी होते हैं वे कर्ता करण आदिक पूर्वक हुआ करते हैं और ये अंकुर आदिक कार्य हैं इसलिये इनका

कर्ता जरूर होना चाहिए, वह भी अपनी सामग्रीका उल्लघन नही कर सकता है।

कार्यत्वमात्रसे कारणमात्रत्वकी सिद्धिका अनुल्लघन—उक्त शकाका अब समाधान दिया जाता है कि शकाकारका दृष्टान्तसे तुलना करके दृष्टान्तगत धर्मविरुद्ध किसीको लोककर्ता कहना अयुक्त है। जिस प्रकार घट आदिक कार्य जिस प्रकारकी सामग्रीसे उत्पन्न हुए होते हैं, कार्यत्वके नाते उस प्रकारकी सामग्रीका उल्लघन नही हुआ करता। अर्थात् जैसे यहा घडा बनता है कपडा बनता है तो इनके करने वाला शरीरी है उपलब्धि लक्षण प्राप्त है दिखने योग्य है। तो इन कार्योंसे भी कर्ताका अनुमान बनाया गया ना कि हमारा कोई ईश्वर है, प्रभु है, कर्ता है बुद्धिमान है। दिखता नही है फिर भी खूब काम करता है ऐसा कर्ता सिद्ध न होगा। कार्यको निरख कर यहा जैसी सामग्रीसे कार्य बन रहा है कार्यत्व हेतुसे ऐसे ही कर्ताको तो सिद्ध कर सकेंगे। मगर कोई प्रभु है, दिखता नही है, वह एक है, सर्वग्राही है ऐसा कर्ता सिद्ध नही हो सकता।

सृष्टिकर्ताकी अनुपलब्धिका कारण अशरीरत्वका कथन—शकाकार यह कह रहा है कि ईश्वरकी जो अनुपलब्धि है वह शरीर न होनेके कारण है किन्तु असत् है इस वजहसे नही। कर्तृत्ववादियोके यहा दो प्रकारके प्रभु हैं—एक तो अनादिमुक्त, अनादिनिधन पवित्र, शरीररहित कर्मरहित जो कि ससारको बनाता है, और दूसरा मुक्तात्मा—जो तपश्चरण आदिक करके कर्मोंसे मुक्त हो जाता है। उन मुक्त आत्माओ को अधिकार नही है कि वे कुछ भी रचना कर सकें या रच मात्र भी हिल डुल सकें, वे तो अपने ज्ञानानन्दमे छकित रहेंगे, पर उनकी भी इस सदाशिव ईश्वरने सीमा रख ली है। बहुत कालके बाद उनके भी कर्म लगा दिये जायेंगे और वे ससारमे जन्म लेंगे। तो ईश्वरकी भी असत्वके कारण अनुपलब्धि नही है किन्तु शरीर न होनेसे अनुपलब्धि है। शरीर सहित कुम्हारके कर्तापन प्रत्यक्षमे देखा जाता है सो युक्त ही है, परन्तु यहा पर एक चैतन्यमात्र रूपमे ही तो ईश्वरका अधिष्ठान है। वह चैतन्यसहित है, शरीरसहित नही। इस कारण इस महेश्वरकी प्रत्यक्षमे उपलब्धि नही है। और ऐसा भी नही कहा जा सकता कि जब शरीर नही है तो कर्ता भी नही हो सकता क्योकि कर्तापनका शरीरके साथ अविनाभाव नही है। शकाकार कह रहा है कि कर्तापनको तो शरीरके साथ अविनाभाव नही है। शरीरान्तरसे रहित भी समस्त चेतन अपने शरीरकी प्रवृत्ति निवृत्ति करते ही है। इसके पोषणमें एक उपदृष्टान्त दिया है कि जब जीव मर जाता है और यह शरीर छोडकर चला जाता है तो अब तो वह जीव शरीररहित हो गया फिर वह कैसे ये शरीर बना लेता है। तो शरीररहित भी चेतन कार्य कर सकता है यह सिद्ध किया जा रहा है। सदाशिव शरीररहित है तो वह भी कार्य करने लगा। जैसे यहाके जीव मरनेके बाद शरीररहित होकर भी नवीन शरीरको प्राप्त करते हैं।

कर्तृत्वका ज्ञानेच्छाप्रयत्ना साधारत्वसे अविनाभावका कथन – समारी जीवोंके कार्य करनेका कारण यदि प्रयत्न और इच्छा है तो प्रयत्न और इच्छा तो हम ईश्वरमें भी मानते है। ईश्वरकी जब जब भी इच्छा होती है कि मैं विश्वको बनाऊ तब तब विश्व बनता है। और, यही भी बात है कि ज्ञान हो, करनेकी इच्छा हो और फिर प्रयत्न हो तो कर्तापन बन जाता है। तीन बातें चाहिये, शरीर हो या न हो, शरीरके साथ कर्तापनका अविनाभाव नहीं है। ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न ये तीनों ही होना चाहिए, क्योंकि इन तीनोंमेंसे यदि कुछ भी कम हो तो कर्तापन नही बनता है। इसलिये कर्तापनका अविनाभाव इन तीन कारणोंसे है शरीर अशरीरमे कोई पुरुष कार्य करना नही जानता तो शरीरसहित है, प्रयत्न भी करता है, इच्छा भी रखता है। फिर भी कार्य नहीं कर सकता। कोई पुरुष जानता है कार्य करना किन्तु इच्छा ही न हो रही हो कार्य करनेका तो वह कार्य कर्ता नहीं बन रहा है। कोई पुरुष जानता है इच्छा भी करता है पर उसका प्रयत्न नहीं करता है तो कार्य नहीं होता। इससे ये तीन बातें मिल जायें, ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न, तो कार्य होगा, शरीर हो या न हो। शरीरके साथ कर्तापनका अविनाभाव नही है ऐसा यहा यह शंकाकार कह रहा है।

शरीरके अभावमे ज्ञानेच्छा प्रयत्नत्रयकी असभवना – उक्त शकाका अब समाधान देते हैं कि यह कहना युक्त नही है कि कर्तापन ज्ञान, इच्छा और प्रयत्नके आधारपर नही है। यों यह कहना ठीक नही कि शरीरका यदि अभाव है तो ज्ञान, प्रयत्न और इच्छा हो ही नहीं सकते। जैसे कि मुक्त आत्मा। मुक्त आत्माओंके शरीर तो वे न ज्ञानसहित हैं, न इच्छा सहित हैं न प्रयत्न सहित हैं। सृष्टिकर्तावादी लोग मुक्तात्माको ज्ञानरहित मानते है। ज्ञानको दूषण समझते हैं ये कर्तावादी लोग। जब तक जीव ससारमे रुलता है और ज्ञान न रहे तो उसे मोक्ष हुआ है ऐसा कहते हैं। तो मुक्तात्माओंके चूकि शरीर नही है इसलिये ये तीनों बातें भी नहीं है। और, भी सुनो—इस नैयायिक दर्शनके अनुसार पदार्थोंकी उत्पत्तिमें तीन कारण हुआ करते हैं समवायकारण, असमवायिकारण और निमित्त कारण। आत्मा तो समवायिकारण है और आत्मा तथा मनका सम्बन्ध होना यह असमवायि कारण है और शरीरादिक निमित्त कारण है। इन तीन कारणोंके बिना कार्यकी उत्पत्ति तो इन शंकाकारोंने भी नहीं मानी, क्योंकि इन तीन कारणोंके बिना कार्यकी उत्पत्ति हो जाय तो मुक्तोंमे भी ज्ञानादिक गुण उत्पन्न होने लगेंगे क्योंकि आत्मा और मनका सयोग भी कारण नहीं माना शरीरादिक भी कारण नही माना तो फिर क्या वजह है जो मुक्तात्मावोंमें जैसे कि पहिले ज्ञानकार्य चल रहा था उस तरह अब क्यों न चले और फिर यह सिद्धान्त कि बुद्धि सुख दुख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म सस्कार इन ९ गुणोंका अत्यन्त अभाव हो उसे मुक्ति कहते हैं। और देखिये शरीर है कार्यका निमित्त कारण, सो निमित्त कारण बिना भी यदि कार्योंकी उत्पत्ति मानने लगोगे तो हम यह कहेंगे कि एक बुद्धिमान कारणके बिना भी जगतका कार्य हो रहा है।

कर्तृत्वका सशरीरत्वसे सम्बन्ध प्रतिपादनका उपससार—उस अनादि मुक्त ईश्वरके शरीर है नही और कार्य कर रहा है इसपर एक तो यह आपत्ति आती है कि शरीर रहित तो मुक्त आत्मा भी है, वह क्यो नही कार्य करने लगता ? यदि यह कहो कि मुक्त आत्माओके ये तीन प्रकारके कारण नही हैं शरीरादिक और आत्मा मनका सयाग ये दो कारण नही हैं आत्मा तो है समवायि कारण। तो इसके उत्तरमे यह है कि ये दोनो कारण उस अनादि मुक्तके भी नही है जो कार्य करता है वह तो समवायि कारण है या जिसका काय बना करता है वह समवायि कारण है ? ईश्वर जगतको रचता है इससे भी वह जगतमे निराला नही है। या एक आपत्तिसे बचनेके लिये यह भी कह दीजिए कि यह ईश्वर ही इन नाना रूप बनता है। इस तरहसे तो वह आत्मा समवायि कारण है और सदा ही एक रूपसे क्यों नही बनता रहता है ? उसके लिए असमवायि कारण मानना जरूरी हो जाता है। वह असमवायि कारण जिस समय है या उस असमवायि कारणमे कुछ फर्क है तो इस तरहसे कार्यमे फर्क होता है। और शरीरादिक निमित्त कारण माना है सो सदाशिवके शरीरके बिना उत्पत्ति बन ही नही सकता है। निमित्त कारणके बिना याने शरीर न होनेपर भी यदि जगतको ईश्वर रचता है तो बुद्धिमान निमित्त कारणके बिना अंकुरादिक कार्य को भी उत्पत्ति हो जाय तथा यदि जगतको ईश्वर रचता है तो शरीर न होनेपर मुक्त आत्मा भी जगतको रचने लग बैठे ?

शकासमाधानपूर्वक कार्यत्वहेतुसे कारणमात्रत्व साध्यका समर्थन—यदि सृष्टिकर्तावादी यह कहे कि ईश्वरका ज्ञान तो नित्य है उसमे यह दोष नही लगता। सो यह प्रमाण विरुद्ध बात है ? ईश्वरके ज्ञान आदिक नित्य नही हैं, क्योकि ज्ञान होनेसे। जैसेसे हम लोगोके ज्ञान। हम लोगोके ज्ञान ज्ञान है पर नित्य नही है इस तरह ईश्वरका ज्ञान भी ज्ञान होनेसे नित्य नही है। यदि यह कहोगे कि हमारे ज्ञानमे और ईश्वरके ज्ञानमे क्या तुलना ? हम लोगोके ज्ञान और तरहके हैं और ईश्वरका ज्ञान और तरहका है। इसलिए ईश्वरका ज्ञान नित्य है और हम लोगोका ज्ञान अनित्य है। इस तरहसे यदि ज्ञानादिकमे भी जो बात देखी जा रही है उसका उल्लघन करके ईश्वरके ज्ञानको विलक्षण बना दोगे तो हम तुम्हारे कार्यहेतुको विलक्षण बना देंगे। यह तुम्हारा कहना ठीक नही कि जो जो कार्य होते हैं वे किसीके द्वारा अवश्य बनाये गये होते हैं। अरे जिस प्रकार कि घट पट आदिक कार्य हैं उस प्रकारके ये अकुर पर्वत आदिक नहीं है। जैसे कि तुम कह रहे हो कि हम लोगोके ज्ञानकी तरह ईश्वरका ज्ञान नही है विलक्षण है, नित्य है तो यहा हम यह कह देंगे कि घट पट आदिक कार्योकी तरह ये अकुर पर्वत आदिक कार्य नही हैं सो इनका बनाने वाला अन्य कोई नही है।

चेतनाधिष्ठिततासे ही अचेतनोमे प्रवृत्ति होनेके प्रस्तावपर विचार—

परकृतत्वके आशयमें आत्मह्तिका अनवकाश —भाव यहाँ यह लेना है कि जब तक यह बुद्धि रखी जायगी कि कोई ईश्वर हम आप सबकी रचना करता है, सुख दुख देता है तो ऐसी बुद्धि जब तक रहेगी तब तक हममे वह उत्साह नही जग सकता कि हम अपने उस अनन्त सामर्थ्य वाले स्वभावको निरख सकें और निज विशुद्ध सद्भूत पदार्थ अपने स्वभावके निरखनेमे एक चित्त होकर निर्विकल्पता पा सकें। जिस के बिना हम आपका कल्याण कभी भी सम्भव नही है ऐसी स्थिति हमारी तब आ ही नहीं सकती जब यह अज्ञान बसा हो कि मैं तो कुछ करने वाला नहीं। करने वाला तो कोई एक अलग प्रभु है, उसके ही हाथ हमारा सुख दुख है, तो इस बुद्धिके रहते हुये हम उस अज्ञान अधकारमेंसे नहीं निकल सकते जिससे कि हम सीधा मार्ग पा सके और ससार तट तक पहुँच सके। इन विकल्पोमे विभाव और कर्म जन्म मरण ये ही सारी परम्परायें चल रही हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रभु है स्वय है, परिपूर्ण सत्त्व लिए हुये हैं इस ही कारण अपना अपना उत्पाद व्यय ध्रौव्य रखते हैं ऐसे श्रद्धान बिना [विकल्प

दूर न होगे। हम अपने स्वभावमे मग्न न हो सकेंगे, और यह पुरुषार्थ हमारे उस अज्ञान अधकारमे चल ही नही सकता जहा हम अपने आपको दूसरेका किया हुआ मान रहे हो। अब हम क्या कर सकते हैं? फिर तो हाथ जोडकर कोई एक स्थापना करके प्रार्थना ही करते रहेंगे, हे प्रभु हमे सुख दो, हमारा दुख हरो आदि हम अपनेमे कोई पुरुषार्थ न कर सकेंगे। इससे अकर्तृत्वकी सिद्धि लेना कल्याणार्थी जीवको अत्यन्त आवश्यक हो गया है, और ईश्वर कर्तृत्वकी बात तो जाने दो, इन विभाव रागद्वेषादिकको भी यह मैं आत्मा नित्य करता हू ये सब मेरी ही करतूत है यह भी श्रद्धा रही तो अज्ञान है इनका मैं करने वाला नही मैं तो एक ज्ञानमात्र हू, अकर्ता हूँ इस श्रद्धाका होना कल्याणार्थीके लिए अनिवार्य है। और, साररूपमे इतनी ही बात ग्रहण करले कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, जानता हू इतना ही मात्र करने वाला हूँ जान रहा हूँ इतना ही मात्र जानने वाला हूँ। इससे घटा लीजिये कि चेतन भी अन्य चेतनकी प्रेरणा पाये बिना विशिष्ट परिणमन नहीं कर सकते। जैसे नोकरसे कहा कि तुम यह मशीन चलावो, अमुक काम करो। अब अचेतनमे ही क्यो यह बात लगाते, चेतनमें भी लगावो और चू कि महेश्वर भी चेतन है इसलिये वह भी किसी अन्यकी प्रेरणा पाये बिना काम नही करता। शायद यह कहो कहो कि जो स्वामी होता है वह अन्यके द्वारा अधिष्ठित न होकर भी प्रवृत्ति कर सकता है इसी कारण महेश्वरको प्रेरणा देने वाला दूसरा चेतन माननेकी जरूरत नही है। तो उत्तर देते हैं कि यही बात तो बिना जोते उत्पन्न हुये अकुर आदिक उपादानमे घटालो। ये भी बिना चेतनकी प्रेरणाके होते हैं। यदि यह कहो कि घट आदिक जो उपादान पदार्थ हैं वे बिना चेतनकी प्रेरणाके प्रवृत्ति नही कर सकते इसी तरह अकुर आदिक उपादानमें भी यही बात घटित है कि किसी चेतनकी प्रेरणा बिना यह आत्म लाभ नही कर सकता। यदि ऐसा कहोगे तो हम भी यह कह सकते हैं कि जैसे विशेष कर्म करने वाला कोई साधारण पुरुष स्वामीकी प्रेरणा बिना प्रवृत्ति नही करता तो महेश्वरमे भी किसी अन्यकी प्रेरणा हुये बिना प्रवृत्ति न होना चाहिए क्योकि जैसे तुमने प्रकट भिन्न प्रकारके काय वाले घटका उदाहरण दे करके अकुर आदिकका भी कर्ता मान लिया तो हम भी साधारणजनोको उदाहरण देकर महेश्वरको किसी चेतनके द्वारा प्रेरित कह बैठेंगे। अन्य चेतनकी प्रेरणा यदि महेश्वरको मिले तो, उसको अन्यकी चाहिये इस तरह अनवस्था दोष हो जायगा। अत यह अनुमान तुम्हारा युक्त नही है कि अचेतन पदार्थ चेतनकी प्रेरणा पाये बिना प्रवृत्ति नही कर सकते इस कारण समस्त विश्वका कर्ता कोई एक बुद्धिमान होना चाहिये यह बात सिद्ध नही होती।

कार्यकारणनियममे योग्यताकी प्रतिनियमकता—अब अचेतनकी भांति चेतनका भी प्रेरणा मिलने लगी तो अचेतनका नाम लेना ही व्यर्थ हो गया। अचेतनकी ही बात कहना भी घटित नही होता है यदि यह कहो कि चेतनमें और अचेतनमे

पक है। प्रत्येक चेतनको अदृष्टकी प्रेरणा मिलती है तब कार्य करता है। जीवके साथ कर्म लगा है उसकी प्रेरणा मिलती है। इस कारण उनमे नियम बन जाता है। तो इस तरह तो अचेतनमें योग्यताका नियम बना लो प्रत्येक अचेतन पदार्थ योग्यता वाला है तो उसमे कार्यका नियम बनेगा और योग्यता नहीं है तो कार्यका नियम नहीं बनता। और योग्यता तो सबको माननी पडेगी। यदि परिणमन कर रहे पदार्थमें योग्यता न मानो तो सब जगह सब समय कार्य उत्पन्न हो जाना चाहिये क्योंकि जगतकर्ता ईश्वर तो सर्वत्र सर्वथा तुम्हारा मौजूद है फिर वह सभी पदार्थोंको, सभी कार्योंको एक साथ क्यों नही कर देगा। तो चेतनमें अदृष्टको प्रतिनियामक तुम मानो तो यह भी मानना ही पडेगा कि परिणमन करने वाले अचेतन पदार्थमे योग्यताका नियम बना हुआ है और जब उन पदार्थोंमे योग्यताका नियम बन चुका तब निमित्त कारणका कोई प्रभुत्व महत्व नहीं रहता जैसे कि यहा पर ये सारे पदार्थ अपनी-अपनी योग्यता लिये हुये हैं और उनमे देश काल आदिक निमित्त पड रहे हैं, तो इससे कहीं देशकाल आदिक निमित्तोको स्वतत्र प्रभु नहीं कहा जा सकता इस प्रकार योग्यता रखकर परिणमन करने वाले पदार्थमे परिणमनमें आपके कहे अनुसार कोई बुद्धिमान भी निमित्त मान लिया जाय तो भी वह कर्ता नहीं माना जा सकता। एक निमित्त मात्र माना जा सकता है। निमित्तको कर्ता नही कहा जा सकता। कर्ता तो प्रत्येक पदार्थ स्वय ही अपने-अपने परिणमनके कहे जा सकते हैं। क्योंकि कर्ताका स्वरूप ही यह बताया कि स्वतत्र कर्ता। पदार्थोंके परिणमनमें स्वतत्रता परिणमने वाले पदार्थकी है, निमित्तकी स्वतत्रता नहीं है।

कर्तृत्वका कारण शक्ति ज्ञातृत्वसे सम्बन्धका अनियम — शकाकार अब यह बात कह रहा है कि चूंकि महेश्वर कर्ता है इस कारणसे पदार्थोंके कारकोकी शक्तिका भी ज्ञान है सो यह कहना भी ठीक नहीं है कि जो जो कर्ता हो वह उन पदार्थोंकी शक्तियोंका ज्ञाता होता ही है ऐसा कोई नियम नही है क्योंकि प्रयोक्ता अनेक तरहके पाते जाते हैं। कोई तो पदार्थोंका परिज्ञान न होनेपर भी प्रयोक्ता होते हैं जैसे सोते हुये मनुष्य मूर्छित मनुष्य शरीर आदिक अवयवोंके कर्ता हैं मगर उनको परिज्ञान नहीं है। अचेतन पदार्थमें किसी योग्यता निमित्तका सन्निधान होने पर पदार्थ परिणमन जाते हैं किन्तु वे अचेतन ज्ञाता नहीं है। सूर्यकी किरणें आते ही पदार्थ गरम हो जाते हैं पर सूर्यकी किरणोंको पदार्थोंकी शक्तिका क्या ज्ञान ? कोई प्रयोक्ता ऐसे होते हैं जिनको कारकोंकी शक्तिका ज्ञान नहीं है किन्तु कर्ता है। कोई ऐसे होते हैं कि कुछ कारकोंका परिज्ञान है तब वह कर्ता है। तो नियम नही बनता कि जो कर्ता होता है वह कारकोंकी शक्तिका परिज्ञान रखता है, दूसरी बात ये कुम्हार जुलाहा आदिक करते तो सब काम हैं किन्तु उन कार्योंके समस्त कारणोंका ज्ञान नहीं रहता। बतलाओ पुण्य पाप जो कि क्रियाके कारणभूत हैं उनका ज्ञान कौन रख रहा है ? धर्म अधर्मका ज्ञाता भी मीमासकोंके यहां केवल वेदको माना है। ईश्वर

भी धर्म अधर्मको छोडकर बाकी सर्व विश्वका ज्ञाता है ऐसा माननेमे उन्होने इस सिद्धान्तकी रक्षा की कि वेद ही सर्वोपरि प्रमाण है । ईश्वरसे भी ऊपर वेद है क्योंकि धर्म अधर्मका ज्ञाता वेद है । तो कुम्हार जुलाहाकी तो बात क्या कहे – ईश्वर भी धर्म अधर्मका ज्ञाता नही । और ये कुम्भकार आदिक यदि पाप पुण्यके ज्ञाता हो जायें तो फिर इनके किसी नियत कार्यमे इच्छाका घात न होना चाहिये । यदि हम आप भविष्यके धर्म अधर्मके ज्ञाता हो गये तो समझलो कि यह कार्य न होगा इच्छाका घात क्यो होगा ? इच्छाका तो तब अवसर है जब पता नहीं कि यह कार्य किस तरह होगा । सर्वज्ञकी तरह यदि हमें इन सब बातोका सही पता हो कि यह काम इस तरह होनेको है तो उसके खिलाफ हम इच्छा क्यो करेंगे ? इच्छा हमारे तब जगती है जब कि हम असर्वज्ञ हैं और पदार्थोंके परिणमनका हमे ज्ञान नहीं है । किन्तु जो कर्ता है वह समस्त कारण शक्तियोका ज्ञाता होता ही है यो नियम बनानेपर तो समस्त जीव अतीन्द्रिय पदार्थोंके ज्ञाता हो बैठे । कोई भी कार्य ऐसा नही है जिसकी अदृष्टका उपयोग नही है । हम चलते हैं, बोलते हैं, खाते हैं, सुख दुख भोगते हैं, सबमे अदृष्ट काम है तो हमारे कार्योंका कारण अदृष्ट है और हमे उन कारणोका ज्ञान नही है तो कारणका पदार्थका ज्ञान हुये बिना भी हम कर्ता बन गये कि नही तब यह नियम नही बनता कि ईश्वर सबका कर्ता है इसलिये ज्ञाता होना चाहिये । ज्ञाता हुये बिना भी कर्ता हो सकता है ।

सशरीरताके बिना प्रयोक्तृत्वका अभाव – खैर किसी तरह मान भी लिया जाय कि जो कर्ता है, प्रयोक्ता है उसका पदार्थोंके परिज्ञानके साथ अविनाभाव है किन्तु जो शरीररहित ईश्वर है उसमे तो प्रयोक्तापन बन ही नही सकता । अमूर्त हैं शरीर नही है तो प्रयोक्ता कैसे बन सकेगा ? यहाँ हम आप जितने मनुष्य हैं ये प्रयोक्ता बन रहे हैं । तो शरीरसहित हैं तब ना । शरीर रहित कोई एक ईश्वर कैसे उसके कार्योंका प्रयोग कर सकता है ? कार्य व हेतु देकर शकाकारने ईश्वरको कर्ता कहा और उसमें दृष्टान्त दिया कुम्हारका । जैसे घट कार्यका करने वाला कुम्हार है इसी प्रकार समस्त विश्वका करने वाला ईश्वर है । लेकिन दृष्टान्तमें जो कहा गया कुम्हार, वह तो असर्वज्ञ है, कृत्रिम ज्ञान वाला है । तो कर्तापना ऐसे पुरुषोंके साथ ही रह सकता है जो अनीश्वर हो, असर्वज्ञ हो, कृत्रिम ज्ञान वाला हो । तो जब दृष्टान्त का कार्यपना एक अनीश्वर, असर्वज्ञ कृत्रिम ज्ञान वालेके साथ व्याप्त है तो सारे काम ऐसेके ही साथ व्याप्त होगे जो अनीश्वर हो असर्वज्ञ हो, कृत्रिम ज्ञान वाला हो । तब तुम्हारा जो अनुमान है उसमे हेतु विशिष्ट विरुद्ध हो गया । कार्यत्व हेतु देकर यहां सर्वज्ञ ईश्वरको कर्ता सिद्ध करना चाह रहे थे, मगर उसके द्वारा असर्वज्ञत्व ही सिद्ध होता है ।

कार्यत्वहेतुसे सामान्यतया बुद्धिमन्निमित्तकताकी सिद्धिका पुनः प्रयास

अब शंकाकार कह रहा है कि, हम तो कार्यत्व हेतु देकर एक सामान्यरूपसे किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है यह सिद्ध कर रहे हैं। हम यह नहीं सिद्ध कर रहे हैं कि अनीश्वर असर्वज्ञ ज्ञान वालोंके द्वारा बनाया गया है। यदि हेतु सामान्य देकर विशेष विरुद्ध साध्यको सिद्ध करनेका हमे दोष दोगे तो फिर कोई भी अनुमान नहीं बन सकता है। जब अग्नि सिद्ध करनेके लिये कोई धुवेंको हेतु देगा तो वहां हम यह कह बैठेंगे कि रसोईघरमें जिस तृणकी अग्नि जल रही है उसी तृणका धुवा है अन्य का नहीं। वहां भी विशेष विरुद्धताका दोष आयगा। शंकाकार कह रहा है कि कार्यत्व हेतुसे कुम्हारको असर्वज्ञ देखकर यदि असर्वज्ञके द्वारा सब किया जाता है एसा सिद्ध करोगे तो अनुमान कोई नही बन सकता अनुमानमें जो भी हेतु दिया जायगा तो हेतुका दृष्टान्तमें आये हुये साध्यके साथ व्याप्ति जोड़ दोगे तो पीछे उस साध्यको सिद्ध न कर सकोगे।

कार्यत्व हेतुसे सामान्यतया कारण निमित्तकताकी ही सिद्धि -उक्त शंकाके समाधानमें आचार्य कहते हैं कि यह भी कथन मात्र कथन है, असली रूप नहीं कार्यमात्र हेतुको कारण मात्रका अनुमान करनेपर तो विशेष विरुद्धता नहीं आती क्योंकि कार्यमात्रके साथ कारणमात्रका व्याप्ति है। पर कार्यत्वहेतुका बुद्धिमान कारण के साथ जो तुमने सम्बन्ध जोड़ा है उसमें व्याप्ति नहीं रही। जो जो कार्य होते हैं वे किसी न किसी कारण पूर्वक होते है ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नही है। यहाँ भी जितने कार्य हो रहे हैं तृण जल रहे हैं घड़ी चल रही है आदिक, वे सब निमित्त कारण पूर्वक होते हैं। तो कार्यमात्र हेतुसे कारणमात्रका अनुमान बनाया उसमे कोई विवाद नही है पर तुम तो प्रभुको कारण बनाना चाहते हो यह बात अयुक्त है क्योंकि कार्यमात्र हेतुका बुद्धिमान कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक है। यहां कौनसा कार्य ऐसा है जो किसी भी पर कारणके बिना सम्भव होता हो ? तो कार्य हेतु देकर कारणमात्रको तो सिद्ध कर लोगे पर बुद्धिमान कारणका अनुमान नहीं बन सकता क्योंकि कर्तृत्वके प्रभुकी कारणताके साथ अव्याप्ति है। अगर फिर भी तुम व्याप्ति मानने लगोगे कि उस कार्यत्वहेतुके साथ किसी बुद्धिमान कारणका सम्बन्ध है तो वह बुद्धिमान कारण अनीश्वर असर्वज्ञ सशरीरत्व सहित करके धर्मी बन सकेगा क्योंकि अनीश्वर असर्वज्ञ कुम्हार आदिकके द्वारा ही घट बन सकता है। इसी प्रकार जो जो भी कार्य हैं उनकी यदि चेतन कारणताके साथ व्याप्ति मानोगे भी तो अनीश्वर और असर्वज्ञ चेतनके साथ बन सकेगी, ईश्वर सर्वज्ञके साथ न बन सकेगी।

कारणके अनिर्णयसे कर्तृत्ववादकी उत्पत्ति—भैया ! किसी भी पुरुषको स्वप्नमें भी यह प्रतीति नहीं होती कि पर्वत आदिक कार्यका करने वाला कोई एक ईश्वर है। कोई एक रूढि होगयी और एक आदत बन गयी कि जब हम किसी कार्य कारणका विश्लेषण करनेकी योग्यता नहीं रखते, उसके साधनभूत कार्योंके परिज्ञान

की योग्यता नही रखते । तो ईश्वर करने वाला है, ऐसा बोलनेकी आदत बन गई है और चूंकि बनती आई बाप दादो से सो इनका भी संस्कार बन गया । यह बात तो इनकी समझमे आई नही कि सभी पदार्थ हैं, वे निरन्तर परिणमते है, परिणमे बिना उनकी सत्ता नही बन सकती है, अन्य निमित्त मात्र है, ऐसी बुद्धि तो जगी नही, कार्यरना जरूर दिख रहा है कि ये सब कुछ अद्भुत अद्भुत कार्य हो रहे हैं तो उन कार्योका कारण जब सिद्ध नही हो पाता तो कोई ईश्वर कर्ता है इस प्रकारकी मान्यताकी रूढि चल पडी है ।

आगमसे कर्तृत्ववादका शङ्का-समाधान —अब शङ्काकार यह कह रहा है कि बड बडे आगम वाक्योको भी देखो—एक ईश्वरको कर्ता मान रहे हैं आगम वाक्य । जैन आगममे कहा है कि वह ईश्वर विश्वत चक्षु वाला है विश्वत मुखवाला है विश्वत बाहु वाला है तो इस तरह कर्तृत्वकी ही तो सिद्धि होती है । इसके समाधानमे कहा जा रहा है कि यो आगमकी दुहाई देना ठीक नही है, क्योंकि जब आगममे प्रमाणता सिद्ध हो तो आगममे लिखी हुई बात सत्य है यह माना जा सकेगा यदि प्रमाण न हो आगम और फिर भी उसे मानलो तो इसमे अव्यवस्था है । हमारी तुम क्यो न मान लो । चाहे जो कुछ बक जायें उसे क्यो न मान लो । अप्रमाणिक वचन मानने योग्य नही होते । पहिले यह बतावो कि तुम्हारे आगममे प्रमाणता है कि नही ? तो पहिले तो आगमको प्रमाण सिद्ध करो । जब आगममे प्रमाणताकी सिद्धि होगी तो महेश्वरकी सिद्धि होगी और आगमकी प्रमाणता जब सिद्ध हो तब महेश्वर की सिद्धि हो । महेश्वरने इस ज्ञानको बनाया है इस कारण आगम प्रमाण है तो आगमकी प्रमाणतासे तुम महेश्वरकी सिद्धि कर रहे हो और महेश्वरकी सिद्धि हो तब जब आगममें प्रमाणता आ सकता हो । यदि यह कहो कि उस आगमको अन्य ईश्वर बनाया और इन प्रकृत ईश्वरकी सिद्धि हम आगमसे कर रहे तो ऐसा कहनेमें अनवस्था दोष है । यदि कहो कि उस ही ईश्वरने आगम बनाया है और उसकी ही सिद्धि हो रही है तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष होगा ।

स्याद्वादमें आगम प्रामाण्य और सर्वज्ञत्वप्रसिद्धिका अविरोध— शङ्काकार स्याद्वादियोंके प्रति भी यह कह सकते हैं कि अरहन्तको सर्वज्ञ मानते हो तो आगमकी दोहाई देकर ही तो मानते हो । आगममे लिखा है केवल ज्ञानका यह विषय है सवज्ञ है और सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत आगम है इसलिए तुम आगमको यो प्रमाण मानते हो, बात तो पूरीकी पूरी इतरेतराश्रय व अनवस्था दोषकी बन ही जाती है । यहां भी यह शङ्का की जा सकती है । जब आगममे प्रमाणता सिद्ध हो तब अरहन्त सर्वज्ञकी सिद्धि हो और जब अरहन्त सर्वज्ञकी सिद्धि हो तो महेश्वरकी सिद्धि हो । लेकिन यह दोष यो नही कि यह आगम नित्य नहीं है । स्याद्वादियोका आगम किसी के द्वारा रचा न गया हो सो तो नही है । शङ्काकार वेदको अपौरुषेय मानते हैं पर

यह आगम पूर्व तीर्थंङ्करोंसे प्रणीत हुआ है उससे पहिले भी आगम था जिसके आधार से तीर्थंङ्करोंने कल्याण किया है, अङ्ग पूर्वोंका ज्ञान किया है । उसके प्रणेता और तीर्थंङ्कर थे, तो अनादि परम्परासे तीर्थंङ्कर हैं और अनादि परम्परासे आगम चले आये हैं, ये अपौरुषेय नहीं हैं इसलिये दोष नहीं है । और जब आगम बिना उसका आश्रय करके अनेक भव्योंने सर्वज्ञत्व प्राप्त किया । पर खुद ही एक ईश्वर है और उस हीके द्वारा सब कुछ बनाया गया हो और सब कुछमें वह आगम भी शामिल है । उसने यदि समग्र पदार्थों की रचना की है तो आगमकी भी रचना की है और उस ही आगमसे ईश्वरकी सिद्धि कर रहे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है ।

ईश्वर और अर्थपरिणमनके प्रसङ्गकी विविक्तता - स्पष्ट बात तो इतनी है कि ईश्वरका जो प्रसङ्ग है वह इतना है कि प्रभु अनन्त ज्ञान वाला है और अनन्त आनन्दमय है, अपने स्वरूपका शुद्ध भोक्ता है और विश्वका जो प्रसङ्ग है इन समस्त पदार्थोंका जो प्रकरण है वह इतनेमें आया है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील हैं, वे अपने अपने उपादान रखते हैं, उनमें उनकी कुछ समयकी अपनी योग्यता होती है । उस योग्यताको विकसित करनेमें ये पदार्थ अन्यको निमित्तमात्र पाकर अपनी योग्यताके द्वारा अपना परिणमन विकसित कर लेते हैं । यहां जो प्रकाश आ रहा है जिसे सूर्यका प्रकाश कहते हैं वस्तुतः सूर्यका प्रकाश नहीं है किन्तु जो पदार्थ प्रकाशित है उन पदार्थोंका वह प्रकाश है । और तभी यह नियम बनाया जा सकेगा कि देखो सूर्य तो सबके लिये एक समान है पर कोई दर्पण बहुत अधिक चमकदार हो जाता कोई काष्ठ थोडा ही चमकदार होता, कोई अधिक । यदि सूर्यका ही एकसा प्रकाश है तो सभी पदार्थ एकसे प्रकाशित होने चाहियें । पदार्थोंकी परिणमनमें तो उपादान निमित्तका निर्णय है और ईश्वरके प्रसङ्गमें विशुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूपका निर्णय है : जुदी-जुदी इन दो बातोंका जोड करना और विश्वका कर्ता किसी एकको कह नामे लाना यह युक्ति मे उतरने वाली बात नही है ।

कर्तृत्ववादके वचनका उपहार—अब ईश्वर-कर्तृत्वको सिद्ध करनेमें आधुनिक महर्षियोंके प्रमाण देकर शङ्काकार कह रहा है कि महर्षियोंने भी यह कहा है कि इस लोकमें केवल दो ही तरहके जीव हैं—एक विनाशीक और एक अविनाशी । तो सारा ससार जितना जीवलोक है स्थावरसे लेकर मनुष्य पर्यन्त ये सब विनाशीक जीव हैं और केवल एक ही परम पुरुष जो तीन लोकमें व्याप्त करके फैला हुआ है और इस जगतको रचता है वह है एक अविनाशी आत्मा । इतनी बात सुनते हुए कोई शङ्काकारके विरोधी ऐसा कह रहे हैं कि ये तो स्वरूप प्रतिपादक वचन हैं । शङ्काकार विरोधीका भाव यह है कि शङ्काकारने माना है अपौरुषेय वाक्योंको प्रमाण और वे वाक्य हैं केवल प्रेरक वाक्य । स्वरूप अर्थप्रतिपादक होनेके नाते उन पुरातन वाक्यों को प्रमाण नहीं माना गया किन्तु वे स्वयं प्रमाण हैं । अतएव जो लिखा है वह सब

रूप है और करना योग्य है तो करनेका प्रतिपादन करते हैं इसीलिये उनकी प्रमाणता है ऐसा भाव रखकर शङ्काकार विरोधी कह रहा है कि ये स्वरूपके प्रतिपादक है। जीवका क्या स्वरूप है, परमात्माका क्या स्वरूप है ? इसे बता रहे हैं ये सतोंके वचन। तो स्वरूपप्रतिपादक वचनमे प्रमाणता नही मानी शङ्काकार ने किंतु जो विधिके अङ्ग —ऐसा करना चाहिये, यज्ञ करना चाहिये, होमना चाहिये। यों कर्तव्यका विधान जिनमे हो वह प्रमाण है। शङ्काकार कहता है कि यह बात नही है। प्रमाण वह हुआ करता है जो प्रमाणका जनक हो ! जिस प्रकारका पदार्थ है उसे प्रकारके अनुभवको जो उत्पन्न करे उसे प्रमाण कहते हैं। तो जिस भी ज्ञानमे प्रमाणता पाई जाय अर्थात् अथके अनुकूल अनुभूति पाई जाय वह प्रमाण है। केवल प्रवृत्तिका जो जनक है वही प्रमाण हो, ऐसा नही है। वह भी प्रमाण है और जो प्रमाणका जनक हो वह भी प्रमाण है। सो प्रमाणका जनकपना उन वचनोंमे है ही। तथा जहा प्रवृत्ति–निवृत्तिकी बात कहा गई हैं उसमे भी तो यह सुखका साधन है, यह दुःखका साधन हैं, ऐसा निश्चय होनेपर ही तो प्रमाणपना आता है। फिर दुबारा यह शङ्काकार विरोधी कह रहा है तब तो यही हुआ ना कि जो विधिका अङ्ग है, जो पुरातन उपदेशीय वचन हैं वे ही प्रमाण हुए। स्वरूप अर्थका ही जो प्रतिपादक है सो प्रमाण नही ! उत्तरमे शङ्काकार कहता है कि इस प्रकार ये भी तो विधिके अङ्ग हो गये। जितने भी स्वरूप अर्थके प्रतिपादक वचन है वे यथार्थ अर्थको बता देनेके कारण विधिके लिये ही प्रेरणा करते हैं। तो यहा परमात्माका ध्यान करो, यह नही कहा है फिर भी इसका भाव यही रहा है और जो सीधा विधिको बताते, जो सीधा कर्तव्य दिखाते हैं तो ये भी स्वरूप अर्थके प्रतिपादक होकर ही विधि बताते हैं। जैसे कहीं वचन आये कि जो स्वर्गकी इच्छा करता है वह यज्ञ करे, तो यद्यपि विधिरूप कहा है किन्तु स्वरूप अर्थ भी तो पडा हुआ है कि ऐसा कार्य करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है आदिक। तो स्वरूप अर्थका प्रतिपादक होनेसे ही विधिका अङ्ग बनता है। जैसे स्तुति का किसी ने तो स्तुतिसे जो कुछ प्रवृत्ति बनती तो उस स्वरूपका अर्थ जब समझा तब प्रकृति बनी और निन्दा सुनकर कोई निवृत्ति होती है या निन्दासे कोई हटता है तो स्वरूप अर्थका प्रतिपादक है वह वचन ऐसा जानकर ही तो हटता है। यदि स्वरूप अर्थके ज्ञानके बिना हमारी प्रवृत्ति निवृत्ति होने लगेगी। कह तो रहे हो किसी कार्यमे लगनेकी बात और चू कि वचन स्वरूप अर्थके प्रतिपादक हैं नही तो उस ही से निवृत्ति कह लो। कह तो रहे हों पापसे हटनेकी बात लेकिन स्वरूप अर्थका प्रतिपादक मान नही तो पापोंमें लग बैठे। इससे जो विधि वाक्य हैं प्रवृत्तिको कहने वाले विधि वचन है वे अपने अर्थका प्रतिपादन करनेके माध्यमसे ही जीवको कामेंमें प्रेरणा देने वाले होते हैं। इसी तरह जो केवल शब्दार्थको ही बतावें वचन, उनमे भी विधि-अगता होती है अर्थात् स्वरूपका ही केवल कोई वचन कहो— और उसमे करनेकी बात कुछ न कही जाय तो भी उसमें करनेकी बात अन्तर्निहित

होती है। जैसे कोई महर्षियोंके वचन हों कि जल पवित्र होता है और अमेध्य अप वित्र होता है। तो इसको सुनकर कोई पवित्रमे लूटने लगे तो इसमे ऐसी एक विडम्बना बन जायगी। इसलिये चाहे कोई स्वरूपको बताने वाला वचन हो अथवा कर्तव्यमे लगाने वाला वचन हो वह सब प्रमाण हैं।

युक्तियोका निर्विवाद—शकाकारकी उक्त शकाका समाधान तो केवल इतने ही शब्दोसे हो गया था कि आगममे प्रमाणता किस तरह आती है ? यह पूछा गया। क्या ईश्वर प्रणीत होनेसे आगम प्रमाण है या आगममें यह बात लिखी हुई है ईश्वरके सम्बन्धमे कि वह कर्ता है आदिक सो आगममे लिखा होनेसे वह प्रमाण है ? दोनो बातें एक परस्पर आश्रित हो गईं। जब पहिले यह सिद्ध करलें कि ईश्वरके द्वारा प्रणीत है तब तो आगमकी दुहाई देकर ईश्वरके स्वरूप अथवा कर्तृत्वकी बात कही जा सकती है। और, जब यह सिद्ध हो ले कि महेश्वरने यह आगम बनाया है तो उनमे प्रमाणता आये। अतएव सब बातें युक्तियोके सहारे रह गईं। युक्तियोका स्थान आगम से भी ऊँचा है एक निर्णय करनेके प्रसगमे। आगमको तो वही मान सकता है जो श्रद्धालु हो किन्तु जो उस मतव्यको नही मानता, कोई अन्य विरुद्ध धर्मका मानने वाला हो उसे आगमकी दुहाई देकर नहीं मनाया जा सकता है। आप युक्तियां बताओ और युक्तियां हैं अनुमानरूप, युक्तियोंसे ईश्वर कर्तृत्व सिद्ध नही होता है तो अनुमानसे भी नहीं सिद्ध हुआ।

अविनाशी कारण परमात्म तत्त्वका वर्णन—एक ही आत्मामे अथवा समस्त आत्मावोमे जो एक ज्ञान स्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपको यदि लक्ष्यमे लेकर कहा जाय कि वह एक है और तीन लोकको व्याप करके बना हुआ है अविनाशी है तो उसका अर्थ यह होता है कि आत्माका जो स्वरूप है वह है अविनाशी और असीम है। इतनी भी सीमा लेना ठीक नही कि वह तीनों लोकमे फैल करके व्याप रहा है। अर वह तो इतना व्यापक है कि सीमाका नाम नहीं लिया जा सकता है। जब कोई साधक ऐसे आत्मस्वरूपके अनुभवमे हो तो साधकको पूछे अथवा पूछने वाला कौन ? और पूछा भी कैसे जा सकता है ? वह साधक ही यह अनुभव करता है कि वह परमात्मतत्त्व कारण स्वरूप वही मात्र है, दूसरा कुछ है ही नही और उसके उपयोग मे वह ही असीमरूपसे है, उसके अनुभवमें तीन लोककी सीमा नही कि यह स्वरूप तीन लोकमें फैल करके है। स्वरूप तो स्वरूप है। उसमे लोक और अलोकका कोई विभाग नहीं। उस स्वरूपके विकासमें जिसे केवल ज्ञान कहते हैं। जैसे केवलज्ञान असीम है, वह लोकमे व्यापकर रहता है इतनी ही सीमा नही किन्तु लोकालोकव्यापी केवलज्ञान है। इस प्रकारके कथनमे एक ज्ञानस्वरूपके विकासको बतानेके लिए जो कहा गया है वह भी एक सीमा रखने वाला हो गया। असीम अलोकमे व्यापकर रहता है। असीम अलोकको जानता है ऐसा कहनेमें एक सीमा आ गयी पर वह

ज्ञायकस्वरूप परमात्मतत्त्व लोकालोक व्यापक है अथवा केवल आत्माके प्रदेशोमे ही व्यापक है जो साधक पुरुप है उसका आत्मा जितने प्रदेशोमे फैला हुआ है उतनेमे ही व्यापक है इस किसी भी सीमाको स्वीकार नही करता ज्ञायक स्वरूप। वह तो केवल एक अस्तित्त्वके अनुभव भरका सौम्य रखता है। वह आत्मतत्त्व तो है अविनाशी और उस आत्माके जो विकास हैं जो कि त्रस स्थावरके रूपमे प्रकट होता है अथवा शुद्ध अशुद्ध दशामे प्रकट होते हैं वे सब पर्याय होनेके कारण विनाशीक तत्त्व हैं, यह बात तो मानी जा सकती है किन्तु आत्मावोमे ही ऐसा भेद डालना कि हमारा आत्मा तो विनाशीक है और आत्मा कोई अविनाशी है यह बात युक्त नही होती क्योकि द्रव्यके नातेसे जो भी द्रव्य है, जो भी तत्व है जो भी वस्तु है, जो भी है वह है होनेके कारण अविनाशी है और चूँकि समस्त है वाले पदार्थोंमे अस्तित्ववान वस्तुवोमे निरन्तर परिणमन शीलता बसी हुई है परिणमनशीलताके बिना पदार्थका अस्तित्त्व नही रहता अत स्वभाव दशाको प्राप्त पदार्थ सूक्ष्म दृष्टिसे निरन्तर समान समान पर्यायोसे उत्पन्न होकर रहा करते हैं। तथा, जो विपय पदार्थ है, अशुद्ध पदार्थ हैं वे परिवर्तन वाले पर्यायों रूप परिणमन करके विनाशीक रहा करते हैं, हर कोई एक आत्मा ऐसा हो कि समस्त जगतका अधिष्ठान हो, सबको रचता हो, सर्वव्यापी हो शरीर रहित हो यह बात सम्भव नही है।

करुणावश सृष्टि करनेका प्रस्ताव—अब इस प्रसगमे शकाकार कह रहा है कि ईश्वरकी सिद्धिके सम्बन्धमे अधिक बात करना एक यह श्रद्धासे दूर रखने वाली बात है। इस सम्बन्धमे ज्यादह तर्क उठाना एक भक्तिके विरुद्ध बात है। चूकि सभी लोग प्रभुकी भक्तिमे रत रहा करते हैं प्रत्येक धर्मानुयायी प्रभुभक्तिमे किसी न किसी रूपमे रहते हैं। उस प्रभुके स्वरूपके सम्बन्धमे ज्यादह खीचातानीकी बात न छेडकर एक स्थूल रूपसे निरखना चाहिये प्रभुभजन बिना इस जीवलोकको कुछ भी शरण नही है। उसकी महिमा गाते रहना चाहिये। प्रभुने हम लोगोको दयासे एक मनुष्य भव दिया है और अनेक सुविधायें दी है तो प्रभु जितना जो कुछ करता है वह सब करूणावश करता है। शरीरधारियोकी उत्पत्ति भगवान करुणावश करता है। इस करुणाकी बात सुनकर यह न सोचना चाहिये कि तब तो उस प्रभुको सब प्राणियोंके सुखके साधन ही जुटाने थे सुख साधनोमे ही रत प्राणियोका सृजन करना था। यह शका करना योग्य नहीं क्योकि प्रभु जीवके अदृष्टको देखकर उसके ही अनुकूल उनके सुख दु खका कर्ता होता है। कोई पुरुप यदि पाप करे और प्रभु उस पापका फल न दे तो इसका अर्थ है कि प्रभुने उसपर कृपा नही की। क्योकि वह फिर अपना उद्धार न कर सका। इस कारण जो प्राणी जिस प्रकारका कार्य करता है उस प्राणी के साथ उस ही प्रकारका भाग्य रचता है ईश्वर और फिर उसे उस ही भाग्यके अनुसार उसको सुख अथवा दुखका फल देता है क्योकि प्राणी जो कुछ कर्तव्य करते हैं और उसके अनुसार जो अदृष्ट बनता है, भाग्य बनाया जाता है वह भाग्य फलके

भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकता इस कारणसे यह प्रभु करुणासे ही जीवोका भाग्य रचता है, जीवोको भाग्यका फल देता है।

करुणावश विडम्बित सृष्टिकी अयुक्तता - शकाकारका उक्त कथन युक्ति वादियोके सभास्थलमें जरा भी टिक सकने वाला नहीं है। जो प्रभु जीवोका भाग्य भी रचता है, जीवोके भाग्यका फल भी देता है इतना लोकोत्तर समर्थ होकर क्यो वह सुखको उत्पन्न करने वाला शरीर ही रचे, दुखका उत्पन्न करने वाला न रचे ऐसा नहीं कर सकता। जो दयावान जीव हैं वे किसी जीवका भला न हो बिगाड ही हो ऐसा तो नहीं कर सकते। यह भी बात केवल टालनेकी है कि प्राणी जैसा धर्म अधर्म अधर्म करते हैं उसके अनुरूप उनके सहयोगसे ईश्वर सुख दुख आदिकका करने वाला है क्योकि फल भोगे बिना उसका क्षय नहीं होता। अदृष्ट बनाना और अदृष्टका फल देना यह भी ईश्वरकी करुणामें सामिल हैं। अरे भला बतलावो कि अदृष्टको बनाना और अदृष्टको मिटाना ईश्वरके आधीन है कि नहीं? अगर कहोगे कि ईश्वरके आधीन है तब वह ईश्वर सबका भला अदृष्ट बनाये और भला फल दिलाये यदि कहो कि वह अदृष्ट ईश्वरके आधीन नहीं है तो मतलब यह निकला कि अदृष्ट कार्य तो है, किन्तु ईश्वरके आधीन नहीं तो इसका अर्थ यह हुआ कि अदृष्ट नामक कार्य ईश्वरके द्वारा किया गया। तो तुम्हारे कार्यत्व हेतुका यह अनेकान्तिक दोष हो गया यदि कहो कि अदृष्ट बनानेमे तो ईश्वर समर्थ नहीं है, अदृष्ट बनाना तो प्राणियोके हाथ बात है तो अदृष्ट विनाशमे भी ईश्वरकी बात मत लावो क्योकि ये जगतके प्राणी जैसा कर्म करते हैं वैसा उनको अदृष्ट भाग्य पुण्य पाप प्राप्त होता है और वैसा ही वे फल भोग लेते हैं। ईश्वरका न तो अदृष्ट बनानेमें व्यापार रहा न फल देनेमे व्यापार रहा। इससे न प्रभु प्राणियोके अदृष्ट मिटानेका कर्ता है, अर्थात् न पुण्य पाप करानेका कर्ता है और न पुण्य पापका फल सुख दुख दिलानेका कर्ता है। वह तो अलग हो रहा। केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूपको अनुभवने वाला हो रहा। उसका कर्तृत्वसे अब सम्बन्ध नहीं रहा।

परके करने मिटानेकी क्रियाकी व्यर्थिकी कल्पना—अब भाग्य निर्माण के सम्बन्धमे दूसरी बात सुनो।—ईश्वर पहिले तो अदृष्ट बनाये पुण्य पापकी रचना करे तो जिसका विनाश करनेकी नौबत आयी है उसके उत्पन्न करनेका प्रयास ही क्यो इस ईश्वरने किया? कोई भी यह न पसंद करेगा कि बिना प्रयोजन गड्ढा खादे और फिर उसको भरे। अथवा पहिले अपने शरीरमे कीचड लगावे फिर उसे धावे और फिर उसमे कीचड लगावे। अन्यथा एक ऐसी हसीकी बात होगी कि एक अपवित्र गदी चीजका पिण्ड है उसे धावे और फेके। उसका धोना ही व्यर्थ है फिर उसका फेंकना क्या? इसी प्रकार जीवके पुण्य पापको पहिले ईश्वर बनाये और फिर उनका नाश करे इससे तो भला यह है कि करने बनानेके पचडेमे ही न रहे। अपने

स्वरूपकी भक्तिमे रहे। कोई कार्य करना यह तो अपने स्वरूपकी अनुभूतिके विरुद्ध बात है। अपने स्वरूपकी भक्तिमे तो किसी भी पर पदार्थके करने करानेका विकल्प भी न होना चाहिये, करनेकी बात तो दूर रही। अन्तस्तत्वके साधकने भी यह अनुभव किया कि किसी भी परद्रव्यसे स्नेह रखना यह तो अपने आत्मकल्याणके अवसरको व्यर्थमे खोनेकी बात है। वह साधक पुरुष अपने स्वरूपमे दूर रहनेपर खेद मानता है और वह किसी भी समय विकल्पोको करना नही चाहता, फिर जो साधक उन क्रिया करते हैं उनके यह कैसे माना जा सकता कि जगतके जीवोका प्रत्येक पदार्थका वह रचने वाला है, ऐसा किसी भी ज्ञान पिण्डको स्वरूप नही माना जा सकता है। ईश्वर वस्तुत किन तत्त्वोसे रचा हुआ है, ईश्वरका स्वरूप परमार्थसे है क्या ? होगा ना कोई ज्ञान ज्योति। ज्ञान मात्र कोई ईश्वर है। यहाँ भी देखो— हम आप एक ज्ञानमात्र स्वरूप रखते हैं। ईश्वर क्या ज्ञानमात्र स्वरूप वाला पदार्थ परमात्मा है, उसमे कौनसी ऐसी गुंजायश है जिससे वह चेतन अचेतन पदार्थोंका रचने वाला माना जाय। ज्ञानमात्र है वह और वह क्रिया भी कर सकेगा तो एक जानन की। और, जो कुछ वह भोग सकेगा एक जाननके भावको ही भोग सकेगा। तो जो जाननेके सिवाय कुछ कर नही सकता जाननके सिवाय कुछ भोग नही सकता ऐसा पदार्थ इस मूर्त अमूर्त पदार्थको रच दे ऐसी कहा गुंजाइश है ? सच तो यह है कि प्रथम तो ईश्वरका स्वरूप ही ग्रहण करिए। ईश्वरको जगतका कर्ता समझना और अपनी कल्पनावोके अनुसार जगतके फन्देमे डालना यह तो कोई भली बात नही। कोई एक व्यक्ति अपनेको परिवारका पोषण करने वाला माने तो उनके ही विकल्पो मे पडकर अपना जीवन समाप्त कर देता है फिर जो अपने स्वरूपसे दूर इस सकल चराचर जगतका जनक हो वह ईश्वर अपने आपको कितने फंदेमे डाल देने वाला होगा ?

प्रभुकी ज्ञातृत्वस्वरूपसे उपासना न करके कर्तृत्वरूपमे सिद्धिका अभाव भैया ! ईश्वरका स्वरूप तो उपासनीय है, वह मुझे बनाता है इस डरसे कोई ईश्वरकी उपासना करे तो उसने ईश्वरके सही स्वरूपको नही पहचाना जैसे कोई पुरुष अपने स्वार्थके कारण कि कही मुझे हानि न पहुँचा दे, यो सोचकर किसी धनिक की सेवा करे तो जैसे उसकी सेवा एक भक्ति नही कही जा सकती इसी प्रकार ईश्वर मुझे कही अशुभ योनियोमे न उत्पन्न करदे अथवा अनिष्ट साधन न जुटादे, इस कारण मैं ईश्वर की भक्ति करूँ ऐसा भाव रखकर प्रभुभक्ति करनेमे न तो उस भक्तिमे धर्म कमा पाया, न पुण्यकी प्राप्ति की, न मोक्षका मार्ग निरख पाया, और मनमे को व्याकुल ही बनाया। तो जैसे समारके प्राणी अपने सुखकी अभिलाषा से यत्र तत्र रागी द्वेषी जीवोका शरण ग्रहण करते हैं और अपना जीवन नष्ट कर देते हैं इसी प्रकार यहा भी लोगोने एक सराग व्यक्त ईश्वरकी शरण मानकर कल्पना करके अपना जीवन खो दिया, यो समझना चाहिये। हम तो एक विशुद्ध ज्ञानपुञ्ज

है। केवल ज्ञान ज्ञानस्वरूपमात्र में ही उपासना करें ईश्वरकी तो उससे पुण्य भी होता है, मुक्तिका मार्ग भी मिलता है, स्वानुभूतिकी दशा बनती है और कल्याण भी होता है पर कर्तारूप समझनेपर इस जीवके हाथ कुछ भी नहीं आता। इसमें वह हमें बनाता है हमारे पाप पुण्य रखता है उनका फल देता है इस बुद्धिमें कुछ भी सिद्धि नहीं है।

लोककी पदार्थसमवायता – यह समस्त जगत ६ प्रकारके द्रव्योंका समूह है, जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें जीव जातिमें अनन्त जीव हैं, जिनका कोई अन्त हो न आ सकेगा। इन अक्षयानन्त जीवोंमें अनन्ते जीव मुक्त हो गये हैं फिर भी ससारी अक्षयानन्त हैं और पुद्गल, द्रव्य उन जीव द्रव्योंसे भी अनन्त गुणे हैं। एक जीवपदार्थके साथ जैसे यहाँ ससारमें किसी को भी ले लो एक पुदके जीवको ले लो। हमारे साथ अनन्त तो शरीरके परमाणु बंधे हैं। जो शरीर यह दिख रहा है यह एक पदार्थ नहीं है किन्तु अनन्त परमाणुवोंका पिण्ड है। तो मेरे एक जीवके साथ अनन्त तो शरीर वर्गणाके परमाणु लगे हुए हैं और जितने परमाणु शरीरके हैं उनसे अनन्तगुणे परमाणु तैजस शरीरके हैं। और जितने परमाणु तैजस शरीरमें हैं उनसे अनन्त गुणे परमाणु कार्माण शरीरमें हैं। जो कर्म मेरे साथ बंधे हुए हैं वे कर्म परमाणु कितने हैं? यों तो एक तो मेरेमें अनन्त हैं शरीरपरमाणु शरीरसे अनन्तगुणे तैजस परमाणु और तैजससे अनन्तगुणे कर्मपरमाणु बंधे हैं तो एक जीवके साथ जब इतने परमाणु बंधे हैं और ससारमें है अक्षयानन्त जीव, तब समझो परमाणु जगतमें कितने हैं? धर्म द्रव्य एक है जो समस्त लोकमें व्यापकर रहता है अधर्म द्रव्य भी एक है, आकाश द्रव्य भी एक है, आकाशमें जो दो भेद किये जाते हैं लोकाकाश और अलोकाकाश ये उपचारसे हैं अपेक्षासे हैं। एक अखण्ड आकाशमें जितने आकाशमें छहों द्रव्य हैं उतनेका तो नाम रखा लोकाकाश। तो आकाश तिरिक्त अन्य द्रव्योंके सम्बन्धसे लोकाकाश पड़ा कहीं आकाशमें अनेक भेद नहीं हैं कि आकाश का इतना हिस्सा स्वरूपत लोकाकाश कहलायेगा और बाकीका हिस्सा अलोकाकाश होगा पर जितने हिस्सेमें छहों द्रव्य हैं वह है लोकाकाश और उससे परे है अलोकाकाश। कालद्रव्य असख्याते हैं।

कालद्रव्यका विवरण व परिणमनहेतुत्व—लोकाकाशमें असख्याते प्रदेश हैं। एक प्रदेश उतने हिस्सेका नाम है जितनेमें एक परमाणु रह सकता है। एक सूईसे कही जरासा गड्ढा कर दिया जाय तो वह कितनीसी जगह है? उसमें असख्यात प्रदेश हैं। उनमेंसे एक प्रदेशको बात लो। तो लोकाकाशके ऐसे ऐसे असख्यात प्रदेश हैं। उनमें एक एक प्रदेशपर एक एक कालद्रव्य ठहरा हुआ है। तो कालद्रव्य भी असख्याते हैं। जिस कालद्रव्यपर जो पदार्थ उपस्थित है, वह कालद्रव्य उन पदार्थोंके परिणमनका निमित्त है। उस कालद्रव्यके सम्बन्धमें पदार्थके परिणमनके निमित्तत्वमें केवल यह एक ही शङ्का हो सकती है कि अलोकाकाशमें तो कालद्रव्य है नहीं, फिर अलोकाकाश

अन्य पदार्थोंमे नही पहुँच सकती। उनकी लीला अनन्त ज्ञान द्वारा समग्र ज्ञेयोको जानना है, उनकी लीला अपने सहज अनन्त परिणमनमे परिणमते रहना है समस्त दु खोसे निवृत्त होकर विशुद्ध आनन्दमे तृप्त बने रहना है यही उनका करना व भोगना है। प्रभुको यदि इस स्वरूपमे निरखा जाय तो यही है प्रभुकी वास्तविक भक्ति। और इस स्वरूपको न निरखकर यह सबको सुख दु ख देता है, जन्म देता है, जीवोका पालन करता है, पुण्य पाप कराता है फिर उनका फल देता है इस रूपमे प्रभुको मानकर यदि उनकी उपासना की जाय तो इसमे निर्विकल्प समाधिका अवसर तो असम्भव ही है।

समर्थ करुणावानके दु खसाधनोत्पादकत्वकी अयुक्तता शकाकार यह कहता है कि प्रभुमे सर्व सामर्थ्य है और अपनी सामर्थ्यके कारण करुणावश जगतके जीवोकी रचना करता है और उन जीवोके अदृष्टके अनुसार भाग्यके अनुसार उनको सुख दु ख रूप फल देता है। तो कर्मोंको भाग्यको यह ईश्वर रचना है और फिर भाग्यको यह ईश्वर नष्ट कर देता है। कर्मफल मिलता है इसका अर्थ है कि भाग्य नष्ट हो रहा है। क्योंकि भाग्यके निकले विना जीवको फल नहीं प्राप्त हो सकता जो क्षण भाग्यके निकलनेका है वही क्षण उस भाग्यके फल पानेका है। इसीको उदय कहते हैं और उदयका भी नाम निर्जरा है। निर्जरा दो तरह की होती है। एक तो कर्म फल न दे सकें उससे पहिले ही उन कर्मोंको झडा देना यह है एक निर्जरा। यह तो कामकी निर्जरा है, मोक्षमार्गमे ले जाने वाली है। और दूसरी निर्जरा है कर्मोंके झडनेका नाम। तो सब जीवोके कर्म झडा करते हैं, टोटा रहा है कि जितने कर्म झडते हैं उतने नये और बाँध लिये जाते हैं। जहाँ सम्यग्दृष्टि पुरुषोको बताया है कि उनका फलोपयोग द्रव्य निर्जराके लिये है। तो उस सम्बन्धमे यह शका की जा सकती है कि सम्यग्दृष्टि भी हो लेकिन जब वह विषयोमे लग रहा है फलको भोग रहा है तो द्रव्य निर्जरा कहाँ ? वहा द्रव्य निर्जराका मुख्य अर्थ यह है कि वह सम्यग्दृष्टि पुरुष विषयो मे प्रवृत्ति तो कर रहा है, पर वस्तुस्वरूपका सम्यग्ज्ञान होनेसे सम्वेग और ज्ञानकी शक्ति होनेसे वह नवीन कर्मोंको नहीं बाँध रहा है। तब जो कर्म फलमे आये हैं वे झड ही तो रहे हैं। मिथ्यादृष्टिके भी विपाकसमय झडते हैं। उदयके मायने झडना, सम्यग्दृष्टिके भी झड रहे हैं, पर सम्यग्दृष्टिमे खासियत यह है कि वह वैसे नवीन कर्म नहीं बाँध पाता इसलिये झडने झडनेका काम दिखता है बाधनेका नही। इसीके मायने है झडना, निर्जरा होना। तो शकाकारने यहा यह है कि कर्मोका फल देना यह जीवके लाभके लिए है। तो ईश्वर करुणावश ही जीवोको सुख दुख देता है। दुख देनेमें भी वह ईश्वर करुणा कर रहा है। अगर फल न देगा तो कर्म हमारे बँधे रहेंगे। हमे कर्मोसे छुटा दे इसलिये दु ख देता हैं पर ईश्वर तो सर्वप्रथम बताया गया है। तो वह अपनी सामर्थ्यका उपयोग यों क्यो नही करता कि किसी भी जीवसे पाप न बँधाये और न उसका फल दिलाये। सबको सुखमे ही रखे, पर ऐसा

के हितके हकने है। भक्त भी ससारमे रुलते रहेंगे ऐसे कर्तृत्वकी श्रद्धा रखकर और ईश्वर भी अपनेको फदेमे डाल लेता है। तो इसमे उस ईश्वरने करुणा क्या की ? कोई प्रभु जगतके जीवोको रचे और अपनेको एक पचेडेमें डालें इसमें न तो प्रभुने अपनेपर दया की और न जीवोपर।

प्राणियोका अदृष्ट सापेक्ष व्यापार—यदि शङ्काकार यह कहे कि ईश्वर की जो जीवोके प्रति प्रवृत्ति है वह उनका अपवर्ग दिलानेके लिए है। इन जीवोका मोक्ष हो जाय, कर्मोंसे ये छूट जायें इसलिये यह कर्मोंका फल दिलाया करता है। तो समाधान यह है कि उस प्रभुको यदि इतनी बडी करुणा है कि इन जीवोंको अपवर्ग प्राप्त हो अर्थात् जहाँ धर्म, अर्थ, काम ये तीन वर्ग नहीं रहते ऐसी अवस्था प्राप्त हो, मुक्ति प्राप्त हो ऐसी करुणा है तो फिर वह नवीन कर्मोंका सचय ही क्यो कराता है ? चलो पहिले बँधे हुए कर्म हैं उनका फल दे दे, उनसे मुक्त करादे, पर नवीन कर्म क्यो बँधाता है ? इससे करुणावश जीव लोककी सृष्टि करे ईश्वर, यह बात युक्ति-सङ्गत नही है। और फिर जब सृष्टिके सम्बन्धमे वितर्क किया गया और वहाँ शङ्का-कारको यह मानना पडा कि ईश्वर स्वय ही जीवोको अपनी मर्जीसे सुख दुःख दिया करता है। जब अदृष्टका सहयोग लेकर प्रभु सुख दुखके उत्पन्न करने वाले शरीरोका निर्माण करता है यह माना है तो इससे अच्छा तो यह है, वह मानना ठीक है कि कर्मफलको भोगने वाले पुरुष ही अदृष्टकी अपेक्षा रखकर शरीरको उत्पन्न करते है और शरीरको विनष्ट करते हैं। अदृष्टकी अपेक्षा लेकर अर्थात् कर्मोंका सहयोग लेकर ईश्वर जीवको सुख दुख दे, ऐसा माननेपर सीधा यह मानना ठीक है कि उन कर्मोंके अनुसार यह जीव उस सुख दुखके फलको भोग लेता है। फिर एक अदृष्ट ईश्वरकी कल्पना करनसे क्या फायदा ? ऐसा ईश्वर कि जो जीव लोकका कार्य करे और अपने आपको स्वरूपसे हटाकर इच्छा करे, प्रयत्नमे चितामे लगा दे ऐसे ईश्वरकी कल्पना करना अयुक्त है क्योंकि यही सब जीवोमे देखा जा रहा है कि जीव जो जो भी व्यापार करता है, जीवोको जो जो कुछ भी फलकी प्राप्ति होती है उसमें उनके अदृष्टका व्यापार है अर्थात् कर्मानुसार ये जीव सुख दुख भोगा करते हैं। देखलो जितने जितने भी उपभोग हैं, जो जो भी जीवका कार्य सुख अथवा दुख है वे सब अदृष्टपूर्वक होते हैं।

ससारी जीवलोककी मायारूपता—भैया ! कर्म, शरीर और जीव इन सबका पिण्ड है यह सब जीव लोक, जिनसे हम आप लोग बोलते हैं, व्यवहार करते हैं, जिनके बीच बैठकर हम अपना पोजीशन मानते हैं, सम्मान अपमान समझते हैं, और चिन्ताओंमे डालते हैं, ये सब मायारूप हैं, इन्द्रजाल हैं, स्वप्नमे देखे हुए पदार्थोंकी तरह असत्य हैं ये सब जीवलोक हैं जिनको यह मनुष्य ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी इनमें पोजीशन बनानेकी धुन बनाकर इस दुर्लभ नर जीवनको खो रहे हैं। जगतमें जगतमें अनन्तानन्त जीव हैं उन अनन्तानन्त जीवोंमेंसे ये १००-५० जीव यहाँ इन

यह स्थिति गलत होगी। तो इन मायारूपोंमें अपनेको उलझाना और किन्हीं परपदार्थोंसे मेरा कुछ सुधार बिगाड़ होता है इस अज्ञानमें न उलझना और अपने एक स्वरूपका निरखना यह समस्त संकट, समस्त उपाधियोंमें टालता है इस भावनामें तो कल्याण नहीं कि यह मुझे सुख दुःख देता है इसलिये इसकी उपासना करें तो हम सुखी रह सकते हैं इस भावनामें कल्याण नहीं है।

कर्तृत्वके यथार्थ निर्णयका महत्त्व—कर्तापनका निर्णय सामान्यतया ऐसा लगता है कि जैसे और बातोंका निर्णय किया ऐसे ही इसका निर्णय है, लेकिन यह एक सामान्य निर्णय नहीं है। आत्महितमें इसमें कर्तृत्वका सही निर्णय कर लेना बहुत महत्त्वशाली निर्णय है। जैसे कि मजहबोंके बारेमें लोग कह देते हैं कि जाना तो एक ही भगवानके स्थानपर है चाहे इस रास्तेसे जावें चाहे उस रास्तेसे। बहुतसे रास्ते हैं। जितने मजहब उतने ही रास्ते हैं। किसी भी रास्तेसे प्रभुके निकट पहुंच जायेंगे। लेकिन प्रभुके निकट पहुँचनेके लिए रास्ता एक ही है और वह रास्ता है अपने आत्माका। चूँकि अपने आपमें ही अपना अनुभवन चला करता है तो प्रभुके निकट पहुँचना अथवा प्रभु होना यह सब अपने अनुभवपर निर्भर है, अतएव प्रारम्भ भी अपने ही अनुभवमें शुरू होना है। तब अपने आपके स्वरूपका निर्णय करना और जैसा वास्तविक परकी अपेक्षा रहित अपने ही सत्त्वके कारण अपने आपका जो स्वरूप मिले उसमें मग्न होना बस यही प्रभुका मार्ग है। यह बात अब जहाँ मिले, जिस मजहबमें मिले, जिस ढंगमें मिले वह उपादेय है। इसी प्रकार कोई कह बैठे मजहबवाले या भाई कि ये तो बातें हैं, निर्णय हैं लोकका कर्ता ईश्वरको मान लिया तो क्या, न मान लिया तो क्या? ये तो केवल ऊपरी बातें हैं। लेकिन ऊपरी बातें नहीं हैं। कर्तृत्वका सही निर्णय हुये बिना आत्माके विकल्प दूर नहीं हो सकते। विकल्प तो सारे करनेके विकल्पोंके सारा जीवन दूभर हुआ जा रहा है। जब बच्चे थे तब अमुक करना है इस प्रकारका भाव था, बड़े हुये तब करनेका विषय बदल गया, वृद्ध हुये, कुछ कर भी नहीं सकते लेकिन करनेके विकल्पोंका तांता जवानोंसे भी अधिक लग उठा है। तो करनेके विकल्पोंसे तो सारी दुनिया परेशान है और उस ही करनेके निर्णयको हम एक साधारण बात समझें तो हमने अपने हितके लिये फिर कदम ही क्या उठाया?

कर्तृत्वके सम्बन्धमें वस्तुस्थिति—वस्तुस्थिति तो यह है कि जगतमें अनन्त पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अपने ही अस्तित्वके कारण निरन्तर परिणमते रहनेका अधिकार रखते हैं। परिणमे बिना कोई पदार्थ रह ही नहीं सकते, उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं। तो हैं और परिणमते रहते हैं। जब यह स्वभाव प्रत्येक पदार्थमें पड़ा हुआ है तो वे परिणमते हैं और जैसा निमित्त सन्निधान पाया, जैसी उनकी योग्यता हुई, वैसा परिणमन हो गया। इस जीव लोकका कर्ता, इस समस्त विश्वका कर्ता किसी एक ईश्वरको भी मान लिया जाय तो भी उपादान निमित्तकी बातको

मना नही किया जा सकता । जो परिणम रहे है, जो बन रहे हैं वे तो उपादान हैं निमित्त आपका ईश्वर हुआ । उपादान निमित्त की बात तो वहाँ भी नही टाली जा सकती । अब विवाद केवल इसमे है कि इन पदार्थोंके परिणमनका निमित्त कौन हो सकता है ? क्या क्या हो सकता है ? यह बात युक्तियोसे समझ लीजिये । कोई एक चेतन इस समस्त लोकका कर्ता होता तो व्यवस्था न बन सकती थी । करुणावश भी न कर सका यह, क्योकि उसमे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि किसी जीवको दुख देना किसी जीवको सुख देना यह करुणावानका कहाँ तक न्याय है ?

प्रभुमे सेवाभेदानुमार फल देनेकी अयुक्ति यहा शङ्काकार कह रहा है कि जैसे कोई मालिक सेवाके भावके अनुसार सेवकोको फल दिया करता है, कोई सेवक विपरीत चलता, काम न करता अथवा वह कर्तव्यनिष्ठ नही है उसे वह मालिक फल नही देता अथवा कम देता, अथवा कभी दण्ड भी देता, और कोई सेवक कर्तव्यनिष्ठ है, हृदयसे सेवा करता है तो उसे वह फल देता है । तो जैसे इस लोकके मालिक लोग सेवा भेदके अनुसार सेवकोको फल दिया करते हैं और देते हैं समर्थ है जो समर्थ होगा वही तो सेवकोको उनकी सेवानुसार फल दे सकता है असमर्थ तो नही दे सकता तो ईश्वर भी समर्थ है, वह कर्मोंकी अपेक्षासे जिसका जैसा अदृष्ट है जिसने जैसा परिणाम किया उसके अनुसार वह फल दिया करता है, दूसरा और कौन फल देगा ? शकाकारका कथन भी यह केवल एक मनोरथमात्र है । जैसे कोई पुरुष चलते फिरते कोई भी मनसे विचार करे, कुछ भी पुल बाँधे तो वह उसका मनोरथमात्र है, इसी प्रकार यह भी अपना पुल बाधना है । देखिये जैसे यहाके मालिक लोग सेवकोको फल देते हैं तो वे सेवाके आधीन फल देते हैं ना, उन मालिकोंमे रागद्वेषादिकका सम्बन्ध है तभी यह बात बन सकी कि अमुक सेवकको दण्ड देना है और अमुक सेवक को फल देना है । तथा यहाके मालिकोंमे निर्दयता भी बसी हुई है जिससे वे सेवा भेदका नजर डालते हैं और सेवकोपर कृपा करते है और जो सेवामे कमी रखे उस पर वे कृपा नही रखते । तीसरी बात – इन मालिकोमे सेवाकी आधीनता आ गयी । मालिक लोग ऐसे आधीन हो गये कि सेवकोके बिना मालिकोका काम नही चलता । तो जैसे मालिकोमे ये तीन मलीनतायें आ गयी इसी प्रकारसे ईश्वरमे भी ये तीन मलीनतायें आ गयी । क्या कोई ईश्वर दुनियाके लोगोमे ऐसी छटनी करता है कि मैं इसे दुख दू यह ठीक है;यह गैर ठीक है ? इसमे रागका सम्बन्ध आया कि नहीं ? जो भक्त लोग हैं उनके प्रति तो राग जगा और जो विपरीत जन हैं उनके प्रति द्वेष जगा । जिनके प्रति राग जगा उनको फल देनेका भाव जगता और जिनके प्रति द्वेष जगा उनको दण्ड देनेका भाव बनता तो वहाँ रागद्वेष क्षोभ हुआ ना । क्योंकि जो वीतराग हो, जो प्रभु यथार्थ कृपावान हो, जो पुरुष सेवाके आधीन न हो उस पुरुषसे यह बात नहीं बन सकती कि किसीको वह दण्ड दे और किसीको फल दे । इस कारण यह भी युक्त नही है कि सेवाभावके भेदानुसार फल दिया करें ।

एक चेतनसे नियन्त्रित होकर प्राणियोंके कार्य करनेका अ

अब यहाँ शंकाकार एक शंका और रख रहा है कि जैसे कोई एक महल बनाना है तो उसमें जितने कारीगर लोग लगते हैं उन सबमें एक कारीगर मुख्य होता है और वह कारीगर सूत लगाता है। जो मुख्य हो, प्रसिद्ध हो अथवा कुशल हो वही पुरुष एक योजना बनाता है नाप तौल करना सूत लगाना, उनको संकेत देना अमुक चीज लाओ, इन सब आदेशोंका अधिकारी जो हो उसे कहते हैं सूत्रधार। तो जैसे एक महल बननेमें अनेक कारीगर काम करते हैं मगर वे सब कारीगर एक सूत्रधारके द्वारा नियमित रहते हैं। जो नियम बनाये जो संकेत करे उसके अनुसार कारीगर काम करते हैं। इसी प्रकार इस जगतमें यद्यपि कार्य सभी जीव कर रहे हैं जन्मका मरणका सुख दुःख भोगनेका, शुभ अशुभ भाव करनेका सभी प्रकारका कार्य यद्यपि कर रहे हैं प्राणी, किन्तु वे एक ईश्वरके द्वारा नियमित होकर कर रहे हैं। जैसा उस प्रभुका नियम बना वैसा यहाँ यह जीवलोक कार्य करता है। यह कथन भी समीचीन नहीं है क्योंकि ऐसा कोई नियम नहीं है कि सारे कार्य एकके द्वारा ही किये जायें। यह भी नियम नहीं है किसी एकके द्वारा कोई कार्य किया जाय। अनेक तरहसे कार्योंका करना पाया जाता है। देखो कहीं तो एक ही पुरुष एक कार्यका करने वाला देखा गया। जैसे जुलाहेने कपड़ा बनाया, तो काम एक है करने वाला भी एक है, और कहीं देखा जाता है कि कोई एक पुरुष अनेक कार्योंको कर देने वाला बन जाता है। जैसे एक कुम्हार घड़ा सकोरा मटका खपरियाँ आदि अनेक चीजें बनाता है, और, कहीं देखा जाता कि अनेक काम करने वाले हैं, सभी लोग अपने जुदे जुदे काम कर रहे हैं कहीं देखा जाता कि अनेक लोग मिलकर भी एक कार्य करते है। जैसे पालकी (डोला) अथवा मृतक पुरुषकी अर्थी आदि ले जाना। मृतक पुरुष की अर्थी चार आदमी उठाते हैं, अगर एक तरफका एक आदमी उसे न उठावे तो वह अर्थी न लेजायी जा सकेगी। तो कहीं अनेक लोग मिलकर एक कार्य करते है। तो यह नियम न रहा कि एक कोई अनेक कार्योंको करे। फिर दूसरी बात यह है कि जो यह कहते हैं कि एक ईश्वरके द्वारा नियमित होकर ये पुरुष सब अपना कार्य कर रहे हैं—जैसे कि एक सूत्रधारके द्वारा नियमित होकर अनेक कारीगर मकान बनानेका काम कर रहे है तो वहाँ भी बात ऐसी नहीं है, वे जितने कारीगर हैं सबके सब जो एक महल कार्यको बना रहे हैं सो एक सूत्रधारके द्वारा नियन्त्रित होकर बना रहे यह बात नहीं किन्तु जितने कारीगर हैं सबका भाव एक समान है, उस समय कि सभी लोगोंको मिलकर एक ऐसा महल बनाना है। तो एक सूत्रधारने दिशा बतायी, किन्तु जितने कारीगर हैं वे सब अपने-अपने जुदे-जुदे भाव लिए हुए हैं। वे सब अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार किसी दूसरेसे नियमित न बनकर चूँकि सबकी मर्जी एक समान थी इसलिये उन सबने यह बात मान ली। तो एक सूत्रधारके द्वारा वस्तुतः अनियमित है वे और उन सबका अपना जुदा-जुदा अभिप्राय है और वे अपने ज्ञान,

प्रकरण यहाँ केवल यह है कि इन समस्त पदार्थोंका करने वाला कोई एक प्रभु है अथवा नही है। ये सभी पदार्थ उपादान निमित्तकी योग्यतासे सब अपनेमे अपना कार्य करते जा रहे हैं। यदि कोई एक प्रभु मानो कर रहा है तो उसमे विषमता कैसे आ सकती है? प्रभु तो एक स्वभावी है वह किसीको सुख दे, किसीको दुख दे, किसी को फल दे किसीको दण्ड दे ऐसा कार्य वह कहाँ कर सकता है। और, फिर वह प्रभु यदि हमारे भाग्यके अनुसार फल देता है तब तो फिर हम ईश्वरके बडे काम आये। उसे तो हमारा बहुत बडा उपकार मानना चाहिये, क्योंकि वह ईश्वर पहिले हमारे अदृष्ट अर्थात् भाग्यकी अपेक्षा करता है तब वह हमे फल देनेमे समर्थ होता है। तो अब वह हमे फल देनेमें समर्थ होता है। तो अब यह बतलावो कि इस अदृष्टका उस ईश्वरके साथ कुछ सम्बन्ध है कि नही? यदि कहो कि सम्बन्ध नहीं है भेद है तो फिर कार्य क्या करेगा? यदि कहो कि सम्बन्ध है तो उस भाग्यसे ईश्वरका सम्बन्ध जुडा है इसमें कारण क्या है। किस सम्बन्धसे जुडा है? अन्य सम्बन्ध मानोगे तो अनवस्था आ गया। यदि कहो कि सम्बन्धकी बात क्या करते हो? अरे वह महेश्वर हमारे भाग्यमे एकमेक मिलकर एक कार्य कर रहा है। सब जीवोके भाग्यसे मिलकर प्रभु कार्य कर पाता है तो जब एकमेक हो गया हमारे भाग्यसे अभेद हो गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि अदृष्ट किया गया याने ईश्वरको ही कर डाला। अभेदमे एक चीज रहती है। अदृष्ट किया इसका अर्थ है ईश्वर किया गया।

एक प्रभु और अदृष्ट दोनोके द्वारा भी मिल जुलकर विश्व सृष्टिकी असगतता—इस प्रसगमें अब शकाकार यह कह रहा है कि भाई अदृष्टके द्वारा ईश्वर का कुछ नही किया जा रहा हैं किन्तु अदृष्ट और ईश्वर ये दोनो मिल जुल करके कार्य किया करते हैं। एकमेक तो नही है ईश्वर और अदृष्ट। जैसे किसी कार्य को दो आदमी मिलकर करते हैं तो यहाँ इस ससारके इन नटखटोसे प्राणियोका कार्य भाग्य और ईश्वर ये दोनो मिलकर करते हैं। क्योंकि एक कार्य करनेका लक्षण ही यह है कि एक कार्य किया जाता तो मिल जुल करके सहकारी बन करके किया जाता है। तो वह ईश्वर इस भाग्यसे मिल जुल करके कार्य करता है। यह भी बात युक्त नही है क्योकि ईश्वरमें कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है ना! करनेका स्वभाव नहीं है तो फिर बात ही क्या? स्वभाव तो तुम्हे मानना ही होगा। ईश्वरमें जो कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है वह मान लिया। इस प्रसङ्गमें सहकारी कारणोकी अपेक्षा रखकर लेकिन यह तो बताओ कि प्रभुमे कार्योंको उत्पन्न करनेका जो स्वभाव है वह भाग्य स्वभाव इन साधनोके मिलनेके पहिले भी है कि नहीं। यदि कहो कि पहिले है तो भविष्य कालमे जितने कार्य होनेको हैं वे सब एक साथ पहिले ही हो जाने चाहियें। क्योकि ऐसा नियम है कि जो पदार्थ जिस समय जिसकी उत्पत्ति करनेमे समर्थ है वह पदार्थ उस समय उसे उत्पन्न करता ही है। जैसे खेतमें पडा हुआ बीज अन्तिम अवस्थाको प्राप्त होकर अकुर उत्पन्न कर देता है क्योकि उस समय उस बीजमे अकुर

उत्पन्न करनेको सामर्थ्य है। अब महेश्वरमें जो कि एक स्वभावी है इन पदार्थोंको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव सहकारी कारणोंके मिलनेके पहिले भी मान लिया तो आगेके सारे कार्य तुरन्त हो जाने चाहिये। यदि उन सबको नही पैदा कर सकते हैं उस समय तो इसका अर्थ यह है कि प्रभुमे उन कार्योंको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नही है क्योंकि जो चीज जिस समय जिसको उत्पन्न न कर सके उस समय उस चीजमे उसको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव नही है। जैसे टंकियोमे भरा हुआ अनाज जहा हवा जरा भी प्रवेश न कर सके उस बीजमे अकुर उत्पन्न कर सकनेका सामर्थ्य नही है। तो जब महेश्वरने उत्तरकालमे होने वाले समस्त कार्योंका अभी नहीं कर पाया तो इसका अर्थ यह है कि उसमे उनको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव भी नही है।

सामर्थ्यस्वभाव और परापेक्षा दोनोका परस्पर विरोध—यदि कहो कि नहीं—समस्त कार्योंको उत्पन्न करनेमे सामर्थ्यका स्वभाव तो है प्रभुमे, पर सहकारी कारण न होनेसे उन्हे उत्पन्न नही कर सकता। जब सहकारी कारण जुट जाते है तो सामर्थ्यवान प्रभुमें उन समस्त कार्योंको कर डालता है। यह भी केवल बात है। इसका केवल अर्थ यह हुआ कि प्रभुमे सामर्थ्यका स्वभाव नही है। यदि सामर्थ्य स्वभाव होता तो किसी भी पर वस्तुकी वह अपेक्षा न रखता। सामर्थ्य स्वभाव हो और दूसरा अपेक्षा रखे यह तो विरुद्ध बात है। जैसे अत्यन्त वृद्ध पुरुष जो स्वय खडा हो सके उसे दूसरा आदमी हाथ पकडकर खडा करता है तो यही कहेगे ना कि इस वृद्धमे खडा होनेकी सामर्थ्य अब नही है तभी तो दूसरेका सहयोग पाकर खडा हो रहा है। जवान लोग ये खूब दौडने वाले लोग इनमे खडा होनेका सामर्थ्य स्वभाव है तो क्या ये कभी अपेक्षा भी करते हैं कि मुझे कोई हाथ पकडकर उठायेगा तो उठ सकते हैं तो सामर्थ्यका स्वभाव हो और दूसरे की अपेक्षा रखे ये दोनो बातें परस्पर विरोधी हैं किन्तु जहा सामर्थ्य स्वभाव होता है वह रूप अनाधेय होता है अर्थात् उसमे किसी दूसरेके आरोपणकी आवश्यकता नही होती। और वह अप्रमेय अतिशय वाला होता है अर्थात् उसमे स्वय ऐसा अतिशय है कि उस अतिशयको अन्य कोई दूसरे पदार्थका सद्भाव अथवा अभाव हटा नहीं सकते। तो यह बात सिद्ध नही हो सकती है कि हमे सुख दुःख देने वाला कोई ईश्वर है हम लोगोकी सत्ता नगण्य जैसी है, हम लोग कुछ भी करनेमे समर्थ नही है हमारा करने वाला प्रभु है। हम सब पदार्थ हैं, परिणमने का स्वभाव रखते हैं सो जब जैसा निमित्त योग प्राप्त होता है वैसा हम परिणम जाया करते हैं। इस समस्त विश्वका या हम सब लोगोका रचने वाला कोई प्रभु नही है। प्रभु तो अनन्त ज्ञानानन्दमय है तो वह ज्ञानके द्वारा सबको एक साथ जानता रहता है और अपने आनन्दमें तृप्त रहा करता है। ऐसी अवस्था प्राप्त करने लिये ही साधुजन प्रभुकी आराधना करते हैं और प्रभुका व्यक्तस्वरूप अपने स्वभाव के तुल्य है अतएव स्वभावकी उपासना किया करते है।

कर्तृत्ववादके प्रसङ्गका उत्थान— ईश्वर सर्वज्ञतावादकी बात छिड़ जानेका इस प्रकरणमें मूल प्रकरणमें मूल प्रसंग यह है कि प्रमाणका स्वरूप बताने वाले इस ग्रन्थमें प्रत्यक्ष प्रमाणका वर्णन किया जा रहा था। मगर ज्ञानावरण विशेषके कारण जब समस्त आवरण दूर हो जाते हैं तब प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है। और, वह निरावरण ज्ञान समस्त विश्वको जानने वाला होता है। इस प्रकार यह बात सूत्रमें कही गयी कि आवरणका विनाश करनेसे सर्वज्ञता प्रकट होती है यह बात ठीक नहीं है क्योंकि एक सदा शिव अनादिमुक्त ईश्वर ऐसा है जिसके आवरण कर्म अनादिसे कभी लगे ही न थे और वह अनादिसे सर्वज्ञ है। यहाँ निरावरणतामें सर्वज्ञता होती है इसके विरोधमें अनादि निरावरण जिसके साथ कभी कर्म लगे ही न थे ऐसे एक ईश्वरकी सिद्धि करनेकी ठानी है, और तब उस ईश्वरकी विशेषता बतानेके लिये यह कर्तृत्ववाद उठा। प्रसंगमें कर्तृत्ववाद उठानेका कोई प्रकरण न था। प्रकरण था यह कि प्रत्यक्ष ज्ञान होता है सबका जाननहार, और वह आवरणके दूर होनेसे होता है। ज्ञानावरण आदिक अष्ट कर्मोंसे ये संसारी जीव आवृत हैं। उनमेंसे ज्ञानावरण कर्म जीवोंके ज्ञानको ढाकता है। उसका अभाव होनेसे ज्ञान पूर्ण प्रकट होता है, इस बातका विरोध किया गया है कि सर्वज्ञता आवरणके दूर होनेसे प्रकट नहीं होती किन्तु सर्वज्ञता तो केवल एक ही ईश्वरमें है और अनादि मुक्त है, यह बात शंकाकार ने रखी थी वैसे तो शंकाकारके मन्तव्यमें जो आवरणसे मुक्त होंगे, हुए हैं, ऐसे मुक्त आत्मा हैं, परन्तु वे सर्वज्ञ नहीं हैं। उनके तो ज्ञानगुणका अभाव हुआ है तब मुक्त हुए हैं। तो ऐसे एक ईशकी सिद्धिमें कर्तृत्ववाद चला।

सहकारी कारणोंको भी ईशकृत माननेपर आपत्ति—इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा था कि महेश्वर सदाशिव समस्त विश्वकी रचना करता है, पर अनेक दोषोंसे बचनेके लिये कहा गया था कि अनेक सहकारी कारणोंकी अपेक्षा लेकर रचना करता है पर प्राणियोंके अदृष्टकी सहकारितासे उनकी रचना करता है। तो पूछा जा रहा है अब कि वह सहकारी कारण क्या ईश्वरके आधीन उत्पत्ति वाला है या नहीं? अर्थात् उन सहकारी कारणोंकी उत्पत्ति ईश्वरके आधीन है अथवा नहीं, जिन भाग्य आदिक कारणोंकी सहायता लेकर यह ईश सर्व लोककी रचना करता है। अदृष्ट आदिक सहकारी कारणोंकी उत्पत्ति यदि ईश्वरके आधीन है। तब फिर एक समयमें एक ही बारमें सारे सहकारी कारणोंको क्यों नहीं उत्पन्न कर देता? जब उनके ही आधीन हैं कि सहकारी कारण भी रचे और मुख्य काम भी रचे तो सब कुछ एक ही समयमें क्यों नहीं रच डालता। जिसमें सर्व प्रकारकी सामर्थ्य होती है वह कार्यको एकदम एक साथ करना चाहता है। यदि कहो कि उन सहकारी कारणोंको रचना तो ईश्वरके आधीन है, पर सहकारी कारण भी काम दे जायें इसके लिये दूसरा सहकारी चाहिये। तो इस तरह तो उसके लिये तीसरा और उसके लिये चौथा सहकारी कारण चाहिये, उसकी अनवस्था होगी। और ईश्वर फिर उसके सहकारी कारण

के कारण इनकी रचनामे ही लगा रहेगा, मुख्य जो प्रकृत काम है उसको करेगा ही कब ?

सहकारी कारणोको परम्परोद्भूत माननेपर पक्षमे बाधा यदि कहो कि जैसे बीज और अकुर इन दोनोकी परम्परा चलती है। बीजमे अकुर होते अकुरसे बीज होते, तो जैसे पूर्व कारणसे उत्तर कारण बन जाते हैं इसी प्रकार इन सहकारी कारणोमे भी पूर्व कारणसे उत्तर सहकारी कारण बन जाते हैं इसमे अनव था दोषके लिए नही है किन्तु यह तो परम्परा है। आचार्यदेव समाधानमे कहते हैं – तब फिर एक सृष्टिकर्ता ईशको माननेकी क्या आवश्यकता रही ? प्रत्येक पदार्थ अपने पूर्व कारणसे अपनी उत्तर पर्यायमे विकसित हो जाता है और यह परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है। यहा किसीको इस अटकावमे रखनेकी क्या जरूरत है ? यदि यह कहो कि उन सहकारी कारणोकी उत्पत्ति ईश्वरके आधीन नही है, वे मिलते हैं। जब आते हैं तब ईश्व उन कारणोकी सहकारिता लेकर प्राणियोको रचना करता है। तो लो इसीमे तुम्हारा हेतु अनेकान्तिक दोष वाला हो गया कि देखो यह सहकारी कारण है तो कार्य, पर ईश्वरके द्वारा रचा गया नही है। तब यह बात तो नही रही कि जो कार्य होते हैं वे सब ईश्वरके द्वारा रचे गये होते हैं वे सब ईश्वरके द्वारा रचे गये होते हैं। इन पदार्थोंका रचने वाला कोई एक नही है। सभी लोग स्पष्ट आखो सामने देखते हैं कि पदार्थोंका जिस प्रकार मिलन होता है, सयोग होता है और वहा निमित्त नैमित्तिक विधिमे जैसा जो कुछ परिणमन वाला प्रभाव आना होता है होता आ रहा है। निमित्त नैमित्तिक भावकी यही व्यवस्था है। उसमे कोई एक करनेवाला आये यह बात नही है। जगतमे अनन्तानन्त पदार्थ हैं, वे सब परिणमनशील हैं और अपनी परिणमनशीलताके कारण निरन्तर नवीन पर्यायें विकसित होती हैं और प्राचीन पर्यायोका विलय होता है, यह बात पदार्थमे स्वयमेव होती आ रहीं है।

सत वचनोसे कतृत्ववादके समर्थनका प्रयास—युक्तियोसे कर्तृत्व सिद्धि के विवादमे असफल सफलताको सफल करनेके लिये अब शकाकार कुछ सतोंके वचनो का प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहता है कि कोई एक चेतन विश्वका करने वाला है। शकाकार कह रहा है कि देखो सतोने भी कर्तृत्वकी सिद्धिके लिये कहा है कि जितने ये महाभूत हैं अर्थात् दिखने वाले भौतिक पदार्थ हैं ये सब काय चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर प्राणियोके सुख दु खमे निमित्त होते हैं क्योकि रूपादिमान होनसे रूपादिमान जितने पदार्थ होते हैं वे किसी एक चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर सुख दुख आदिकमे कारण होते हैं। जैसे जुलाहाके तुरी वेम शलाका आदिक कपडा बुननेके साधन होते हैं वे रूपादिमान है अतएव एक जुलाहा द्वारा अधिष्ठित होकर वे दूसरेके सुख दुख आदिकमें कारण पडते हैं। और भी सुनो – सतोने कहा है कि पृथ्वी आदिक महाभूत अर्थात् दृश्यमान भौतिक पदार्थ किसी एक बुद्धिमान् कारणके द्वारा अधि-

ष्ठित होकर ही ये अपनी क्रियामे लग पाते हैं। पृथ्वीमे क्रिया क्या है कि अपने आप को अपने आपसे धारण किये रहे। इसी प्रकार और भी जितने छोटे मोटे पदार्थ हैं उनकी क्रिया तो स्पष्ट दिखती है। वे सब एक ईश्वरमे अधिष्ठित होकर ही अपना कार्य कर पा रहे हैं, और भी सतोकी वाणी सुना जितना यह लोक है, शरीर है इन्द्रिय हैं ये सबके सब उपादान, चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर ही अपना कार्य करते है क्योकि ये जितने रूपादिमान पदार्थ हैं रूप रस, स्पर्श वाले पदार्थ पुद्गल हैं वे सब किसी एक चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर चेतनके द्वारा प्रेरित होकर ही कार्य कर सकते हैं। जैसे ये सूत डोरा आदिक रूपादिमान हैं तो जुलाहा आदिककी प्रेरणा मिलती है तब इससे कपडा बनता है। ये सारे पदार्थ जो आँखोमे ग्रहणमे आते हो वे सब एक ईश्वरके द्वारा रचे गये है क्योकि परमाणुओंसे वे रचे गए हैं, उन सबका आकार बना है। जितने आकार वाले पदार्थ है वे किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हुये होते है। यो अनेक सतोंके वचन हैं। कैसे न मानान कि इस सारे विश्वका करने वाला कोई एक बुद्धिमान है।

प्रामाण्यसमाधान—अब समाधानमे कहा जा रहा है कि प्रमाण तो दिये गये लेकिन केवल एक ही बात निरखलो कि जैसा रूप, रस गध स्पर्शवान पना चेतनाधिष्ठित होकर इन वस्त्र आदिक पदार्थोंमे है तथा इस प्रकारका रूपादिमान पना पृथ्वी आकाश आदिकमे है, अथवा जैसा अनित्यपना चेतनाधिष्ठित होकर इन घटपट आदिकमें है क्या ऐसा पृथ्वी आदिकमें है? अथवा जिस प्रकारसे ये पदार्थ किसी एक कुम्हार जुलाहा आदिक पदार्थोंके द्वारा अधिष्ठित है क्या इसी प्रकारके सशरीर किसी चेतनके द्वारा ये पृथ्वी आदिक रचे गये हैं? केवल रूप है इतने मात्र से इसका अविनाभाव नही है कि वे किसी चेतनके द्वारा रचे गये हैं क्योकि ये अपने आप उत्पन्न होने वाले अकुर बरसात हुई कि एक दो दिनमे ही सब जगह कितने अकुर पैदा हो जाते हैं तो क्या वे किसी चेतनके द्वारा रचे गये है? क्या किसी किसानने उन्हे उत्पन्न किया है? अरे वे स्वय उत्पन्न हो जाते है। तो यह कहना युक्त नही कि जितने भी रूपादिमान पदार्थ हैं वे किसी चेतनके द्वारा रचे गये हैं। तथा अगर मान भी लो कि कुम्हार जुलाहा आदिक पुरुष सरीखे ही किसी असर्वज्ञके साथ इन कार्योंका अविनाभाव है तो उसमे सर्वज्ञके साथ इन कार्योंका अविनाभाव है तो उसमे सर्वज्ञ तो सिद्ध नही हो सका, ईश तो नही हुआ। जिन जिन लोगोंका जो सामर्थ्य चला उन्होने उन क्रियायोंको रचा। इससे केवल कथनमात्रसे अटपट सिद्ध नही किया जा सकता। और फिर ईश्वरका बुद्धि तो अनित्य है। तो बुद्धिसे अभिन्न जो ईश्वर है वह भी अनित्य हुआ। जो जो अनित्य होता है वह किसी चेतन के द्वारा अधिष्ठित है ऐसा आपका कहना है तो उस ईश्वरको अधिष्ठित बनाने वाला कोई अन्य ईश्वर होना चाहिए। तो ईश्वरकी रचना ही अभी पूरी न हो पायगी फिर करनेकी बात कहाँ? अगर कहा कि वह ईश्वर एक है उसकी बुद्धि अनित्य है, पर

उसे दूसरेने नही बनाया तो जो कार्य होनेपर भी किसी ईश्वरके द्वारा नही रचा गया यह बात सही सिद्ध हो गयी।

कर्तृत्वके सम्बन्धमे आत्मनिर्णय—कर्तृत्ववादका प्रकरण सुनकर हमे इस निर्णयपर पहुचना चाहिये कि ईश्वर तो कर्ता हो कैसे ? यहाके पुरुष भी कर्ता नही। जैसे देखते हैं कि महिलाने रोटी बना दी तो रोटियोके करने वाली महिलाने हुई यह आपका एक व्यवहार कथन है। वस्तुत रोटीको महिला नही कर सकती। अगर रोटी महिलाके हाथकी बात है तो खेतसे चिकनी मिट्टी लाकर रख दो और कहो कि बनावे यह महिला रोटी, तो नहीं बना सकती। अरे रोटीका उत्पाद तो आटा, गेहू, अनाजसे होता है। उस रोटी का करने वाला उपादान आटा है हाँ उस रोटीके बनानेमे निमित्त अवश्य है वह महिला। वह महिला रोटी बनानेका कार्य न करे तो कहांसे वह रोटी बन सकती है लेकिन वस्तुस्वरूप निरखिये तो उस महिलाने अपने हाथमेंसे कुछ चीज आटेमे नहीं डाली, न उससे बनी। तो यहापर भी हम लोक व्यवहारमे जो कर्तापनका भारी वचन जाल रचा करते हैं वहा भी हमे सावधानीसे निरखना है। लोग कर्तृत्व अहकारमे ही तो ऐंठे जा रहे है। मैंने किया मैं कर दूगा यह। और कहनेकी ही बात दूसरेपर लादकर उन्हे बहकाया जा सकता है—भाई फलाने साहबने यह धर्मशाला बनाया, मदिर बनाया, अमुक बनाया, और वह कर्तृत्वकी बात सुनकर बड़ा खुश होता है और वह कोई दूसरा काम कर देनेके लिए उत्साह बनाता है और उसमे अपनी शान समझता है। तो लोग कर्तृत्वके आशयमे अपनेको भूले हुये यह नही निरख पाते कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ मेरा स्वरूप क्या है, जरा अन्दरमे निरखिये इन्द्रियका व्यापार रोककर और विशेषतया नेत्र बन्द करके, इस शरीर तककी भी सुधि भूलकर कुछ अन्दरमे निरखे तो सही, मिलेगा वह आत्मा दृष्टिमे आयगा। वह सद्भुत है, ज्ञान रूप है, यह दृष्टिमे आयगा। यह मैं आत्मा ज्ञान मात्र हूँ और यह केवल जाननका ही निरन्तर कार्य करता रहता है, और जाननमे जो कुछ आनन्दकी उदभूती है उसका मैं भोग कर रहा हूँ। तो ज्ञानको ही करता हूँ, ज्ञानको ही भोगता हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञानको छोड कर अन्य कुछ यहा वैभव नही है।

दुर्लभ नरजीवनमे अपनी अनर्थ करतूत—ससारमे अनादिसे रुलते हुये आज सुयोगसे अच्छी स्थितिमे आये हैं, हम आप लोग उत्तम जैन कुलमे उत्पन्न हुये है, धन वैभवका साधन भी खूब पाया है, मगर यह तो बतावो कि इस मनुष्य जीवन मे जीकर असलमे करना क्या है ? करना क्या है। अजी धन जोडना है। लाख हुये अब ५० लाख हुए। अब करोड़पति होगे। अरे नादान ! सोचे तो जरा कि लाख और करोडका भी जो धन है वह तो आखिर पौद्गलिक ढेर है। तेरे आत्मा का उसमे कुछ सम्बन्ध है क्या ? वर्तमान समयमे भी एक उस पौद्गलिक ढेरसे तेरे

ठेका समझ रखा है ।

दूसरोके भाग्यपर हामी होनेका मोहियोका व्यामोह - अनेक स्थलोंपर तो ऐसा भी सम्भव है कि जो मान रहा है कि मैं इन जीवोका पालन पोषण करता हूँ वह पुरुष जब तक घरमे बैठा है तव तक उनकी गरीबी रहती है और वह पुरुष अपना घर छोड दे तो उनका भाग्य जो एक इसके घरमे रहनेके कारण रुका हुआ था, घरसे निकल जानेपर उनका भाग्य खुलता है और पनप जाता है । यही आप अनेक उदाहरण देखेंगे । एक ऐसा छोटा कथानक है कि एक जोसी था । वह प्रतिदिन १०-११ बजे आटा माँगकर घर लाता था तव सब घरके लोग खाते थे । एक दिन व एक गावमे आटा माँग रहा था । उसे एक सन्यासी मिला । सन्यासीने पूछा - जोसी जी क्या कर रहे हो ? तो वह जोसी बोला कि हम आटा माँग रहे हैं, घर ले जायेंगे तव घरके सभी प्राणियोका पालन पोषण करते हैं । तो सन्यासी बोला कि तुम्हारा यह ख्याल गलत है, तुम दूसरेका नही पालन पोषण करते । तुम इसी समय हमारे साथ जङ्गल चलो । वह बडा श्रद्धालु था, सन्यासीके साथ हो लिया । अब वह १०-११-१२ बजे तक घर न पहुँचा तो उसको ढुढौआ पडे क्योकि प्रतिदिन १०-११ बजे वह आटा माँगकर घर आता था । उसी समय किसी मजाकियाने कह दिया कि अरे, उसे तो बाघ उठा ले गया और उसने खा डाला । यह बात गावमे फैल गयी, तो लोगोने यकीन कर लिया कि वह तो मर गया । लोग समझानेको उसके घर पहुँचे । कुछ देरके बादमे उसके पडौसके सेठोने सोचा कि देखो अब इसके घरमे कोई आदमी तो रहा नही । स्त्री है, माँ है और छोटे छोटे ६-७ बच्चे हैं, तो ये अपने पडौससे रहते हुए भूखो मरते रहें, यह बात तो न होना चाहिये । सो अनाज वालोने ४-५ बोरा अनाज दे दिया, घी वालोने एक दो टीन घी दे दिये, कपडेवालों ने ५-७ थान कपडा दे दिया, शकर वालोने एक दो मन शकर दे दिया । यो पडौसके सभी सेठोने कुछ न कुछ उस जोसीकी पत्नीको दे दिया । अब क्या था, जैसे दिन उस जोशीक घर वालोने कभी न देखे थे वैसे दिन देखने लगे । रोज-रोज ताजी पकौडियाँ खूब खायें, जो चाहे बनाकर खायें, बडे अच्छे नये-नये कपडे पहिनें । खूब मौजमे रहने लगे । अब १५ दिनके बादमे वह जोसी कहता है कि महाराज अब तो आप आज्ञा दीजिये हम अपने घर जाकर देख आयें कौन मरा कौन बचा है ? तो सन्यासीने कहा अच्छा देख आओ । मगर उन्हे छिपकर देखना यो ही सीधे घरमे न घुस जाना । तो वह जोसी अपने घर आया और घरके पीछेकी दीवारसे ऊपर छतपर चढ गया । छिपकर घरमे देखने लगा । तो क्या देखता है कि यहाँ तो बडा मौज है । खूब पूडी कचौडी ताजी बना बनाकर खायी जा रही हैं । सभी खूब नये नये कपडे पहिने हुए है । सभी खूब हस खेल रहे हैं । यह दृश्य देखकर मारे खुशीके वह जोशी घरमे कूद पडा और अपने बच्चोको गलेमे लगाने लगा । तो घर वालोंको तो मालूम हो गया था कि वह मर गया है, इसलिये उसे देखकर सोचा कि यह तो भूत है, सो आगके ठगरो

से, ढेला पत्थर आदिसे मार मारकर उसे भगाने लगे। वह बेचारा जोसी किसी तरह अपनी जान बचाकर उसी जङ्गलमें सन्यासीके पास गया। सन्यासीसे जाकर बताया, महाराज ! वहा पर तो सभी बडे मौजमे थे किन्तु मैं घरमे गया तो सभीने मुझे ढेला पत्थर तथा अग्निके लूगर आदिसे मार मार कर भगाया। मैं बडी मुश्किलसे जान बचाकर आपके पास भाग आया हू। तो सन्यासी बोला - अरे मूर्ख जब वे बडे मौजमे हैं तो तुझे क्या पूछेगे ? तो यह अभिमान रखना कि हम धन कमाते हैं, अपने परिवार के लोगोंका पालन पोषण करते हैं इस प्रकारका अभिमान हटाना अपने जीवनमे शांति पानेके लिए अति आवश्यक है।

अन्धोपदेशपूर्वक वाग्व्यवहारसे सृष्टिकर्ताकी सिद्धिके सम्बन्धमें चर्चा समाधान— सृष्टिकर्तृत्वके समर्थनमें एक अनुमान और दिया जा रहा है। सृष्टिके आरम्भमे पुरुषोंका व्यवहार किसी अन्यके उपदेश पूर्वक होता है क्योंकि उत्तरकालमे चेते हुए, समझे हुये पुरुषोंको प्रति अर्थके प्रति नियतपनेका व्यवहार हुआ करता है। जैसे कि जो वचन व्यवहारको नहीं समझता ऐसे बच्चेको माता पहिले उपदेश करती है। देखो यह गाय है, यह बकरी है। तब उस उपदेशको सुनकरके वह बच्चा यह अवधारण करता है, उन अर्थोंमें नियतपनेकी बुद्धि करता है कि हाँ यह गाय है यह बकरी है, तो इसी प्रकार जिस समय सृष्टि हुई उस सृष्टिके समयमे लोगोंको बताने वाला कौन था, सिवाय एक इस महेश्वरके तो इससे सिद्ध होता है कि सृष्टिकी महेश्वरने और उसने सबको उपदेश भी किया। इसके समाधानमे कहते हैं कि यह अनुमान अपने पदो की भी सिद्धि नही कर सकता। यह कहना कि उत्तरकालमें समझे हुए लोग, यही सिद्ध नही होता, क्योंकि प्रलयकालमे अर्थात् जब एक तूफान, वृष्टि, अग्नि, बरसना आदिक खोटी वृष्टिया होती हैं और तब दुनियाका कुछ हिस्सेमें प्रलय होता है। उस समय भी ऐसे पुरुष नही होते कि जिनका ज्ञान और स्मरण लुप्त हो गया हो अथवा शरीर इन्द्रिय विगत हो गयी हों। ऐसे जीव तब भी नही हुआ करते। अर्थात् कितना ही प्रलयकाल हो, जो जीव थे, जिनपर प्रलय किया गया वे जीव असत हो जायें, उनका सर्वथा अभाव हो जाय, उनको ज्ञानका स्मरण न रहे ऐसा असत्व नही होता। मरते मरते भी ज्ञान स्मरण रहता है और मरकर उनका तुरन्त जन्म होता है। ऐसा नही है कि जैसे कुछ लोग समझते हैं कि मुर्दा जमीनमे गड गया तो वह जीव जमीन मे ही गडा है। हजारों वर्ष बाद उसके न्यायकी तारीख आ पायगी। जीव जब मरता है तो तुरन्त दूसरे ही समय उसकी कोई शकल हो जाती है, प्रलयकी ही असिद्धि है सर्वथा। सर्वथा प्रलय होता हो अर्थात् जीवोंका समूह नाश होता हो यह बात है ही नहीं। और जिसे किसी भी प्रकारका प्रलय समझा जाता हो तो वहाँ होता क्या है ? अपने किए हुए कर्मोंके वशसे कुछ विशिष्ट ज्ञानान्तरमे उत्पत्ति हो जाती है, कुछ नई ज्ञानमयी दुनियामें उत्पन्न हो जाता है। फिर कैसे कहा जा सकता कि उनका ज्ञान और स्मरण लुप्त ही जाता है। ज्ञानकी स्मृति नही रहती और शरीर इन्द्रिय भी नही

रहती यह बात अयुक्त है ।

व्यवहारके अन्योपदेशपूर्वकत्वका अनियम—अन्योपदेशपूर्वकताकी सिद्धि मे दूसरी बात यह है कि यह कहना कि जितने वचन व्यवहार होते हैं, जो भी व्यवहार होते हैं वे दूसरेके उपदेशपूर्वक होते हैं यह नियमकी बात नही है । जीवके मैथुन आदि परिग्रह आदिके ये सारे व्यवहार कितने उपदेशपूवक होते हैं ? दूसरोके उपदेश बिना भी जीवोमे इनका व्यवहार पाया जाता है । इससे यह कहकर कि सृष्टिके आदिमे व्यवहार अन्यके उपदेशपूवक होते हैं और वह अन्य कोई एक चेतन है यह बात अयुक्त है । प्रथम तो सृष्टिका ही मतलब समझो । सृष्टिका अर्थ क्या है ? क्या कुछ भी न था, असत् था और एकदम कुछ आ गया इसका नाम सृष्टि है ? ऐसे तो कोई बुद्धिमान् नही मान सकता कि कुछ भी न हो और एकदम कुछ हो । असत् कभी सत् नही बन सकता । हाँ जो पदार्थ सद्भूत हैं उनकी ही परिणतियाँ नवीन नवीन होती है इसीका नाम सृष्टि है तो किसी भी पदार्थमे यह बात सम्भव नही कि जो कभी कुछ था ही नही वह सब कुछ बन जाय ।

ऋषभदेवकी कृपामे सृष्टि माननेकी कल्पना—सृष्टिके माननेका सिल सिला, यह तो ऋषभनाथ भगवानसे माना गया है । इन्हीको आदमबाबा कहते हैं । जो आदिमे उत्पन्न हुआ हो उसीका नाम है आदिमबाबा । भोगभूमिके बादमे जब कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ तो उस कर्मभूमिके आदिमे आदिनाथ प्रभु उत्पन्न हुये । जिनका भगवद्गीतामे भी वर्णन है कि वह ऋषभदेव ८वें अवतारके रूपमें थे । तो उस समय लोग बडी परेशानीमे थे । पहिले तो कल्पवृक्षोसे मनमानी भोगोपभोग वस्तुवोकी प्राप्ति हो रही थी खाना पीना कपडा बाजे श्रृङ्गार आदिक सब कुछ उन्हे अनायास प्राप्त होते थे, लेकिन जब ये फल मिलने बद हो गए तो प्रजा परेशानीमे पड गयी । उस समय कोई उपाय न रहा कि कैसे प्राणोंकी रक्षा की जाय ? तब सब प्रजाके लोग चौदहवें कुलकर अतिम मनु नाभि राजाके पास आये और बोले, महाराज हम लोग बडी परेशानीमे हैं । अब हम लोगोके प्राण रहना कठिन है । तो उस समय अतिम मनुने अपने पुत्र वृषभदेवके पास प्रजाको भेजा कि वह विशिष्ट ज्ञानी है, वह तुम्हारी समस्त समस्यावोका हल करेगा । प्रजाजन वहा पहुचे । तो वृषभदेवने उनको सब विधि बतायी । अब इस तरहसे कृषि करो । अब यहा जीव जन्तु भी विरोधी हो गए, लोगोमे भी परस्पर कलुषताकी भावना जगने लगी । तो अब ये लोग शस्त्र लेकर दुष्टोसे सज्जनोकी रक्षा करे व्यापारकी विधि, खेतीकी विधि, दस्तकारी कला सेवा आदिककी विधि ये सब आदिनाथ देवने बताये । तबसे लोगोमे यह प्रसिद्धि हुई कि हम लोगोका परमपिता हम लोगोका सृष्टा ब्रह्मा रक्षक आज मिला है । तो वह कर्मभूमिकी एक नवीन रचना थी उस समयसे सृष्टि माननेका सिलसिला चल गया ।

ऋषभदेवकी ब्रह्मरूपता—ये आदिमबाबा ये ही ब्रह्माके रूपमे कहे जाते

हैं। ब्रह्माकी उत्पत्ति नाभिसे होती है। तो आदिदेवकी उत्पत्ति नाभि राजासे हुई थी, ब्रह्मा चतुर्मुख माने गए हैं। तो ये आदिदेव जब तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदयसे सम्पन्न हुए तब इनका मुख चारों ओर समवशरणमें दिखता था। जैसे स्फटिकमणिकी प्रतिमाका मुख और अधिक नहीं तो दो तरफसे तो दिखता ही है। पीछेसे भी देखो तो ऐसा लगेगा कि इसका मुख इस तरफ है क्योंकि वह स्फटिक स्वच्छ है। और, अगल बगलसे भी कुछ समझमे आता है। तो जिसका शरीर स्फटिककी तरह निर्मल बन गया तो परमौदारिक शरीरी प्रभुका मुख अगर चारों ओरसे दिखे तो इसमे क्या आश्चर्य ? एक तो उनके शरीरका अतिशय बन जाता और फिर इन्द्रोका अतिशय। तो चतुर्मुख ये आदिदेव हैं। इस तरह सृष्टि की जो कल्पना है वह कर्मभूमि के आदि समयकी कल्पना है।

सृष्टि और प्रलयका रूप – कहीं यह नहीं होता कि कुछ न था और असत् आ गया। जब कभी प्रलय भी होता है तब भी इस कर्मभूमिके आदि मे प्रलयके आदिमे प्रलयके बाद सृष्टि नही हुई। वहा बराबर ठीक समय चल रहा था। अब इस कलिकालके बाद जिस कालमे दोनो काल सामिल हैं पचम और षष्ठ इसके बाद प्रलय मचेगी व सारे विश्वमे न होगी किन्तु भरत ऐरावतके आर्यखण्डमे होगी, भरत क्षेत्रके समस्त प्रदेशोमे न होगी। तो उस समयके जीव यहा फिर भी कुछ बच जाते है और बहुतसे मर जाते हैं तो वे थोड़े ही समयमे यहां वहा उत्पन्न होकर यही फिर भी पैदा हो सकते हैं। तो सृष्टि कोई एक अपूर्व हुइ हो और वहा किसी एक चैतनने अधिष्ठान किया हो यह बात नहीं बनती। प्रलयकालके तो लक्षण अभीसे ही नजर आने लगे हैं। होगा बहुत दिनोके बाद प्रलय, मगर साधन तो पहिलेसे ही जुटना चाहिये ना, ये अणुबम क्या हैं ? कहते हैं कि ७ दिन अग्निकी वर्षा होगी, अरे ७ दिन क्या ? अधिक दिन भी हो तो आश्चर्य क्या ? ये जितने आज वैज्ञानिक साधन बढ रहे हैं अणुबम रसायनबम, अनेक प्रकार के जो आविष्कार हो रहे हैं और होते जा रहे हैं यह सब उस प्रलयकालकी ही हो तैयारीका प्रारम्भ जैसा लगता है। आजकल जो राकेट चलता है यह भी एक मारकअस्त्र है। तो जो अनेक प्रकारके बम बनाये जा रहे हैं वे कभी न कभी तो फूटेंगे ही। तो प्रलयकाल होगा तो हजारो वर्षोके बाद मगर लक्षण अभीसे दिखने लगे हैं। प्रलय होनेपर भी सर्वाविहार लोप नहीं होता, और सृष्टिके समय कही असत् की सृष्टि नही होती। कोई एक सामान्य व्यवहार चल रहा था जिसमे कुछ असुविधा आने लगी हो वहां एक विशिष्ट पुरुष जन्म लेता है जो सब लोगोको एक सुविधामे लगा देता है। उसीका नाम सृष्टा है।

व्यवहारकी अन्योपदेश पूर्वकतासे लोकमे अनादि परम्पराकी सिद्धि— अन्यके उपदेश पूर्वक वचनव्यवहार होता है, प्रतिअर्थ नियतता होती है इससे यह

सिद्ध नही होता कि कोई एक मात्र चेतन था जिसके स्वामित्वमे यह व्यवहार चला । हाँ यदि केवल साधारणतया साध्य मानेगे अर्थात् व्यवहार अन्योपदेश पूर्वक होता है तो यह बात मानी जा सकती है क्योंकि यह जगत अनादि है और अनादिसे ही एक दूसरेको समझाता आया है और यो समझाते हुए वे व्यवहार करते आ रहे हैं। अन्यो-पदेश पूर्वकता इस परम्परामे घटित हो जायगी किन्तु बिल्कुल ही प्रथक कोई एक चेतन था उसने सब व्यवहार सिखाया यह बात सिद्ध नही होती। अनादिकालसे व्य-वहार चला आया है सभी पुरुषोका व्यवहार चला आ रहा है वह दूसरोके उपदेशपूर्वक है यह बात इष्ट ही है। जैसे इस धार्मिक समाजमे बच्चोको माँ मन्दिर आना सिखाती है तो उस माँ को माँने उसे सिखाया होगा। यो चला आ रहा है । अपने बच्चोको बचपनमे मन्दिर ले जाय और वहाँ बैठना, बन्दन करना सिखाया अनेक बातें ये सब पूर्वोपदेश पूर्वक चली आ रही हैं, तो परम्परासे चली आ रही है, अन्य उपदेशपूर्वक व्यवहार है । यह हेतु तो ससारकी अनादिताको सिद्ध कहता है न कि सृष्टिको । उपदेश पूवकता व्यवहार है। यह हेतु तो ससारकी अनादिताको सिद्ध करता है न कि सृष्टिको उपदेश पूर्वकता व्यवहारमे है, सो इससे यह तो न सिद्ध होगा कि कोई एक ही चेतनके उपदेशपूर्वक हुआ। और, तीसरी बात यह है कि ईश्वरके मुख नही होता । शरीर ही नही तो बिना मुखके उपदेश क्या करें जैसे अन्य मुक्त आत्मा जो अनादि मुक्त नही माने गये कर्ममुक्त माने गये वहाँ भी तो शरीर नही, इन्द्रिय नही मुख नही वे भी तो उपदेश नहीं करते। तो शरीर इन्द्रिय मुखके बिना उपदेश ही कैसे सम्भव हो सकता है ?

प्रभुतामे रागमय प्रवृत्तिकी असभवता— जिस समय ऋषभदेवने युगके आदिमे उपदेश किया था लोगोको सुविधायें प्रदान करनेके लिये उस समय वे भगवान न थे। उनका शरीर इन्द्रिय मुख पुरुषोकी ही तरह था। वे शकाओका समाधान करते थे। किन्हींकी बातका जवाब देते थे, अनेक प्रकारके विधि विधान बताते थे । वे उस समय गृहस्थीमे ही थे। और, जब वे भगवान भी हुये, अरहत भी हुये, सकल परमात्मा हुये उस समय भी उनका उपदेश पुरुषोकी भाँति मुखसे हुआ करता हो सो सम्भव नहीं। कही बताया है कि सर्वाङ्ग दिव्य ध्वनि खिरती थी, कही मुखसे भी बताया है सो सर्वाङ्गमे मुख भी आ गया, मुखसे बोलनेकी प्रसिद्धि है, पर उसका भाव यह है कि दिव्य ध्वनि सर्वाङ्गसे हुई। खैर कैसे भी उपदेश हुआ हो पर उनकी वह ध्वनि इच्छा रहित है, और वह ध्वनि हम आप जैसी शब्दक्रमको लिये हुए नही है । वह ध्वनि ॐकारमय है अतएव सर्वाक्षर है। निरक्षरी कोई भी ध्वनि निकल रही हो सब लोग अपने अपने अभिप्रायसे उसमे अक्षरोका आरोप कर लेंगे। जैसे जब रेलगाडी चलती है धुवा वाला इजन चलता है तो उसकी आवाजमें अनेक प्रकारके अक्षरोका लोक आरोप करने लगते है, ऐसे ही भगवानकी दिव्य ध्वनि खिरती है तो श्रोता लोग उससे अपने अपने ज्ञान विकासके माफिक अपने अभिप्रायका अर्थ निकाल लेते हैं, और चूकि उन

का यह सोचना शब्दपूर्वक है अतएव उस ध्वनिमें उनको वे ही शब्द नजर आते हैं यो ध्वनि सर्वाक्षरमय है और रूपसे अनक्षर है। जो स्वनामागत अधिष्ठायक प्रभुके जब न शरीर है न इन्द्रिय है न. उसका उपदेश होना सम्भव नहीं है, फिर उपदेश पूर्वक सृष्टिके आरम्भमें व्यवहार चला है यह कहना तो अयुक्त है, न सृष्टि सिद्ध है न प्रलयकालमें ज्ञानकी लुप्तता सिद्ध है न प्रभुका उपदेशका चलना सिद्ध है।

पदार्थोंकी ठहर ठहरकर प्रवृत्ति होनेमें एक चेतनाधिष्ठितताकी सिद्धि का प्रयत्न — अब शङ्काकार एक नया अनुमान और रख रहा है। ये जो जगतके दिखने योग्य अथवा न दिखने योग्य जो कुछ भी भूत समुदाय, पदार्थ समुदाय हैं, परमाणु आदिक हैं जो कि लोक-रचनाके हेतुभूत हैं ये सब अपने कार्यकी उत्पत्तिमें सातिशय बुद्धिमान अधिष्ठाताकी अपेक्षा रखते हैं, अर्थात् जिन चीजोंसे यह सारी रचना बनी है वे चीजें निर्माणकार्यमें, अपने परिणमनमें किसी एक बुद्धिमानकी अपेक्षा रखती हैं क्योंकि ये ठहर ठहर कर क्रिया करती हैं। तो जो चीज ठहर ठहर कर क्रिया करे वह किसी एकके द्वारा अधिष्ठित होकर ही क्रिया कर सकती है। जैसे बढ़ई बसूलेसे लकड़ीको छीलना है तो बसूला ठहर ठहर कर चलता है तो उसका अधिष्ठायक बढ़ई है। सो जो चीज ठहर ठहर कर काम करती है समझो उसकी परिणति कराने वाला कोई एक है। तो देखो ना, दुनियामें जो इतने पदार्थ हैं ये पदार्थ काम कर रहे हैं मगर स्थिर होकर क्रिया कर रहे हैं, निरन्तर तो नहीं परिणम रहे हैं, एक स्थूल दृष्टिसे देखना है, चीज ठहरी है और थोड़ी देरमें बदल गयी, तो ठहर ठहरकर ये बदलते रहते हैं, लगातार निरन्तर नहीं बदलते रहते। जैसे मानो दरी बनाई गई तो यह १०–५ वर्ष तो ठहरी रहेगी, इसके बाद सड़ेगी, बदलेगी, दूसरी क्रिया होगी। तो इससे सिद्ध है कि इनके बनानेवाला कोई है। जिस वस्तुमें ठहरकर काम हो उस वस्तुका कोई एक अधिष्ठायक हुआ करता है। ये सारे पदार्थ जो भी नजर आ रहे हैं और नजर भी न आयें वे भी युक्तिगम्य होकर स्पष्ट समझमें आ रहे हैं कि ये पदार्थ ठहर ठहरकर क्रिया करते हैं, हलन चलन करते हैं अपनी बदल करते हैं, इसका कोई एक अधिष्ठाता जरूर है और जो वह एक अधिष्ठाता है वह अतिशयवान कोई एक बुद्धिमान ही हो सकता है।

पदार्थोंकी ठहर ठहर कर प्रवृत्ति होनेसे एक चेतनाधिष्ठितता मानने में विडम्बना — ठहरकर प्रवृत्ति होनेसे एक अधिष्ठायक होनेकी आशंकाके समाधान में एक छोटीसी ही बात सुनो कि ये पदार्थ तो ठहर-ठहरकर क्रिया करते हैं, मगर ईश्वर भी तो ठहर-ठहर कर रहा है। सृष्टि रच दी, अब थोड़ा आराम कर रहा है। थोड़े समय बाद उसके बीचमें ही कुछ पदार्थोंका अदल बदल कर लेगा। तो ठहरकर जो क्रिया करे वह किसी एकके नियन्त्रणमें माना है, तुम्हारा तो ईश्वर भी ठहरकर प्रवृत्ति कर रहा है। देखो ना, हम पैदा हुए और ठहरे ठहरे हैं अभी। हमारे बारेमें

ईश्वर चुपचाप है। इतने ये अजीव पदार्थ बन गये ये भी अभी ठहरे हुए हैं तो इनके बारेमे भी अभी ईश्वर चुपचाप है। तो जब ये चेतन अचेतन समस्त पदार्थ अभी ठहरे हुए हैं तो इसका अर्थ है कि इनके बनाने वाला भी अभी ठहरा हुआ है। वह बनाने वाला भी ठहर ठहरकर कार्य कर रहा है तो उस बनाने वालेका भी बनाने वाला कोई होगा। क्योकि तुमने नियम बना डाला है कि जो ठहर ठहर कर प्रवृत्ति करे उसका कोई बनाने वाला है। और, जो ईशका नियता हो गया उसमे भी वह आदत होगी कि ठहरकर प्रवृत्ति करे। तो उसका भी कोई नियता होगा। तो चलो यो उस नियनाकी अभी सृष्टि नहीं बन सकी फिर विश्वकी सृष्टि कब बने तो यह अनवस्था दोष होगा।

एकाकाशान्तर्गत होनेसे विश्वकी एक बुद्धिमन्निर्मितताहोनेपर विचार

शकाकारका कहना है कि यह सारी दुनिया कोई ७ भुवन कहते कोई १४ भुवन कहते कोई ३ भुवन कहते यह सर्व विश्व किसी बुद्धिमानके द्वारा रचा गया है एकाकाशान्तगर्त होनेसे। कैसे समझा जाय ? देखो—एक मदिर या महल बनाया गया तो उस महलके भीतरकी दीवालें कमरेके भीतरकी ये सब चारो ओर की दीवाले किसी एक कारीगरसे ही बनी हैं। ऐसा आप लोग अदाज रखते हैं कि नही ? जब महल बनता है तो एकदम लगातार बनता है। थोडा थोडा करके तो नही बनता कि एक भीट आज उठाली एक कारीगरने और उससे लगी हुई दूसरी दिशा वाली भीट अगले साल दूसरे कारीगरने उठाली। करीब करीब ऐसा समझमे आता है ना कि महलके भीतरकी जितनी दीवाले हैं वे एक कारीगरके नियत्रणमे बनती हैं। तो इसी तरहमे यह तो है एक छोटा महल और यह सारी दुनिया है एक बडा महल, वह ३, ७ अथवा १४ भुवनो वाली दुनिया एक वस्तु (आकाश) के अन्तर्गत है, सो यह विश्व भी किसी एक नियताके नियत्रणमें ही रचित है। इस आशकाका समाधान यह है कि यह कोई नियम नही है कि एक महलके अन्तगत जितनी दीवालें हो उन सबका निर्माण एक कारीगरके द्वारा ही होता हो यद्यपि प्राय करते हैं लोग ऐसा ही कि एक ही बारमें एकदम लगातार महल खडा कर दिया, बीचमे काम बन्द न हो साधन सब पहिलेसे ही जुटा लिया। लेकिन किसीके ऐसा साधन न हो तो कोई कारीगरोंसे भी वह महल बन सकता है और बीचकी दीवालोमे भी भेद पड सकता है। और, एक बार में भी लगातार भी महल बन जाय वहाँ भी एक कारीगरने नहीं बनाया। उनका समान अभिप्राय था। सभीने अपने अपने अभिप्रायकी चेष्टा की और निर्माण किया। तो यह भी युक्ति सगत नहीं है कि यह समस्त लोक महलकी तरह एक सूत्रधारके द्वारा ही बनाया गया है। इस प्रकार एक इस मुख्य प्रसगमे जिसमे सभी लोग फसे हुए हैं, जिस कर्तृत्वके आशयमें सबकी प्रवृत्ति चल रही है यह बात दिखाई गई कि वह सब किसी एक चेतनके द्वारा किया गया नहीं और इसका सूक्ष्मतासे विश्लेषण करें तो ये सब हम आप एक चेतनके द्वारा भी किए गये नही है। सर्व पदार्थ सत् हैं

अपना अपना उपादान लिये हुए हैं सो अनुकूल पर निमित्तको पाकर स्वयं अपने द्रव्यत्व गुणोके कारण निरन्तर परिणमा करते हैं। यही बात आज है और यही बात अतीतकालमें सदासे चली आयी है और यही बात भविष्यमे सदा चलती रहेगी। इस प्रकार उपादानको स्वतन्त्र निरखना यह तो है एक हितका साधन और परस्पर यह एक दूसरेका कर्ता है ऐसी प्रवृत्ति करना यह है एक विकलताका साधन।

परस्पर अतिशय वृत्ति होनेसे जीवोका एक अधिष्ठायक होनेकी कल्पना अब कर्तृत्ववादके समर्थनमे एक अनुमान और दिया जा रहा है। ब्रह्मासे लेकर पिशाच पर्यन्त समस्त जीव लोक किसी एक चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर कार्य करनेमें समर्थ हो पाते हैं। वे अपना कार्य करनेमे एक ईश्वरके आश्रित हैं क्योंकि वे परस्पर अतिशयवृत्ति वाले हैं अर्थात् वे सब जीव एक दूसरेके आधीन हैं। तब इस से सिद्ध होता है कि आखिर जो सबसे बड़ा होगा वह भी एक किसी सर्व समर्थ एक के आधीन है। जैसे कि यहांपर देखा जाता है कि एक गावका मुखिया है ऐसे ऐसे अनेक गांवोंके मुखियापर नगरका एक मुखिया है, अनेक नगरोका एक मुखिया है, अनेक देशोका एक मुखिया है, तो इस तरह जब बहुतसे अतिशय वाले चढाव उतार वाले प्रभुताको लिये हुए लोग हैं तो ये सब किसी सार्वभौम नरपतिके आधीन हैं। जैसे इसी वर्तमान राज्य प्रणालीको देखलो कि जैसे ग्रामीणोपर ग्रामका थानेदार है, अनेक थानेदार एक कोतवालके आश्रित हैं अनेक कोतवाल एक एस पी के आश्रित हैं अनेक एस पी एक कमाण्डरके आश्रित हैं और अनेक कमाण्डर एक मिनिस्टरके आश्रित हैं। तो जब इसमे भी एक दूसरेसे अधिक विशेष अतिशय देखा जा रहा है देखा जा रहा है तो इसमे यह निर्णय है ना, ये सब एक उच्च कमान या सार्वभौम नरपतिके आश्रित है, इसी प्रकार जगतके जीवोंमें जब परस्पर अतिशय देखा जा रहा है, नरकीटोसे छोटे देवताओंका अधिक अतिशय, राक्षसोंका उनसे अधिक यक्षोका उनसे अधिक और इन्द्रोका उनसे अधिक इस प्रकार परस्पर विशिष्ट विशिष्ट अतिशय वाले देखे जाते हैं तो इससे सिद्ध है कि इन सबमे एक विधाताकी परतन्त्रता है अर्थात् ये सबके सब एक अनादिमुक्त आशङ्काका अब समाधान करते हैं। प्रथम तो अनुमान बनाकर जो दृष्टान्त दिये गये हैं उन दृष्टान्तोंसे ही यह समाधान हो जाता है कि जब यहांके थानेदार कोतवाल आदिक एक दूसरे अफसरके आश्रित हैं तो ये ही ईश्वरके आश्रित न रहे। फिर एक किसी चेतनकी अधिष्ठापना होना और परस्पर अतिशयवान होना इन दोनो बातोका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। हाँ यदि केवल इतना ही कहा जाय कि ये सबके सब जीव किसी एक अधिष्ठाताके आधीन हैं तो यह बात युक्त है। प्रत्येक जीव चाहे वे वर्गोंके इन्द्र भी क्यों न हो, पूर्व भवमें उपार्जित किए हुए अदृष्ट के अनुसार कार्य करने व फल भोगनेमें समर्थ हैं और उनका अधिष्ठायक अदृष्ट है। तो जो जीव जन्म मरण करते हैं, सुख दुख भोगते हैं उनकी इन परिणतियोंमे उनके द्वारा पूर्वोपार्जित कर्म निमित्त है पर कोई दूसरा चेतन किसी दूसरे चेतन कार्यके

लिए कर्ता हो कारण हो सो बात नहीं है।

चेतनकी परिणतिमे अचेतनकी निमित्तता—एक बात और जान ले
है कि चेतनको ता कोई अन्य चेतना निमित्त भी नही बनती किसी काममे। चे
विभावमे सुधार विगाडमे अचेतन निमित्त हुआ करते हैं, चेतनके किसी भी
विगाड आदिकमे चेतन निमित्त नही है इस बातको कुछ विशेषतासे सोचते जा
कदाचित् यह शका कर सकें कि एक जीवको दूसरा ज्ञानी पुरुष उपदेश देता है
उसके सुधारमे कारण बनता है तो देखो ना कि एक चेतनके सुधारमे कारण ब
है, तो देखो ना कि एक चेतनके सुधारमे दूसरा चेतन निमित्त हो गया, किन्तु
कार यहाँ यह भूल जाता है कि उस चेतनको जो सन्मार्ग प्राप्त हुआ है उसमे
रग निमित्त कारण तो कर्मोंका उपशम क्षयोपशम है और बाह्य कारण निरखा
तो वे वचन वगणाये, वे सब अचेतन चीजे बाह्य कारण हैं। किसी चेतनका
स्वरूप इस चेतनका चिन्तनमे विषयभूत ता हो सकता है, आश्रयभूत तो हो स
है, इसका ख्याल करके लक्ष्य करके स्वतन्त्रतया यह अपने आपमे परिणमन
यह बात तो हो सकती है पर कोई चेतन इसको निमित्त बने अ
चैतन्यस्वरूप अन्य इसके सुधारका निमित्त बने यह बात कहाँ आयी
निमित्त और आश्रयमे अन्तर है। आश्रय उसे कहते हैं जिसका लक्ष्य उपयोग
और उपयोगके लक्ष्यसे सम्बन्ध जिसका हो तो, न हो तो वह निमित्त कहलाता
आश्रयभूत करनेकी बात चेतनमे सम्भव है अचेतनमे नही, क्योकि अचेतन अचे
परस्परमे जो कार्य कारणभाव है वह निमित्त दृष्टिसे है आश्रयदृष्टि
नही है। एक जीव चूकि ज्ञानवान है अतएव किसी एक पदार्थको विषयभूत क
अर्थात् ज्ञानका आश्रय बनाकर अपनी कल्पना करके सुख दुःख पाता है। तो लक्ष
दृष्टिमे विषयमे आये हुए पदार्थ आश्रयभूत हैं, निमित्त तो जीवको एक कर्मोंकी
है। तो कीटसे लेकर इन्द्र तक सभी जीवोको अपने-अपने भावोके द्वारा उपा
कर्म, अदृष्ट तो अधिष्ठायक है इस जीवको ससारमे रुलानेके लिये, जन्म म
करानेके लिये सुख दुखकी प्राप्तिके लिए, किन्तु इस विश्वका अन्य कोई अधिष्ठा
हो ऐसा सम्भव नहीं है।

स्वरूपविरुद्धभक्तिमे निराकुलताका अनवसर—हम आप सब
आत्महित तो चाहते हैं और उस आत्महितके प्रयोजनसे ही परमेश्वरकी भक्ति
हैं किन्तु परमेश्वरका ऐसा स्वरूप समझा हो जिस स्वरूपके चिन्तनमे या भक्ति
मके और परमेश्वरकी भक्ति योग्य है और परमेश्वरका ऐसा स्वरूप सोचे जिस
रूपके चिन्तनमे उठा जीवका अनर्थ हो रहा हो, उससे तो आत्माका कल्याण न
जिसके निरे हो तो परमेश्वरकी भक्ति है। तब हम परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपको
और जिस पद्धतिसे उसकी भक्ति करें वह पद्धति ऐसी हो कि जिसमे हम जगजा

छुटकारा पा सकें। परमेश्वरका जब हम यह स्वरूप मान लेते हैं कि वह एक ऐसा समर्थ चेतन है, जो इन सारे विश्वके पदार्थोंकी रचना किया करता है तो भला सोचिये तो सही कि हित तो निर्विकल्प अवस्थाका नाम है जहाँ रच आकुलता न हो उसको ही तो हितकी अवस्था कहते हैं। जहाँ विकल्प उठ रहे हो, विकल्परहित अवस्था न हो सकती हो वहाँ आकुलता कैसे दूर हो सकती है। एक चेतन इस सारे विश्वको, रचता है मुझे भी रचता है, मुझे भी सुख दुःख देता है, मैं स्वयं प्रभु नहीं, समर्थ नहीं, अपने स्वरूप स्वातन्त्र्यकी सुधि नहीं और एक आश्रित उपयोग बन गया तो इस प्रकारके आकर्षणमे जो कि भय पूर्वक हुआ है, जो मैत्री और सन्तोषको उत्पन्न नहीं कर सकता, जिस भक्तिका मूल भय है उस स्वरूपकी भक्तिमे हमको निराकुलता कहा मिल सकती है।

स्वरूपानुकूल भक्तिमे निराकुलताकी ससिद्धि—यह आत्मा एक ज्ञानपुञ्ज है, ज्ञान ही इसका समस्त कलेवर है, एक जिस स्वरूपसे निर्माण हुआ है वही स्वरूप है अर्थात् ज्ञानके सिवाय इस जीवमें हम और कुछ नहीं पाते जिससे जानें कि यह जीव है। तो ज्ञानमात्र यह जीव है इसमे रूप, रस, गध स्पर्श नहीं, इसमें हाथ पैर मुख आदिक तत्त्व नहीं, यह तो केवल ज्ञान शरीरी है। ज्ञानमात्र इस आत्माको समता जगे शान्ति मिले ऐसा क्या उपाय हो सकता है? यह ज्ञानमात्र निस्तरग हो, इस ज्ञानमें कोई कल्लोल न उठे, रागद्वेषकी तरग न जगे किसी भी परका तर्क वितर्क न जगे ऐसा यह ज्ञान जब शान्त सुस्थित होगा तब समता निराकुलता, निर्विकल्पता प्राप्त होगी। तो ऐसा करनेके लिये हम क्या ध्यान बनायें, ऐसा ही निस्तरग ज्ञानमात्र मेरा स्वरूप है इसका ध्यान बने, ऐसा ही प्रभुका स्वरूप है और वह इस रूपमें व्यक्त हो चुका है इस प्रकारका ध्यान बनायें तो यो परमेश्वरका स्वरूप सोचने से उसकी उपासनासे हमारे हितकी सिद्धि हो सकती है पर विरुद्धस्वरूप विचारनेमें अपने भय पूर्वक उसकी उपासना करनेमें उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

सर्वकर्तृत्ववादका मूल निकास निरुपाय सर्वज्ञत्वका समर्थन—यह जो प्रकरण चल रहा है ग्रन्थके वक्तव्यके सदर्भमें, सीधा यह प्रकरण न आता था। प्रकरण था ज्ञानके स्वरूपको बतानेका। प्रत्यक्षज्ञान निरावरण होता है इसका नाम सुनकर अनादिमुक्त सदाशिव सर्वसमर्थ अधिष्ठायक एकचेतनकी श्रद्धामें लोग यहां यह कह उठे कि सर्वज्ञता निरावरण होनेसे उत्पन्न नहीं होती, किन्तु जो सर्वज्ञ है अनादिसिद्धि है, निरावरण स्वय अनादिसिद्धि है। उसमे आवरण था ही नहीं, और फिर इस ही बातके समर्थनके लिये कि कैसे समझा जाय कि वह अनादिमुक्त निरावरण सदाशिव। और सर्वज्ञ है। इसका हेतु दिया गया था कि वह महेश्वर अनादिमुक्त सर्वज्ञ है क्योकि जगतका कर्ता वह हो सकता है जो समस्त विश्वका जानने वाला हो। तो सर्वज्ञमाकी, सिद्धिके लिये कर्तृत्ववादका प्रकरण आया, लेकिन समस्त विश्व

का कोई एक करने वाला है और अनादिसे ही सर्वज्ञ है यह बात सिद्ध नही होती। सर्वज्ञ वह है जिसने कि पहिले योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तपश्चरणसे सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रके प्रतापसे जिनका ज्ञान अभी विकसित हुआ वह महापुरुष सर्वज्ञ होता है।

विविधिस्वभावाकारादिमान् पदार्थोंकी एक स्वभावपूर्वकताकी असिद्धि

जो विश्वकर्ता हो वही सर्वज्ञ होता है इस सम्बन्धमे बहुत विस्तारसे विचार किया गया और प्रतीत हुआ है कि विश्वकर्तृत्व किसी एक चेतनमे नही है। अब एक सीधीसी बात आखिरी सोचें कि परमेश्वर एक स्वभाव है या अनेक स्वभावी। अनेक स्वभावी माननेसे तो प्रभुकी अनित्यता सिद्ध होती जो कि समर्थकका स्वय अनिष्ट है। तब एक स्वभावी रहा अर्थात् उस प्रभुका एक रूपसे वर्ताव एक प्रकारका स्वभाव सम सुस्थित गम्भीर कोई एक ही तो स्वभाव है। तो जो एक स्वभावी है वह अनेक स्वभाव रखने वाले, विचित्र परिणमन करने वाले अनेक पदार्थोंका कारण नही बन सकता। ये पर्वत पृथ्वी वृक्ष जीव लोक नाना शरीर ये एक स्वभावपूर्वक नही हैं, इनमे विचित्र स्वभाव पडा हुआ है क्योंकि इनमें विभिन्न तो प्रदेश हैं, विभिन्न समय है विभिन्न आकार है। किसीका कुछ आकार किसीका कुछ। कोई किसी समय किसी प्रकार परिणम रहा कोई किसी प्रकार। यदि ये सारे विश्वके पदार्थ किसी एक स्व पूर्वक होते तो सब एकरूप ही होते जो अनेक आकार रखते हैं अनेक स्वभाव रखते हैं वे एक स्वभाव पूर्वक नही होते। जैसे घडा, कपडा मुकुट गाडी आदिक अनेक पदार्थ ये अपना भिन्न स्वभाव भिन्न क्रिया, भिन्न आकार रखने वाले हैं तो ये एक स्वभाव पूर्वक नही है।

सहकारी सन्निधानसे एकका विविध कार्यकारित्व माननेका प्रस्ताव

अब यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि क्या हर्ज है। वह एक चेतन एकस्वभावी बना रहे और अनेक स्वभाववाले अनेक आकार वाले इस कार्यका करनहार रहा करे इसमें कौनसी आपत्ति है? क्योंकि वह एकस्वभावी कर्ता नाना प्रकारके सहकारी कारणोंके सन्निधानसे नाना प्रकारके कार्य करता है। कर्ता तो एकस्वभावी है पर जिन जिन कारणोंकी उपस्थितिमे कार्य किया जा रहा है वे कार्य तो नाना हैं। इसलिये नाना कार्य हो जाते है। क्योंकि यह एकस्वभावी कर्ता नाना प्रकारके सहकारी कारणोके सन्निधानमे नाना प्रकारके कार्य करता है। कर्ता तो एकस्वभावी है पर जिन जिन कारणोंकी उपस्थितिमे कार्य किया जा रहा है ये कार्य तो नाना हैं। इसलिये नाना कार्य हो जाते हैं। जैसे एक स्वर्णकार जिन-भिन्न यन्त्रोसे सहायता लेकर सोने चादीके आभूषण गढता है, वे आभूषण उतनी तरहके अलग-अलग आकारके बन जाते हैं। तो जैसे वह स्वर्णकार कर्ता है एक है और अपनी प्रकृति एक रस रहा है लेकिन किसी छोटे यन्त्रमे बनाता है तो छोटा आकार वाली चीज बना लेता है इसी प्रकार वह चेतन कर्ता तो एक है पर एक स्वभावी होकर भी नाना सहकारी साधनोंके कारण नाना प्रकारके आकारोंको र

सकता है ।

सहकारी सन्निधानसे एकका विविध कार्यकारित्व माननेपर अनेक स्वभाव तत्वकी आपतितता—अब कर्ताके एकस्वभावताका समाधान देते हैं कि यहापर भी एक स्वभाव सिद्ध नही हो सकता । एक स्वर्णकार भले ही बीसो तरहके यत्र और साधनोकी मदद लेकर बीसो तरहके आभूषण गढ रहा है लेकिन जिस समय जो यत्र लिया स्वर्णकारने उस समय उन साधनोके अनुसार स्वर्णकारके भाव अभिप्राय आदिकमे अन्तर आ गया । तब वह बनाने वाला स्वर्णकार एकस्वभावी न रहा । अगर नाना यत्रोको उपयोगमे लेकर भी एकस्वभावी रहे तो इनका अर्थ है कि उन यत्रो और साधनोंके कारण यहा अतिशय कुछ नहीं पैदा हो सका, क्योकि यह एक स्वभावी हो रहा । जब उसमे अतिशय न बना तो अनेक साधनोकी अकिञ्चित्करता रही और तब अनेक कार्य बन नही सकते । तो ये सहकारी कारण जो कि नाना प्रकारके हैं यदि कर्ताके स्वभावमें भेद न डाल सके क्योकि इच्छामें, ज्ञानमे, प्रयत्नमे, विकल्पमे यदि अन्य अन्य समर्थताके कारण न बन सके तो ये सहकारी ही नही हो सकते । अन्यथा याने स्वरूपमें भेद तो आये नहीं और सहकारी अन्य चीज बन जाय तो अटपट कुछ भी सहकारी बने । इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि एक सच्चिदानन्दमय कोई प्रभु नाना प्रकारके जगतके इन पदार्थोंका करनहार है । कितनी विचित्रतायें हैं यहांके पदार्थोंमे, एक ही जातिका जीव ले लो । दो इन्द्रिय जीव ही ले लो । कितनी तरहके दो इन्द्रिय जीव मिलेंगे । इन ससारी जीवोंकी तरह अगर बाटी जाय तो १६७॥ लाख करोड भेद पड़ेंगे । ये शरीरके भेदसे ही तो कुल भेद हैं । इनमे अभी अचेतन पदार्थ छूट गए । तो इतने प्रकारके विभिन्न जीवोको नाना अचेतनोको एकस्वभावी कोई चेतन रचे यह बात सम्भव नहीं है ।

सृष्टिकर्तृत्वकी दृष्टि—जीव लोकको, इस विश्वको यदि सृष्टिके रूपमें ही निरखना है, तो यों निरखिये ! जगत में जितने प्राणी हैं ये सब जीव जैसा कर्म करते हैं जैसा बन्धन होता है उस प्रकारका फल भोगते हैं जन्म मरण करते हैं । इस दृष्टिसे स्पष्ट है कि प्रत्येक जीव अपनी सृष्टिका कर्ता है । अब जरा और बढ़ो, जीव जीव जितने हैं ये समस्त जीव एक जातिके हैं और इनका एक स्वरूप है । ये सब जीव एक नही हैं, किन्तु स्वरूप इन सबका एक है, अर्थात् सब चेतनात्मक हैं, ज्ञानात्मक हैं, तो स्वरूपदृष्टिसे एक हैं अर्थात् सभी जीव एक स्वरूप रखते हैं । अब इस प्रसङ्गमे सृष्टिकर्तृत्वका भी ध्यान रहा और उस एक स्वरूपका भी ध्यान रहा, लेकिन बीचमें यह विवेक न रक्खा कि स्वरूप सृष्टिकर्ता नहीं होता, किन्तु व्यक्ति सृष्टिकर्ता होता है । प्रत्येक आत्मा जो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके चतुष्टयसे युक्त है ऐसा व्यक्ति सृष्टिका करने वाला है, तो व्यक्तिमे अर्थ क्रिया नही होती । इसको एक मोटे रूपमें यो समझलो कि जैसे किसीको दूध लावो । तो दूध कहांसे लावोगे ? गायसे लायेंगे ।

किस गायसे लावोगे ? किसी एक गायसे, व्यक्ति रूप गायसे लायेंगे, और गाय गाय सब एक गाय जाति कहलाती है वह जाति भी तो गाय कहलाती । कोई गाय सामान्यसे दूध ला सकता है क्या ? अपना अस्तित्व रखने वाली अनेक गायोमे सदृशता को बताने वाला जो स्वरूप है उस स्वरूपका नाम गाय जाति है, तो दूध कहाँसे मिलेगा, गाय व्यक्तिसे या गाय जातिसे ? अर्थक्रिया कहाँ होगी व्यक्तिमें या जातिमे । तो ये एक एक जीव ये जुदे जुदे व्यक्ति हैं, ये व्यक्ति अपने आपकी अर्थ क्रिया, सृष्टि कर रहे हैं यह बात एक ओरकी है और सभी जीव स्वरूपदृष्टिसे एक है, यह बात एक ओरकी है, इन दो ओरकी बातो को मिलाकर यह भाव बन जायगा कि सभी जीव सृष्टिकर्ता हैं सभी ईश्वर हैं, इस दृष्टिमे वे सब स्वरूपसे एक हैं तब अर्थ यह निकला, भाव यह बना कि एक ईश्वर इस समस्त सृष्टिका करने वाला है लेकिन इसमे भाव क्या है मर्म क्या है इसे पहिचानें, और उसे व्यवहारमे कैसे लायें ? सो यह यो नहीं बनता कि वे दो बातें तो दो जगहकी हैं। सामान्यदृष्टिसे स्वरूप निरखा गया, विशेष दृष्टिसे सृष्टि कर्तृत्व निरखा गया । दो नयोका विषय दो जगह है । अब सृष्टि कर्तृत्व को व्यक्तिसे युक्त न करके और शक्तिसे, सामान्यसे स्वरूपसे युक्त कर देते हैं तो यह बात समझमे यथार्थ बनेगी इस तरह तो नयोके खोज और मिलानसे सृष्टि कर्तृत्व सामान्य मान लेगे, पर कोई एक स्वतत्र प्रभु चेतन जो वह भी अपनी आवान्तर सत्ता रखता है और जगतके ये जीव लोक जो अपनी विशिष्ट सत्ता रखते हैं इसको वह करे, यह बात सम्भव नही है, प्रत्यक्षसे भी नही जाना जा रहा है न किसी अन्य प्रमाणसे भी यह सिद्धि हो सकती है । इससे यह मानो कि विश्वकर्ता होनेसे सर्वज्ञ नही हुआ करता किन्तु निरावरणता आनेसे ही यह आत्मा स्वय सर्वज्ञ होता हैं ।

आवरणके विश्लेषसे सर्वज्ञताके विकल्पकी सिद्धि —सिद्धान्तोकी परीक्षा करानेके उपायोको बतानेके अर्थ इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है अतएव इसका नाम परीक्षामुखसूत्र है । परीक्षामे मुख्य साधन है प्रमाण । और इस ग्रन्थमे आदिसे लेकर अन्त तक एक प्रमाणका ही अन्वीक्षण किया गया है । प्रमाणके अनुकूल, प्रमाणके स्वरूप, प्रमाणके भेद प्रमाणके उदाहरण इन ही सब विषयोसे व्याप्त यह ग्रन्थ है । इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा था कि प्रकरणके दो भेद हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष । प्रत्यक्षके दो भेद हैं—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष । साव्यवहारिक प्रत्यक्षमें तो एकदेश निर्मलता रहती है । जैसे आंखो देखा, यह अमुक पदार्थ है, यह लोग कहते हैं व्यवहार में कि हमने प्रत्यक्ष देखा ! देखना प्रत्यक्ष नही कहलाता । जो इन्द्रिय मनके आधीन ज्ञान हैं वे सब ज्ञान सिद्धान्तमें परोक्ष माने गये हैं, पर दार्शनिक शास्त्रमे चूंकि विविध भापकोंसे वाद-विवादका मुख्य काम रहता है । अतएव इन्द्रियज ज्ञानको भी प्रत्यक्ष माना है । कारण यह है कि इन्द्रियज ज्ञानमे स्पष्टता कुछ प्रतिभास होती है । अभी हमने खुद आंखो देखा । इस ज्ञानमे उसे सन्देह नहीं रहता है । दूसरा है पारमार्थिक प्रत्यक्ष अर्थात् वास्तविक प्रत्यक्ष अनारोपित प्रत्यक्ष । यह पारमार्थिक

प्रत्यक्ष आवरणके विश्लेषसे उत्पन्न होता है। अवधिज्ञान हो तो अवधिज्ञानावरणके योग्य विश्लेषसे अवधिज्ञानकी उत्पत्ति हुई। मनःपर्ययज्ञान हो तो मनःपर्ययज्ञानावरणके योग्य विश्लेषसे उसकी उत्पत्ति हुई। यहां विशिष्ट क्षयोपशमरूप विश्लेष है। क्षयोपशमसे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान भी होते हैं किन्तु इस क्षयोपशममें उसमें कुछ एक विशेषता है कि जितने अंशमें क्षयोपशम है, जितने आवरण इसके विश्लेषित हुए उतना परिज्ञान करनेके लिए इसे इन्द्रिय और मन आदिक अन्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। और जब आवश्यकता नहीं होती तो उस ओर उपयोग लगाते ही फिर बिना प्रयत्नके, बिना श्रमके वह सब कुछ ज्ञात हो जाता है। हां पारमार्थिक प्रत्यक्षमें केवल ज्ञान सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है तो वहां समस्त ज्ञानावरणका क्षय है और समस्त ज्ञान प्रकट है। तो यों प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञानोंमें मुख्य केवलज्ञान, आवरणोंके अपायसे उत्पन्न हुआ है अर्थात् आवरणके विनाश होनेपर सर्वज्ञता हुई है इसके विषयमें भी कुछ चर्चायें आईं, उनका भी समाधान किया।

प्रकृतिके ही सर्वज्ञत्वकी आशङ्का—अब इस प्रसङ्गमें प्रकृति कर्तृत्ववादी खुश होकर कह रहा है कि हां हां, यह बात बिल्कुल ठीक है कि आवरणके नष्ट होने पर सर्वज्ञता होती है। ऐसा नहीं है कि कोई अनादिमुक्त चेतन हो और उसकी सर्वज्ञता हो। सर्वज्ञता आवरणके दूर होनेपर ही होती है किन्तु वह सर्वज्ञता प्रकृतिके ही हुआ करती है चेतन आत्माके नहीं। इस सिद्धान्तमें आत्मा ज्ञानवान नहीं है। आत्मा केवल चैतन्यस्वरूप है। ज्ञानका तो आत्मामें जब समवाय सम्बन्ध होता है तब यह ज्ञानवान कहलाता है। देखिये! अनेक सिद्ध तत्त्व कुछ सामान्यरूपसे भी परखनेमें आ जाय तो सत् सिद्धान्तके माननेमें दृढ़ता आती है। यह बात ऐसी ही है कि जैसे किसी पदार्थका अस्तित्व माननेमें दृढ़ता तब आती है ना जब भीतरमें यह प्रकाश होता है कि यह अन्य नहीं है, यह यही है। ज्ञानकी दृढ़तामें दुमुखी गति होती है—विधि और निषेध रूपसे जैसे यह चौकी है ऐसा ज्ञान करते ही अन्दरमें यह भी तो ज्ञान बना है कि चौकीके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ यह नहीं है। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानमय है हां ज्ञानमय है। एक तो यों साधारण श्रद्धावश स्वीकार कर लिया, रूढ़िवश लौकिक परम्परासे मान लिया और एक इस तरहसे मान लेना कि आत्मा ज्ञानमय ही है, ज्ञानका सम्बन्ध जुटता है तब ज्ञानमय बनता है ऐसी बात इसमें नहीं है किन्तु यह ज्ञानस्वभावमें तन्मय है यह प्रतीतिसिद्ध निर्णय है। जैसे जैसे अन्य विपरीत निषेधकी किरणें आती जाती हैं वैसे ही वैसे विधिमें एक दृढ़ता आती जाती है। तो प्रकृति कर्तृत्ववादी यह कह रहा है कि वह प्रकृतिका ही आवरण है और प्रकृतिका ही आवरण दूर होता है तब प्रकृति ही सर्वज्ञ बनता है।

प्रकृतिका स्वरूप – प्रकृति तत्त्व क्या माना गया। तो सामान्यरूपसे यों समझ लीजिए कि जैसे सभी लोग कहते हैं चेतन और अचेतन। चेतन सामान्य

कहनेमे सब चेतन आ गए और अचेतन सामान्य कहनेमे सब अचेतन आ गए। इस तरहसे है आत्मा और प्रकृति। आत्मा मो है चेतन और प्रकृति है अचेतन। अथवा चेतन अचेतनकी जगह पुरुष और प्रकृति शब्द रख लीजिए पुरुष मायने आत्मा है, तो आत्मा है चेतन व प्रकृति है अचेतन आदमी नहीं। किन्तु कुछ इतनी विशेष बात और समझ लीजिए कि इस सिद्धान्तमें पुरुष भी एक है और प्रकृति भी एक है। जैसे कि चेतन अनेक हैं और अचेतन अनेक हैं, यो लोग मानते हैं यो न समझकर यो समझना है इस सिद्धान्तमे कि पुरुष भी एक है और प्रकृति भी एक है। इसी सिद्धान्तके प्रति विकल्पमे कुछ लोग पुरुषको अनेक भी मानते हैं किन्तु प्रकृति वहा भी एक ही मानी गई है। प्रकृतिको लोग झट कुदरत कह देते हैं। यह तो कुदरतका खेल है। वह प्रकृति, वह कुदरत, वह क्या है? वह सर्व परिणामोका मूल कारण एक अचेतन है, और इस प्रकृतिसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है और इस प्रकृतिमे ही ज्ञानका आवरण पडा है तो इस तरह यह बात तो मान्य हो गयो कि आवरणके विनाश होनेपर सर्वज्ञता होती है, किन्तु वह सर्वज्ञता प्रकृतिके ही सभव है, क्योकि प्रकृतिपर ही आवरण सम्भव है, आत्मामे आवरण नही है। आगममे भी लिखा है कि प्रकृतिके ही परिणमन हैं ये सब शुक्ल कर्म और कृष्ण कर्म, याने पुण्य कर्म, पापकर्म, अच्छे भाव, बुरे भाव, जितना जो कुछ परिणमन है, इसका सक्षेप वहुत कुछ समझनेके लिए यह प्रयोग करें कि जितने जो कुछ भी परिणमन परिवर्तन बदल अच्छेसे बुरे, बुरेसे अच्छे वहुत अच्छे जितने जो कुछ बदल हैं वे सब प्रकृतिके काम है, आत्मा तो अपरिणामी है। बदल केवल साक्षी चित्स्वरूपमात्र है। ऐसे सिद्धान्तमे यह आशङ्का की जा रही है कि प्रकृति ही सर्वज्ञ हो सकती है योकि आवरण प्रकृतिके ही होता है और सृष्टिकर्ता भी प्रकृति है, आत्मा या चेतन सृष्टिकर्ता नही है।

प्रकृतिके आवरण और कर्तृत्वकी असिद्धि—प्रकृति कर्तृत्ववादकी आशका के समाधानमे केवल दो ही बातें कही जा रही हैं एक तो यह कि ऐसा मानना कि जो कुछ भी पुण्य पाप भाव हैं वे सब प्रधानके परिणमन हैं, प्रकृतिके परिणमन है, एक तो यह बात सङ्गत न रहेगी, दूसरे यह प्रकृति ही समस्त परिणमनका करने वाली है यह भी सिद्ध नहीं हो सकता। जब प्रकृतिका परिणमन सिद्ध नही है, प्रकृति लोकका करने वाला है, यह सिद्ध नही है तो इस आत्माको साधन बनाकर जो यह कहा गया कि प्रकृति ही सर्वज्ञ है, आत्मा सर्वज्ञ नही होता यह बात विचारणीय है।

प्रकृतिसे बुद्धि होनेका प्रतिपादन—अब शङ्काकार अपना सिद्धान्त कुछ विस्ताररूपमे रख रहा है कि कैसे कहते कि जगतकी सृष्टि प्रकृतिसे नहीं होती। जितनी सृष्टि हो रही है वह सब प्रकृतिसे उत्पन्न होती है। कैसे सृष्टि बनी? उसका क्रम यह है कि प्रकृतिसे तो महत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्त्व मायने एक ज्ञान, अध्यवसाय, सकल्प विकल्प ये प्रकृतिसे उत्पन्न हुए। जरा शङ्काकारकी बातको समझनेके लिए

स्याद्वादसे सामजस्यकी भी बीच बीचमे झलक होती रहे तो जरा अच्छा समझमे आयगा । स्याद्वादी जन कहते हैं कि प्रकृति के सम्पर्कका निमित्त पाकर ये सकल्प विकल्प उत्पन्न होते है । यहाँ यह कहा जा रहा है कि नहीं, ये संकल्प विकल्प, ये ज्ञान तर्क वितर्क ये सब प्रकृतिमे उत्पन्न होते हैं । इनकी उत्पत्ति सीधे प्रकृतिसे ही हुआ करती है । निमित्तकी बात नहीं है, अर्थात् ये सब प्रकृतिके परिणमन हैं इनका उपादान है प्रकृति । तो सर्वप्रथम प्रकृतिसे महान उत्पन्न हुआ महानका अर्थ है विषयोंमे अध्यवसाय करने वाली बुद्धि । इसीका नाम है अध्यवसाय, विषयोंमें प्रवृत्त करने वाली बुद्धि, एक लगाव रखने वाली बुद्धि । यही तो ज्ञान है । ज्ञान और कहते किस हैं । तो प्रकृतिसे महत्त्वकी उत्पत्तिकी उत्पत्ति हुई अर्थात् प्रकृतिमे बुद्धि प्रकट हुई । वस्तुत बुद्धिका सत्त्व ही नही है आत्मामे । आत्मा तो एक चैतन्य स्वरूप है । यह सब शङ्काकार कह रहा है ।

बुद्धिसे अहकार होनेका प्रतिपादन बुद्धि उत्पन्न हुई है प्रकृतिसे और बुद्धिसे उत्पन्न होता है अहकार । मैं सुन्दर हूँ दर्शनीय हूँ मैं ऐसी पोजीशनका हूँ, मैं नायक हूँ । यो सुखी, दुखी, राव, रक आदिक जितने भी अपने आपमे अहरूपसे मानने के जो सकल्प है उन सबका नाम है अहकार । क्यो जी, जैसे किसीने कहा कि कौन मुझे नही समझता कि मैं इस नगरका करोडपति सेठ हूँ तो यह अहकार कहलाया कि नहीं ? अहकार है । और कोई यह कहे कि मैं तो जनताका सेवक तुच्छ व्यक्ति हू तो यह भी अहङ्कार कहलायेगा कि नही ? यह भी अहङ्कार है । सकल्प विकल्प जो दोनोंने किया ना और सकल्प विकल्पमें अहरूपसे प्रतीति करनेका नाम अहङ्कार है। तो आप समझ लीजिए कि लोकमे बडे बडे ज्ञानियोका ज्ञान देहाती लोगोका ज्ञान ये सब कुछ न कुछ अध्यवसाय रखते हैं । और उसमे फिर इनकी वृत्ति यह उठी तो ये अहङ्कार हैं । इस प्रकृतिसे बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ ।

अहङ्कारसे नियम, इन्द्रिय और भूतोकी सृष्टिका प्रतिपादन—अहङ्कार बनानेसे फिर इन ५ तन्मात्राओकी उत्पत्ति हुई शब्द स्पर्श, रूप, रस और गध । ये ही ५ चीजें तो यहाँ विषयरूपसे समझमे आती हैं । ये सब जब अहङ्कारसे उत्पन्न हुए और अहकारका मूल स्रोत है प्रकृति तो इसका यही अर्थ तो हुआ कि यह सब प्रकृतिका परिणाम हैं प्रकृतिका खेल है । तो इस अहकारसे ५ बुद्धीन्द्रिय उत्पन्न होती हैं अर्थात् जाननहार इन्द्रिय—स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और स्रोत्र । ये ५ प्रकार की इन्द्रिया हैं, ये जाननहार हैं इसलिए ये बुद्धीन्द्रिय कहलाती हैं और इस ही अहकार से ५ कर्मेन्द्रिया उत्पन्न होती हैं । वचन, हाथ पैर आदिक क्रियाशील इन्द्रियां अहकार से उत्पन्न होती हैं । और फिर इस अहकारसे उत्पन्न हुई उक्त १६ बातोंमेंसे ५ तन्मात्राओसे ५ भूत उत्पन्न होते पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश । कैसे सबकी व्यवस्था बनी ? ये सब प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं । सबोंने इसका भाव यह

समझें कि आत्मा तो निर्लेप विविक्त अपरिणामी चैतन्यस्वभावमात्र है। अथवा यो समझिये कि जैसे स्याद्वादी जन परम शुद्ध निश्चय नयका विषय आत्माके सम्बन्धमें करते हैं उस रूपसे है, उस ही नयके स्वरूपको एकान्त करके कि आत्मा ऐसी ही है, इससे बाहर इसमे ऊपर इसका व्यक्तरूप कुछ नही है यह तो है आत्माकी बात और जितने ये सर्जन हैं, सृष्टि हैं परिणमन हैं ये सब प्रकृतिकी चीज हैं। प्रकृतिसे बुद्धि हुई बुद्धिसे अहङ्कार हुआ अहङ्कारसे ये बुद्धीन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुए और इनमेसे ५ भूत उत्पन्न हुए जो कि लोगोको स्पष्ट नजर आ रहे हैं।

दृश्य पदार्थोंकी भौतिकता—यहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारके सिवाय और क्या नजर आता है? कोई कहे वाह ये आदमी नजर आ रहे हैं तो यह आदमी क्या है? पृथ्वी ही तो है? लोग कहते भी हैं कि यह शरीर क्या है, मिट्टी है मिट्टीमे मिट्टी मिल गई। एक बार कोई अक्कडबाज आदमी बडो अकडसे चल रहा था तो रास्तेमें उसे एक छोटेसे पत्थरकी ठोकर लग गई। ठोकर लगनेसे वह पत्थर निकल गया उसमे गड्ढा बन गया, तो कविकी भाषामे —वह जमीन यह कहती है—अरे आदमी तू अकड मत दिखा, तू तो जो मेरे मे यह गड्ढा बन गया है उसको पूरने वाली चीज है। तो जितने भी ये गन्धवान पदार्थ हैं ये सब पृथ्वी हैं और जितने रसवान पदार्थ हैं वे सब जल है। इस आदमीके शरीरमे जो खून आदिक द्रव्य चीजें पायी जाती हैं वे सब जल तत्त्व हैं और जो कुछ तेजोमय हैं वे अग्नि हैं। इस आदमीमे जो गर्मी पायी जाती है। और इसमे हवा है वायु उठती है, वह वायु तत्त्व है। तो यह एक चार महाभूतोंका पिण्ड है, और एक है आकाश जो सबमे समाया है तो यह सारा जितना जो कुछ परिणमन है प्रकृतिका परिणमन है। प्रकृतिसे ही ज्ञान बनता है और प्रकृतिसे ही ज्ञानपर आवरण रहा करता है और आवरण दूर होनेसे प्रकृति ही सर्वज्ञ बनती है। कोई आत्मा सर्वज्ञ नही बना करता। ऐसा शङ्काकार प्रकृतिके २४ तत्त्व और एक पुरुष तत्त्व यो २५ तत्त्वोका समर्थन कर रहा है। जहाँ तत्त्वोंकी संख्या प्रधान है उस सिद्धान्तको कहते है सांख्य।

प्रकृति और व्यक्तरूपोकी त्रिगुणात्मकतासे विश्वको प्रकृत्यात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—प्रकृति कर्तृत्ववादके समर्थनमे और भी कहा जा रहा है कि देखो ना, ये सारे महत्तादिक भेद बुद्धि अहंकार विषय इन्द्रिय आदि ये सबके सब प्रकृतिस्वरूप हैं, प्रकृत्यात्मकता हैं क्योकि प्रकृति और इसमे कुछ भेद नजर नही आते। सब प्रकृति स्वरूप हैं। लोग भी कह बैठते हैं कि सब कुदरतका खेल है। कोई कहे कि अरे जिस कुदरतका खेल है उसे जरा पकडकर दिखाओ तो सही कि यह है कुदरत और यह है इसका खेल। अरे खेलके रग रगमे कुदरत समायी हुई है उसको अलग क्या बताओगे। जितने ये परिणाम हैं प्रकृतिके, ये सब प्रकृत्यात्मक है और इससे भी साफ विदित होता है, जैसे प्रकृति त्रिगुणात्मक है - सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण,

इन तीन गुणोमे व्याप्त प्रकृति है। तब बुद्धि आदिकको भी देख लीजिये। ये भी त्रिगुणात्मक हैं कभी बुद्धिकी तामसी प्रकृति बन जाती है कभी राजसी और कभी सात्त्विकी। जब बुद्धिमे राजसी प्रकृतिकी प्रमुखता आ जाती है तब यह क्रुद्ध, दुष्ट, प्रचड दूसरेका विनाश करनहार, इस प्रकारकी निवृत्ति होती है और जब यह बुद्धि तामसी प्रकृतिमे आती है तब यह कायर अज्ञान अवोध, वरवादीके सम्मुख हुआ यह अवस्था आती है। जब बुद्धि सात्त्विकी प्रकृतिमें आती है तब स्वच्छ ज्ञान, दूसरोका मार्गदर्शक, स्वय अपनेमें सावधान, इस प्रकार बडी समताका अनुभव करने वाला बुद्धि होती है। इस प्रकार इन सब तत्त्वोंमें त्रिगुणात्मक है तो प्रकृति भी त्रिगुणात्मक है।

प्रकृति और व्यक्तरूपोके अविवेकित्वसे विश्वको प्रकृत्यात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—दूसरी बात—ये महत्तादिक तत्त्व ये सब अविवेकी हैं तो प्रकृति भी अविवेकी है इस त्रिगुणात्मक स्वरूपमे यह विवेक नहीं किया जा सकता। ये स्वय यह भेद नही डाल पाते कि लो यह तो सत्त्वगुण, यह है रजोगुण, यह है तमोगुण। कारण यह है कि सभी पदार्थ निरन्तर त्रिगुणात्मक रहती है। ऐसा नहीं है कि कोई पदार्थ वडे उच्च विकासमें आया है तो उसमे रजोगुण और तमोगुण न रहे, सत्त्वगुण ही रहे। विकास स्वच्छ होता है इसका अर्थ है कि सत्त्व गुणकी प्रधानता आयी है। तो वे तीनोंके तीनो उसमे स्वरूपमय होनेके कारण वह विवेक नहीं रख सकता है। तो अविवेक प्रकृति भी है और अविवेककी ये सब व्यक्त परिणमन भी है अथवा इससे यह विवेक नही किया जा सकता कि इसमें यह गुण है और यह गुणी है ये सत्त्वादिक गुण हैं और ये बुद्धिआदिक गुणी है, किन्तु जो गुण है वही व्यक्त है, जो व्यक्त है वह ही गुण है। इस तरह व्यक्त मायने यह बुद्धि अहकार सृष्टि आदिक ये सब और अव्यक्त मायने प्रकृति। दोनोका स्वरूप एकसा मिलता है इससे यह निश्चय होता है कि यह सबका सब परिणमन एक प्रकृतिका परिणमन है सर्वप्रकृत्यात्मक है।

प्रकृति और व्यक्तरूपोंको विषय अथवा उपयोग्य दिखाकर विश्वको प्रकृत्यात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—इसी प्रकार इन व्यक्त चीजोंको भी देखो ये विषय बन रहे हैं। ये भोगनेमे आते हैं। कभी बुद्धि भोगनेको आती, कभी विषय भोगनेमें आ रहे। इन सब पदार्थोंका उपभोग भी किया जाता तो ये सब उपभोज्य है अतएव विषय हैं और प्रकृति भी उपभोग्य है, प्रकृति भी भोगी जाती है। प्रकृति तो भोगी जाती है और भोगने वाला चेतन है इस सिद्धान्तमे। जरा स्याद्वादियोंकी कुछ मान्यतावोको सामजस्य करके भी देखलो! जैसे कहा गया कि रागद्वेषादिकका करनेवाला है कर्म, ये वर्णादिकभाव कर्मकृत हैं और कमके मायने प्रकृति! कर्मकी ८ प्रकृतिया हैं ज्ञानावरणआदिक और १४८ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। तो कर्म कहो या प्रकृति कहो, रागादिक भावोंका करने वाला है प्रकृति। मगर प्रकृति क्या रागादिक

भावोको भोग सकती है ? कर्म क्या रागादिक भावोको भोग सकते हैं ? इनके भोगने वाला चेतन है तो वही हम कह रहे हैं प्रकृतिकर्तृत्ववादका यह सिद्धान्त है कि करने वाली प्रकृति है। सारी रचना, सारी सृष्टि, यह सब प्रकृतिका काम है और जो रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं अथवा ये सबकी सब चीजें हैं इन सबका भोगने वाला आत्मा है और इसपर भी तारीफ देखते जाइये कि यह आत्मा इन सब प्रकृतियोको भोगता है और फिर भी अपरिणामी है। कोई पूछे कि यह कैसे हो जायगा कि भोगने वाले भी चेतन बने रहे और अपरिणामी अर्थात् टससे मस न होने वाले बने रहे। तो भाई! बात यह होती है कि पुरुषका आत्माका स्वभाव तो चेतन है और जितने ये ज्ञान हैं, जितने ये सङ्कल्प हैं ये सब प्रकृतिके धर्म हैं। तो यह प्रकृति अपना धर्म, ज्ञान आकार, स्वरूप, ढांचा, निर्माण आदि सब चेतनको सौंप देता है। और इस समपर्णके प्रसङ्गमे जो कुछ भोगनेकी बात बनती है यह एक प्रकृतिके ससर्गमे बनती है। आत्मामे स्वय कोई तरङ्ग नही है। इस प्रकार प्रकृति कर्तृत्ववादी मूलमे २ तत्त्व रखकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि प्रकृति ही सर्वज्ञ बन सकता है, आत्मा सर्वज्ञ नहीं होता।

विश्वका निर्णय यह विश्व क्या है ? इसका सही निर्णय न हो, तो एक अँधेरा सा रहता है। क्या करना चाहिए ? किस तरह शान्ति मिले ? इन बातोका कोई मार्ग नही दीखता। अत इस विश्वका निर्णय करना आत्महितार्थीको आवश्यक है। यह विश्व क्या है ? इस सम्बन्धमे स्याद्वाद शासन बताता है कि यह अनन्तानन्त पदार्थोंका समूह है। ये समस्त पदार्थ ६ जातियोमे विभक्त हैं–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव तो अनन्तानन्त हैं, पुद्गल उनसे भी अनन्तानन्त गुणे हैं, धर्मद्रव्य एक, अधर्मद्रव्य एक, आकाशद्रव्य एक और कालद्रव्य असख्यात हैं। इन समस्त अनन्तानन्त पदार्थोंमें परिणमनेकी शक्ति पायी जाती है। और वे योग्य निमित्त सन्निधानको पाकर स्वय ही परिणमते रहते हैं यह है लोक व्यवस्था। इस लोककी व्यवस्था प्रकृतिकर्तृत्ववादी यो कहते है कि केवल मूलमे दो ही तत्त्व हैं – पुरुष और प्रकृति अर्थात् आत्मा और प्रधान। आत्मा तो केवल एक चैतन्यमात्र है, उसमे ज्ञान भी नही है, वह अपरिणामी है और प्रकृतिका यह समस्त खेल है सारी रचना प्रकृतिकी है। प्रकृतिसे ये ज्ञान अहकार आदिक सब उत्पन्न हुए। सारा विश्व एक प्रकृतिकी ही लीला है।

व्यक्त और प्रकृतिमे सामान्यकी दृष्टिसे अभेदका समर्थन इस प्रसङ्ग मे यह चर्चा छेडी गई है कि यह सारा विश्व प्रकृतिरूप ही है यह कैसे माना जाय ? तो प्रकृतिसे जो कुछ उत्पन्न हुए हैं बुद्धि अहकार आदिक इन सबमे और प्रकृतिमें अभेद दिखाया जा रहा है। चूंकि ये सब कार्य भी उसी स्वरूपको रख रहे हैं जिस स्वरूपको प्रकृति रखती है। तो उन स्वरूपोमे तीन स्वरूप और बतलाये जा रहे हैं–

सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मी। प्रकृति भी सामान्यरूप है और ये जगतके पदार्थ विषय शब्दादिक इन्द्रियाँ भौतिक पदार्थ ये सब भी सामान्य हैं। यहाँ सामान्यका अर्थ है जो सबके उपयोगमें आवे! जैसे लोकमें अपने घरकी पत्नी तो विशेष स्त्री कहलाती है और जो गणिकादिक हैं उन्हे लोग सामान्य स्त्री कहते हैं क्योंकि उनका कोई एक पति नहीं है, वे जिस चाहेके द्वारा उपभोग्य होती हैं। तो इसी प्रकार ये पदार्थ भी जो जगतमे दिखते हैं ये सबके द्वारा उपभोग्य हैं। प्रत्येक आत्माके द्वारा उपभोग्य हैं। इसी प्रकार प्रकृति भी उपभोग्य है। तो चूँकि सामान्य होनेमे प्रकृतिमे और प्रकृतिकी पर्यायोंमें बुद्धि अहकार पृथ्वी जल आदिकमें कोई अन्तर नही है। सो ये सब प्रकृतिस्वरूप हैं।

अचेतन और प्रसवधर्मीकी दृष्टिसे व्यक्त और प्रधानमें अभेदका समर्थन— दूसरा स्वरूप बतला रहे हैं, अचेतन। प्रकृति भी अचेतन है और प्रकृतिसे उत्पन्न हुए बुद्धि अहकार इन्द्रिय और विषय पृथ्वी आदिक ये सब भी अचेतन हैं। तो अचेतनत्व इन व्यक्तिरूपमे भी पाया जाता और अव्यक्त प्रकृतिमे भी। इससे सिद्ध है कि यह सब जग जाल प्रकृत्यात्मक है। तभी तो देखो ना कि प्रकृतिके ये परिणमन हैं सुख दुःख. लेकिन इन सुख दुखोको प्रकृति नहीं भोग सकती। भोगनेवाला आत्मा है। तो सुख दुख रागद्वेष मोह आदिक भावोको भोगनेमें असमर्थ है प्रकृति, इस कारण अचेतन है और ये सब दृश्यमान पदार्थ भी अचेतन हैं। तीसरा स्वरूप बताया जारहा प्रसवधर्मी अर्थात् एक दूसरेको उत्पन्न करनेका धर्म रखना। जैसे प्रकृतिने बुद्धिको उत्पन्न किया और इन विषयोने पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश इन ५ महाभूतोको उत्पन्न किया। जैसे इनमें दूसरेको उत्पन्न करनेका धर्म पाया जाता है वैसे ही प्रकृति में भी सर्वधर्मित्व पाया जाता है। तो प्रसवधर्मी होनेके कारण है प्रकृति और प्रकृति के ये परिणमन, यह सब दृश्यमान विश्व सब एक चीज रही। इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रकृत्यात्मक है।

प्रकृतिके स्रष्टत्वका विचार— प्रकृतिकर्तृत्ववादी यहाँ अपना यह अभिप्राय रख रहे हैं कि प्रकृति ही तो सृष्टिकर्ता है और सृष्टिकर्ता होनेके कारण प्रकृति ही सर्वज्ञ हो सकता है, प्रकृतिपर ही आवरण होता है और आवरणके बिना वह प्रकृति सर्वज्ञ बनती है, आत्मा सर्वज्ञ नही होता क्योंकि आत्मामें ज्ञान ही नही है। ज्ञान भी प्रकृतिका गुण है। इस तरह प्रकृतिकर्तृत्ववादमें आत्माकी सर्वज्ञताका निषेध करनेके लिए यह प्रकृतिके सृष्टिकर्तृत्वकी बात आई है इसका अब समाधान पाना है। यह कहना कि अहकार बुद्धि आदिक ये सब प्रकृत्यात्मक हैं। यह कथन ही वचनबाधिक है। यदि यह सब व्यक्तरूप प्रकृतिस्वरूप है, तो प्रकृति तो एकस्वभावी है तो फिर प्रकृतिसे इस प्रवृत्तिका निष्पादन नहीं हो सकता क्योंकि जो जिससे सर्वथा अभिन्न है वह उसका कार्य बन सकता न कारण बन सकता। जैसे आत्मा चिन्मात्र माना है तो

यह बतलावो कि चैतन्य कारण है या आत्मा कारण है ? आत्मा और चैतन्य इन दोनोमे कार्य क्या है और कारण क्या है ? जब दोनो अभेद हैं, एकस्वरूप है तो उन मे कार्यकारणका विभाग नही बनाया जा सकता । तो इस प्रकार ये विषय अहकार पृथ्वी जल आदिक समस्त पदार्थ जब कृतिस्वरूप मान लिया, प्रकृतिका इनमे अभेद मान लिया तब फिर कार्य कारण नही बन सकता कि यह प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ और इन सबका कारण प्रकृति है ।

भिन्नलक्षण पदार्थोंमे कार्य कारणकी सभवता—कार्य कारण तो भिन्न लक्षण वाले पदार्थोंमे बनता है । अग्नि कारण है धूम कार्य है अग्नि चीज अलग है धूमका लक्षण अलग है, कही रोटी बनाना हो तो रोटी धुवाँ पर न धर देंगे तो धुवाँ का कार्य अलग है अग्निका काम अलग है, धुवांका स्वरूप न्यारा है, अग्निका स्वरूप न्यारा है इस कारणसे इसमे कार्य कारणकी बात बन जाती है । लेकिन जब बुद्धि अहकार पृथ्वी जल आदिक सबको प्रकृत्यात्मक मान लिया तो कार्य करण विभाग अब नही बन सकता । एक रूप होनेपर भी यदि काय कारण मान लिया जाय तो कोई उल्टा भी कह सकता है, यो व्यवस्था नहीं बन सकती तब फिर ऐसा ऐलान करना, ऐसी प्रतिज्ञा करना कि जो उसका कारण है वह कारण ही हैं और विषय, अहकार, इन्द्रियभूत ये सब कार्य हैं । अथवा उनमे भी ऐसा भेद डालना कि प्रकृति तो कारण है और बाकी जो आखिरी चीजें है भूत इन्द्रिय ये सब कार्य ही है । और, बुद्धि अहकार और शब्दादिक विषय ये किसीके काय हैं और किसीके कारण हैं, ऐसा कहना व्यर्थ है । जब प्रकृतिका और इन सब परिणामोका अभेद है तो वहाँ कार्य कारण विभाग हो नही सकता, क्योकि कार्यकारण भेद अपेक्षा रखकर होता है, इसका यह कार्य है, इसका यह कार्य है, इसका यह कारण है, वे दोनो अलग-अलग हो और फिर उनमे अपेक्षा हो तो कार्य कारण भेद बनता है । सो न तो अलग-अलग माना है कि प्रकृति जुदा है बुद्धि अहकारादि जुदा हैं, इस प्रकार जुदापन भी नही मान रहे तब फिर इसमें कार्यकारण भाव नही बन सकता । अन्यथा जैसे कहते हो कि यह सारा जगत प्रकृतिका विकार है, हम कह बैठे कि सारा जगत आत्माका विकार है जब प्रकृति और इस जगतमें तुम्हारा कुछ भेद नहीं तो प्रकृतिका कार्य है कहनेके बजाय कोई कह दे कि आत्माका कार्य है सब तो उसमे क्या आपत्ति आती है । इससे यह बात कहना कि यह सब प्रकृतिकी सृष्टि है और इन सृष्टिका प्रकृतिमे अभेद है, युक्ति सङ्गत नहीं है ।

हेतुमत्त्व दिखाकर व्यक्त अव्यक्तमे भेद करनेका प्रयास—अब शङ्काकार प्रकृति और सृष्टिका अभेद बतानेमे जब कार्य न बना सके तो कह रहे हैं कि प्रकृतिमें और इस सृष्टिमे भेद है । प्रकृतिका लक्षण दूसरा है और इस व्यक्तरूपका लक्षण दूसरा है, किस प्रकार सो देखिये । जितने ये व्यक्त काम हैं बुद्धि, अहकार, इन्द्रिय, पृथ्वी

आदिक ये सब कारणवान हैं इन सबका कारण है कोई न कोई, किन्तु प्रकृतिका कोई कारण नही है तब प्रकृतिमे और इन व्यक्तरूपोंमें लक्षण भेद हो गया । यह सारा व्यक्त रूपमे समझमें आ रहा है, सकल्प विकल्प समझमे आ रहे हैं ना, ये व्यक्त हैं, अहंकार व्यक्त है, पृथ्वी आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति किसीसे उत्पन्न नहीं हुई, प्रकृति अनादिसिद्ध है और आत्मा भी अनादिसिद्ध है । न प्रकृतिका कोई कारण है न आत्मा का । तो इस प्रकृतिमे और इस व्यक्त विश्वमे भेद हैं । यह व्यक्त स्वरूप जितना है सबका कोई कारण है । ये पृथ्वी जल आदिक शब्दरूपादिकसे उत्पन्न हुये । इनका कारण विषय हैं । विषय, इंद्रिय ये सब अहंकारसे उत्पन्न हुए है, इनका कारण अहंकार है । अहंकार बुद्धिसे उत्पन्न हुआ सो अहंकारका कारण बुद्धि है और बुद्धि प्रकृतिसे उत्पन्न हुई, सो बुद्धिका कारण प्रकृति है, पर प्रकृति तो किसीसे भी उत्पन्न नही हुई । सो प्रकृति अकारण है ।

व्यक्तका अनित्यत्व व अव्यापित्व बताकर व्यक्त व अव्यक्तमे भेद करनेका प्रयास व्यक्त और अव्यक्तमे और भी भेद सुनो । यह सृष्टि सब अनित्य है । बुद्धि, अहंकार महाभूत, इन्द्रिय ये सब अनित्य हैं । विनाशीक हैं इनका विनाश होता है किन्तु प्रकृतिका विनाश नही होता । क्योंकि, जो उत्पन्न हुआ वही तो नष्ट हो सकता है । प्रकृति उत्पन्न होती ही नही । प्रकृति अनादि सिद्ध है अत नित्य है और नित्य है ये बुद्धि अहंकार तन्मात्र ये ये सब उत्पन्न होती हैं इस कारण इनका विनाश है । प्रकृति और पुरुष ये स्वर्गमे, आकाशमें सर्वत्र व्यापक रूपसे रहते हैं किन्तु ये बुद्धि अहंकार पृथ्वी आदिक ये तो व्यापकरूपसे नही रहते । तो यह भी भेद पाया जाता है कि प्रकृति तो व्यापक है और ये सब व्यक्त रूप व्यापक नही हैं ।

व्यक्तका सक्रियत्व अनेकत्व दिखाकर व्यक्त व अव्यक्तमे भेद करनेका प्रयास –अब व्यक्त और अव्यक्तमे चौथा लक्षणभेद सुनो । यह सारा व्यक्त रूप जो है वह सब सक्रिय हैं, इनमे क्रिया पायी जाती है, चेष्टा पायी जाती है तरगे पायी जाती है समरणके सम्बन्धमे यह बुद्धि अहंकार आदिकमे संयुक्त होकर यह सूक्ष्म शरीर व्यक्त रूप होकर संसारमे परिभ्रमण करता है । किन्तु प्रकृति यह तो विभु है सर्वत्र व्यापक है जो सब जगह फैला हुआ है, एक है वह कहाँ हिले डुले ? जैसे किसी घडेमे पूरा पानी भरा है ऊपर तक, अब वह कहाँ छलके कहाँ हिले डुले ? यदि पूरा व्यापक नही हैं तो वह हिलेगा डुलेगा, यदि पूरा व्यापक नहीं है तो वह हिले, डुलेगा छलकेगा । तो ये पृथ्वी आदिक कहाँ व्यापक हैं, इनका तो ओर छोर नजर आता है, ये इन्द्रिया कहाँ व्यापक है, बुद्धि भी कहाँ व्यापक है ? इनका तो ओर छोर नजर आता है, ये इन्द्रियाँ कहाँ व्यापक है, बुद्धि भी कहाँ व्यापक है ? इनका तो ओर छोर नजर आता है अतएव ये चेष्टावान हैं, किन्तु प्रकृतिमे कोई क्रिया नही है । ५ वाँ लक्षण भेद बतला रहे हैं कि ये सब अनेक है, परन्तु प्रकृतिमे एक है । बुद्धि अनेक है,

विभाव, रागद्वेष अहकार पृथ्वी, जल, रूप, रस आदिक ये सब व्यक्तरूप अनेक हैं किन्तु प्रकृति एक है। क्योकि वह तीन लोकका कारण है, जितने भी सर्जन है जितने भी दृश्य अथवा अदृश्य जो भी परिणमन हैं उन सबका कारण एक प्रकृति है, तो प्रकृति एक है और जो व्यक्तरूप है यह नाना है, यह भी भेद पाया जाता है।

व्यक्तका आश्रितत्व और लिङ्गत्व दिखाकर व्यक्त व अव्यक्तमे भेद करनेका प्रयास— छठवाँ लक्षणभेद बताते है कि यह सारा व्यक्तरूप आश्रित है परन्तु प्रकृति किसीके आश्रय नही रहती। जो चीज जिससे उत्पन्न होती है वह उसके आश्रय कही जाती है। जैसे ५ महाभूत उत्पन्न हुए हैं—रस, गध आदिक विषयोसे तो महाभूत इन विषयोके आश्रित है, तभी तो जब यह विषय अलग-अलग हो जाता है बिखर जाता है तो यह स्थूल व्यक्तरूप भी बिखर जाता है। तन्मात्रायें अहकार उत्पन्न है सो ये अहकारके आश्रित है। अहकार बुद्धिके आश्रित है, पर प्रकृति किसीसे उत्पन्न नही है इसकारण किसीके आश्रित नही है। इस आश्रयपनेका भी प्रकृतिमे और इस व्यक्त विश्वमे भेद है। अब सातवाँ लक्षण भेद भी प्रकृतिमे और इस व्यक्त विश्वमे बतला रहे हैं कि प्रकृति तो अलिङ्गरूप है और यह सारा व्यक्त विश्व लिङ्गरूप है। यह लयको प्राप्त हो जाता है। जिसका लय हुआ करे उसे कहते हैं लिङ्ग। अर्थात् जितना यह व्यक्त विश्व है प्रलय कालमे, यह एक दूसरेमे लयको प्राप्त होता है पर प्रकृति किसमे लयको प्राप्त हो? तो यह सारा विश्व लय वाला है और प्रकृति लयसे रहित है। प्रलयकालके समयमे यह बहुत मोटे रूपमे दिखने वाला महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये सबके सब विषयोमे विलीन हो जाते है क्योकि ये सब विषयोंसे उत्पन्न हुये हैं। पृथ्वी गधमे लीन होगी, जल रसमें लीन हो जायगा, अग्नि रूपमे लीन हो जायगी, वायु स्पर्शमें लीन हो जायगी, और आकाश शब्दमे लीन हो जायगा। ये पाँचो विषय अहकारमे लीन होगे। अहकार बुद्धिमे लीन हो जायगा और बुद्धि प्रकृतिमे लीन हो जायगी, उनका नाम प्रलय है, फिर कुछ नही बचा, अब प्रकृति रह गयी और आत्मा रह गया। ये दोनो अविनाशी तत्त्व हैं, इनका कही लय नही होता, यह व्यक्त विश्व रूप लयको प्राप्त होता है परन्तु प्रकृतिका लय नही होता। यो प्रकृतिका और इस व्यक्त विश्वका भेद है।

व्यक्तका सावयवत्व और पारतन्त्र्य दिखाकर व्यक्त व अव्यक्तमें भेद करनेका प्रयास—अब ८ वाँ लक्षणभेद देखो! यह साराका सारा विश्व पृथ्वी आदिक ये सब सावयव हैं, इनका हिस्सा है, इनका नाप तोल है, लम्बाई चौडाई है, परन्तु लम्बाई चौडाई अश प्रकृतिमे नही। प्रकृति निरश है, लेकिन यह सारा विश्व साश है। कोई चीज उठाकर देख लो, सबमे अश पाये जाते हैं, सबमे माप पाया जाता है। तो इस व्यक्त रूप और अव्यक्त प्रधानमे भेद है। अब ९ वाँ लक्षण भेद सुनो! ये सारे विश्वके पदार्थ परतन्त्र हैं। क्यो परतन्त्र है? यो कि इसका कारण

है। ये किसी कारणसे उत्पन्न हुए हैं। जैसे पुत्र पितासे उत्पन्न हुआ है। तो पुत्र परतंत्र है, पिताके आधीन रहता है। इसी तरह यह सारा जहान एक दूसरेसे उत्पन्न हुआ है, तो जो जिससे उत्पन्न हुआ वह उसके आधीन है, पर प्रकृति किसीसे उत्पन्न नहीं इसलिए परतंत्र नहीं। तो यह व्यक्त विश्व परतंत्र है और यह प्रकृति परतंत्र नहीं क्योंकि यह सदा अकारण है और इसी कारण किसीके आधीन नहीं है। इस प्रकार प्रकृति और विकृतिके भेदसे इस विश्वमें और इस प्रकृतिमें लक्षण भेद है अतएव ये न्यारे-न्यारे है, और जब ये न्यारे-न्यारे है तब तो मान लोगे हमारी बात कि इनमें कार्यकारण भेद है।

व्यक्त और अव्यक्तमें लक्षणभेदका समाधान—अब इसका समाधान किया जा रहा है। पहिले तो यह अनिश्चय देखो कि यह सिद्ध करनेके लिए कि यह सारा विश्व प्रकृत्यात्मक है, इस विश्वमें और प्रकृतिमें अभेद सिद्ध करनेकी पड़ गयी थी और जब यह बात रखी कि यह सारा विश्व प्रकृत्यात्मक है, अभेद है, एक रूप है उसमें कार्यकारण भेद तो नहीं बन सकता तब यह सिद्ध करनेकी बात आयी कि यह व्यक्त सारा विश्व जुदी चीज है और प्रकृति चीज जुदी है इनमें लक्षण भेद है। जब जुदा है तो कार्यकारण मान लिया जायगा। तो जब जैसी जरूरत पड़ी तब तैसा भेद माना, अभेद माना। खैर तुम्हारे लक्षण भेदको थोड़ी देरको विचार करनेके लिए मान लिया जाता है पर वह लक्षण भेद बनता नहीं है।

एकस्वभावमें कार्यकारणपनेका अनवकाश—जो यह बात कही थी कि यह व्यक्त सारा विश्व कारण वाला है, किसी न किसी कारणसे उत्पन्न नहीं होता, यह भी एक कथन मात्र है क्योंकि जो जिससे भिन्न स्वरूप वाला है वह उससे विपरीत नहीं कहा जा सकता क्योंकि जुदापन वहीं माना जा सकता है जहां स्वभावमें विपरीतता है। प्रकृतिका स्वभाव और व्यक्त विश्वका स्वभाव तुमने एक माना है, अचेतन है प्रकृति और अचेतन ही है यह सारा जहान तो यह व्यक्तरूप विश्वका अचेतन है और प्रकृति भी अचेतन है। जब एकस्वभाव हो गया और एकरूप मान लिया तो उसमें यह कहना कि यह हेतुमान है, यह हेतुमान नहीं है यह बात नहीं बनती। क्योंकि भिन्न स्वभावका कारण हो तो विपरीतता है। भिन्न स्वभाव न हो और फिर भी उनमें विपरीतता जतानेकी कोशिश करना कि प्रकृति जुदी है और यह व्यक्तरूप जुदा है तो फिर कहीं वह भेदव्यवहार नहीं बन सकता है। कोई भी चीज न्यारी न समझिये, और वहां भी सत्व, रज और तम ये तीन गुण परस्पर भिन्न स्वभाव वालोंमें भेद न पाया गया तो सारा ही विश्व एकरूप हो जाना चाहिये। सत्वकी क्या प्रकृति अलग, रजकी क्या प्रकृति अलग? जब सब प्रकृत्यात्मक हैं तो इनमें भी कोई भेद न रह सकेगा।

प्रकृति पुरुषके स्वरूपसंपादनका प्रयोजन—यहां इस पूर्व पक्षको यों

समझ लीजिए कि ऐसा मना गया है कि जिसमे कुछ भी अदल बदल होती हो सूक्ष्म रूपसे भी जहाँ कुछ परिणमन ज्ञात हो वह सब प्रकृतिका प्रसार है और जहाँ रंच मात्र भी परिणमन नही है, केवल एक चित् है वह है आत्मा। आत्मा कर्ता नही है, केवल भोक्ता है, सो भोक्ता भी कब है कि जब बुद्धिने जिसका निर्णय किया वह अर्थ प्रकृतिने सौंप दिया आत्माको। तो आत्मा उसे चेतता है इतना ही मात्र भोगना है। किन्तु जो सुख होता है दुःख होता है यह तो प्रकृतिमे होता है, आत्मामे नही होता है, देखिये ! भोगनेकी बात थोडी देरको हम करे भी और भोगनेका कोई अर्थ न आसके तब सुखी दुःखी प्रकृति होगी। जब रागद्वेष भी प्रकृति हुई तो और भोगना क्या है ? किन्तु भोगनेकी बात प्रकृतिमे यो नही कही जा सकती कि इसमे चैतन्यात्मकता नही है, तो यह साराका सारा विश्व एक प्राकृतिक है आत्मा एक चेतनमात्र है। तो ज्ञान होना है प्रकृतिमे, माया भी होती है। आत्मा सर्वज्ञ नही होता यह इनके कहनेका तात्पर्य है। सब कुछ प्रकृतिका ठाठ है। ऐसा माननेमे इन लोगोने कोई हित तो सोचा होगा। अपनी बुद्धिके अनुसार जो हित सोचा गया है वह हित यह सोचा गया है कि आत्माका ऐसा स्वरूप माननेमे हित है जिस स्वरूपको जानकर समझकर कुछ भी ग्रहणमें न आये ऐसा ही आत्माका स्वरूप बनाना चाहिए। तो आत्मा यदि ज्ञान-स्वरूपी बना तो ज्ञान तो समझमे आता। ज्ञानमे तो परिणमन है। आत्माको नित्य अपरिणामी माननेके लिये ये सब प्रकृतिकी बातें बताई गई हैं कि यह सारा विश्व एक प्रकृतिकी लीला है, आत्माकी लीला नही है। आत्मा तो एक नित्य अपरिणामी चैतन्यमात्र है। इस प्रकार यह सारी विश्व रचना प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुई, इस सिद्धान्तका रखा गया है।

निर्मोहतामे जीवका हित जीवका हित मोहके हटनेमे ही है। कारण यह है कि जगतके समस्त पदार्थ स्वतन्त्र अपना अस्तित्व रख रहे है। किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ रंच भी सम्बन्ध नही है। यह जीव ही अपने आपकी ओरसे कल्पनाये करके पदार्थोंसे सम्बन्ध मानता है, और पदार्थोंका सम्बन्ध है नही, पदार्थ वे अपने आपके परिणमनसे अपने रूप परिणमेगे और यह मोही जीव उनमे कल्पनायें कर बैठा कि ये मेरे हैं यह वैभव मेरा है, ये लोग मेरे हैं, मैं जैसा चाहूँ तैसा इन्हे रहना होगा, मेरे से ये कभी दूर हो नही हो सकते, यो कल्पनायें कर रखी और भाति, पदार्थोंका स्वरूप है और भाति। इस कारण वेदना जीवमे हुआ करती है। जिनको हम सिद्ध परमेष्ठी कहते, जिनकी हम बडी उपासना करते हैं उनमें और बात हैं क्या ? यही अन्दरमे ज्ञानप्रकाश हो गया है, उनकी दृष्टि इस स्वरूपपर स्थिर हो गयी है कैवल्यकी उपासनासे कैवल्य प्रकट हो गया है। वे प्रकट निहार रहे हैं कि अणु अणु पृथक हैं, मेरे आत्मासे यह सारा शरीरको पिण्डोका, कर्मोंका समूह पृथक है। मेरा स्वरूप न्यारा है इसमे रागादिक विभाव भी नही है। ये भी कर्मका कारण पाकर उत्पन्न हुए हैं। मैं सबसे निराया अलिप्त हूँ ऐसे चैतन्यस्वरूपको

श्रद्धा और ऐसा ही निरन्तरका ज्ञान और इस ही रूप अपना आचरण बनाना, यह तपश्चरण किया था इसके प्रसादसे सर्वत शुद्ध परिणति पाई जाती है। इसी कारण सिद्ध परमेष्ठी पूज्य हैं। हम आप सब उनकी उपासना करते हैं। ये साधुजन इस ही निर्लेप चैतन्यस्वभावकी उपासनासे कममुक्त हो जाते हैं, प्रभु हो जाते हैं और जिन प्रभुकी हम उपासना करते हैं वे अरहत और सिद्ध ऐसे ही प्रभु हैं। इन निर्मोह निर्दोष प्रभुकी उपासनासे हमें निर्मोहताका पाठ लेना चाहिये।

प्रभुका उपदेश माननेमें प्रभुका यथार्थ विनय — भैया ! हम उनकी उपासना तो करें और अपने आपमे उल्टा ख्याल रखें कि मेरा ही तो यह वैभव है, मेरी ही तो यह इज्जत हैं, मैं देखो इस लोकमे कैसा पडा हूँ इस लोकमे मेरा नाम है मैं कैसा सुखी हूँ, ऐसे पर्यायके नाते जो जो कुछ बात है उसरूप अपना अनुभव करें तो उसे यो समझिये कि जैसे कोई अपने पितासे वचन तो बडे विनयके कहता है पर न उसकी बात मानता है, न उसके खाने पीनेकी सुधि करता है तो वह अपने पिताका भक्त तो न कहलायेगा। केवल बातोसे ही तो उस पिताका पेट न भर जायगा। ठीक इसी तरह प्रभुकी कोई बडी पूजा करे, बडे सुन्दर शब्दोंमे बडी ऊँची स्तुति बोल जाय, पर प्रभुकी तरहका अपना आचरण बनानेकी बात वह एक न माने, और प्रभुके गुणगान करता रहे तो उससे कहीं वह प्रभुका भक्त न कहलायेगा। उससे उसकी कुछ भी सिद्धि न हो सकेगी। प्रभुका मुख्य उपदेश यह है कि इन परपदार्थोंमे ममताका परित्याग करो। घरमे रहते हुए भी निर्मोह रहा जा सकता है, घर त्याग करके भी निर्मोह रहा जा सकता है। निर्मोहका अर्थ है यह स्पष्ट अपने आपमे भान रहना कि मेरा मेरे आत्मस्वरूपमें सिवाय मेरे इस ज्ञानानन्द स्वभावके सिवाय कुछ भी मेरा नही है। मैं केवल निज ज्ञानानन्दात्मक ही हूँ, इस प्रकारकी दृढ श्रद्धा होना, ऐसा ही ज्ञान रखना यही तो निर्मोहिता है। तो निर्मोह हुये बिना जीवका उत्थान नही हो सकता।

दर्शनशास्त्रोका उद्देश्य निर्मोहताका उद्यम — निर्मोहताके उद्यममें अनेक दर्शनोका ज्ञान किया जा रहा है। निर्मोह कैसे बने इसके लिए ज्ञान चाहिये, और वह ज्ञान किस दर्शनमे किस तरहसे दिया है, क्या युक्ति निकाली है ? तो उपाय की खोज सबकी एक इस निर्मोहताके लिये हुई है। जो ईश्वरको सृष्टिकर्ता मानते हैं वे यह उपाय निकाल रहे हैं कि चूंकि शरीर, वैभव आदिक यह सब कुछ ईश्वरने बनाया है इस लिए ये कोई भी पदार्थ मेरे नहीं हैं, ये तो ईश्वरकी चीज हैं। ईश्वरकी जो चीज है वह ईश्वरके नामपर ईश्वरको ही सौंपो उसमें मेरा कोई हक नहीं है, यह बुद्धि बनाकर उन्होने मोहको दूर करनेका उपाय निकाला। तो यहाँ प्रकृतिकर्तृत्ववादी मोह दूर करनेका ही एक उपाय बना रहा है इसका कथन है कि मैं आत्मा तो एक चैतन्य मात्र हूँ, इसमें तो रचमात्र भी तरङ्ग नहीं है, किसी भी प्रकारका अदल बदल नहीं है, यह तो चित्स्वरूप है। जितना अदल बदल है वह सब अचेतनका है, सुख दुःख होता

है तो, रागद्वेष होता है तो अथवा ये विभाव आदिक होते हैं तो ये सब अचेतनके अदल बदल हैं, प्रकृतिके धर्म हैं, मैं तो पुरुष हूँ, आत्मा हू, चैतन्यस्वरूपमात्र हू, मेरी कुछ भी अदल बदल नही । इस प्रकारका परिज्ञान करके यह भेदविज्ञानका उपाय निकाला कि मैं तो एक चैतन्यस्वरूप हूँ, उससे जब अलग हुआ और भ्रममे पडा प्रकृति के धर्मको हमने अपना माना तो ससारमे रुलते हैं। मैं उन्हे अपना न मानूं, मैं चैतन्य स्वरूपमात्र हूँ एसा सकल्प करूँ और ये सारी लहरें जो भ्रान्तिके कारण उठ रही हैं ये समाप्त हो तो निर्मोहता प्रकट होगी ।

आत्माके अपरिणामित्वकी मान्यतामे अध्यात्म यत्नका अनवसर—भैया ! मोटे रूपसे बडी भली बाते लग रही हैं कि हाँ ठीक तो है निर्मोहताका उपाय प्रकृतिवादने सही निकाला। लेकिन, जब यह प्रश्न उठ खडा होता है कि आत्मा चैतन्यस्वरूपमात्र है इसमे सुख दुख नही, रागद्वेष नही, अहङ्कार विषय कषाय नही, तब फिर ठीक है, रहने दो, अब पडन क्या आयी ? कौन सी समस्या उठ खडी हुई जो मुक्तिका उद्यम करना पड रहा है ? अरे प्रकृतिमे रागद्वेष हुए, प्रकृति ही मुक्ति करे, मैं आत्मा हूँ मुझे मुक्तिके लिए क्या उद्यम करना ? तो एक कोरा शुद्ध निश्चयका एकान्त भी तो उत्साहहीन कर देता है । अरे मैं स्वभावत तो चैतन्यस्वरूप हू, विशुद्ध हू, इस मुझमे ही तो प्रकृतिका निमित्त पाकर ये रागद्वेषादिक परिणतियाँ होती हैं, इनको मिटाना है और मुक्ति प्राप्त करना है। यह साहस तब जग सकता है जब सही रूपमे यह तत्त्व माना जाय कि मैं आत्मा हूँ, और अपरिणामी नही किन्तु सत्व होनेके नाते परिणमनशील हूँ। आज मेरा यह अहितरूप परिणमन है। यह परिणमन मेरा मिट सकता है और शुद्ध परिणमन आ सकता है। इस परिणमनको मेटनेके लिए उपाय मुझे ही करना है और वह उपाय ज्ञानका उपाय है ।

धर्मकी आविर्भूति धर्मकरो ! यह उपदेश किया । तो धर्म करनेके लिए मैं क्या करूँ ? क्या हाथ पैर चलाऊँ ? क्या यहाँ वहाँकी चीजोको उठाऊँ, धरूँ ? क्या करूँ ? व्यवहारमे यद्यपि इन क्रियाओका उपदेश दिया जाता है –पूजा करो, द्रव्य चढाओ यात्रा करो, अनेक हस्तपादकी क्रियायें करते हैं, लेकिन ये क्रियायें एक मनको थामनेके लिये हैं । अयोग्य बातोमे, विषय कषायोके परिणामोमे यह मन न जाय, उसके लिए एक आलम्बन किया है । उस आलम्बनमें रहकर प्रभुके स्वरूपपर दृष्टि दे लूँ, अपने स्वरूपपर दृष्टि दे लूँ इसके लिए यह व्यावहारिक यत्न किया है । तो धर्म कहाँ हुआ ? हाथ पैर चलानेमे नही किन्तु अपने भीतर ज्ञान दृष्टि द्वारा जो स्वरूपका स्पर्श हो, प्रभुके शुद्ध विकासका परिज्ञान हो वहाँ धर्म है । धर्म क्रियावोंमे, चेष्टावोमे नही है । धर्म करो इसका सीधा अर्थ यह है कि मोह रागद्वेषसे अलग होवो । कुछ क्रिया करनेका नाम, द्रव्यका दान देनेका नाम, परका उपकार करनेका नाम, यथार्थत धर्म नही है । इनका नाम व्यवहारमे तो धर्म कहा जाता है लेकिन इसमे

परखिये कि इन क्रियावोंके करते हुएमें भी यह मैं आत्मा इन सबसे निराला ज्ञान मात्र हूँ ऐसी दृष्टि रखकर अपनेमें रमनेकी बात रमता हूं या नहीं। अगर निर्लेप निरखकर अपनेमें रमणकी बात आती है तो धर्म किया जा रहा है अन्यथा कषाय मेटनेके लिए जो व्यवहार धर्म बताया गया है वह व्यवहार धर्म कषाय बढ़ानेमें भी कारण बनाया जा सकता है। त्याग किया जाता है परम विनयशील होकर अपने आपके स्वरूपमें नम जानेके लिए और कोई पुरुष त्याग करके दुनियामें अपनी उच्चता दिखाता है—मैं ठीक चल रहा हूँ, मेरी पद्धति लाकमें अच्छी बनी है, पोजीशन सम्हली है, ऐसा भाव बनाया तो वह त्याग मान कषाय बढ़ानेके लिए हो गया जो कि नम्र विनयशील होकर अपने आपके स्वरूपमें नम जानेके लिए था, लीन हो जानेके लिए था वह कषायकी वृद्धिका साधन हो गया है, तो सम्यग्ज्ञान ही हम आपका सत्य शरण है।

अभेदमें कार्यत्व व कारणत्वकी अव्यवस्था—प्रकृति कर्तृत्ववादी यह कह रहे हैं कि दुनियामें जो कुछ भी यह प्रसार है, जो कुछ भी भौतिक नजर आ रहे हैं या जो कुछ समझमें आ रहा है, विकल्प आ रहे हैं, तरंगें हो रही हैं ये सब प्राकृतिक हैं, प्रकृतिके धर्म हैं, प्रकृतिको कहते हैं अव्यक्त और इन सब मायाजालोंको कहते हैं व्यक्त। व्यक्त मायने जो स्पष्ट लोगोंकी समझमें आ रहा है अव्यक्त मायने जो प्रकट नहीं हो पाता, जिसको समझ नहीं पाते, पकड़ नहीं सकते, दिखा नहीं सकते, जो इन्द्रिय द्वारा गम्य नहीं है वह है अव्यक्त जो समझमें आ रहा है वह है व्यक्त। तो प्रकृति है अव्यक्त, जिससे संसारकी रचना चलती है और ये सारी रचनायें हैं व्यक्त। तो यहां यह बात कही गई थी कि व्यक्त और अव्यक्तमें भेद नहीं हैं। जब व्यक्त और अव्यक्तमें भेद नहीं है। एक हैं फिर यह बात कैसे बन सकती कि अव्यक्त तो कारण है और व्यक्त कार्य है जब इनमें भेद ही नहीं माना है। एक स्वरूप है यह, तो छटनी कैसे की जा सकती है कि कारण तो अव्यक्त है, कोई यों कह देगा कि कारण तो व्यक्त है व कार्य अव्यक्त है। जब दोनों एक हो गये तो उल्टा भी कार्यकारण बता सकते हैं। इस कारणसे कोई यह निश्चय, एकान्त नहीं बन सकता कि प्रकृति कारण है और ये सब कार्य हैं।

मूल पदार्थोंकी वैज्ञानिक खोज—भैया! कुछ भी जरा सत्य दृष्टिमें खोजा जाय, उनके उपादानको तका जाय और वैज्ञानिक ढङ्गसे सोचा जाय तो यह नजर आयगा कि जितने ये रूप, रस, गंध स्पर्शवान पदार्थ हैं वे सब एक मूलमें कुछ उपादानको लिए हुए हैं और चूंकि इन सबके खण्ड खण्ड हुए देखे जाते हैं, दरी है, ततुवों का समूह है एक ही ततुमें हजारों टुकड़े होते हैं, उनके भी और टुकड़े होते हैं स्वयं टुकड़े हो होकर कोई ऐसा टुकड़ा भी होता है जिसका फिर भाग नहीं होता। तो इससे सिद्ध होता है कि इसका मूल उपादान कारण अतिसूक्ष्म है और वह कहलाता है अणु। तो रूपी, सूक्ष्म नित्य ऐसे अणु दृश्यमान स्कंधके उपादान हैं और जितने

केवल भावात्मक तत्व हैं, जहा रूप, रस गध स्पर्श नही पाया जाता है, ऐसे रागद्वेष सुख दु ख ज्ञान ध्यान साधना ये अन्त जितने ज्ञानादि भाव पाये जाते हैं ये सब चेतन के धर्म हैं। यो चेतन भी बडा विस्तार लिए हुए है और यह अचेतन भी बडा विस्तार लिए हुए है। इससे उनमे यह छाँटना कि आत्मा तो अपरिणामी ही है, वह किसी कार्यका नही करता, उसका कोई प्रसार नही है, यह सब प्रकृतिका प्रसार है। जितने नर कोट आदि जीव दिख रहे है ये सब प्रकृतिके धर्म हैं प्रकृतिसे ये सब उत्पन्न हुए हैं यह छाट नही हो सकती। ऐसा कार्य कारण भाव तो तब माना जा सकता है जब इनमे अन्वय व्यतिरेक हो। मगर यह निश्चय तो नही कि प्रकृतिसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति है। यह तो एक कल्पना है और कल्पना श्रद्धावश रूढिमे आ जाय तो कुछ ऐसा नजर आने लगता है।

कल्पनाकी वकालत—कल्पना प्रभाव देखिये ! सच्ची बात भी विरुद्ध कल्पना करनेपर असत्य मालूम होती है। असत्य बात भी कल्पना होनेपर सत्य मालूम होती है। एक कथानक है कि कोई पुरुष एक बकरी लिए जा रहा था। चार ठगोने देखा कि बकरी बडी सुन्दर है और सोचा कि इसे तो छीनना चाहिये, सो परस्परमे सलाह करके वे चारो ठग उसी रास्तेमे आगे शीघ्र जाकर एक एक मीलको दूर पर जाकर खडे हो गये। पहिले मीलपर जब वह बकरी लेकर पहुँचा तो ठग बोला—अरे भाई, बडा अच्छा कुत्ता लाये, कहासे लाये ? बस उसकी बात सुनकर वह आगे बढा, यह सोचता हुआ कि यह झूठ कह रहा है। जब दूसरे मील पर पहुँचा तो दूसरा ठग बोला—वाह जी, कितना सुन्दर कुत्ता तुम्हारे पास है ? अब वह इस विचारमे पड गया कि यह कुत्ता है या बकरी ? जब तीसरे मीलपर पहुँचा तो तीसरेने कहा—आप कहाँ जारहे है इस कुत्तेको लेकर ? अब तो उसके और भी कल्पना जगी। जब चौथे मीलपर चौथे ठगने भी वही बात कही तो सोचा कि देखो सभी कह रहे हैं कि यह कुत्ता है तो हमको भी भ्रम हो गया है कि यह बकरी है, है वास्तवमे कुत्ता ! तो उसे वही छोडकर लौट आया। ठगोने उस बकरीको ले लिया। तो देखो इतनी मोटी बात भी कल्पनायें बन जानेके कारण वह न जान सका कि यह कुत्ता है या बकरी ? ऐसे ही किसी पुरुषसे कोई दूसरा व्यक्ति कहदे कि आपका चेहरा आज बडा उदास है ? क्या तकलीफ है ? फिर कोई तीसरा कहदे कि आज तो आपकी तबियत कुछ खराब जैसी दिख रही है। इसी प्रकार कोई चौथा भी कुछ कहदे तो उसके अन्दर ऐसी कल्पनायें बन जायेंगी कि उसके और नही तो कुछ ज्वर जरूर हो जायगा कल्पनायें उठ रही है तो कल्पनाओसे उससे भी कुछ यथार्थ दिख सकता है। तो प्रकृति क्या है ? इसका कुछ निर्णय न रखकर, कहते आये हैं साधु सन्यासीजन, लगता है ऐसा कि सत्य है महाराज, मगर प्रकृति कौनसा उपादान है, किसका नाम है, उसमे क्या गुण है ? कौनसे असाधारण लक्षण हैं ? विचार करनेपर कुछ समझमे तो नहीं आता, मगर हाँ है प्रकृति। लोग भी तो कह बैठते हैं कि यह सब कुदरतक

खेल है। देखो ना, पहाड़पर कैसे कैसे फूल खिल रहे, कैसे सुन्दर झरने झर रहे, यह कुदरत है। मगर उस कुदरतको हाथमे रखकर बतावो तो सही कि यह है कुदरत !

प्रकृतिकी सृष्टिका भाव - अरे कुदरत नाम है प्रकृतिका। यह सब प्रकृति का खेल है। तो सही क्या बात है ? प्रकृति नाम है कर्मका। कर्मकी ज्ञानावरण आदिक ८ मूल प्रकृतियाँ हैं। ८ कर्म और १४८ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इन कर्मोंके उदय का निमित्त पाकर इन आत्माओंकी ऐसी परिणति हुई है, ऐसा शरीर मिला है, ये फूल पत्ते जो नजर आ रहे हैं ये सब क्या हैं ? उस उस जातिके नामकर्मके उदयका निमित्त पाकर इस जीवकी ऐसी परिणति हुई है और ऐसी शरीर मिला है। जीवका ऐसा बन जाना स्वभाव न था पर ये बन गये, यह क्या है ? प्रकृतिका खेल है प्रकृति का नाच है। तो प्रकृति मायने कर्म। मायने कर्मका नाच। तो वह कर्म एकरूपी पदार्थ है, बनता है मिटता है, जिसका निमित्त पाकर यह सब विश्वकी रचना हुई है। वह कर्म तो नित्य अपरिणामी तत्त्व नहीं है। किन्तु वह नष्ट होता है बढता है आत्माके मुक्त होता है। उस कर्मकी बात यहाँ प्रकृति शब्दमे कही गयी हो तो प्रकृति नित्य तो नहीं हो सकता क्योंकि नित्यमे कारणता नहीं है, नित्यमें परिणति नहीं होती। जो कूटस्थ नित्य है, जो ज्योंका त्यों है, जिसमे कुछ परिणमन नहीं है तो उस मे अर्थक्रिया कैसे होगी ? कोई काम कैसे बनेगा, अनुभवन कैसे चलेगा ? यदि नित्य मे भी परिणमन मानते हो तो यह बतलाओ कि नित्य पदार्थमे वह सब परिणमन जिससे परिणत हुआ करता है वह परिणमन क्रमसे होता या एक साथ। क्रमसे वह परिणमन बन नहीं सकता। क्योंकि जब नित्य है, एकस्वभावी है तो क्रम कैसे रखें ? प्रथम तो बने कुछ तो नित्य ही नहीं रहा और नित्य है और बननेकी बात है तो जितना जो कुछ बनना चाहिये वह सब एक साथ हो जाना चाहिये।

नित्यमे भी परिणामकारणत्वकी सम्भावनाकी आशङ्का—शङ्काकार कहता है कि इसमे क्या हर्ज है कि नित्य भी बना रहे और परिणामका कारण भी बना रहे। जैसे एक सर्प है, सर्प कभी कुडरिया रूपमे आ जाता है, कभी टेढ़ा चलता है कभी मेढा चलता है कभी सीधा पड जाता है। तो जैसे सर्पने अपने आपके ही शरीरमें एक कुण्डली बना ली तो कुण्डली परिणमन हुआ कि नहीं, उस सर्पका परिणाम ? सर्पकी एक बदल कुण्डलीरूपमे है कि नहीं ? है, पर सर्प तो वही है जो पहिले था और अब है। एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि जैसे सर्प वहीका वही है फिर भी उसमें परिणमन होता है तो नित्य होकर भी परिणामसे परिणत हुआ और उस परिणामका कारण कहा जाय तो इसमे कौन सी गलत बात है, वे परिणाम कार्य हुए और जो परिणामको प्राप्त हो वह कारण हुआ। तो इसी तरह प्रकृति नित्य है। नित्य होनेपर भी उसमें महान अहङ्कार बुद्धि इन्द्रिय आदिकके परिणमन क्यो

हुए ? इन परिणमनोको प्रकृतिने प्राप्त किया तो ये परिणाम प्रकृतिके कार्य कहलाये और इन परिणामोका प्रकृति कारण कहलाया प्रकृति वहीकी वही हैं इसमे कौनसा विरोध हो गया ? अरे परिणाम तो एक वस्तुमे ही हुआ करता है और परिणाम व प्रकृतिका अभेद है। अभेद होनेपर भी कार्य कारण भाव बन रहा है, इनमे कोई विरोध आता है क्या ? जैसे स्याद्वादवादी भी मानते हैं कि पदार्थ वह एक है और उसमे नवीन नवीन पर्यायें चलती हैं। यह बतलावो कि वे पर्यायें उस पदार्थसे क्या न्यारी हैं ? न्यारी हो तो अलग करके दिखा दो। जैसे चावल और कूडा न्यारे न्यारे हैं अभी मिले हुए हैं तो चावलको कूडामे अलग करके दिखा देते चावल अलग है कूडा अलग है। इसी प्रकार जीव और क्रोध अगर न्यारे हैं तो दिखा दो कि यह है जीव। जीवका क्रोध परिणाम अभेद है या भेदका लिए हुए है ? अभेद है। एक ही वस्तुमें जितने परिणाम होते हैं वे उस हीमें तो हैं उस हीमे अभेदरूप भी है और भेद रूप भी है। फिर भी कारण कार्य बना हुआ है। जीव क्रोधादिक परिणामोसे परिणत हो रहे हैं तो परिणाम कार्य है और जीव उनका कारण है। तो एक ही वस्तुमे परिणाम और परिणामी अभेद होनेपर भी उनमे कार्य कारणका भाव बनाया जा सकता है ? तो इस समय प्रकृतिवादी यह कह रहे हैं कि प्रकृति एक वस्तु है और ये सब परिणाम उसमेसे निकलते हैं। उन परिणामोसे यह अभिन्न है, यह कारण है और यह परिणाम कार्य है।

अपूर्व विज्ञानके लिये समाधान उपयोग देनेकी आवश्यकता—किसी भी एक नये अपूर्व ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए धीरे धीरे उद्यम करना चाहिये। और उसमे धीरता रखना चाहिये। कदाचित् जीवनको ऐसा ही बनाया जाय कि जो सरल बातें हो उन्हीको पसद करे तो यह विचार करो कि सरल नाम है किसका ? या तो व्यावहारिक मोटी बातें हो या किस्सा कहानियाँ आदिक हो पर रोज रोज उन्ही सरल बातोंके सुनते सुनते फिर उन सरल बातोका कुछ असर नही रहता। जैसे जो कबूतर रोज रोज किसी ठन ठनकी आवाजको सुनता रहता है उस कबूतरको उस ठन ठनकी आवाजका फिर कुछ भय नही रहता है, यो ही सरल बातोंको रोज सुनते सुनते फिर उनका कुछ असर नहीं रह जाता है। लोग थोडी सी कठिन बातको सुनकर अपने मनको पहिलेसे ही ढीला कर लेते, फिर अपने मनको व्यापारिक कार्योंमे लगा देते हैं तो उस विषयसे वे अत्यन्त दूर हो जाते हैं, तो वह विषय उनके लिए कठिन तो लगेगा ही। कितनी ही कठिन बात क्यो न हो, यदि ज्ञानसे काम लिया जाय तो यह बात थोडे ही समयमे अत्यन्त सरल हो जायगी।

तत्त्वनिर्णयमें धीरताकी आवश्यकता—ज्ञानमे तो ऐसी अद्भुत लीला है कि यदि आप चाहें तो घरके अन्दरकी कोठरीमे रखे हुए तिजोडीके भीतर सन्दूकके अन्दर किसी पोटलीमें बंधे हुए स्वर्ण खण्डको आप यहाँ बैठे ही जान सकते हैं। इस

ज्ञानको वे दीवाल, दरव जे तिजोडी आदि कोई रोक नही सकते । तो जिस ज्ञानमे इतनी शक्ति है उस ज्ञानमें थोडी भी कठिन बात समझमे न आये ऐसा हो नही सकता। हाँ कोई भी चीज हो वह धीरे धीरे समझमे आयगी। एकदमसे तो कोई चीज समझ मे नहीं आ जाती। कोई चाहे कि हम इस सारे पर्वतको एक बारमे ही लाँघ जायें तो यह कैसे हो सकता है, धीरे धीरे ही उस पर्वतको पार किया जा सकता है। अथवा कोई चाहे कि मैं इस विद्याको एकदमसे हो सीख लूँ तो कैसे सीखा जा सकता है? धीरे धीरे उसको सीखा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार यदि आप लोग इन कठिन बातोको भी धीरे धीर समझनेका प्रयत्न करते रहेंगे तो कुछ समयके बादमें इनसे भी कठिन बातें सुगमतासे समझमें आ जायेंगी। तो यहाँ यह कहा जा रहा है कि प्रकृति तो नित्य है और उसके परिणमन बन रहे, उसमें गुण नजर आ रहे ऐसा माननेमें तो कोई दोष नहीं है। उत्तर है अभी दिया जायगा विस्तार सहित कि बात तुम्हारी ठीक है मगर यह अनेकान्तका आलम्बन होगा। इससे प्रकृति कथचित नित्य है कथचित् अनित्य है यह सिद्ध हुआ है।

एक नित्यवस्तुमे परिणामकी सभावनाकी आशङ्का और समाधान—की दिशा - इस समस्त लोककी रचना प्रकृतिकृत माननेपर यह पूछा गया था कि ये जितने जो कुछ परिणमन हैं वे परिणमन प्रकृतिमे भिन्नरूपसे हैं या अभिन्नरूपसे हैं? प्रकृति चूँकि नित्य है तो नित्यमें परिणाम बन नही सकता। जो कूटस्थनित्य है उसमे कुछ अदल बदल नही हो सकती। अभिन्न है तब कार्य कारण भेद नही है, भिन्न है तब भी कार्यकारण भेद नही बन सकता। भिन्न तो अनेक पदार्थ हैं। जैसे यह चौकी है यह भीट है तो इसमे कार्य अथवा कारण क्यो नहीं बनता? तो नित्य पदार्थमे परिणामोकी सिद्धि नहीं। अगर कहो कि नित्यमे भी परिणाम मान लिया जाता है। एक सर्प है और वह कुण्डली आदिक अनेक अवस्थायें करता है तो नित्यमें भी तो परिणाम बना। उत्तर दिया गया है कि अनेकान्तको आश्रय लेनेपर ही वस्तुमें परिणाम बन सकता है।

स्याद्वादके आश्रयसे नित्य यस्तुमे परिणामकी सभावनाका समर्थन— एक वस्तुमे परिणाम स्याद्वाददृष्टिसे किस तरह बनेगा अब इसकी चर्चा चलेगी, प्रकृति को भी कथचित् नित्य माननेपर परिणाम बन सकता है। किस तरह? अच्छा बतलावो – नित्य वस्तु है प्रकृति। जो महान अहङ्कार आदिकरूप परिणमी है सो पूर्व अवस्थाका त्याग करनेसे परिणमा है या पूर्व अवस्थाके त्याग बिना परिणमा है? देखिये। प्रश्न बहुत सरल है। मिट्टीके लौंवेसे जैसे घडा बनता है तो यहाँ भी इसी तरह पूछो कि उस मिट्टीमे जो घडारूप परिणमन बना है वह लौंदेरूप परिणामके त्यागसे बना है या लौंदेका त्याग भी नहीं हुआ और घडा बन गया? अथवा और दृष्टान्त समझ लीजिये। यह अगुली सीधी है, अब इसको टेढ़ा कर दिया तो अगुलीमें

जो टेढा परिणमन हुआ है वह सीधे परिणमनका त्याग करके हुआ है या सीधे परि-परिणमनका त्याग नही किया और अगुली टेढी हो गई ? ये दो प्रश्न किए गये प्रकृतिसे जो बुद्धि अहङ्कार विषयरूप यह विश्व उत्पन्न हुआ है सो ये सब जहाँ उत्पन्न हुए उसके पूर्वरूपका त्याग करके उत्पन्न हुए या पूर्वरूपका त्याग किए विना उत्पन्न हुए ? और भी दृष्टान्त ले लो । एक मनुष्य है वह बालक अवस्थाके बाद जवानी अवस्थामे आया है तो हम वहाँ पूछ सकते हैं कि वह बालकपनकी अवस्थाका त्याग करके जवान बना या बालकपनकी अवस्थाका त्याग किए विना ही जवान बना ? यहाँ अनेकान्तकी सर्वथा अनिवार्यताका दिग्दर्शन कराया जा रहा है। सभी दर्शनोमे अनेकान्त स्याद्वादको न माननेपर कुछ भी कहने समझानेकी व्यवस्था नही बनती

स्याद्वादके बिना ज्ञानप्रकाशकी प्रगतिकी अशक्यता स्याद्वाद और अहिंसा ये दो तत्त्व हितमय जीवन बनानेके लिये बहुत आधारभूत तत्व हैं । स्याद्वाद बिना ज्ञानविकाश नही फैलाया जा सकता और अहिंसाके बिना शान्ति नही प्राप्त की जा सकती । स्याद्वादका अर्थ है—किसी पदार्थकी अपेक्षासे उसकी कलायें बताना । जैसे यह चौकी है । कैसी है ? कोई कहेगा कि यह ५ फुट लम्बी है, कोई कहेगा कि डेढ फिट चौडी है, कोई कहेगा कि १ फुट ऊँची है, कोई कहेगा कि पीली है यो अनेक तरहके लोग अलग अलग उत्तर देंगे । तो वे सभी उत्तर अपेक्षा लगानेसे सही हैं, पर इस चौकीका जो वर्णन होगा, समझाना होगा वह स्याद्वादका सहारा लेकर होगा । किसी मनुष्यका परिचय देना है, यह कौन हैं साहब ? तो दिखावो परिचय । तो परिचय आप अपेक्षा लगा लगाकर देते जायेंगे । यह अमुकका पुत्र है, अमुकका पिता है, अमुक ग्रामका प्रधान है, धर्मात्मा पुरुष है आदि । यो अपेक्षायें लगाकर उसका परिचय कराया जायगा । तो स्याद्वादके बिना कोई अपना प्रकाश नही कर सकता और तो क्या अपना जीवन भी नही चला सकता ।

अहिंसाके बिना शान्तिकी असभवता —और देखो भैया ! अहिंसाके शान्ति न मिलेगी । अहिंसा कहते किसे हैं ? अपने परिणाममे रागद्वेष मोह विकार भावोको न उत्पन्न होने देना इसका नाम अहिंसा है । लोग तो किसीको मार डालना, पीडा देना अथवा पीटना आदि कार्योंको हिंसा कहते हैं । क्यो पडा उनका नाम हिंसा ? इस कारण पडा कि इस पुरुषने अपने मनमे रागद्वेष क्रोध कषाय उत्पन्न की तब वह दूसरेको मार सका । तो कषाय उत्पन्न की, यह है हिंसा । दूसरेकी पीठपर थप्पडका सयोग हुआ तो यह सीधी हिंसा नही है । परिणाम हुए रागद्वेषके यह हिंसा है । इसी प्रकार झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवन करना, धनपर दृष्टि होना, वैभवके बडे पुराने बाँधना ये सब हिंसा है । केवल दूसरे जीवको मारने पीटने कष्ट देने आदिका ही नाम हिंसा नही है । अगर पुत्रसे राग है तो आप अपनी हिंसा कर रहे हैं न कि दूसरेकी, और यदि आप किसी दूसरेसे द्वेष कर रहे हैं तो उस समय भी

आप अपनी हिंसा कर रहे हैं नकि दूसरेकी ! दूसरेकी हिंसा तो उसके खुदके राग-द्वेष मोहादि भावोंके कारण होती है। एक साधु पुरुषपर किसी सिंह पुरुषने वार कर दिया, किसी शत्रु पुरुषने मार डाला और साधुने समतापरिणाम ही किया । अपने ज्ञानभावमे ही वह स्थिर रहे अथवा कर्मकलङ्कको काटकर मुक्ति भी प्राप्त करले तो इस प्रसङ्गमें हिंसा किसकी हुई ? हिंसा हुई उस मारने वालेकी। जो रागद्वेष करता है, जो कषाय करता है, जो धन वैभवमे ममता रखता है वह अपनी हिंसा बराबर किये चला जारहा है। तो हिंसाका परिणाम छुटे बिना शान्ति नहीं आ सकती।

अनेकान्तकी दिशामे प्रकृति परिणामके विषयमे पूर्व परिणामके त्याग व अत्यागके विकल्पोंकी ऊहा—यहाँ प्रकृत बात चल रही थी कि प्रकृतिसे इस सारे ससारका निर्माण हुआ है। तो यह बतलावो कि प्रकृतिने जैसे बुद्धि उत्पन्न की बुद्धिने अहकार उत्पन्न किया तो प्रकृतिकी पहिले बुद्धि रूप अवस्था थी और अब अहकाररूप अवस्था हुई तो उस प्रकृतिने पूर्वदशा का त्यागकर नवीन पर्याय ग्रहणकी या पूव पर्याय का त्याग नहीं किया और नवीन पर्याय पायी ? यदि कहो कि पूर्व अवस्थाका त्याग नही किया और नवीन अवस्था भी प्राप्त कर ली तब तो अवस्थामे सकरता हो गयी। जैस एक मनुष्यने बाल वस्थाका त्याग नहीं किया और युवावस्था धारण कर लिया तो इसका अर्थ यह होना चाहिये कि बालक और जवान एक साथ हो जाय, पर क्या ऐसा हो सकता है ? नहीं। यदि कहो कि पूर्व अवस्थाको त्याग करके उत्तर अवस्था ग्रहण की प्रकृतिने तो देखिये ऐसा माननेमें दोष तो न आयगा कि किसी वस्तुने पूर्व पर्यायको त्यागकर नवीन पर्याय ग्रहण की, किन्तु वह वस्तु सर्वथा नित्य न कहलायगी क्योंकि स्वभावकी हानि हुई। जैसे अगुलीने सीधी पर्यायको त्यागकर किया ना। तो अगुली जो पहिले सीधस्वभावी होगयी थी सीधी प्रकृति बनी थी उसकी हानि हुई ना, अब टेढ़ी पर्यायमे आयी तो इसमें प्रकृतिके स्वभावकी हानि आती है।

पूर्वपरिणामके सर्वथा त्याग या कथञ्चित् त्यागके विकल्पोंकी ऊहा—अच्छा प्रकृत निर्णयमें आगे बढ़िये । मान लिया कि प्रकृतिने पूर्व अवस्थाका त्याग कर दिया और उत्तर पर्याय ग्रहण करली, थोडी देरको नान लीजिये और कोई उपालम्भ न दिया जाय तो अब हम यह पूछते हैं कि उस प्रकृतिने जो पूर्व अवस्थाका त्याग किया है वह सर्वरूपसे किया है या कथचित् किया है, अर्थात् प्रकृतिने पूर्व-अवस्थाका त्याग द्रव्यरूपसे भी किया, पर्यायरूपसे भी किया, क्या दोनो ढङ्ग से कर दिया या कथचित् किया ? इस प्रश्नको एक और दृष्टान्त लेकर समझिये। जैसे अगुली ने सीधी पर्यायको त्यागकर टेढी पर्यायको ग्रहण किया तो यह माननेपर कि अगुली ने पूर्वपर्यायको त्याग दिया तो जैसे यह पूछा जाय कि इस अंगुलीने पूर्व पर्यायका सर्व-रूपसे त्याग दिया या कथंचितरूपसे ? सर्वरूपसे त्यागा, इसमें बात यह पूछी गयी कि अगुलीरूपसे भी त्याग हो गया, क्या दोनो प्रकारसे त्याग मानोगे तो इसका अर्थ यह

हुआ कि अगुली भी न रही, अनत् हो गयी इसी प्रकार प्रकृतिने अगर सर्वथा त्याग कर दिया तो प्रकृति न रही, जब प्रकृति ही न रही तब फिर उसका परिणाम ही क्या। जब अगुली ही न रही तब टेढा परिणमन किसका हुआ ? और, इस स्थितिमें चूँकि पूर्वरूपका सर्वरूपसे त्याग किया तो नई अपूर्व चीजकी उत्पत्ति हुई। तो इसका अर्थ हुआ कि नये-नये द्रव्य ही उत्पन्न हो जाते हैं। कोई एक चीज नहीं है जिसकी परम्परा बने और उसमे परिणमन चले। यदि कहो कि इस प्रकृतिने पूर्वरूपका सर्वथा त्याग नहीं किया किन्तु कथचित् त्याग किया। जैसे कि दृष्टान्तमे कहा जाय कि अगुलीने पूर्वरूपका याने सीधेपनेका सर्वथा त्याग नहीं किया कथचित् मानो कि अगुली पर्यायरूपसे सीधेपनका त्याग किया, द्रव्यरूपसे नहीं तो यह बात तो सही है इसमे क्या विरोधकी बात है क्योंकि एक ही अर्थ बना रहे और वह परिणामको प्राप्त करे तो पूर्व परिणामका त्याग करके उत्तर परिणाम प्राप्त करता है। जैसे अगुली सीधीसे टेढ़ी बनती है तब पूर्व परिणामका त्याग किया और उत्तर पर्यायको प्राप्त किया। तो इसमे स्याद्वादका ही सहारा हुआ कि नहीं। वस्तु तो नित्यानित्यात्मक मानना पड़ा, तो प्रकृति सर्वथा नित्य है एकस्वभावी है यह बात कहाँ रही।

पूर्वरूपका एकदेश या सर्वदेशसे त्यागपर विचार—शङ्काकार कहता है कि प्रकृतिने पूर्वरूपका त्याग एक देशसे किया सर्वदेशसे नहीं किया। देखिये यह सवाद हमारा नया है सर्वथा और कथचितके परिणमनके विकल्पसे सर्वदेश और एक देशके परिणमनके विकल्पका भाव जुदा है। सर्वथा और कथचित्मे तो द्रव्य और पर्याय दृष्टि की बात पूछी गयी थी। और यह प्रकृति जितनी लम्बी चौडी है जितने क्षेत्रमे फैली है उसके एक हिस्सेमें त्याग नहीं हुआ। यो क्षेत्रदृष्टिसे पूछा जा रहा है। समाधानमे कहा जा रहा है कि एक देशसे तो त्याग सम्भव नहीं, क्योंकि प्रकृतिको निरश माना गया है। निरशमे एक देश कैसे ठहरेगा। वह तो समग्र है। जैसे कोई पूछे कि परमाणु मे जो पूर्वरूपका त्याग हुआ वह परमाणुके एक देशमे हुआ या सर्वदेशमे हुआ ? अब परमाणुका एक देश क्या ? परमाणु तो उतना ही है, एक प्रदेशी है, उसमे एक देश क्या। इस प्रकार चाहे व्यापी निरश हो चाहे एक प्रदेशी निरश हो, जो निरश है उसमें एक देश तो सम्भव नहीं। अगर कहो कि प्रकृतिमे सर्वात्मकतासे सर्व प्रदेशोसे सवदेशोसे त्याग हुआ पूर्वरूपका, तो फिर प्रकृति ही नही रही, वस्तु ही न रही, वस्तु ही न रही, नित्यपना ही न रहा। ये बातें सब इस प्रकारसे समाझये कि जैसे कोई आदमी नरक तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदिक गतियोमे जाता है तो उस आत्माकी पूर्व परिणतियोका क्या सर्वथा त्याग हुआ अथवा कथचित् हुआ सर्वदेशसे हुआ या एक देश से ? उनका नो उत्तर है, क्योंकि कूटस्थ नित्य आत्मा नहीं है, पर कूटस्थ नित्य एकान्तमे वस्तुका मानकर फिर उसमे परिणामके त्याग उपादानकी बात लायें कार्य कारणका भेद लायें तो सम्भव नही है।

प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्मका धर्मीसे भिन्नत्व और अभिन्नत्वका विचार—अब कुछ अन्य बातें भी इसीमे सम्बन्धित चली जा रही हैं। जैसे एक मनुष्य मे बाल अवस्था तो गुजर गई जवानीकी अवस्था आयी तो उस मनुष्यमे दो धर्मोंकी चर्चा चली ना। कौनसे दो धर्म ? बालपन और जवानी। तो जवानी है प्रवर्तमान और बालपन है निवर्तमान। निवर्तमान मायने जो हट गया, प्रवर्तमान मायने जो हो रहा। तो एक मनुष्यमे बाल्यावस्थाको त्यागकर जवानी अवस्था आई तो इसे क्या कहोगे ? कि जवानी तो हुई प्रवर्तमान धर्म और बालपन हुआ निवर्तमान धर्म। तो यह बतलावो कि प्रवर्तमान और निवर्तमान मनुष्यसे भिन्न है या अभिन्न है ? यह बात जैसे दृष्टान्तमे पूछी जा सकती है। इसी तरह इस प्रकरणमे पूछा जा रहा है कि प्रकृतिमे जैसे बुद्धि पर्यायकी निवृत्ति निवर्तमान और अहङ्कार प्रवर्तमान धर्म हुआ। तो प्रवर्तमान और निवर्तमान ये दोनो धर्म उस प्रकृतिसे भिन्न हैं अथवा अभिन्न है ? यदि कहो कि ये भिन्न हैं जैसे दृष्टान्तमें कोई कहदे कि बचपन और जवानी ये दोनो अवस्थायें, प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्म मनुष्यसे जुदे हैं तो यह बात मानी जा सकती है क्या ? अगर जुदा है मान लो बचपन और जवानी तो मनुष्य तो मनुष्य ता ज्योंका त्यों रहा, वह तो जवान न बन सका। वह अलग चीज है। इसी प्रकार यदि प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्म प्रकृतिसे निराला हो तो प्रकृति तो उस ही प्रकार रहा फिर परिणमन तो नहीं कहा जा सकता कि प्रकृति परिणत हो गयी। अगर बचपन और जवानी मनुष्यसे निराली मानी जाय तो यह तो नही कहा जा सकता कि मनुष्य परिणामा है मनुष्य बदला है उसकी बदल तो नही कही जा सकती,, क्योंकि वे अवस्था ये तो भिन्न मान ली गयीं। जैसे कि किसी दूसरेकी बचपन जवानीके बदलमे किसी दूसरे मनुष्यकी बदल तो नही कही जा सकती ऐसे ही किसी मनुष्यको बदल नही कही जा सकती, क्योंकि बचपन जवानी ये सब निराले हो गये। भिन्न पदार्थोंका उत्पादव्यय होनेपर किसी भिन्न निरश वस्तुका परिणमन नहीं माना जा सकता और अगर मानोगे तो हम कहेंगे कि किसी अन्यमे भी परिणाम हो गया। भिन्न बुद्धि अहकारके परिणामसे हम कहेंगे कि आत्मा परिणत हो गया। मनुष्यका बचपन बदलनेसे जवानी आनेसे जो कि भिन्न मान लिया, उस मनुष्यकी परिणति मानोगे तो हम कहेंगे कि नही एक घोडा परिणत हुआ। भिन्न व्यवस्था क्या ?

प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्मके सत्त्व और असत्त्वके विकल्पकी ऊहा शंकाकार कहता है कि प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हैं वे दोनो धर्म, दोनो पर्यायें। एक पर्याय नष्ट हुई कि दूसरी पर्याय आयी सो वे दोनो ही प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हैं इस कारण उन दोनो धर्मोंके उत्पादव्ययसे फिर भी परिणमन मान लेंगे। यह भी बात भिन्न माननेपर सुन्दर नही जचती, क्योंकि जैसे बचपन व जवानी ये दोनो धर्म सद्भूत हैं या असद्भूत ? बचपन और जवानीकी सत्ता है कि नहीं जिन्हें कि मनुष्यसे निराला माना है। अगर कहो कि सत्ता है तो जिसकी सत्ता होती है वह स्वतन्त्र हो

जाता है फिर वह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता। उसमें फिर सम्बन्ध नही बनता। मनुष्यकी तरह बचपन जवानी भी रहे तो वे भी काम करने वाले सत् बन गए। और, अगर कहो कि असत् हैं ये बचपन और जवानी, तो जो असत् है उसके बारेमे चर्चा ही क्यो करते ? इसी प्रकार प्रकृतिमे भी उत्तर ले लीजिये। प्रकृतिके दोनो धर्म प्रवर्तमान और निवर्तमान हुए, वे भिन्न हैं फिर भी कहते हो कि उनका इस प्रकृतिमे सम्बन्ध है तो बतलावो वे दोनो धर्म सत् है या नही ? यदि कहो कि सत् हैं तो प्रकृति की ही तरह वह भी स्वतंत्र पदार्थ हो गया। फिर सम्बन्ध ही क्या ? यदि कहो कि असत् है, उसका नाम ही नही है, तो फिर उसकी चर्चा ही क्या करते हो ?, फिर सम्बन्ध ही क्या जोडते हो ? जैसे खरगोशके सीग नही तो उसका सम्बन्ध तो नही जोड़ा जाता। इसी प्रकार यदि ये दोनो धर्म कुछ हैं ही नहीं तो फिर सम्बन्ध क्या जोडोगे ?

वस्तु व्यवस्था भैया ! सीधी बात तो यो है कि कोई भी वस्तु प्रवर्तमान निवर्तमान धर्मसे व्यतिरिक्त नजर नही आता है। मनुष्य क्या है ? अगर कोई जवान मनुष्य खडा है तो जवान पर्यायमे जो खडा है वह मनुष्य है और अगर कोई बालक पर्यायमे जो खडा है वह मनुष्य है। तो प्रवर्तमान और निवर्तमान को छोडकर हम क्या बतावेंगे। वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है। जिन दार्शनिकोने यह कोशिश की है कि पर्याय न मानकर केवल एक द्रव्य स्वभाव ही मानते है तो उनका वह मतव्य केवल एक कल्पना भरका रह गया है, उपयोगमे नही आ सकता यत्नमे नही आ सकता, अर्थ क्रिया नही बन सकती। तो बात सीधी यो है कि जगतमें जितने परिणमन पाये जायें उतने तो पदार्थ हैं। यहाँ परिणमन कहकर एक अभेद परिणमनकी बात कही जा रही है। जितने बदलने वाले धर्म है, सत् हैं उतने ही तो पदार्थ हैं और ये सब धर्म एक दूसरेसे मिलते जुलते हैं। तो उस मिलने जुलनेकी दृष्टिसे जब हम इन पदार्थों का परिचय करते हैं तो ये समस्त पदार्थ लोकमे जितने जो कुछ हैं वे सब ६ जातियोंमे मिलेंगे। पदार्थ ६ नही हैं, पदार्थ तो अनन्तानन्त हैं पर उन पदार्थोंकी सदृशता विशदृशताकी दृष्टिसे निरखा जाय तो उनकी जातियाँ ६ हैं। कुछ द्रव्य जीव जातिके रहे कुछ पुद्गल जातिके रहे कोई एक अधर्म द्रव्यकी जातिके रहे कोई एक धर्म द्रव्यकी जातिके रहे, कोई एक अधर्म द्रव्यकी जातिके रहे और कुछ काल जातिके रहे। ये अनन्तानन्त द्रव्य सब परिणमनशील हैं और इनकी पर्यायें प्रतिसमय होती रहती हैं, पर परिणमनमे साधारण अथवा असाधारण ये निमित्तोंसे भरा सारा ससार है ही। एक द्रव्यका परिणमन दूसरे द्रव्यके परिणमनमे निमित्त बनता है। तो इस प्रकार इस लोककी रचना निसर्गत हो रही है।

प्रकृतिके कर्तृत्वका यथार्थ भाव—निसर्गत का अर्थ है प्रकृतिसे, स्वभावसे, पर किसकी प्रकृतिसे हो रही है ? यह परिणमन बोलनेमे ही न देखा जाय और उस

परिणमन वालेसे अलग प्रकृति मान ली जाय तो वहाँ विडम्बना है, अन्यथा समस्त पदार्थ परिणमनशील है, वे प्रकृत्या अपनी रचना करते रहते हैं इसमे क्या बिगाड है? और, देख लो प्रकृति कर्ता हो गयी। प्रकृति कर्ता है इसका अर्थ है कि प्रत्येक पदार्थका जो निजी उपादान है, निजी प्रकृति है वह कर्ता है और वह प्रकृति अपने अपने अधिष्ठापक पदार्थका ही कर्ता है न कि अन्य पदार्थका कर्ता था। यों तो प्रकृति कर्ता माना जा सकता है पर प्रकृति कोई एक सर्वव्यापी एक स्वतन्त्र वस्तु है और प्रकृतिको छोडकर अन्य कोई वस्तु नही है यहाँ सृष्टिके प्रसङ्गमे केवल दो ही तत्त्व हैं पुरुष और प्रकृति। आत्मा और प्रधान और कुछ नही है। बाकी तो तीसरे चौथे आदिक जो कुछ होंगे वे सब प्रकृतिके परिणमन हैं। यह बात युक्त नही बैठती।

निर्मोह होनेके लिए परिणमनके निर्णयका महत्त्व—यह एक परिणमनका निर्णय है। यह निर्णय करना कितना आवश्यक है इसकी महत्ता देखिये। जो मनुष्य परिणमनोकाका यथार्थ निर्णय नही कर सकता उसका मोह कभी छूट नहीं सकता और मोह छूटे बिना शान्ति नही मिल सकती। जब यह विदित होगा कि जितने पदार्थ हैं उतने परिणमन हैं और उन पदार्थोंका वह परिणमन उन पदार्थों से ही आविर्भूत हुआ है, उसको करनेमे कोई दूसरा पदार्थ समर्थ नहीं है। ऐसा निर्णय यदि आया है, हृदयमे विश्वास जमा है तो वहाँ यह भेद नही बन सकता कि मैं अमुक पदार्थमे अमुक परिणति बनादूं, अथवा मेरे ही सहारे इस कुटुम्बका जीवन इनका पालन पोषण है, यह फिर दृष्टि न रहेगी। वह जानेगा कि इन परिवार जनो का यदि अनुकूल भाग्योदय है तो मैं क्या, कोई और निमित्त बनेगा और अगर उनका ही उदय अनुकूल नही है तो हम क्या, कोई दूसरा भी उनके लिए निमित्त न बनेगा। राजा सत्यन्धरको रानीने अपने बालक जीवन्धरको श्मशानमें जन्म दिया उस समय कोई सहारा न था। रानीने सोचा कि यदि इसका भाग्य है तो हम जैसे लोग क्या, देव भी रक्षा करेंगे और यदि भाग्य नही है तो यह हमारी गोदमे रहकर भी विदा हो सकता है। रानी बच्चेको छोडकर चल दी या छिप गई। होता क्या है कि उसी समय किसी सेठका बच्चा मर गया था उसे वह श्मशानमें ले गया था। उस बच्चेको तो श्मशानमे छोडा और दूसरा (जीवधर) बच्चा उस सेठने पा लिया। उस सेठने उस बच्चेको लाकर अपनी पत्नीको दे दिया। उसने उस बच्चेकी रक्षा की। तो भाई यहाँ कौन किसकी रक्षा करता है? सभीकी अपने अपने अनुकूल भाग्योदयसे रक्षा होती है तो जिन्दगी शेष बची है उतनी ही जिन्दगीमे इस मोहको छोडदे तो हम आपका भला हो जायगा।

धर्मको धर्मीसे अभिन्न माननेपर कार्यकारण भावकी असिद्धि—शङ्काकार कहता है कि प्रकृतिमे प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्म धर्मी प्रकृतिसे अभिन्न है, अनर्थान्तरभूत है। जो जिसका धर्म है वह वही एक अर्थ है अन्यथा अर्थात् धर्म

और धर्मीको अन्य अन्य अर्थ माननेपर वे धर्मीके धर्म ही नहीं कहला सकते हैं। अब इसपर विचार किया जाता है कि यदि धर्मोको धर्मीसे अभिन्न माना जाय तो एक धर्मीस्वरूपसे अव्यतिरिक्तता होनेसे धर्म और धर्मीका एकत्व ही रहा फिर धर्मीका परिणाम ही कहाँ हुआ और धर्मोका विनाश व उत्पादन ही कहाँ हुआ ? जैसे कि धर्मीके स्वरूपका उत्पादव्यय नही होता। अथवा धर्मोकी तरह धर्मी भी अपूर्व अपूर्व उत्पन्न होगा व पूर्व पूर्व नष्ट होगा फिर तो किसीका कोई परिणाम ही सिद्ध नही होता इस प्रकार परिणामके वशसे भी व्यक्त और अव्यक्तमे कार्यकारण भाव सिद्ध नही होता है तब तो प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे अहङ्कार फिर भौतिक पदार्थ आदि उत्पन्न मानना केवल कल्पना तक ही सीमित रहा।

सदकरणहेतुसे कारणमें उत्पत्तिसे भी पहिले कार्यकी सत्ता सिद्ध करनेका प्रयत्न – प्रकृतिकर्तृत्ववादमे अब यह बताया जा रहा है कि प्रकृतिमे सारे कार्य सदा मौजूद रहते है। उत्पत्तिकी जो बात कही जाती है उसका अर्थ आविर्भूति है, उत्पन्न होना नही। जैसे किसी जगह बहुत सी चीजे रखी हैं और उनपर पर्दा डाल दिया तो पर्दाके हटानेसे चीजें उत्पन्न नही होती किन्तु जो चीज पहिलेसे सत् थी उनका उनका आविर्भाव हो जाता है। इसी तरह प्रत्येक पदार्थमे समस्त कार्य सदा रहते है, आवरण हटनेपर वह कार्य प्रकट हो जाता है। इसका भाव यो समझिये कि जैसे गेहूँ के दानेमे गेहूँके पेड और उन पेडोमे जो आगे दाने होगे वे यो समझते जाइये, सारी की सारी चीजें एक गेहूँके दानेमे अब भी मौजूद हैं, सिर्फ खेती करके बीज डालकर केवल उन कार्योका आविर्भाव किया जाता है। इसीके समर्थनमे एक हेतु दिया जा रहा है – 'असदकरणात्'। पदार्थके सारे कार्य जो आगे होगे वे अब भी सद्भूत है। यदि सदभूत न हो, असत हो तो जो असत् चीज है वह किसी भी प्रकारसे सत् नही की जा सकती है यह उनका हेतु है। यदि कारणात्मक पदार्थकी उत्पत्तिसे पहिले कार्य नही होता तो किसी भी समय किसीके भी द्वारा वह किया न जा सकता था। जो चीज है ही नही, असत् है वह चीज कभी किसीके द्वारा की भी जा सकती है क्या ? यदि असत् चीज भी सत् की जा सकती है तो गधेके सीग, आकाशके फूल, धुवेंकी छाया आदिक भी जो असत् चीजें हैं उन्हें सत्रूप बना लिया जाय। पर ऐसा होता तो नही देखा जाता। तो असत चीज किसीके द्वारा सत नहीं बनायी जा सकती। इससे यह सिद्ध है कि पदार्थमे ये सारे कार्य जो किए गये हैं वे सबके सब अब भी वहाँ सत है। सिर्फ युक्तिसे उनको प्रकट किया जाता है।

सत्कार्यवादके मन्तव्यका दृष्टान्तो द्वारा स्पष्टीकरण— जैसे समझला, बताओ दूधमे सत है कि नही ? अगर दूधमे घी सद्भूत नही है तो फिर उस दूधमेसे कभी घी निकाला ही नही जा सकता। शङ्काकारका यह मतव्य है कि कारणात्मक पदार्थमे प्रकृतिमे वह साराका सारा विश्व, वे समस्त पर्यायें सदा सत हैं। देखो तेल

घानिकके द्वारा तेल कार्य उत्पन्न होता है। तिलसे तेल निकलता है तो तिलोंमें तेल पहिलेसे ही मौजूद है तब तो यह तेल निकलता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह तेल कहीं बाहरसे लाया गया हो। यह बात अनुभवमें है ना। अगर कोई मा बापका ही बच्चा क्यों न हो उसमें जो उसका बेटा मौजूद है, उसमें अगर उसका बेटा मौजूद नहीं है तो फिर यह बेटा हो कहाँसे जाता है? अगर उसमें उसका बेटा पहिलेसे मौजूद न हो तो बेटा उसके द्वारा कभी बनाया ही नहीं जा सकता। ऐसा एक मन्तव्य है। इस प्रकृतिमें सारीकी सारी चीजें मौजूद है तभी तो सारीकी सारी चीजें इस प्रकृतिमेंसे निकल रही है। जिस योग्य जो साधन है उस योग्य वैसी चीजें निकलती रहती है इसी प्रकृतिसे कार्य बन रहा है ऐसा माननेमें क्या दोष है?

उत्पत्तिसे पहिले कारणात्मक पदार्थमें कार्यके सत्त्वकी असिद्धि— अब सत्कार्यवादका समाधान करते है। तुम्हारी यह युक्ति कि पदार्थमें यदि कार्य नहीं होता तो वहाँसे कार्य निकलता कैसे? अरे, किसी बिलमें घुसा है कोई खरगोश तब ही तो खरगोश वहाँसे निकल आयेगा और यदि वहाँ खरगोश है ही नहीं तो फिर कहाँसे खरगोश निकल आयगा? तो इसी तरह इन सब पदार्थोंमें जो उनका कार्य होनेको है वह उनमें पहिलेसे ही पड़ा हुआ है तभी तो निकलता है। यदि उसके अन्दर पहिलेसे ही वह कार्य पड़ा न हो तो वह कार्य किया नहीं जा सकता। इसके समाधानमें यह कहा जा रहा है कि हम इसका इस हेतुसे उल्टा करके भी तो कह सकते हैं। पदार्थमें कार्य सत नहीं पड़ा है, कार्यका सत्त्व यदि है तो करनेकी जरूरत ही क्या रही? वह तो पूर्ण स्वतन्त्र सत है ही। फिर करे क्या? फिर और बतलाओ! यह कहा कि प्रत्येक पदार्थमें जो कार्य बननेको हैं वे सारे कार्य उस पदार्थमें इस समय भी मौजूद है। तो क्या वह कार्य सर्वथा असत है अथवा कथंचित सत है? बीजमें अंकुरा है अब भी हैं यह कहा है शङ्काकारने। गेहूँके दाने जिनको आप थालीमें रखकर बीनते हैं उन प्रत्येक दानोंमें पेड़ अभीसे ही बसे हुए हैं। एक गेहूँके दानेमें अनगिन तो पेड़ और अनगिनते दाने अब भी मौजूद हैं यह कहा है शङ्काकारने। उसकी युक्ति दी है कि वह असत हो, न हो तो किया कैसे जा सकता है? गधेके सींग हैं नहीं तो उन्हें पैदा भी किया जा सकता है क्या? इसका उत्तर सीधा यही है कि अगर हो तो फिर करनेकी क्या जरूरत? वह तो है ही। और यदि है तो यह बतलाओ कि वह सर्वथा है या कथंचित? गेहूँके दानोंमें यदि पेड़ हैं तो वे सर्वथा उसमें घुसे हैं या कथंचित? ये सब बातें हैं बड़ी सरल, कठिन कुछ नहीं है केवल ध्यानसे सुननेभरकी बात है जीवनमें थोड़ासा यह भी जानना चाहिये कि पदार्थका स्वरूप क्या है? मेरा स्वरूप क्या है? कुछ एक यथार्थ ज्ञान करनेकी भी उत्सुकता होनी चाहिये। केवल एक परिग्रहके परिणामोंमें ही अगर इस अमूल्य मानव जीवनको गवा दिया तो उससे फिर लाभ क्या पाया? सब प्रकारसे विज्ञान सीखेंगे और उससे अपने आत्माका ज्ञान होगा, उसकी भावना बनेगी तो यह आगे लाभ भी देगा।

कारणमे सर्वथा सत्त्वके विकल्पसे सत्कार्यवादका समाधान—यहा पूछा जा रहा है कि कारणात्मक पदार्थोंमे अर्थात बीजोमे जो अकुर पहिलेसे ही मौजूद हैं वे सर्वथा मौजूद हैं या कथचित ? वटके पेडमे बीज तो सरसोके दानेसे भी कईवा भाग छोटा होता है पर उस बीजमे जो करीब १ फर्लांगकी चौडाईको लिए हुए पेड खडा रह सकता है वह पेड उसमे पहिलेसे ही मौजूद है। तो बताओ उस बटके बीज मे वह पेड सर्वथा मौजूद है या कथचित ? अगर कहो कि सर्वथा मौजूद है तो जब सर्वथा मौजूद है, पूरे रूपमे है तो फिर उसमे युक्तिया लगानेकी क्या जरूरत ? और परिश्रम करनेकी क्या जरूरत ? वह तो सर्वथा मौजूद है। यदि उस बटके बीजमे वृक्ष सर्वथा मौजूद है तो फिर क्या है उसी बीजके नीचे बैठ जावो, छाया मिल जायेगी। है कहा छाया ? है कहा वृक्ष ? और फिर वृक्ष उगानेके लिए युक्ति क्यो की जा रही है ? यदि सर्वथा उस बीजमे वृक्ष पहिलेसे ही मौजूज है। दूधमे घी क्या सर्वथा सत् है या कथचित् ? अगर दूधमे घी सर्वथा सत् है तब फिर दही बनाकर बिलोनेकी या कार्य करनेकी क्या जरूरत रही ? उसमे फिर उत्पाद क्या रहा ? फिर कारणोके द्वारा वह उत्पत्ति क्यो की जा रही है ? जो सब प्रकारसे सत् है वह पदार्थ किसीके द्वारा भी पैदा नही किया जा सकता। जैसे प्रधान, प्रकृति और आत्मा ये जो दो तत्त्व माने गये हैं ये सर्वथा सत् है या कथचित् ? यदि सर्वथा सत् हैं तो फिर इसमे कार्य करानेकी, प्रयोग करनेकी जरूरत तो नही पडती। अब दूधमे दही सर्वथा सत मान लिया। प्रकृतिमे महान अहङ्कार आदिक सर्वथा सत मान लिया तो फिर कार्यपना क्या रहा ? जो सब प्रकारसे मौजूद है वह कार्य नही कहलाता। घडी भी पूरी मौजूद है चौकी भी पूरी मौजूद है तो यह कहेंगे क्या कि चौकी घडीका कार्य है या घडी चौकीका काय है ? इसमे कार्यकारणपना क्या ? जब सर्वथा स्वतन्त्ररूपसे सत है। इसी प्रकार जब कोई कार्य कहा जानेका हकदार नही है तो प्रकृति कारण कहे जानेकी भी हकदार नही है।

कारणमे कार्यके कथचित् सत्त्वके विकल्पपर विचार—यदि कहो कि कथचित् सत है सर्वथा सत नही तो इसका अर्थ यह हुआ कि शक्तिरूपसे सत है व्यक्त रूपसे नही। दूधमे दही घी शक्तिरूपसे है, बीजमे पेड शक्तिरूपसे है व्यक्तरूपसे नही, पर्यायरूपमे नही। उसमे ऐसी उपादान शक्ति है कि प्रयोग किये जानेपर उसमेसे वही पेड उत्पन्न हो सकता है। तो भाई सही बात है। शक्ति मायने द्रव्य। तो शक्तिरूपसे सत है, द्रव्यरूपसे सत है और पर्यायरूपसे असत है। ऐसी ही घट आदिककी उत्पत्ति मानी जाती है तो वह तो स्याद्वादका मतव्य हुआ, एकान्तका तो नही रहा। एकान्त एकान्तमे नित्य माने तो कार्यकारण भाव तो नही बनता, एकान्त माने तो कार्यकारण भाव नही बनता। तब यही बात रही ना कि जैसे घी दूधमे शक्तिरूपसे सत है तो शक्तिरूपके मायने, वही पदार्थ स्वय, उसीका नाम शक्ति है।

कारणमें शक्तिके भिन्नत्व व अभिन्नत्वके विकल्प—प्रकृतिमें शक्ति परिणाम मान लेनेपर भी शक्तिका अभी निर्णय है। बताओ शक्ति पदार्थमें भिन्न है अथवा अभिन्न है? थोडी देरको इस ढङ्गसे मान भी लो तुम तो बतलाओ यदि शक्ति भिन्न है तो शक्ति तो न्यारी हुई, कारण न्यारा हुआ। अब कार्यका सद्भाव कैसे होगा? कार्यको छोडकर शक्ति नामक अन्य पदार्थान्तरका सद्भाव मानना होगा। क्या कारण है कि शक्ति भिन्न है कारण भिन्न है, इससे फिर कार्य उत्पन्न हुआ? अन्य शक्ति मानो तो यह कहना युक्त नहीं जचता न कोई सीधे मान सकता है कि प्रत्येक पदार्थमें कार्य पहिलेसे ही पडा हुआ है। बस उनका आविर्भाव होता है, उत्पत्ति नहीं। इसे कहते हैं सत्कार्यवाद। द्रव्यमें वे सब पर्यायें मौजूद हैं और वे क्रम क्रमसे प्रकट होती हैं, यही तो सत्कार्यवाद है।

कार्यके क्रमनियतपर विचार– जैन शासनमें भी एक मतभेद आजकल हो गया है एक पक्ष कहता है कि पदार्थमें पर्यायें क्रमबद्ध नहीं है क्रमनियत नहीं है और दूसरा पक्ष कहता है पर्यायें क्रमबद्ध हैं, क्रम नियत है। देखिये! स्याद्वादकी कृपा पाये बिना कभी भ्रमके हिंडोलेसे उतरकर शान्त नहीं बैठ सकते । ये विभाव परिणमन जो मलिन द्रव्योंमें उत्पन्न हो रहे हैं ये सारे परिणमन उस द्रव्यमें मौजूद हैं और उनकी उत्पत्ति नहीं होती है किन्तु उनका आविर्भाव होता है यह कार्यवादका सिद्धान्त है। तब उस कथनमें और इस कथनमें अन्तर क्या डाला जायगा? द्रव्यको निहारो, चूंकि द्रव्य सदाकाल किसी न किसी पर्यायमें रहेगा। पर्यायमें रहेगा। पर्याय बिना द्रव्य नहीं रह सकता। तब द्रव्य कितना है? अनन्त पर्यायोंका समूह द्रव्य है यह कथन है। इस कथनमें यह बात नहीं पडी हुई है कि इन इन क्रमोंमें वे पर्यायें होती हैं और उन पर्यायों का जो समूह है सो द्रव्य है। यद्यपि पदार्थमें पर्यायें होती हैं, और जब जिस विधिसे जो होने को होता है, वह होता है लेकिन द्रव्यकी ओरसे ऐसा क्रम माननेपर सत्कार्य वादका सिद्धान्त आता है और विधि विधान पूर्वक वे सब पर्यायें होती हैं, अब उन होने वाली पर्यायोंको एक ज्ञानके द्वारा जानकर, विशेष ज्ञानके द्वारा, केवलज्ञानके द्वारा जानकर फिर यह समझना अथवा बताना कि देखो अवधिज्ञानके अपनी सीमामें पदार्थों के बारेमें सर्व पर्यायें जानी हैं, वह उस समय वही होगी या नहीं ठीक है होगी, किन्तु यह तो देखना चाहिये कि द्रव्यकी ओरसे उन पर्यायोंका क्रम होनेका गुण पडा हुआ है या विधि विधान पूर्वक होती रहने वाली पर्यायोंका विशिष्ट ज्ञानियोंने ज्ञान किया है तो उस ज्ञानकी ओरसे क्रम जाना जाता है। तो इसका निर्णय रखना चाहिये। इसका निर्णय होनेपर यह विदित हो जायगा कि द्रव्यमें पर्यायें कथंचित् नियत है कथंचित् अनियत हैं। क्रमसे ही पर्यायें होती हैं ऐसा द्रव्यकी ओरसे एकान्त करना एकान्त है और पदार्थोंमें पर्यायें अटपट जब चाहे जो हो जायें ऐसा एकान्त मानना भी एकान्त है। वस्तु है, उस वस्तुको हम किसी दृष्टिसे देखते हैं तो हमें क्या विदित होता है यह समझनेकी बात है। विशिष्ट ज्ञानके द्वारा यह हम कहेंगे कि उस पदार्थ ओरसे वे बातें

होती हैं यह भी यथार्थ है। और द्रव्यकी ओरसे जब हम निहारते है कि द्रव्य तो सदा किसी भी समय एक पर्यायात्मक होता है। जब द्रव्य जिस पर्यायमे है तब द्रव्य उस पर्यायरूप है। उसमे योग्यता अवश्य है अन्य पर्याय करनेकी, क्योकि उत्तर पर्यायके उत्पाद बिना द्रव्यकी सत्ता नही रह सकती। अब उस अयोग्य उपादानमे जिस प्रकार का एक सहज अनुकूल निमित्त सन्निधान मिला वहाँ उस प्रकारकी पर्यायें प्रकट होती हैं। इस तरहसे द्रव्यमे पर्यायें पहिलेसे उनमे नियत हैं और विधि विधानसे उसमे पर्यायें होती हैं यह कहना भी यथार्थ है। दृष्टि परखे बिना और उसको योग्य नय विभागसे लगाये बिना वह ज्ञान अस्पष्ट और कुज्ञान हो जाता है।

सत्कार्योकी कारणमे अभिव्यक्तिके मन्तव्यपर विचार—यहाँ सत्कार्यवादमे यह चर्चा चल रही है कि पदार्थमे वे सब पर्यायें मौजूद हैं और उनका क्रम क्रमसे आविर्भाव होता है, उस ही बारेमे ये सब विकल्प किये जा रहे हैं और पूछा जा रहा है और इस प्रकरणमे यह सिद्ध किया जा रहा है कि कारणात्मक पदार्थमे कार्य मौजूद नही है। वह जिस अवस्थामे है केवल वही कार्य उसमे मौजूद है। आगे होने वाली पर्यायें कारणात्मक उपादानमे मौजूद नही हैं। यदि कहो कि उस कारणात्मक पदार्थमे कार्य तो सारे मौजूद हैं मगर उनकी अभिव्यक्ति नही है, उनका प्रकटपना नही है। सो उनको प्रकट करनेमे कारणोके व्यापारकी जरूरत है। इसलिए कारण जुटाना व्यर्थकी बात नही है। जैसे कई चीजे एक चद्दरसे ढकी हुई हैं जो चद्दर बिना धुला है। अब शोध वाला कोई पुरुष उसके भीतरसे कोई चीज निकालना चाहे तो वह लाठी, डडा या जिमटा आदिसे उस चद्दरको अलग करता है तो उसमेसे चीज उत्पन्न की या अभिव्यक्ति की? कहते हैं कि यह भी बात युक्त नही, वहाँ तो सब पदार्थ एक साथ स्वतन्त्र अपने अपने क्षेत्रमे है कारण कार्य होनेका प्रसङ्ग नही है। अरे वहाँ भिन्न-भिन्न पदार्थ तो मौजूद हैं उनको उत्पन्न कहा किया? उसने वहापर कोई चीज उत्पन्न नही की बल्कि चीजकी अभिव्यक्ति की। एक भी पदार्थमे कारणात्मक चद्दर उठाकर कार्य निकाल दे अर्थात किसी चीजको वह बनादे, तब तो हम उसकी तारीफ समझे।

कारणमे कार्यकी अभिव्यक्तिकी पहिले सत्ता व असत्ताके विकल्प—अच्छा थोडी देरको अभिव्यक्ति मान लो तो यह बतलावो कि उस कारणात्मक पदार्थमे सत् जो अभिव्यक्ति हुई है वह आविर्भूति पहिले थी या नही? यदि पहिले सत् थी तो लो अभिव्यक्ति भी पहिले थी, प्रकटपना भी पहिले था, अब कारणकी क्या जरूरत? और अभिव्यक्ति भी पहिले हो और फिर भी कारण जुटाये जायें तब तो कारण सदा ही जुटाते रहना चाहिये, फिर कारणोका विराम क्यो लेते? जैसे दूधमे घी अभिव्यक्त रूपसे भी मौजूद हो तो फिर मथानी चलानेकी क्या जरूरत है फिर भी याने अभिव्यक्ति पहिलेसे होनेपर भी मथानी चलानेकी जरूरत समझी जाती है तो फिर

अनन्त काल तक मथानं चलाते रहो, उसे फिर विश्राम करनेकी आवश्यकता क्यों है। यदि कहो कि वह अभिव्यक्ति कारणात्मक पदार्थोमें पहिलेसे नही है, असत् है तो फिर जब असत् है तो आकाशका फूल जैसे असत् है तो वह तो किसी प्रकार किया नहीं जा सकता, इसी प्रकार अभिव्यक्ति भी असत् है तो किसी भी प्रकार कारणका बनना वह भी किया न जा सकेगा क्योंकि तुमने तो यह माना है कि जो असत् है वह कभी भी किसी तरह किया नही जा सकता। तो अभिव्यक्ति भी जब असत् है तो अभिव्यक्ति भी न होना चाहिये।

स्वरूपत पदार्थव्यवस्था भैया! वस्तु व्यवस्था इस प्रकार है कि प्रत्येक पदार्थ जो अनन्त हैं, एक या दो नही हैं, केवल प्रकृति और आत्मा ये दो ही सदार्थ हा सा नही, किन्तु अनन्त चेतन हैं और अनन्त अचेतन हैं। वे सभीके सभी पदार्थ प्रति समय अपनी एक एक पर्यायमे रहा करते हैं। पदार्थमे एक ही समयमे अनन्त पर्याय मानना क्रमवर्ती पर्यायकी बात नही कहते, किन्तु जितने गुण माने गये हैं उतने ही पर्यायें एक पदार्थमे मानना जैसे एक किसी आत्मामे जानन भी है, देखन भी है, आनन्दानुभवन भी है, यो अनन्त पर्याय मानना भेददृष्टिसे है एक तीर्थ प्रवृत्तिके लिए हैं, समझनेके लिए है, कही किसी भी एक पदार्थमे अनन्त गुण नही पडे हुए हैं? सभी पदार्थ अपने अपनेमे एक स्वभावी है और एक समयमे वे एक परिणति करते हैं। हम उस एक परिणतिको समझें इसके लिए आचार्यदेवने कृपा करके उसमे गुण भेद और पर्याय भेदकी बात कही है। कहीं यह न समझना किसी भी पदार्थमे अनन्त गुण मौजूद रहा करते हैं। जैसे किसी थैलीमे हजार मुहरें रखी रहा करती हैं। यो आत्मामे अनन्त गुण भरे नही हैं, आत्मा एक स्वभावी है, उसका जिसे परिचय नही है उसको समझानेके लिए और क्या प्रयोग किया जाय? उसे भेद करके ही समझा जा सकता है और भेद भी वही किया जाता है जो पदार्थके अनुकूल पडता है। तो यो समझिये कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय अपनी-अपनी पर्यायमे रहता है। अगले समयमे अपनी एक नवीन पर्याय धारण करता है। तो वह जैसी योग्यता वाला पदार्थ है और उसे जिस अनुकूल निमित्तका सन्निधान मिलता है उसके अनुकूल उसमेसे पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

सत्कार्यवादका स्रोत कुछ मन्तव्योकी निकटता—उपादानसे कार्य प्रकट होते हैं इस ही चीजसे किस प्रकारसे धीरे-धीरे ज्ञानमे बदलकर सत्कार्यवाद बनेंगे इसका वृत्तान्त सुनने लायक है। यह तो सिद्धान्त है ही कि प्रत्येक योग्य उपादान अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर अपनी एक परिणतिको करता है। अब उसके बारेमें सोचो कि वे पदार्थ अनन्तकाल तक रहेंगेकि नही रहेंगे। जो सत है उसका कभी अभाव नही हुआ करता। तो अनन्त काल तक रहेगे तो उसमें अनन्त समय हैं। तो उन अनन्त समयोमे प्रतिसमय पर्याय रहेगी कि नही रहगी और जिस विधिसे जो भी निधि होनेको

है उस समय वह पर्याय होगी कि नही ? होगी। अब धीरे धीरे बढते है अहा, तो फिर यह समझमे आया कि ऐसे क्रमसे उस समयकी जो जो पर्याय होती रहेगी उन उन पर्यायोका समूह ये पदार्थ हैं लेकिन और भी आगे बढे। उन पदार्थोंमे वे पर्याये किसी के द्वारा उत्पन्न तो होती नही। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थने परिणमन कर सकता नही और उस पदार्थमे वे अनन्त पर्यायें होती हैं तब फिर वे कहांसे होती हैं ? कही से नही होती हैं उत्पन्न नही होती है किन्तु उस द्रव्यमे वे पर्यायें भरी हुई हैं और उन पर्यायें भरी हुई हैं और उन पर्यायोका आविर्भाव होता है। लेकिन चलती जाने दो। यो सत्कार्यवाद आ जाता है

प्रकृत प्रकरका आद्य आधार यह प्रकरण किस लिए चल रहा था? मूलमे यह बात थी कि निराकरण आत्मा सर्वज्ञ होता है। प्रकृतिवादी कहते हैं कि आत्मा सर्वज्ञ नही होता है प्रकृति सर्वज्ञ होती है, प्रकृतिमे ही आवरण है और प्रकृतिमे ही आवरण का विनाश होता है सो प्रकृति सर्वज्ञ है। प्रकृति ही क्यो सर्वज्ञ है, यो सर्वज्ञ है कि प्रकृति विश्वकर्ता है। जो सारे विश्वका करने वाला होगा वही सारे विश्वका जानने वाला हो सकता है। इस तरह कर्तृत्ववादका प्रत्यक्षज्ञानके स्वरूपकी सिद्धिके प्रसगमे प्रकृतिके मन्तव्यमे सत्कार्यवादका सहारा लेना पडा। इस विश्वकी रचना किस प्रकार होती है यह प्रकरण तो नही इस प्रसग मे। प्रकरण तो यह था कि जब सामग्री विशेषसे समस्त आवरणोका विश्लेष हो जाता है तो जो ज्ञान प्रकट होता है वह पूर्ण विशद प्रत्यक्ष ज्ञान है, सर्वज्ञाता है इस प्रसग मे ईश्वरकर्तावादियो ने तो यह कहा था कि आवरणके विनाश होनेपर सर्वज्ञता नही हुआ करती किन्तु अनादिमुक्त जो एक सदाशिव है, वही सदा सर्वज्ञ है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई सर्वज्ञ नही होता, जीव कर्मों से लदे हुए हैं उनमे अनकोंके आवरणोका क्षय होता तो है और आवरण विनाशमे मुक्ति हो जाती है, पर उनकी मुक्तिमे ज्ञानगुणका ही विनाश हो जाता है, सर्वज्ञता आये कहा से ? सो अनादिमुक्त सदाशिव ही समस्त अर्थ समूहका ज्ञाता है और उसकी सर्वज्ञता सिद्ध करने मे हेतु दिया था यह कि क्योकि वह समस्त विश्वका कर्ता है। जो समस्त विश्वका करने वाला है वह ही समस्त विश्वकी बातो को जान सकता है। जब सम्वाद विसम्वाद चला उसके बादमे प्रकृतिकर्तृत्ववादियोने यह कहा कि यह बात ठीक है कि चेतन बुद्धिमान ईश्वर सदाशिव कोई सर्वज्ञ नही हो सकता क्योकि सर्वज्ञता तो प्रकृति के ही हुआ करती है। प्रकृतिमे ही ज्ञानका आवरण पडा है और प्रकृतिमे ही आवरणका विनाश होता है तो प्रकृति सर्वज्ञ बनता है और उसमें भी यह हेतु दिया गया कि चूकि प्रकृति विश्वका करने वाली है इस कारण प्रकृति सर्वज्ञाता है इसी बनाये गये प्रसगमे इस समय यह चल रहा है कि प्रकृतिने इस सृष्टिको रचा। प्रकृतिसे बुद्धि उत्पन्न होती बुद्धि मे अहकार होता अहकारसे फिर यह सारा विश्व उत्पन्न होता है। तो यह कार्य कारण विभाग प्रकृति आदिकमे कैसे हुआ ? इसकी कुछ चर्चाओके बाद इस बात पर आये कि प्रकृतिमें वे सब कार्य मौजूद हैं अत: प्रकृतिसे वे

कार्य होते हैं सत्कार्यवादके सिद्धान्तका यह भाव है कि जितने पदार्थ होते हैं उन पदार्थों मे जो कार्य प्रकट होता है वह कार्य बनाया नहीं जाता किया नहीं जाता किन्तु वे सब कार्य उस पदार्थ मे रहते हैं। सत्कार्यवाद की सिद्धि मे हेतु भी दिया गया है कि यदि कारणात्मक पदार्थोंमे कार्य सत् न हो तो जो असत् है वह कभी किया ही नहीं जा सकता जैसे खरगोश के सींग नहीं होते तो वे कभी किये ही नहीं जा सकते। इस प्रकार पदार्थोंमें यदि कार्य असत है तो वे वहां उत्पन्न कैसे हो सकते हैं ? इस सम्बधमें बहुत विस्तार से वर्णन करके यह सिद्ध किया कि कारणात्मक पदार्थमे कार्य सदा नहीं रहा करता है उनमें योग्यता है, शक्ति है।

उपादान ग्रहण हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धि पर विचार —अब शंकाकार कह रहा है कि यदि पदार्थ मे कार्य न हो तो उपादान का ग्रहण सम्भव नहीं है अर्थात कारणमे कार्य मौजूद है तब तो यह कार्य उस कारणरूप उपादानको ग्रहण करता है यदि कार्य न होता तो उपादानका ग्रहण सम्भव न था। जैसे धान्यके बीज आदिकमें अंकुर असत हो तो फिर उनसे अंकुर पैदा ही नहीं किये जा सकते और फिर कोदोंके बो देनेसे धान क्यो नहीं पैदा हो जाता, धानके बीज उत्पन्न करनेके लिए धान ही क्यो बोते हैं ? यह जो व्यवस्था बनती है कि धानके बीजसे ही धानके अंकुर उत्पन्न होंगे तो यह व्यवस्थातब बनती है जब उन धानोमे अंकुरे पहिले से हीं मौजूद है जिस कारणमे जिस कार्यका सत्त्व हुआ करता है उस कारणसे वही कार्य होता। इससे सिद्ध है कि कारणात्मक पदार्थ मे कार्य पहिले से ही मौजूद हैं। यह सतकार्यवादीका दूसरा हेतु है। समाधान करते हैं कि यदि वह कार्यभूत पदार्थ सब प्रकारसे सत् है, तो फिर उनका कार्यपना क्या ? वे तो हैं ही। कार्य तो उसे कहते हैं कि न हो और किया जाय। जो कार्य सर्वप्रकारसे सत ही है तो वह कार्य क्या रहे। जब उनमें कार्यपना न रहा तो वह उपादानका ग्रहण भी क्या करे। यही सिद्ध होता है कि कार्य असत है। अब तो उपादान को ग्रहण करके वे उत्पन्न हुए है जो मौजूद ही हैं वे अब किसको ग्रहण करें, स्वतन्त्र ही दोनो सत हो गये कारणात्मक पदार्थ और कार्यात्मक पदार्थ जब दोनो सत हो गये तो कौन किसको ग्रहण करे। यदि कारणमे कार्य न होता तो वे उपादानको ग्रहण न करते इस हेतु से तो उल्टी बात सिद्ध होती है कि चूंकि सत् कार्य नहीं है अतएव वे उपादानके ग्रहण करनेसे उत्पन्न हुए है।

सर्वसम्भवाभाव हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धिपर विचार —अब तीसरा हेतु देते हैं सत्कार्यवादी कि यदि असत् ही कार्य हो पदार्थमे वह कार्य नहीं मौजूद हैं तो सभी पदार्थोंसे चाहे तृण हो, पाषाण हो, कुछ हो सबमे सब कार्य बन बैठे। सोना चांदी आदिक भी कार्य बन बैठेंगे यदि कार्यको कारणमे असत् मानोगे। जब कार्यको सत् माना है तो जिस कारणमें जो कार्य है वह कार्य ही उस कारणसे अभिव्यक्त होता है, यह व्यवस्था बनती है, पर कार्यको असत् माननेपर तो जैसे धानके बीजमे धानका

पेड असत् है इसी प्रकार कोदो, गेहूँ आदिकके पेड भी उस बीजमे असत् हैं, अथवा मनुष्य जानवर ये भी असत् हैं। फिर एक धानके बीजसे सारे विश्वकी रचनायें क्यो नही बन जाती ? इससे सिद्ध है कि काय पहिलेसे ही मौजूद है। तव उस उस पदार्थसे उस उस कार्यकी उत्पत्ति होती है। उत्तरमे कहते हैं देखो ! जन्म कहते किसे हैं ? होनेका नाम जन्म है लेकिन जो सत् कार्यवादी हैं जो कार्यको कारणमे पहिलेसे ही सत् मान रहे हैं उनके यहाँ तो सभी काय एक कारणसे उत्पन्न हो जाने चाहियें। समस्त कार्य उत्पन्न न हो सकें यह बात तो कारण कार्य विभागका प्रतिनियम मानने वालोके बन सकती हैं। जो कारण जैसी योग्यता रखता है, उसे जैसा अनुकूल निमित्त प्राप्त हुआ है वैसी ही उसमे रचना होती है। जो कार्योंको पहिलेसे ही सत् मान रहा है उसके यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि सभी कार्य क्यो नही इसमे ही जाते हैं ? उसमे क्या व्यवस्था बनाये कि एक धानके बीजमे धानका अकुर ही है, उसमे भैंस बकरी, गाय आदि क्यो नही उत्पन्न हो जाते जब ये नही उत्पन्न होते हैं उस धान के बीज मेतो यह ही इस बातको सिद्ध करता है कि वहा कार्य मौजूद नही है किन्तु उपादान निमित्त की जो पद्धति है उस पद्धतिपूर्वक कार्योंकी उत्पत्ति होती है।

शक्तस्य शक्यकरण हेतुसे सत्कार्यवाद सिद्ध करनेका प्रयत्न – शकाकार कहता है कि वे सभी कार्य क्यो नही हो जाते एक कारण से यह तो दोष वहाँ ही सम्भव है जो कारणका प्रतिनियम नही मानते। यहा तो कारण माना जा रहा है। प्रतिनियम कार्यो के जो कारण हैं उनकी प्रतिनियत शक्ति होती है। कारणो की अपनी अपनी जुदी-जुदी शक्ति होती है और उस शक्तिके अनुसार उसमे कार्य उत्पन्न होता है। यह उपालम्भ देना कि किसी भी कारणसे सारे कार्य क्यो नही उत्पन्न हो जाते ? यदि असत् है कार्य है, तो यह उपालम्भ यो ठीक नही बैठता कि यद्यपि कार्य तो सब असत हैं, किसी भी कारणात्मक पदार्थमे लेकिन उनमे प्रतिनियत शक्ति है, उसके कारण वह किसी कार्यको करता है किसी को नही करता है। यदि कोई स्याद्वादी उत्तरमे कहे ऐसा तो शकाकार कह रहा है कि भाई जो समर्थ भी हेतु है वह समर्थ हेतु भी उस कार्य को करता है जो शक्यक्रिय है। जिसकी क्रिया की जा सकती है। जिसकी क्रिया न की जा सके उसे समर्थ हेतु भी नही कर सकता और जब कार्य वहा सत हो तब यह बात बन सकती है कि उसकी क्रिया को यह समर्थ हेतु कर सकता है। सत् न हो तो उसकी क्रिया कर नही सकता। जैसे आकाश का फूल असत है तो उसकी क्रिया नही की जा सकती है। तो इससे सिद्ध है कि कार्य सत है। तब उसकी क्रिया शक्य है और समर्थ हेतु तब उस शक्य क्रियाको कर सकता है।

शक्तस्य शक्यकरण हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धिका अभाव – शक्यकरण के सम्बन्धमे अब समाधान करते हैं कि यह भी प्रलाप मात्र है कि यह शक्य हेतु यह शक्य क्रिया। अरे, जहा यह बात मानी जाती है कि किसीके द्वारा कुछ निष्पादन हुआ

करता है तो निष्पादकपना, कार्यपना जो बने और जो कार्यका निष्पादक हो उसका कारणपना बने। सो कारण शक्ति और कार्य यह व्यवस्था तो वहा सम्भव है जहा किसीके द्वारा कुछ कार्य पहिलेसे ही सत् मान लिया गया वहा यह व्यवस्था ही कैसे सम्भव है ? जब सब कार्य पहिलेसे कारणमे मौजूद हैं तब फिर उसमे यह कैसे कहा जा सकता कि शक्त हेतु उसको करे। अरे वे तो किये ही रखे हैं फिर शक्तिकी आवश्यकता क्या है ? शक्तिका प्रयोग वहाँ होता है जहा बात कुछ न हो और की जाती हो। तो भाई शक्तिका प्रयोग करके क्रिया उत्पन्न कर ली गई मान लो, पर कार्य जब मौजूद ही है पदार्थमें तब उसकी शक्ति और अशक्तिका प्रश्न ही कहा आता है। यहाँ सत्कार्यवादके मतव्यसे उस दृष्टिकी तुलना करले। जब एक पदार्थको ही निरखकर यह देखा जाता है कि पदार्थ किसी न किसी पर्यायरूप रहेगा, सदा रहेगा, अनन्तकाल तक रहेगा उसमे अनन्त पर्याय प्रकट होती हैं। उन अनन्त पर्यायोका समूह द्रव्य है। इस प्रकार जब दृष्टि सत्कार्यवादसे तुलना करने लगती है, तब इस ही मतका एकान्त हो जाता है और कार्यकारण विधान ये सब गौण हो जाते हैं। तो यह बात कि शक्त हेतु शक्यको ही करे यह वहा ही सम्भव है जहा कार्य मौजूद नहीं है।

कारणभाव हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धिपर विचार शङ्काकार कहता है कि एक हमारा ५वा हेतु सुनो। पदार्थोंके कार्य पहलेसे ही मौजूद हैं क्योंकि यदि कार्य न मौजूद हो तो वह कारण बन ही नही सकता। क्योकि कार्य नही है तो किसका कारण बने ? ये बीज आदिकके कारणत्व जो आये हैं ये तब आये हैं जब उस बीजमे कार्य मौजूद है। उस बीजमे घास सीग तो नही मौजूद हैं तभी तो उसका कारण यह बीज नही बन पाता। यह बीज अंकुरका ही कारण बन पाता है। उस बीजमे अकुरकार्य पहिलेस ही सत् है इससे सिद्ध है कि उत्पत्तिसे पहिले कारणमें कार्य मौजूद होता है। अब इस आशङ्काका उत्तर देते है कि जब कार्यपना ही सिद्ध नही होता तब कारणभावकी बात कहना असार है क्योकि जब कार्य पहिलेसे ही मौजूद है तो है सब और सभी नित्य हैं। जगतमे अनन्त पदार्थ पड़े हैं, जितने अनन्त होंगे वे सब एक समयमे सत् है, तब उनमें कहनेकी बात क्या आयी ? तो कारणभेद बताना पदार्थमे नही घटित होता, क्योकि कार्यपना कुछ बात है ही नही। सो जो ५ हेतु देकर यह सिद्ध किया जा रहा था कि कारणमे पदार्थमे सारे कार्य मौजूद हैं यह बात घटित नही होती।

हेतुओसे असत् निश्चयकी सिद्धि अच्छा अब जरा एक दूसरे ढङ्गसे इसकी परीक्षा करें। इन हेतुओको देकर तुम क्या करना चाहते ? जैसे ५ हेतु दिये कि असत् किया नही जा सकता इसलिए पदार्थ सत् है, पदार्थ सत् न हो तो उपादान का ग्रहण नही हो सकता। पदार्थ सत् न हो तो उससे किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य सत् न हो तो वह कभी किया ही नही जा सकता क्योंकि शक्य हेतु

शक्य क्रियको ही करता है। कार्य न हो तो पदार्थमे कारणपना कैसे आयगा ? इन हतुवोको देकर तुम क्या सिद्ध करना चाहते ? अर्थात् यह तुम्हारा हेतु क्या काम करता है ? देखिये ! साधन जो दिया जाता है हेतु जो दिया जाता है, वह इस उद्देश्यसे दिया जाता है—एक तो प्रमेयके विषयमे प्रवृत्ति किये जानेमे सशय विपर्यय ज्ञान आ जाय तो उन्हे दूर करदे। दूसरा काम क्या है उन साधनोका कि साध्यके निश्चयको उत्पन्न करदे। हेतु दो काम किया करते हैं लेकिन यह बात सत्कार्यवादमे सम्भव ही नही है अर्थात् हेतु देकर साध्यको सिद्ध करनेकी बात भी सत्कार्यवादमे नही बन सकती क्योकि तीन बातोपर विचार करना है—सशय, विपर्यय और निश्चय हेतुवोका एक काम तो यह है कि सशय और विपर्ययको दूर करें। बतलावो ये सशय, विपर्यय तुम्हारे मतमे चेतनात्मक हैं अथवा बुद्धि और मनके स्वभावरूप हैं ? याने सशय विपर्ययको या तो चैतन्यात्मक मानो या बुद्धि और मनके स्वभावरूप मानो ! बुद्धि और मन ये पदार्थ हैं और अचेतन हैं, किन्तु आत्मा चेतन है इस सिद्धान्तमे। सशय विपर्ययको किसी भी रूप माना तो भी सशय विपर्ययकी निवृत्ति सम्भव नही है क्योकि चेतन भी नित्य माने गए हैं बुद्धि भी नित्य मानी गयी है और मन भी नित्य माना गया है। तो जब ये तीन चीजें नित्य हैं और इनमेसे किसीके स्वभावरूप हो सशय अथवा विपर्यय तो वह भी नित्य हो गया। तो सशय विपर्यय अविनाशी हैं, इनका कोई विनाश नही कर सकता तब फिर निवृत्ति कैसे सम्भव है ? निश्चयकी उत्पत्तिकी भी बात घटित नही होती क्योकि निश्चय भी सदा सत् है। सत्कार्यवादमे सब चीजें सत् हैं। तो हेतु देकर किसी साध्यके निश्चय करनेकी बात यो सम्भव नही है कि वह निश्चय भी पहिलेसे सत् है जो सिद्ध करना चाहते वह भी पहिलेसे सत् है, यो निश्चय पहिलेसे ही सत् हो गया तो साधन देना, युक्तियां देना ये सब व्यर्थकी बातें हो जाती हैं। तब फिर जो अनुमानका स्वरूप बनाना चाहते हो, साध्यकी सिद्धि बनाना चाहते हो, साधनप्रयोगकी सार्थकता चाहते हो उन्हे मानना पडेगा कि निश्चय असत् है, अभी उसकी उत्पत्ति कराना है, निश्चय उत्पन्न करना है उसके लिये ये युक्तिया दी जा रही हैं। तो यह सिद्ध हुआ ना कि निश्चय असत् है और उसे उत्पन्न करनेके लिए साधन बनाये जा रहे हैं, अनुमान बनाये जा रहे हैं, युक्तिया दी जा रही हैं। जब निश्चय असत् हो गया और साधनसे उत्पन्न किया गया तो तुम्हारे इस हेतुमे अनैकान्तिक दोष आ गया है। ५ हेतु तो इसलिये दिये थे कि यह सिद्ध करे कि सब कुछ कार्य सत् ही होते है और यहा क्या बात अब सिद्ध हो रही है कि निश्चय असत् है तब इन हेतुवोसे असत् निश्चयकी उत्पत्ति की जा रही है। तो जब यह असत् निश्चय हेतुवोके द्वारा कराया जा रहा है तब यह बात नही रही कि सत् न हो तो वह किसी के द्वारा कराया नही जा सकता है।

सत्कार्यवादके पाचो साधनोंकी अनैकान्तिकता—और, देखिये ! ये पाचोंकी पाचो बातें उस निश्चयके साथ विरुद्ध बैठती हैं। असत् निश्चयकी उत्पत्ति ना

इन हेतुप्रोंमे ता यह वात तो न रही कि जो सत् है उसको ही किया जाता है, असत्को नही किया जाता है। तो जैसे असत् निश्चयका कारण मान लिया ऐसे ही असत् कार्य भी कारणके द्वारा किये गये मान लिया जाना चाहिये। उस असत् निश्चयके लिए जो साधन देकर निश्चय करानेका यत्न किया जा रहा है वह निश्चय असत् है और साधनसे उम निश्चयकी उत्पत्ति करा रहे तो जैसे असत् निश्चयकी उत्पत्तिके लिये विशिष्ट साधन जुटाये, हेतु वनाये इसी तरह असत कार्यकी उत्पत्ति करनेके लिये उपादानका ग्रहण होता है और जैसे तुम्हारा यह निश्चय इन हेतुओसे जो हुआ यह निश्चय उन हेतुवोसे क्यो हुआ ? हेत्वाभासोसे क्यो नहीं हुआ ? साधनाभासोंसे निश्चयकी उत्पत्ति नही हुई। जैसे यह वात मानी है इसी प्रकार प्रकृतिमे भी मान लो कि कार्यकी उत्पत्ति प्रतिनियत कारणोंसे होती है। यो ही अटपट जिस च हे कारणमे नही होती और, जैसे निश्चय असत है, असत होनेपर भी यह समर्थ हेतुवोंके द्वारा किया गया है इसी प्रकार यह कार्य असत होकर भी समर्थ कारणोके द्वारा किया गया है इसमें भी कौनसी विपत्ति आयी ? तथा जैसे तुमने इन ५ हेतुवोकी कारणता मानी है अपने अभीष्ट साध्य निश्चयकी उत्पत्तिमें इसी प्रकार जो कार्य उत्पन्न होता है उसकी कारणता उस प्रतिनियत पदार्थमे होती है, यह सिद्ध हो गया।

परिणमन व्यवस्था—सीधी वात यहाँ यह सिद्ध हुई कि जगतमें ये समस्त अनन्त पदार्थ हैं। जैसे अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, एक धर्म, एक अधर्म, एक आकाश, असख्यात काल ये सभीके सभी पदार्थ प्रतिसमय परिणमनशील हैं। परिणमनशीलता न हो तो इन पदार्थोंकी सत्ता ही नही रह सकती। [सत्ता है क्योंकि निरन्तर परिणमते रहते हैं। जिसका कोई रूप नही जिसकी कोई मुद्रा नही, जिसको कुछ भी अवस्था नहीं वह तो किया जाता है। उसको कैसे माना जाय ? कोई भी पदार्थ ऐसा नही जो परिणमता न हो और हो, चाहे सदृश परिणमन हो जिसके परिणमनमे परिवर्तन ज्ञात न हो, चाहे किसी भी प्रकारका सूक्ष्मपरिणमन हो परिणमन बिना पदार्थ परिणमनशील है। और जो पदार्थ जिस पर्यायमे है उस उपादानके अनुकूल उस योग्यता के अनुकूल उसमे आगे परिणमनो की वात हुआ करती हैं। इसे कहते हैं योग्यता। सो ऐसे योग्य उपादान अनुकूल साधन पाकर अपने मे एक कार्य परिणमनको उत्पन्न कर लेता है। तो ऐसी व्यवस्थातो लोकमे है, पर इस समस्त विश्वको कोई एक अनादिमुक्त सदाशिव कार्य वनाये इसी प्रकार सारे विश्वको प्रकृति रचे यह कल्पनामात्र है।

वस्तुव्यवस्थाके अनुसार प्रकृतिका अर्थ—प्रकृतिका अर्थ यदि साधारण तया ऐसा लेते हो कि प्रकृति जो पदार्थ परिणमता है उस पदार्थमें जिसे परिणमनकी आदत हो प्रकृति हो, स्वभाव हो, योग्यता हो वह प्रकृति कार्य करती हैं तो इससे बात इतनी निभ जायगी कि पदार्थमें जैसी प्रकृति पडी है जैसी योग्यता पडी है जैसा स्वभाव पडा है उसके अनुकूल पदार्थमे सृष्टि हो जाती है लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि

प्रकृति सर्वव्यापी एक है और वह एक प्रकृति समस्त विश्वकी अधिष्ठायकता करती है। किन्तु अणु-अणु प्रत्येक जीव उन सबमे अपनी-अपनी प्रकृति मौजूद है और उनकी ही योग्यता, उनकी ही प्रकृति उनमें कार्य करती जाती है अनुकूल साधन पाकर प्रत्येक पदार्थ अपना कार्य बना रहे हैं और उनको ही प्रकृति कहलो। तो यो प्रकृति की बात वात सम्भव है, दूसरे इस तरह की प्रकृति को कर्ता रहा जा सकता है जिसको कर्ता सिद्ध कर रहे हैं वहसब है यहांका यह जीवलोक और दृश्य मान पुद्गल। इसीमे तो कार्यत्वकी बात बतायी जारही है सो देखिये जितना यह जीवलोक है इन समस्त जीवो के साथ प्रकृति लगी हुई है। कोई लोग कहते कि योग्य - गा है, कोई लोग तकदीर कहते हैं, कोई लोग कम कहते हैं। तो कर्मका ही दूसरा नाम प्रकृति है, चाहे आप कर्म कहो चाहे आप मूल प्रकृति कहो मूल प्रकृतियाँ ८ कही है और उत्तर प्रकृतियाँ १४८ कही उन प्रकृतियोका जैसा विभाव होता है उसके अनुकूल यह जीवलोक की रचना चल रही है। जैसे कही पहाडपर कही नदीपर किसी फुलवाडीमे फूल शोभायमान हो रहे हो तो कहते हैं कि वाह कितना सुन्दर प्रकृतिका यह खेल है। तो प्रकृति के मायने यहा प्रकृतिरचना, उसका अर्थ यह है कि वह सब है जीवकार्य, जितना जो कुछ भी दिख रहा है कोई तो हैं वे जीवव्यक्तत्वकाय और कोई हैं सजीवकाय, किन्तु जो नजर आ रहे हैं वे सब जीवके द्वारा ग्रहण किये हुए थे। तो चाहे वह अजीव पुद्गलकी सुन्दरता हो चाहे शरीरधारी जीवो के इन शरीरोकी सुन्दरता हो, वह समस्त सुन्दरता वह समस्त रचना प्रकृतिकृत है अर्थात् प्रकृति के उदयका निमित्त पाकर ऐसी काय बनी थी और जब वहा जीव सत था तब वह सजीवकाय था जीव चला गया तो अब वह निर्जीवकाय रह गया, मगर उनकी जो मूलमे रचना बनी वह एक जीवके सम्बन्धसे बनी और और वह प्रकृतिके उदयसे बनी। तो यों जो कुछ दिख रहा है चेतन अथवा अचेतन अर्थ समूह, वह सब प्रकृति का खेल है इसमे कोई सदेहकी बात नही, लेकिन प्रति अर्थ प्रतिनियत प्रकृति है और वह इन समस्त का किो रचती है यह बात यहा सिद्ध नही होती, क्योकि जातिमे अर्थक्रिया नही होती। अर्थक्रिया व्यक्तिगत हुआ करती है। आवान्तर सतमे अर्थक्रिया होती है। जाति तो आवान्तर सत्ताके सदृश स्वरूपको देख कर एक कही जाती है। तो यो प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी प्रकृतिसे है और उनमे अनुकूल साधन मिलनेपर वैसी वैसी रचनायें होती जाती हैं। तो प्रकृति न विश्वकर्त्री है न सर्वज्ञ है किन्तु ज्ञानका स्वभाव आत्मामे है। उस ज्ञानपर आवरण पडा हुआ था और युक्तिसे जब आवरणका विनाश होता है तो वह ही आत्मा सर्वज्ञ हो जाता है। और आत्मा सर्वज्ञ हुआ ज्ञान सर्वज्ञ हुआ कुछ भी कहो, बस उस ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान है।

व्यवहार्य समागमोके स्वरूपनिर्णयका कर्तव्य—जिन पदार्थोंमे हमारा रहना होता है, जिनसे व्यवहार बन रहा है ऐसे पदार्थोंका कैसे निर्माण हुआ, उसमें क्या सम्बन्ध है आदिक बातोका निर्णय करना एक सत्य सुख वालेका प्रथम कर्तव्य

है क्योंकि क्लेशका कारण है केवल मोह। सो मोह दूर हो यह उपाय सभी दार्शनिकोने बताया है, उन्ही उपायोका यहाँ निर्णय करते है कि वास्तविक उपाय कौनसा है। ये दार्शनिकोके बताये हुए उपाय जो कि अपने-अपने भिन्न मत भिन्न विषयोको लिए हुये है परस्पर विरोधी हैं, अगर उनका परस्पर विरोध है तो वे सब उपाय आत्महितके नहीं रह सकते। उनमेसे यह छटनी होगी कि कौनसा उपाय सत्य है। और यदि उनका परस्परमे विरोध नही है ता हमे वह एक प्रकाश अपनेमे करना होगा जिस प्रकाशमे हमको दार्शनिकोके उन सब उपायो का प्रयोजन और मर्म ज्ञात हो जाय और उस ही एक उद्देश्यपर आजाय कि इन दार्शनिकोने क्या किया था इस सत्य उद्देश्यके लिए प्रयास किन्तु थोडा सा नय विभाग की सावधानी न होनेसे धीरे-धीरे और और भक्तोने, अन्य-अन्य लेखकोंने उसका रूप ऐसा बना लिया जिससे यह जचता है कि इन सबके बताये गए शान्तिके उपायोमे परस्पर विरोध है।

सत्कार्यवादके विचारका प्रसङ्ग—इस प्रकरणमें यह विषय चल रहा है कि ये सब जाल रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द और ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश और चलते-फिरते लोग कर्म इन्द्रिय और ज्ञान करने वाले थे, और इन सबसे कुछ सूक्ष्म किन्तु स्थूल ये ज्ञान इन्द्रिय यह सब जाल कैसे बना है कैसे उत्पन्न हुआ है। तो सत्कार्यवादी यहां यह कह रहे हैं कि लोकमें केवल दो ही तत्त्व हैं पुरुष और प्रकृति, आत्मा और प्रधान। जिसमे पुरुष अर्थात् आत्मा तो अपरिणामी है केवल चितस्वरूपमात्र है, उसमें कोई तरग नही ज्ञान ही नही। जानेगा तो हिलेगा, तरग होगी कुछ एक नवीनता सी मालूम पडेगी, कुछ समझा है तो सत्कार्यवादमे आत्माके ज्ञान तक भी नही किन्तु आत्मा केवल एक चेतन है, ऐसा तो आत्माका स्वरूप है। तो प्रकृतिसे ये कैसे उत्पन्न हुए इस सम्बन्धमे सम्वाद चल रहा था। सम्वाद चलते-चलते यह कहना पडा कि चू कि प्रकृति कारणमे ये सारी जाल रचनायें अब भी मौजूद हैं। जितने जो कुछ भी कार्य होंगे वे सब कारणभूत प्रकृतिमें अब भी मौजूद हैं इसलिए उसमे से प्रकट होते रहते हैं। यदि न मौजूद होते तो उसमेसे किसी भी प्रकारकी उत्पत्ति न हो सकती थी। और ऐसा सिद्ध करनेमे ५ हेतु दिये थे। यदि पदार्थमे कार्य अब भी मौजूद नहीं हैं तो वह कभी किया ही नही जा सकता यदि पदार्थोंमें कार्य नही मौजूद है तो वह उस उपादानको ही क्यो ग्रहण करे। यदि पदार्थमें कार्य नही है तो फिर एक पदार्थसे सभी कार्य क्यो नही उत्पन्न हो जाते। वही कार्य क्यो होता यदि पदार्थमे कार्य नही है तो वह कही भी किया ही नहीं जा सकता शक्य हेतु सक्यक्रिय को ही कर सकता है और पदार्थमे कार्य नहीं है तो पदार्थको कारण शब्दसे कह भी नही सकते। यह बीज अकुर का कारण है यह तब कहा जा सकता है जब बीज मे अकुर मौजूद हैं। तभी उसका कारण बताया जाता है अन्यथा किसीको भी कारण कह सकते। इन हेतुवोंको देकर यह निश्चय किया कि प्रत्येक कारणमे कार्य मौजूद है तो इसी प्रसगमें यह पूछा गया था कि इन हेतुवोंसे तुम कुछ निश्चय कर रहे हो तो यह बतलावो कि हेतु बोलनेसे

पहिले यहा निश्चय पडा हुआ है। वह तो पडा ही है। अगर निश्चय असत् है तो इन हेतुवोका देकर भी निश्चय किया ही नही जा सकता क्योकि जो असत् है वह किसी भी प्रकार सिद्ध नही किया जा सकता देखिये पदार्थके करनेकी बाततो चल रही थी किन्तु हेतुको देकर यह स्वय अपने आप फस गया। अब यह पड रही है कि अनुमान प्रयोगमे साधनोको बताकर साध्यका निश्चय किया जाता है यह कैसे सिद्ध करें। साध्यका निश्चय करना है और निश्चय है पहिलेसे ही सत् तो साधन करे क्या ? साध्यका निश्चय अगर असत है तो साधन कोई उसे कर ही नही सकता।

साधन द्वारा साध्यनिश्चयाभिव्यक्तिके सम्बन्धमे तीन विकल्प—शकाकार कहता है कि भाई साधनका प्रयोग करनेसे पहिले निश्चय सत् ही है, पर उसपर साधनके प्रयोग करनेकी व्यर्थता नही हो सकती क्योकि हेतुका प्रयोग करना केवल उस निश्चयकी अभिव्यक्तिके लिए है। जैसे पदार्थमे कार्य पडा हुआ है पर कारण कूट जो जुडा जाता है वह कारणोकी अभिव्यक्तिके लिए है न कि उत्पत्तिके लिए। इसी प्रकार अनुमान प्रयोगमे जो साधन डाला जाता है वह निश्चयकी अभिव्यक्तिके लिए है न कि उत्पत्ति करनेके लिए सब चीजें सत् हैं निश्चय भी वहा सत् है तो समाधानके लिये पूछते है कि अभिव्यक्तिका क्या अर्थ है ? अनुमानमे हेतु प्रयोग करके साध्यके निश्चयकी अभिव्यक्ति करना इसमे अभिव्यक्तिका क्या भाव है। क्या इसका यह अर्थ हैं कि निश्चयमे स्वभावातिशय उत्पन्न कर देना, अथवा यह अर्थ है कि निश्चयके विषयका ज्ञान करना, निश्चयका ज्ञान करना अथवा निश्चयको ढाँकने वाले जो आवरण है उनको हटाना ? साधन प्रयोगके द्वारा जो साध्यके निश्चयकी अभिव्यक्ति बताये उसके सम्बन्धमे ये तीन विकल्प उठाये गये।

सत्कार्यवादमे स्वभावातिशयोत्पत्तिरूप अभिव्यक्तिकी असिद्धि - यदि कहो कि स्वभावातिशय पैदा करनेका नाम अभिव्यक्ति है अर्थात् साधन का प्रयोग करके उस साध्यके निश्चयमें एक अतिशय बढा दिया जाता है तो यह बतलायो कि वह अतिशय, स्वभावातिशय निश्चयके स्वरूपसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है तो जैसे निश्चयका स्वरूप सत् है इसीप्रकार स्वभावातिशय भी सत् है, फिर उत्पत्ति क्यो करना ? यदि कहो कि भिन्न है तो यह स्वभावातिशय इस निश्चयका है यह सम्बन्ध कैसे जोडा जा सकता है ? देखिये प्रकृत प्रसगको समझनेके लिये एक सरल दृष्टान्त लेकर एक अनुमान बनायें कि पर्वतमे अग्नि है धुवा होनेसे, तो इस प्रसगमे सत्कार्यवादियोसे यह पूछा जा सकता है कि अग्निके ज्ञानका निश्चय इसमे पहिलेसे था या नही ? यदि वे यह कहदें कि निश्चय असत् था ना और साधनके द्वारा असत् पैदा किया गया तब यह टेक तो न रही कि जगतमे सब सत् हैं। असत भी पैदा हो गये, तो तुम्हारे ही हेतुसे तुम्हारे ही वचनसे विरोध हो जायगा यदि यह कहो कि निश्चय पहिलेसे ही सत था किन्तु उस साधनभूत धूमके द्वारा उस निश्चयकी, अभिव्यक्ति की, तो इसका उत्तर भी

थोडी देरमे सुन लीजिए। इस समय जरा शङ्काकारकी मदद करें। थोडा सोचो— जिसे अग्निका धूमका बहुत परिज्ञान है, खूब जानता है— जहाँ धुवा होता है वहाँ अग्नि होती है, कई बार जाना, अनुमानसे भी जाना प्रत्यक्ष भी जाना तो अनुमानकी जानकारी तुम्हारेमे है ना, तब तो कोई धुवा देखता है तो जो जानकारी हमारे अदर बनी हुई है, समझते हैं उसकी अभिव्यक्ति होगी। इस तरहके भावोको लेकर यह शङ्का लगाई जा सकती हैं। अब उत्तरमे चलिये! तो क्या किया उस समाधानके प्रयोगने? क्या उस निश्चयके स्वभावमे अतिशय किया? यदि वह अतिशय अभिन्न है तो भी नही बनता, भिन्न है तो सम्बन्ध नही बनता।

भिन्न अथवा अभिन्न अतिशयका सम्बन्ध होनेका कारण – सम्बन्ध दो तरहके होते हैं—एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ जो सम्बन्ध होता है वह दो प्रकार का है –आधार आधेय सम्बन्ध और जन्य जनक सम्बन्ध। जैसे डब्बामे घी रखा है, यह सम्बन्ध आधार आधेय है। और, दहीमें घी है यह सम्बन्ध है जन्य जनक सम्बन्ध, तो निश्चयमें और स्वभावातिशयमे क्या आधार आधेय सम्बन्ध है? आधार आधेय सम्बन्ध तो यो नही बन सकता कि वे दोनो सत हैं, स्वतन्त्र हैं एक दूसरेके अनुपकारी हैं इसलिए सम्बन्धकी बात क्या? और मानो कि उपकार किया तो वह उपकार वहा भिन्न है तो उसके लिए फिर अन्य उपकार मानो। यो अनवस्था दोष है। यदि कहो कि वह उपकार उनसे अभिन्न है वह अतिशयका स्वभावातिशयका उनसे अभेद है तो साधनका प्रयोग करना व्यर्थ रहा। एक बात और सोचो! आधार आधेय सम्बन्धका अर्थ क्या है कि आधेय पदार्थका नीचे जाना हो रहा था और एक पदार्थने उसके नीचे जानेकी गतिको रोक दिया, इसीके मायने आधार है। जैसे डब्बामें घी डाला तो घी नीचेको जा रहा था, उसके नीचे जानेकी गतिको उस डब्बाने रोक दिया तो गमनको रोकने वाले पदार्थका नाम कहलाता है आधार। तो यहाँ बतलावो कि स्वभावातिशय नीचेको जा रहा था और फिर निश्चय उसे थामले उसकी अधोगतिको रोकदे, ऐसा क्या कुछ विदित होता है? कोई बुद्धिमान क्या इसे स्वीकार करेगा? अरे, स्वभावातिशय तो अमूर्तिक है। उसमें रूप रस गध, स्पर्श कहाँ है? तो उसके अधोगमनकी बात बनती ही नही है। उस स्वभावातिशयमें अमूर्त होनेके कारण अधोगमन नही होता। अधोगमन करे और अतिशयवान हो ये दोनो परस्पर विरुद्ध बातें हैं। एक तो उचना और एक नीचे जाना, ये दोनो बातें कैसे हो सकती हैं? उससे निश्चयमे और स्वभावातिशयके आधार आधेय सम्बन्ध सिद्ध नही होता। अगर कहो कि इसमे जन्य जनक सम्बन्ध है तो निश्चय तो सदा ही सत है तब निश्चयके द्वारा उत्पन्न किया गया स्वभावातिशय भी सदा सन्निहित रहा तो उसका कार्य स्वभावातिशय होना ही चाहिये। इससे इन हेतुवोके द्वारा इन साधनोके द्वारा साध्यका निश्चय किया गया यह भी सिद्ध नही हो सकता तो तुम सत्कार्यवादको कैसे सिद्ध कर सकते हो।

निश्चयकी अभिव्यक्तिके लिये सत् अथवा असत् अतिशय किये जाने की असिद्धि अच्छा और बात जाने दो, तुम्हारे कहनेका प्रसङ्ग यह है कि निश्चय मे स्वभावातिशयकी अभिव्यक्ति है तो वह स्वभावाति सद्भूत है या असद्भूत? वह अतिशय यदि सद्भूत है तो साधनका प्रयोग करना व्यर्थ है। निश्चय भी सत है अभिव्यक्ति भी सत है फिर साधन जुटानेकी क्या आवश्यकता है? यदि कहो कि असत् है वह अतिशय तो देखो असत अतिशय कर दिया गया साधनके द्वारा तब यह हेतु न रहा कि जो असत होता है वह किसीके द्वारा किया नहीं जा सकता। तुम्हारे ही हेतुका तुम्हारे ही वचनोमे विरोध आता है। इसलिए अभिव्यक्तिका यह अर्थ नही बनता कि निश्चयके स्वभावमे अतिशय हो जाना अर्थात साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहा सो अनुमानमे साधनसे साध्यके निश्चयकी उत्पत्ति करते हो तो वहा साध्यज्ञान पहिले ही मौजूद है, साधनोने उस ज्ञानकी अभिव्यक्ति क्या की है। यो अभिव्यक्तिके ३ विकल्पोमे से प्रथम विकल्प माननेकी बात न बनी।

निश्चयविषयके ज्ञानरूप निश्चयाभिव्यक्तिकी असिद्धि—यदि कहो कि अभिव्यक्तिका अर्थ यह है कि निश्चयविषयक ज्ञान होना, ज्ञानविषयक ज्ञान होना। ज्ञान तो पहिलेसे ही मौजूद है पर साधनोसे व्यवहारसे ज्ञानका ज्ञान किया जा रहा है। ज्ञानका ज्ञान करना ही अभिव्यक्ति कहलाता है। शङ्काकारके भावोमे यो बात समझायी गयी कि जहा अनुमानको साध्य साधनके अविनाभावत्वका दृढ निश्चय होनेसे साधनज्ञान तो उसके मौजूद ही था अब साधन देखकर उस साध्यके ज्ञानकी अभि-व्यक्ति की जा रही है। तो इस प्रकार निश्चयके ज्ञानका नाम निश्चयकी अभिव्यक्ति है, यह बात ठीक नहीं बैठती, क्योंकि जो सत्कार्यवादी हैं उनके मतमे निश्चय भी सर्वथा सत् है क्योंकि ज्ञान एक माना गया है। जैसे प्रकृति एक है पुरुष एक है और प्रकृतिसे बुद्धिकी सृष्टि होती है, मगर एक बुद्धिकी सृष्टि होती है, नाना बुद्धियां नही रची जाती है और उस बुद्धिमे अहङ्कार होता है और अहङ्कारसे ये विषय उत्पन्न होते हैं। तो जब बुद्धि एक है तो दूसरा ज्ञान कहासे आयगा कि ज्ञानका ज्ञान करना, ज्ञान तो मौजूद था अब ज्ञानका ज्ञान करना इसका नाम है निश्चयकी अभिव्यक्ति, यो कहा जाने लगा सो यह बात नही बनती।

निश्चयोपलम्भावरणके अगम्यरूप अभिव्यक्तिकी असिद्धि—अगर तृतीय विकल्पसे उत्तर करेंगे कि निश्चयकी अभिव्यक्तिका अर्थ यह है कि निश्चयकी उपलब्धिका आवरण करने वाला जो कुछ भी है उसका विनाश किया गया, तो उत्तर दिया जा रहा है कि निश्चयमे आवरण ही सम्भव नही है क्योकि निश्चय नित्य है। यदि कहो कि है निश्चय पहिलेसे ही सत्—मगर उसका तिरोभाव हो गया यही आवरण है तो भला यह बतलावो कि व्यक्तपर आवरणकी बात आप कह रहे हैं। प्रकृति तो है अव्यक्त। बुद्धि अहङ्कार विषय ये सब हैं व्यक्त। तो व्यक्तपर अर्थात्

व्यक्तिका तिरोभाव किया तो व्यक्त अव्यक्त बन गया यह अर्थ हुआ। व्यक्तका तिरोभाव मानने पुने हुए ही सार्व कारक रहेकी असम्भूता हो गई। सो यहां भी क्या अर्थ हुआ कि यह असत् हो गया है, इस प्रकारसे आवरण हो गया है याने ये सब व्यक्त पदार्थ हैं इनसे तिरोभाव हा तो इनके मायने अव्यक्त हो गया, मगर व्यक्तको तुमने अव्यक्तपना कभी नहीं माना। अव्यक्त अव्यक्त ही है, व्यक्त व्यक्त ही है, इस कारण ज्ञानका तिरोभाव सम्भव नहीं। दूसरी बात यह है कि जब प्रकृति बुद्धि दूसरी कोई बात ही न मानकर एक अद्वैतवादमे चल रहे हो तो दूसरे आवरण कहांसे आयेंगे ? इससे उस निश्चयपर आवरण सम्भव नहीं है जिससे कि आवरण मिटाया जाय और उस आवरणके मिटनेसे निश्चयकी अभिव्यक्ति कही जाय। खैर, तुम्हारे जो ५ हेतु हैं जिनसे यह सिद्ध करना चाहा था कि प्रत्येक कारणात्मक पदार्थमे कार्य पहिलेसे ही मौजूद है, उसकी अभिव्यक्ति की जाती है यह सिद्ध नहीं होता।

सत्कार्यवादमे बन्ध और मोक्षके अभावका प्रसङ्ग—अब जरा और कुछ अन्य बात देखो ! इस मान्यतामे कि कारण आदिक पदार्थोंमें कार्य सदा सत रहता है, बंध और मोक्ष बन ही नहीं सकता है क्योंकि बन्ध होता है मिथ्याज्ञानसे और मिथ्याज्ञान सदा है सो बन्ध भी सदा है तब उनको मोक्ष कैसे होगा ? यदि यह कहा कि प्रकृति और पुरुषमे उनको अपने-अपने स्वरूपकी उपलब्धिका तत्त्वज्ञान बनता है उससे मोक्ष होता है। बात तो सही बनायी जा रही है कि यथार्थ ज्ञान से मोक्ष होता है। आत्माका क्या स्वरूप है ? केवलका और प्रकृतिका क्या स्वरूप है केवलका ? उनके उस कैवल्य स्वरूपका ज्ञान होनेसे मोक्ष होता है। जिसे कुछ उदाहरणके रूपमें यों समझिये कि जैसे प्रकृति और आत्मा। आत्माका निश्चयस्वरूप क्या है और कर्म का प्रकृतिका इनका निजी स्वरूप क्या है अथवा स्वभाव और विभावमे स्वभावका लक्षण क्या है इन दोनोका बोध होनेपर उन उनके कैवल्यकी उन उनके अपने आपके लक्षणकी उपलब्धि करे, वहां ही उपयोग रखे इससे मोक्ष होता है। समाधान में कहते हैं कि भाई कही तो है भेद विज्ञानकी बात लेकिन सत्य यो नही हो पाता कि वह तत्त्वज्ञान भी सदा अवस्थित है। सत्कार्यवादमे सब चीजें सत रहती हैं तो फिर सब चीजें सदा हैं तब फिर बंध कैसे हो सकता तब न ? फिर बन्ध सिद्ध हो सके न मोक्ष।

पदार्थोंकी योग्यतासे पदार्थोंकी व्यवस्था—भैया ! बात तो यही सीधी माननी चाहिये कि ये सब पदार्थ हैं और वे सदा प्रतिसमय एक एक परिणमनको लिए हुए हैं, वे एक कार्यसे अवच्छिन्न हैं। वह पूर्व कार्यमें सम्पन्न पदार्थ वर्तमान अवस्थासे संयुक्त द्रव्य अपनी योग्यता शक्तिके अनुकूल और अन्य अनुकूल कारण पाकर अपनेमें एक नवीन कार्य उत्पन्न करते हैं। यो विश्वकी व्यवस्था बनी हुई है। पर सारे कार्य उन पदार्थोंमे हैं और वे कार्य समय-समय पर उत्पन्न होते रहते हैं, इस सत्कार्यवादके

मने जानेपर समस्त व्यवहारका उच्छेद हो जाएगा।

शंकोक्त हेतुओंसे भी असत्यकार्यवादकी सिद्धि - अब एक और सीधीसी बात कही जा रही है कि शंकाकारका यह कहना कि जो असत् है वह किसीके द्वारा भी नही किया जा सकता। यह बात असगत है। पहिले तो यह बता दो कि तुम्हारे ये हेतु असत निर्णयको उत्पन्न कर रहे हैं, दूसरी बात–जितने हेतु तुम इसके सिद्ध करने मे देते हो कि कार्य सत है तभी यह किया जा रहा है तो उन्ही हेतुओंसे यह सिद्ध हो जाता है कि यह सब असत् हैं तभी यह किया जा रहा है। सत् हो उसका करना क्या सत् हो वह उपादानके पास जएगा क्या ? तो इन हेतुओंसे असत्का उत्पाद सिद्ध होता है क्योंकि कारणमे ऐसी शक्तिया हैं। समस्त कारणोकी शक्तियोका ऐसा प्रतिनियम है कि उनमे यह बात प्रसिद्ध है कि जो जिस प्रकारकी शक्तिवाला कारण है उससे उस प्रकारका ही असत् कार्य किया जाता हैं। अब आकाशके फूलका तो कोई कारण ही नही इसलिए नही किया जाता। यह कहकर उपालम्भ देते कि असत् यदि उत्पन्न होने लगे तो आकाशके फूल भी उत्पन्न होने लगें, वह क्रोधका वेग ही है। कारणोमे ऐसी शक्ति है, उनका ऐसा नियम है कि जिन कारणोसे जिस प्रकारके कार्य उत्पन्न हो सकते हैं वैसे ही कार्य उत्पन्न होते हैं। सब चीजें सबका कारण न बन जायेंगी।

उत्पत्तिसे पहिले कार्यका कारणमे कथचित् असत्त्व - दूसरी बात यह है कि हम यह व्याप्ति नही बना रहे कि जो असत् है वह किया ही जाता है। इस व्याप्तिमें तो दोष आएगा। आकाशका फूल असत है तो वह किया जाता है यह सिद्ध हो जाएगा पर हम यह नही कह रहे कि जो जो असत है वह किया ही जाता है, किन्तु क्या कह रहे ? जो किया जाता है वह उत्पत्तिसे पहले कथचित् असत ही है। यदि वह सर्वथा असत् बन जाय तो बात नहीं बनती। लेकिन कहा तो यह जा रहा है कि जो जो भी कार्य उत्पन्न होते हैं वे कार्य उत्पन्न होनेमे पहिले कारणभूत पदार्थोंमे उपादानमें कथचित असत है। कथचितका अर्थ है–पर्यायरूपसे असत है, शक्तिरूपसे सत है पर शक्तिरूपसे सत है उसका अर्थ क्या है कि उस कारणकी ऐसी शक्ति है ऐसी योग्यता है कि जिसके प्रतापसे असत कार्य उत्पन्न हो जाते हैं। जो नही है वह उत्पन्न हो जाता है। और यह उपालम्भ देना कि अगर असत कार्य उत्पन्न किय जाता है तो असत मत तो सब है। आकाशका फूल, खरगोशके सींग, ये सब उत्पन्न किये जाना चाहिए और फिर असत कार्यका अगर यह वर्तमान पदार्थ कारण है त असतकी दृष्टिसे तो सारे कार्य असत हैं। सभी कार्य एक कारणसे क्यों नही उत्पन्न हो जाते ? यह उपालम्भ तो तुम्हारे सत्कार्यमें लगाया जा सकता है कि यदि कारणम कार्य सत है तो वे सभी सत हैं पर एक कारणके द्वारा सभी कार्य क्यो नही व्यक्त हो जाते ? तो यहा भी कारणकी शक्तिको प्रतिनियम मानना पडेगा कि कारणभू

पदार्थके अन्दर भी शक्तिका प्रतिनियम है कि सब सत होनेपर भी एक कारणमे सब नही उत्पन्न होते। पर यह प्रतिनियम असत्कार्यवादमे ही सम्भव है। सर्वथा यदि कार्य सत है तो उनमें कार्यरना समव नहीं है इस कारण सत्कार्यवाद युक्त नहीं है। कथचित कार्य मानो तो उसमें उपादानका ग्रहण करना आदि लागू हो सकता है। इस तरह उत्पत्तिके पहिले कारणमें कार्यका सद्भाव नही है। तब यह कहना कि प्रकृतिसे बुद्धि हुई, बुद्धि से अहकार हुआ न तो अभिव्यक्तिमे बात बनती है और न उत्पत्ति मे बात बनती है। तब फिर प्रकृति विश्वका कर्ता नहीं रहा। और सबका ज्ञाता भी नही है।

आवरणापायसे सर्वज्ञताकी उद्भूतिका प्रकरण—जब कोई आत्मा कर्म बद्ध अपनी युक्तिसे, तत्त्वज्ञानसे अपनेमें अतिशय बनाता है तो ये आवरण दूर होते हैं, और आवरण नष्ट होनेसे उसका ज्ञान सर्वज्ञान बन जाता है। तो यो इसमें आत्मा निरावरण हो तब वह सर्वज्ञाता बनता है। यो प्रत्यक्ष ज्ञान निरावरण होनेपर ही सम्भव है। यह ग्रन्थ प्रमाणके स्वरूपका निर्णय करने वाला है। तो प्रमाणके परोक्ष और प्रत्यक्ष इन दो भेदोंमेसे सबसे पहिले प्रत्यक्ष ज्ञानकी मीमांसा चल रही थी। वे प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारके हैं। सांव्यवहारिक और पारमार्थिक। यद्यपि सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष वस्तुत परोक्ष है, पर वादविवादमें उपयोगी होनेसे एक देश वैशद्यके कारण इस सांव्यवहारिक प्रत्यक्षको प्रत्यक्षकी कोटिमे रखा है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका वर्णन करनेके बाद यह पारमार्थिक प्रत्यक्षका वर्णन चल रहा है।

भेदाना परिमाणात् इस हेतु द्वारा विश्वको प्रधानकारणात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—अब शङ्काकार अन्य ५ हेतुवोंके द्वारा यह सिद्ध कर रहा है कि समस्त सृष्टिका, समस्त कार्योका कारण प्रधान ही है। इसमे प्रथम हेतु है कि इन सब कार्योंमे भेद परिमाण देखा जा रहा है। परिमाणका अर्थ है नियत सख्या। जैसे प्रकृतिसे महान् उत्पन्न हुआ याने बुद्धि उत्पन्न हुई, वह बुद्धि एक है, उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ वह भी एक है। उससे ५ तन्मात्रायें हुई वे ५ हैं, इन्द्रियाँ ११ हैं, भूत ५ है। इस प्रकार जहा कार्यका भेदका परिमाण देखा जाता है वहां उसका एक कोई कारण होता है। लोकमे भी जिसका कर्ता होता है उसका परिमाण देखा गया है। जैसे परिमित मिट्टीके पिण्डसे परिमित घट बनता है तो उस घटमे परिमाण देखा गया और कितने घट बनाये गये आज ऐसी सख्या भी है। तो जो परिमाण वाली चीज हैं उसका कोई कर्ता अवश्य होता है। करने वाले यहा जिन जिन कार्योंको करते हैं उन सबका परिमाण देखा गया। जुलाहाने कपडा बुना तो कपडेका परिमाण है। जो पुरुष जो चीज बनाता है उसके आकारसे भी परिमाण है, सख्यासे भी परिमाण है। १० बने, २० बने, तो इस प्रकार भेदका परिमाण देखा जानेके कारण यह सिद्ध है कि इन सबका कारण प्रधान है और प्रधान ही परिमित व्यक्त तत्त्वोका उत्पादक है।

भेदाना परिमाणात् इस हेतुसे विश्वकी प्रधानकारणात्मकताकी असिद्धि—इसके समाधानमे कहते हैं कि भेदका याने कार्यका परिमाण है, वह हेतु देकर एककारणपूर्वकत्व सिद्ध नही होता अर्थात् जिन जिन चीजोमे भेदका परिमाण देखा जाता है उन उन चीजोका कोई एक कर्ता होता है। इस व्याप्तिमे कार्यका, भेदका परिमाण यह तो बनाया हेतु और एककारणपूर्वक है यह बनाया साध्य, लेकिन हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव सिद्ध नही है, क्योकि भेदका परिमाण भी होता और वे अनेक कारणपूर्वक भी होते। कार्यके परिमाणके साथ अनेक कारण पूर्वकताका विरोध नहीं है। हा भेदके याने कार्यके परिमाणका कारणमात्र पूर्वकताके साथ यदि अविनाभाव बनाया जाय तो वह सही है। भेद परिमाण देखा जा रहा है, इससे यही तो सिद्ध किया जा सकता कि ये किसी कारणमात्र पूर्वक हुए इनका कुछ न कुछ कारण है। और, इस तरह सिद्ध करना मान लोगे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। प्रत्येक पदार्थ जो भेद परिमाण वाले हैं जो दृश्य हैं वे तो हैं ही, सब कारणपूर्वक। यदि कोई मनुष्य आदिकके द्वारा किया जाने योग्य पदार्थ नही है तो वह भी पदार्थ किसी न किसी कारणपूर्वक है स्वय है, वह तो उपादान है और कुछ नही है, यदि वे शुद्ध पदार्थ हैं तो काल कारण है और जो अशुद्ध पदार्थ हैं, पर्वत पृथ्वी आदिक बडे बडे पदार्थ, जिनका करने वाला मनुष्य सामान्य सम्भव नही है, वे पदार्थ भी कारणपूर्वक तो हैं ही, हा किसी एक कारणपूर्वक नही है, उनमे अनेक वर्गणाओका मिलन हुआ है और परस्पर इस मिलनसे एक दूसरेके कारण बन रहे हैं और उनमे जो कुछ परिणमन हो रहा है वह उनका कार्य चल रहा है। तो भेद परिमाणसे यह सिद्ध नही किया जा सकता है कि वह प्रधानकारणपूर्वक है, अर्थात् लोककी रचने वाली प्रकृति है।

भेदाना समन्वयात् इस हेतुसे विश्वको प्रधानकारणात्मक सिद्ध करने का प्रयास अब शकाकार दूसरा हेतु देकर प्रधानको ही कारण सिद्ध कर रहे हैं। हेतु है कि इन सब भेदोका याने कार्योका समन्वय देखा जा रहा है। जो जिस जातिसे युक्त होता हुआ पाया जाता है वह उस उस तत्वसे तन्मय कारणसे उत्पन्न हुआ कहलाता है। जैसे घट कटोरा मटका आदिकमे भेद है, ये मिट्टी जातिसे समन्वित है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये सबके सब घट आदिक पदार्थ मृदात्मक कारणसे उत्पन्न हुए हैं तो जैसे यहा भी यह सिद्ध हो जाता है कि मृदात्मक कारणसे ये घट आदिक उत्पन्न हुए तो वे मृदात्मक कारणसे हुए हैं क्योकि मृद् जातिसे वे समन्वित है, इसी प्रकार ये समस्त व्यक्त, बुद्धि अहकार आदिक सत्व, रज, तम इन जातियोसे समन्वित है। इससे सिद्ध है कि सत्व रज तमो गुण वाले प्रधानसे उनका अन्वय है। वे प्रधानकी जातिमे हैं, प्रकृतिमें वे सत्त्व, रज, तमोगुण हैं और जितनी भी सृष्टियाँ है जितने भी कार्य हैं इन सबमे भी सत्त्व रज तमो गुण हैं। जैसे कि सत्त्वका कार्य है, प्रसन्नता आना, निर्भार अनुभव होना, रजो गुणका कार्य है सताप होना, शोक

होना, उद्वेग आदिक होना। और तमो गुणका कार्य है, दीनता, भयकरता, अहकार घमड आदिक आना। और इससे समन्वित ये सब नजर आते हैं बुद्धि अहकार आदिकमें भी ये गुण नजर आते हैं। तो जब इन महान अहकार आदिकमे ये प्रसन्नता दीनता सताप आदिक कार्य पाये जाते हैं तो इससे सिद्ध है कि महान आदिक समस्त व्यक्त पदार्थ प्रकृतिसे अन्वित हैं।

भेदाना समन्वयात् इस हेतुसे विश्वकी प्रधानकारणात्मकताकी सिद्धि का अभाव—अब भेदसमन्वितत्वसे लोकका प्रधानकारणपूर्वकनाके प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि ये समस्त पदार्थ, ये सब सृष्टियां, रूपादिक तन्मात्र, पृथ्व्यादिक भूत ये सबके सब सुखदुख मोहसे युक्त हैं, यह बात प्रमाणसे सिद्ध नहीं है। देखो शब्द व्यक्त ही तो है, तन्मात्रका ही तो है, पर अचेतन होनेसे उसमे सुख आदिक गुण नहीं पाये जा सकते। तो यह कहना कि जितने भी व्यक्त हैं उन सबमे सत्त्व, रज, तम आदिक गुण पाये जाते हैं सो सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणसे युक्त प्रधानके परिणाम हैं, विकारी हैं, यह बात युक्त नहीं है। जो जो चेतनरहित होते हैं वे वे सब सुख दुख आदिकसे युक्त नहीं होते। जैसे आकाशका फूल चैतन्यरहित है तो सुख दुखके रहित नहीं है। जिनमे चेतना नही है ऐसे पदार्थ अनुभवमे भी आते कि वे सुख दुख आदिकसे सयुक्त नही हैं। शब्द चैतन्यरहित ही तो हैं वे सुख दु ख आदिकसे युक्त नही हो सकते। इस पर बीचमे थोडा शकाकार कहता है कि चैतन्यके साथ सुख आदिककी समन्वय व्याप्ति यदि प्रसिद्ध हो तो ही वह निवर्तमान कर सकेगा अर्थात् सुख आदिकका समन्वय उन शब्द आदिकमें तब न कहलायेगा जबकि चैतन्यके साथ ही सुखादिकके रहनेकी व्याप्ति प्रमाणसिद्ध हो, पर ऐसी व्याप्ति किसी प्रमाणसे सिद्ध नही है। देखो! पुरुष चेतन है तो भी सुख आदिकका उसमे समन्वय नहीं पाया जाता। चैतन्यके साथ सुख दु ख आदिक ही व्याप्ति है यह बात गलत है। यह चेतन स्वय पुरुष है, उसमे सुख दुख नही है। आत्माका केवल चैतन्य ही स्वरूप तो है, इसपर समाधानमे इस समय इतना ही कहा जा रहा है कि यह तो सब स्वसम्वेदनसिद्ध है। हर एक कोई अपनी अक्लसे भी यह समझ सकता है कि सुख वहा हो सकता है जहाँ पर चेतना हो, और जहा चेतना नही है वहाँ सुख दुख आदिक नहीं हो सकते। आत्मा ही सुख दु ख आदिक स्वभाव वाला हो सकता है। आत्मामें ही सुख दुखके विकार हो सकते हैं अन्यमें नही।

प्रसादसतापादिककी प्रधानमे अन्वितताकी असिद्धि—जो कहोगे कि प्रसन्नता, सताप आदिक कार्य जो देखे जाते हैं उससे यह सिद्ध है कि वे सब व्यक्त तत्त्व प्रधानसे अन्वित हैं, प्रधानके ही कार्य हैं, प्रधान रूप हैं, यह बात युक्त नहीं है क्योकि हेतु अनेकातिक है। देखो! जब कोई सन्यासी योगी पुरुष तत्त्वको प्रकृतिसे निराला भाते हैं, यह मैं पुरुष तत्त्व यह मैं चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व प्रकृतिसे जुदा हूँ, इस

प्रकार जब भावना करते हैं तो उस पुरुषतत्त्वका आलम्बन लेकर अभ्यस्त योगियोंके प्रसन्नता उत्पन्न होती है और प्रीति उत्पन्न होती है, अर्थात् यह कहना कि प्रसन्नता होना, उद्वेग होना, मोह होना ये सब प्रधानके कार्य हैं सो बात नही। ये स्पष्टतया आत्मा मे उत्पन्न हुए समझमे आते हैं। उसीके उदाहरणमे कह रहे हैं कि जिन योगियोने उस भेदकी भावना की उनके पुरुष तत्वका आलम्बन ले करके शुद्ध प्रीति होती है और चाहते तो हैं कोई ऋषिजन ऐसा कि प्रकृतिसे निराला आत्मतत्त्व शीघ्र समझमे आए, पर बहुत ही जल्दी उस आत्मतत्त्वको नही देख पाते हैं तो उनके उद्वेग उत्पन्न होता है, और जो जडबुद्धि लोग हैं उनके अपने आप मोह बना रहता है, अज्ञान बना रहता है तो यह मोह होना, उद्वेग होना, प्रीति होना, प्रसन्नता होना ये आत्मामे पाए जाते हैं यह कहना कि प्रीत्यादिक प्रधानमे पाये जाते हैं, यह कोई विवेकी नही मान सकता।

सकल्पसे भी प्रीत्यादिककी प्रधानमे अन्वितताकी असिद्धि—यदि यह कहो कि सकल्पसे मनसे प्रीति आदिककी उत्पत्ति हुई है, आत्मासे प्रीति आदिक नही उत्पन्न हुए अर्थात जो आत्माकी भावनामे लग रहा और मनमे उसे प्रसन्नता उत्पन्न हुई है सो मनसे ही वह प्रसाद हुआ, कही आत्माको नही हुआ। ऐसा यदि कहते हो तो यह बात हम शब्द आदिकमे भी कह सकते हैं। सकल्पसे ही शब्द आदिक प्रीति आदिकके कारण हुए हैं जैसे कि दोष दूर करनेके लिए शकाकारने कहा कि सकल्पसे पुरुषका आलम्बन, आलम्बनका ध्यान प्रीति उत्पन्न होनेका कारण बनता है तो सकल्प होसे तो शब्दआदिकका ध्यान प्रीति आदिककी उत्पत्तिका कारण बनता है और यदि आलम्बनकी बात छोडकर केवल यह मानोगे कि सकल्पमात्रके होने पर प्रीति आदिकमे आत्मरूपता प्रसिद्ध होती है तो ठीक है, वह सकल्प है ज्ञानरूप और ज्ञान होता है आत्मामे अभिन्न। तब यही तो सिद्ध हुआ कि आत्मामे प्रीति आदिक उत्पन्न होते हैं ये प्रीति आदिक कोई सत्त्व आदिक गुण के कार्य नही हैं, प्रधानके कार्य नही हैं, इसप्रकार सीधी बात यह मानना चाहिये कि आत्माका विस्तार तो चैतन्य परिणामके साथ है और अचेतन अनन्त पदार्थोंका विस्तार उनके अचेतन परिणामोके साथ है।

प्रधानमे कार्यधर्ममयताके प्रसगसे व्यक्तकी अव्यक्तमयताकी असिद्धि—अथवा मान भी लिया जाय कि प्रीति आदिकका समन्वय व्यक्तमे पाया जाता है लेकिन इतनेपर भी तो प्रधानतत्त्वकी सिद्धी नहीं होती क्योंकि समन्वयदर्शन इस साधनका अन्वय नही पाया जाता याने भेदका समन्वय देखा जाने से प्रधानकी अन्वितता नही देखी जाती क्योंकि पदार्थमें जिस प्रकारका सत्त्व रज तमो गुणसे तन्मय एक नित्य व्यापी इस स्वरूपका कारण सिद्ध करना चाहते हो, उस प्रकारसे किसी भी दृष्टान्तमे हेतुका अविनाभाव नही बनता। केवल एक कल्पना भरकी बात है। इस प्रकारकी

कल्पनाएँ करना ही करते जायें, और यह भी नही कि जिस रूपमें कार्य पाया जाता है कारण भी अवश्य उस रूप होना चाहिये। यद्यपि बात ऐसी है कि कार्य जिस रूप हो उस रूप कारण होता है उपादान लेकिन प्रकृतिमे तो यह बात इनकी सिद्ध नही हो पाती क्योंकि महान् (बुद्धि) अहकार तन्मात्रा आदिक हेतुमान हैं, अनित्य हैं, अव्यापी हैं तो इसके मायने यह हो जायगा कि प्रधान भी हेतुमान हो जायगा, अनित्य हो जायगा, अव्यापी हो जायगा। तो शकाकारके खुदके सिद्धान्तसे यह विरुद्ध बात है।

धर्मसमन्वयसे विश्वको प्रकृत्यात्मक माननेसे अनिष्ट प्रसङ्ग - व्यक्त को अव्यक्तमय सिद्ध करनेके लिए दृष्टान्त देना भी असगत है जैसे कि घट सकोरा आदिक मिट्टीकी जातिसे युक्त है तो वे सब मिट्टीमय हैं। यह बात यों अयुक्त है कि यह अनुमान साध्य साधन दोनोसे विकल है। मिट्टीपना, सुवर्णपना आदिक जाति नित्य एक रूप प्रमाणसे सिद्ध नही है। कोई मिट्टी निरश हो एकरूप हो जैसा कि जातिका लक्षण बनाया है शकाकारके सिद्धातने ऐसी कोई जाति प्रमाणसे सिद्धि ही नही होती फिर तद्रूप कारणसे उत्पन्न हुआ है या तद्रूप कारणसे युक्त है यह कार्य, यह बात कहासे सिद्ध हो, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिमें, अलग अलग प्रतिभास भेद है उससे भेद सिद्ध है। देखो मिट्टी मिट्टी रूप रहती है, स्वर्णमें स्वर्ण रूपमे रहता है। जाति एक कहाँ है ? तो एक जातिपना ही सिद्ध नही होता। जातिका समन्वयभाव है ऐसा हेतु कहना तो विरुद्ध है इसमे तो अनेकातिक दोष आता है क्योंकि चेतनता, भोक्तापन आदिक धर्मोके द्वारा पुरुषमे भी समन्वितता है और नित्यत्व आदिक धर्मोका पुरुष व प्रकृति दोनोंमे समन्वय है सो धर्मोंका समन्वय होनेसे पदार्थ प्रधानपूर्वक माना जाय तो आत्मा भी प्रधानपूर्वक बन बैठेगा अथवा प्रकृतिमे भी नित्यत्व धर्म है और आत्मामे भी नित्यत्व धर्म है। तो उन धर्मोसे युक्त होनेपर भी वे दोनों एक कारण पूर्वक शकाकारके द्वारा नही माने गये क्योंकि प्रधान स्वतन्त्र तत्त्व है और पुरुष स्वतन्त्र तत्त्व है इसलिए भेदाना समन्वयदर्शनात् इस हेतुसे विश्वको एक कारणपूर्वक नही कहा जा सकता।

शक्तित प्रवृत्ते इस हेतुसे विश्वको प्रकृतिकारणपूर्वक सिद्ध करनेका प्रयास—शकाकार अब यहा प्रधानके अस्तित्वमे एक और कारण उपस्थित करके कहता है कि प्रधानका अस्तित्व इस कारण भी है कि कार्योकी शक्तिसे प्रवृत्ति होती है जैसे कि लोकमे घट कपडा आदिक जितने भी कार्य बन रहे हैं वे स्पष्ट विदित होते हैं कि किसी शक्ति प्रेरणासे बन रहे हैं। जैसे कि घट आदिक कुम्हारकी शक्तिसे बन रहे हैं अथवा कपडा जुलाहाकी शक्तिसे बन रहे हैं या जिन परमाणुओंसे बना है उन स्कधोमें जो हलन चलन है, प्रेरणा हो रही है उस शक्तिसे बन रहे हैं। तो जितना भी यह सारा लोक है सृष्टि है वह सब किसी शक्तिसे उत्पन्न हो रहा है और शक्ति

निराधार नही होती। शक्तिका जो आधार है वही तो प्रधान है। प्रधानका ही नाम प्रकृति है। तो प्रकृतिकी शक्तिसे यह सारी सृष्टि चल रही है। तो शक्तिसे परिणति होनेकेकारण भी एक कारणकी सिद्धि है और वह कारण है प्रकृति।

शक्तित प्रवृत्ते इस हेतुसे विश्वको प्रकृतिकारणपूर्वक सिद्ध कर सकनेकी अशक्यता समाधानमे कहते है इस अनुमानमे इस सारे ससारका कारण कोई एक तत्त्व है और वह है प्रकृति, क्योकि सभी कार्योंकी शक्तिसे परिणति हो रही है। तो शक्तिमे परिणति हो रही इस कारणसे कोई प्रकृति है। इस अनुमानमें तो अनेकान्तिक दोष आता है। और यह सिद्ध नही हो सकता कि ये सब कारणपूर्वक होते है। उसीको विस्तारसे सुनो—यह जो हेतु दिया है कि शक्तिसे प्रवृत्ति होती है अत वह कारणपूर्वक है तो इस हेतुसे क्या किसी बुद्धिमान कारणसे ये सब उत्पन्न हुए हैं यह सिद्ध कर रहे हो या कारणमात्रसे ये सब व्यक्त कार्य होते हैं यह सिद्ध करना चाहते हो ? यदि यह विकल्प लोगे कि किसी बुद्धिमान कारणसे यह सारी सृष्टि हुई है तो इसमे अनेकान्तिक दोष है क्योकि बुद्धिमान कर्ताके बिना भी अपने कारणोकी सामर्थ्यके नियमसे प्रतिनियत कार्योंकी उत्पत्ति होनेमे कोई विरोध नही है। शकाकार के सिद्धान्तका यह आशय है कि जितनी सृष्टियां हैं वे सब प्रकृतिसे हुई हैं क्योकि शक्तिसे प्रवृत्ति होनेपर ही कार्य होते है। जैसे घडा बना तो किसी शक्तिकी प्रेरणा पाकर बना इसी प्रकार जितनी भी ये चीजें देखी जाती है पृथ्वी पर्वत आदिक इन सबमे कुछ शक्तिकी प्रेरणा जरूर रहती है और वह शक्ति है प्रधानकी। तो इस हेतु से तुम क्या कोई बुद्धिमान कारणसे यह सृष्टि हुई है यह कह रहे हो तो यह बात यो युक्त नही कि अनेक पदार्थ ऐसे देखे जाते हैं कि बुद्धिमान कर्ताके बिना भी अपने ही पदार्थके कारण की सामर्थ्यसे होते रहते हैं। और प्रधानको बुद्धिमान मान नही सकते क्योकि वह अचेतन है। बुद्धि तो चेतनाकी पर्याय है प्रकृति है अचेतन। यदि कहो कि हम कारणमात्र सिद्ध करते हैं कि समस्त पदार्थोंका कोई न कोई कारण जरूर होता है। कहते है कि यह बात तो ठीक है, इसको कोई इकार नहीं कर सकता। हम लोग भी कारणके बिना कार्यका उत्पाद नही मानते और उस ही कारणमात्रका यदि प्रधान नाम धर दो तो हमे कोई आपत्ति नही। नामसे क्या है, भाव समझना चाहिए। जितने भी पदार्थ हैं इन सब पदार्थोंमे जो कुछ भी जब कार्य होता है तो कुछ न कुछ कारण इसमे होते हैं। एक उपादान कारण होता है और अनेक निमित्त कारण होते हैं। उपादान और निमित्त कारणके सम्बन्धसे ये सब कार्य देखे जाते है। अब यह कहना कि नही, इन सब कारणोका कार्य एक ही है और वह है प्रकृति तो यह बात नही बनती है। कारणमात्रकी बात तो युक्त है।

शक्तिमे भिन्न अथवा अभिन्नके विकल्पसे शक्तित प्रवृत्ते इस हेतुकी असिद्ध साध्यता— और भी देखिये। जो यह कहा है कि शक्तिसे प्रवृत्ति होनेसे इन

पदार्थोंका कोई एक कारण होता है, तो यहाँ जो शक्तिका नाम लिया है उससे कथंचित् अभिन्न शक्तिवाले कारणको सिद्ध करना चाहते हो तो कोई आपत्ति नही है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ है, उनकी अपनी अपनी शक्ति है और उसी शक्तिसे याने उपादान कारणसे कार्यकी उत्पत्ति होती ही है। यदि विभिन्न शक्तिसे युक्त कोई एक नित्य कारणको सिद्ध करते हो तो इनमें हेतु सदोष है क्योंकि ऐसी शक्ति वालेसे अन्वय सिद्ध नही है कि एक है दुनियाभरमें और नित्य है ऐसा कोई कारण है सब पदार्थोंके कार्य बननेका, यह सिद्ध नही हो ता। और दूसरी बात यह है कि अभिन्न शक्तिकी प्रेरणासे किसी भी कारणकी शक्तिमे कही भी कार्यमे प्रवृत्ति नही होगी। शक्ति सबकी अपनी अपनी स्वात्मभूत है। जैसे मिट्टीसे घडा बना तो घडा बननेमे मिट्टीकी शक्तिने काम किया। तो वह शक्ति मिट्टीसे भिन्न नही है, वह मिट्टीरूप ही है। शक्ति कोई एक है, नित्य है, व्यापी है, ऐसी बात नही। जितने पदार्थ हैं उतनी ही शक्तियां हैं, इससे 'शक्तित प्रवृत्तें' इस हेतुको देकर भी यह सिद्ध नही कर सकते कि जगतके समस्त व्यक्त पदार्थोंका कारण कोई एक प्रधान है।

कार्यकारणविभागसे विश्वको प्रकृतिकृत माननेपर विचार - अब शङ्काकार कहता है कि इस हेतुसे तो प्रकृतिका कारणपना सिद्ध हो जायगा। कौनसा हेतु ? दुनियाके इन पदार्थोंमे कार्यकारणका विभाग देखा जा रहा है। जिसमे कार्य-कारणका विभाग देखा जाता है वहा यह सिद्ध अवश्य होता है कि इसका कर्ता कोई स्वतन्त्र पदार्थ है। जैसे मिट्टीका पिण्ड कारण है और घडा कार्य है तो मृतपिण्डसे भिन्न स्वभाव रखनेवाला घडा जो काम कर सकता है वह मृतपिण्ड तो नही कर सकता। मिट्टीका लौंदा कारण है ना और घडा कार्य है। तो जितना काम कार्य कर सकता है क्या वही काम कारण कर देगा ? घडा तो पानी भर लेता है, मिट्टी का लौंधा क्या पानी भर देगा ? नहीं ! तो इसमें विभक्त स्वभाव रहा। कारणका स्वभाव और है कार्यका स्वभाव और है। तो हमारे सिद्धान्तमे भी कारण तो है प्रकृति और कार्य है ये रूप रस गंध आदिक ये भौतिक सभी पदार्थ। अब इस भौतिक पदार्थका स्वभाव और है और प्रकृतिका स्वभाव और है। कार्यका कारण तो प्रकृति ही है। तो बुद्धि अहङ्कार विषय इन्द्रिय इन सब कार्योंको देखकर हम यह सिद्ध करते हैं कि प्रधान है, अन्यथा ये बुद्धि अहंकार आदिक कार्य नही बन सकते थे ? उत्तरमें कहते हैं कि कार्यकारण जो विभाग बन रहा है सो तो सही है, पर जितने कार्य हो रहे हैं उन सब कार्योंका कारण कोई एक ही है। यह बात युक्त नही बैठती, किन्तु वैज्ञानिक पद्धतिमे भी प्रत्येक कारणभूत पदार्थके साथ कार्यका जुदा-जुदा अन्वय पाया जाता है। कोई एक ही कारणसे सारे कार्य यहां नही देखे जाते। जितने पदार्थ हैं उतने ही कारण होते हैं।

विश्वको एकप्रकृतिकारणात्मक सिद्ध करनेके लिये दत्त हेतुओंमेसे ४

हेतुओंका पुन प्रदर्शन प्रकृतिको कर्ता मानने वाले ये ५ हेतु दे रहे हैं कि इन सब पदार्थोंमे इन सब भेदोका प्रमाण पाया जाता है । जैसे बुद्धि एक अहकार एक, तन्मात्रायें ५ आदिक । तो जिन जिन चीजोकी सख्या होती है उन सबका कोई एक कारण जरूर होता है । जैसे घडा, सकोरा, मटका आदिक भेद पाये जाते तो इनका कोई कारण एक है अथवा ये सब पदाथ किसी एक जातिमे बंधे हुए है उनका कोई एक कारण होता है । जैसे घडा सकोरा आदिक एक मिट्टी जातिमे बंधे हैं तो इनका करने वाला कुम्हार है । इसी तरह उन सब पदार्थोंकी जातिया है वे उनमे बंधे हैं । तो उनका भी करने वाला कोई एक है । तीसरा हेतु दिया है कि सब पदार्थोंके बनने में शक्तिकी प्रेरणा जरूर रहती है । जैसे घडा कपडा बनानेमे कुम्हार जुलाहा आदि की शक्तिकी प्रेरणा है तो इन सब पदार्थोंके बननेमे किसी शक्तिकी प्रेरणा है । शक्ति निराधार नही होती सो इस शक्तिका जो आधार है वह प्रधान है । चौथा हेतु है कि इन पदार्थोंमे कार्यकारण विभाग पाया जाता है जिसके कारण कार्य हो उसका कर्ता जरूर होता है । जैसे मिट्टीका लौंदा कारण है, घडा कार्य है तो इसका कर्ता कुम्हार है । तो कार्यकारण होनेके कारण कोई एक कर्ता है । इन हेतुओंके विरोधमे अभी बताया गया है कि ये सब हेतु एक कारणके बिना होने वाले कार्य देखे जानेसे सदोष हैं । अगर कार्यका याने भेदका परिमाण देखा जा रहा है तो इससे एककारण सिद्ध नही होता, जितनी तरहके भेद हैं उतने कारण सिद्ध होते हैं । यदि जातिसे समन्वित है तो इसका अर्थ यह नही है कि कोई एक ही कारणसे विभिन्न जाति वाले कार्य हो जाये । तो यह हेतु एक कारणको सिद्ध नही कर सकता । इसी प्रकार शक्तित प्रवृत्ति व कार्यकारण विभागसे भी एक कारणको सिद्ध नही कर सकते ।

"वैश्वरूप्याविभागात्" हेतुसे विश्वको प्रकृतिकारणात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—अब ५वां हेतु शकाकार यह दे रहा है कि चूकि यह सारा जगत प्रलय कालमे विभागरहित हो जाता है । इससे सिद्ध है कि कोई एक प्रधान कारण है सारे विश्वके मायने तीन लोक –ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक । सो यह सारा ससार प्रलयके समय किसी एक जगह अविभाग हो जाता है । जैसे कि ५ जो भूत हैं पृथ्वी जल, अग्नि वायु आकाश । इनका ५ तन्मात्राओंमे लय हो जाता है । ५ तन्मात्रयें अहकारमे लीन हो जाती हैं । अहकार बुद्धिमे लीन हो जाता है बुद्धि प्रकृतिमे लीन हो जाती है । इसीके मायने प्रलय है । प्रकृष्ट रूपसे लीन हो जाना इसका नाम है प्रलय । प्रलय कहो या अविवेक कहो या अविभाग कहो—इन सबका एक ही अर्थ है । प्रलयके मायने विनाश यो प्रसिद्ध हो गया कि वहा फिर ये चीजें दिखती नही हैं, यथार्थत ये सब लीन होती गयी और तब दो ही तत्त्व रह जाते हैं प्रकृति और पुरुष । जैसे दूधकी अवस्थामे यह तो अन्य दूध है और यह दधि अन्य है यह विवेक नही किया जा सकता अर्थात् जैसे दूधमे दहीकी शक्ति है और वह दही दूधमे लीन पडा हुआ है पर वहा विभाग नहीं किया जाता है कि लो यह दूध है और यह जो

जुदा पदार्थ है यह दही है, इसी प्रकार प्रलयके कालमे यह भेद नही किया जा सकता कि यह व्यक्त है और यह अव्यक्त है। प्रकृतिका नाम अव्यक्त है और प्रकृतिसे जो कार्यकी रचना चलती है बुद्धि अहकार ५ विषय इन्द्रिया ये सब व्यक्त हैं तो प्रलय कालमे यह भेद नही रह पाता कि यह व्यक्त है और यह अव्यक्त। इससे मालूम होता है कि एक प्रधान कारण अवश्य है जहाँ ये बुद्धि अहकार आदिक अभागको प्राप्त हो जाते हैं। तो विश्वरूप जगतका प्रलोभीकरण हो जानेसे यह सिद्ध होता है कि कोई प्रधान है जिसमे ये सब पदार्थ लीन हो जाते हैं।

"वैश्वरूप्याविभागात्" हेतुसे विश्वको एकप्रकृतिकारणात्मक सिद्ध करनेकी अशक्यता अब वैश्वरूप्याविभागके उत्तरमें कह रहे हैं कि प्रलयकाल ही पहिले सिद्ध नही है। और सिद्ध भी हो जाय तो बुद्धि अहकार आदिकका जो लय बताया है, इनकी लीनता पूर्व कारणोमे हो होकर अन्तमे प्रकृतिमे लीनता होती है ता यह बतलाओ कि जो लीन होता है वह अपने पूर्व स्वभावको छोडनेपर लीन होता है अर्थात् जो व्यक्त रूप है वह अपने व्यक्त स्वभावको छोडकर अव्यक्तमें लीन होता है या व्यक्त स्वभावको रखता हुआ अव्यक्त प्रकृतिमें लीन हुआ है। जैसे कहते ना कि ५ विषय—रूप, रस गध स्पर्श और शब्द ये अहकारमें लीन हुए—अहकार बुद्धिमें, बुद्धि प्रकृतिमे तो ये विषय जो लीन हुए तो पहले यह व्यक्त रूप था, स्पष्ट इन्द्रिय गम्य सब कोई जान ले तो ये सभी लीन हुए तो लीन होनेपर भी इसने अपना व्यक्त स्वभाव छोडा या नही ? अगर व्यक्त स्वभाव छोडकरके लीन हुआ तो इसके मायने है कि व्यक्त तत्वका विनाश हो गया, व्यक्त स्वभानका नाश हो गया याने स्वभाव भी नष्ट हो जाया करता है यह सिद्ध हुआ। जब स्वभाव नष्ट हुआ तो फिर कुछ चीज ही नही रही। व्यक्त अगर व्यक्तताको छोडदे व्यक्तका फिर विनाश ही हुआ, लीन क्यों कहते हो ? यदि कहो कि अपने स्वभावको न छोडकर लीन होता है तो फिर लीन हो ही नहीं सकता है क्योकि इसका स्वभाव है व्यक्त और व्यक्त स्वभावको छोडे नही तो व्यक्त लीन कैसे कहलाया। सम्पूर्ण रूपसे अपने स्वरूपका अनुभव भी करे कोई और किसीमें लीन हो गया यो बताये तो यह युक्त नहीं हैं। जब ये विषय अहकार आदिक अपने व्यक्त स्वभावको नही छोड रहे तो लीनता क्या कहलाएगी ? उसका लय नही बन सकता, क्योकि यह परस्पर विरुद्ध बात है कि विश्वरूपता रहे और उसका अविभाग रहे, लीनता रहे। अगर है सब कुछ और अपने स्वभावको छोड नही रहे तो वह लीन नही कहलाता है। विश्वरूपता प्रधानपूर्वक होनेपर तो उत्पन्न होती ही नही क्योकि प्रधानके कारणसे यह सारा विचित्र जगजाल कैसे बनेगा ? कार्यकारणके अनुरूप हुआ करता, और कारण है एक, तो सारा कार्य एक रहेगा। कारण अगर एक माना जाय तो विश्वरूपता बन ही नही सकती। ये जितने विश्वरूपता बने, भिन्न भिन्न पदार्थ बने उन पदार्थोंका अपना अपना करके उपादान जुदा जुदा है तब विश्वरूपता बनी। एक ही तत्व कारण हो और अनेक रूप बन जाय,

एक समयमें अनेक अनुभव वाला, अनेक प्रदेश वाला बन जाये यह सम्भव नही है। इससे भी प्रधान समस्त विश्वका करने वाला है यह सिद्ध नही होता। और जब प्रकृति सृष्टिकर्ता सिद्ध नही होती तो यह भी नही कहा जा सकता कि प्रकृति सर्वज्ञ हुआ करती है।

कर्तृत्ववादके प्रसगमे मूल प्रकरण व वर्तमान प्रकरणका उपसहार — इस प्रकरणमे प्रकृति कर्ताका विरोध करनेका कोई प्रसग न था, प्रसग तो यह था कि प्रमाण दो तरहके होते हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष प्रमाण उसे कहते हैं जो स्पष्ट है। यदि एक देश विशद है तो वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है और सम्पूर्णत विशद है तो वह पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। वही है केवल ज्ञान। वह प्रत्यक्ष ज्ञान समस्त आवरणोका क्षय होनेसे प्रकट होता है। इस प्रकरणमे पहिले तो यह आपत्ति किसीने दी कि आवरणके क्षय होनेसे सर्वज्ञान प्रकट नही होता क्योकि जिसके सर्वज्ञान है वह अनादिमुक्त सदा शिव रहा करता है। जो आवरणमे मुक्त होता है वह ज्ञानशून्य रहा करता है। वह सर्वज्ञ नहीं कहलाता। इसके समाधानमे अनादिमुक्त सदाशिवको जगत कर्ता कहना पडा कि वह जगतका कर्ता है तभी वह सबको जानता है। जो जगतको न बनाए उसे सर्वके ज्ञानसे क्या प्रयोजन ? इसपर प्रकृतिवादीने यह कहा कि कोई अनादि मुक्त सदाशिव सर्वज्ञ तो नही है किन्तु प्रकृति सर्वज्ञ है और उस प्रकृतिकी सर्वज्ञताको सिद्ध करनेके लिए यह कहना पडा कि प्रकृति सृष्टिकर्ता है। लेकिन इतने स्थलो तक न प्रकृति सृष्टिकर्ता सिद्ध हुई और न प्रकृति सर्वज्ञ सिद्ध हुई। न कोई [illegible] न एक बुद्धिमान सृष्टिकर्ता सिद्ध है और न ऐसा कोई सर्वज्ञ सिद्ध है जो [illegible]हा निरावरण अनादिसे हो। किन्तु जैसे आजकलके ये अनेक ससारी [illegible]हित पाये जाते हैं इसी प्रकार ये सिद्ध प्रभु मुक्त जीव आवरण सहित [illegible] उपादानसे योग्य प्रयोगसे उनके आवरण दूर हुए और जब सर्व आवरण [illegible] सर्वज्ञ कहलाये। इस तरह प्रत्यक्षज्ञान आत्माका गुण है और आत्मामे [illegible] शक्तिसे प्रकट होता है। जो उपाधि लगी थी वह दूर होती है, इसकी [illegible] हुआ और वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाया। यहाँ तक प्रकृतिकर्तृत्ववादका

[illegible] कर्तृत्ववादका सिद्धान्त — अब जो लोग प्रकृतिकी सहायता [illegible] जगतको रचता है ऐसा सिद्धान्त मानते हैं वे शकाकार [illegible] कि [illegible] ये कार्यभेद नहीं प्रकट होते है। जैसे बुद्धि अहकार [illegible] भी कार्य हैं वे सब कार्य केवल प्रधानसे ही [illegible] है। अचेतन पदार्थ किसी प्रेरकके [illegible] गया है। जैसे कि मिट्टीसे घडा बनता है [illegible] तब मिट्टीमें घडा बनता है इसी तरह बि[illegible]

चेतनकी प्रेरणासे ही होते हैं। ऐसा भी नही है कि कोई ससारी आत्मा इन कार्योंमें प्रेरणा करता हो अर्थात् किसी ससारी जीवोके द्वारा ही ये बुद्धि अहकार विषय आदिक रच दिये जाते हो ऐसा भी नहीं है, क्योकि जितने भी ससारी आत्मा हैं ये सब सृष्टिके समयमे ज्ञानरहित थे। आत्माका स्वरूप चेतन तो है पर ज्ञान सहित इसका स्वरूप नही है। तो ज्ञानरहित तो वैसा ही स्वरूप है और ज्ञानका सम्बन्ध भी सृष्टिके समयमें न हो सका इसलिये वहाँ तो ज्ञानके सम्बन्धसे भी रहित होते हैं। तो सृष्टिके समयमे आत्मा अज्ञ होता है और जो अज्ञ है वह कार्योंको क्या प्रेरणा कर सकता है। सिद्धान्त तो यह है कि बुद्धिके द्वारा निश्चित किए गए पदार्थोंको ही आत्मा चेतता है। तो आत्मा किसी भी पदार्थको चेतनेका काम तब करता है जब बुद्धिके द्वारा वह सौंप दिया जाता है, निश्चित कर दिया जाता है। तो बुद्धिका सम्बन्ध हो तब तो यह आत्मा ज्ञानी बनता है। किन्तु, सृष्टिके कालमे अर्थात् जब सृष्टि होने लगी, बुद्धिका अहकार आदिक कार्य उत्पन्न होने लगें तब ही तो बुद्धिका सम्बन्ध किया जा सकता था। सो बुद्धिके सम्बन्धसे पहिले यह आत्मा अज्ञानी ही था, और जो अज्ञानी हो वह किसी पदार्थको करनेमे समर्थ नही हो सकता। तो आत्मा बुद्धिके सम्बन्धसे पहिले कुछ जानता ही न था तो जब किसी पदार्थको जानता ही न था तो अज्ञात पदार्थको यह कैसे कर सकता है ? इस कारण ससारी आत्मा तो इन सृष्टियोका करने वाला है नही तब फिर यही सिद्ध होता है कि ईश्वर ही प्रकृति की अपेक्षा रखकर इन सब कार्यभेदोको करने वाला है। जितना जो कुछ दृश्य-अदृश्य ज्ञात-अज्ञात अर्थ समूह है वह सब प्रधानका सहयोग लेकर ईश्वरके द्वारा किया गया है। केवल ईश्वरकर्ता नही और न केवल प्रकृति ही कर सकता है किन्तु प्रकृति की अपेक्षा रखकर ईश्वर कर्ता है। जैसे लोकमे देखा जाता कि कोई देवदत्त आदिक पुरुष अथवा कोई कुम्हार घटको यो ही उत्पन्न नही कर देता, जब दड चक्र आदिक का सहयोग मिलता है तब वह घटको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार ईश्वर भी प्रधान की अपेक्षा रखकर इन समस्त दृष्ट अदृष्ट पदार्थोंकी रचना करता है।

सेश्वरप्रकृतिकर्तृत्वकी असभवता — उक्त शकाके समाधानमे इतना ही कह देना पर्याप्त है कि जब प्रकृतिके कर्तृत्वकी असभवता और ईश्वरके कर्तृत्वकी भी असभवता दिखा दी गई तो जब ये दोनो प्रकृति और ईश्वर कर्ता सिद्ध न हो सके तो मिल करके भी कर्ता नहीं हो सकते हैं। जितने भी दोष प्रत्येकके कर्तृत्वके विषयमें दिए गए थे वे सभी दोष यहां प्राप्त होते हैं। किस तरह कर्ता है ? जिन्हे किया गया है उनका उपादान क्या है ? आदि जो जो भी प्रश्न करके उन दोनोंके कर्तृत्वका असम्भवपना दिखाया है वे सभी दोष यहा समझ लेना चाहिए। तो जब वह अकेला कर्ता नही हो सकता, उस अकेलेमें कर्तृत्वकी शक्ति न थी तो वे दोनो मिलकर भी सृष्टिके कर्ता नही हो सकते।

अब यहाँ शकाकार कहता है कि यदि वे दोनो अलग अलग सृष्टिके कर्ता नही होसकते ईश्वरमे भी केवलमे कर्तृत्व असम्भव है और प्रकृतिमे भी केवलमे कर्तृत्व असम्भव है तो रहा आये लेकिन वे दोनो मिल करके सृष्टि न करदे इसमे कौनसी आपत्ति है ? लोकमे भी तो देखा जाता है कि जैसे रूप आदिक पदार्थका ज्ञान हुआ तो एक प्रकाश आदिकके सहयोगसे हुआ। यहा भी केवल एक चक्षुसे या केवल आलोकसे न जान सकें तो इसके मायने यह तो न हो जायगा कि आलोक और आख दोनो मिल करके भी न जान सकें। तो जैसे यहा केवल चक्षु जाननेमे असमर्थ रहा, केवल प्रलोकरूप आदिकके ज्ञान उत्पन्न करनेमे असमर्थ रहा तो रहा आये लेकिन ये दोनो जब मिल जाते है तो मिलकरके तो रूपादिकका ज्ञान उत्पन्न कर ही लिया जाता है इसी प्रकार ईश्वर और प्रकृति भले ही अकेला-अकेला कर्ता न बन सके किन्तु दोनो मिलकरके तो कर्ता हो सकते हैं।

प्रकृतिसहितत्वके भावके दो विकल्प—प्रकृति सहित ईश्वर लोकको रचता है यह भी केवल कथनमात्र है, क्योंकि साहित्यके मायने क्या अर्थात् मिल जुल जाय, अर्थ तो यही है कि परस्परमे एक दूसरेका सहकारी बन जाना। अर्थात् सहकारीपाना सो सहकारीपना या तो इस रूपमे होता है कि वह परस्परमे एक दूसरेमे कुछ अतिशय उत्पन्न कर दे या फिर सहकारीपना इस तरहसे होता है कि वे दोनो मिलकर किसी एक पदार्थको कर दें। जैसे कि कुछ दवाईया अलग-अलग काम नहीं कर सकती हैं और जब वे मिल जाती हैं तो वे रोगविनाशका कार्य करने लग जाती हैं। तो मिल करके उन्होने किया क्या कि एक औषधिने दूसरी औषधिमे अतिशय उत्पन्न कर दिया जैसे कपूर पिपरमेट अजवाईनका फूल ये जुदे जुदे रहकर एक औषधि रूप नही रह पाते, उनकी कोई धारा नही बन पाती और जब वे मिल जाती हैं तो स्पष्ट समझमे आता है कि वे एक दूसरेमे अतिशय उत्पन्न कर रही हैं। तब तीन चीजे मिलकर एक रस धारा बन जायगी और वे अनेक रोगोको नष्ट करनेमे समर्थ हो जाती हैं तो एक तो सहकारिता परस्परमे अतिशयाधानकी होती है और दूसरी सहकारिता है कि जैसे एक वजनदार वस्तुको ४ आदमी मिलकर उठाते हैं तो उस पदार्थके उठानेरूपको ४ आदमियोने मिलकर किया तो यह भी सहकारिता देखी जाती है कि मिलजुल करके एक ही पदार्थको करे तो बतलावो कि इन दोनो प्रकारकी सहकारित्वोमेसे ईश्वर और प्रकृतिमे किस प्रकारकी सहकारिता है ?

सर्वथा नित्य तत्त्वोमे अतिशयाधानकी असभवता—यदि कहो कि एक दूसरेमे अतिशय उत्पन्न करता है इस प्रकारकी सहकारिता है तो यह भी कल्पनामात्र है। इसका कारण यह है कि ईश्वर भी नित्य है और प्रकृति भी नित्य है। जो नित्य पदार्थ होते हैं उनमे विकार नही हुआ करता। विकार हो जाय तब फिर नित्यता क्या रही ? तो जब नित्य होनेके कारण प्रकृतिमे और ईश्वरमे कभी विकार ही सभव

नहीं है तो वे परस्परमें एक दूसरेमें अतिशय क्या उत्पन्न कर सकते हैं। सो परस्पर अतिशय उत्पन्न करनेरूप सहकारिता तो इसमें सम्भव नहीं। यदि कहो कि एक पदार्थको ये दोनों मिलकर करते हैं ऐसी सहकारिता है तो समस्त कार्य एक साथ उत्पन्न हो जाने चाहिएँ। इसका कारण यह होगा कि ईश्वर भी पूर्ण सामर्थ्यवाला है और प्रकृति भी पूर्ण सामर्थ्यवाली है जिसकी सामर्थ्यको कोई हटा नहीं सकता, क्योंकि वे दोनों नित्य हैं नित्य होनेसे, इनकी सामर्थ्य किसीके द्वारा हटाई नहीं जा सकती। और ये दोनों रहते हैं सदा, तो जब पूरा कारण मौजूद है, पूरी शक्ति है इन दोनोंमें, और सदाकाल अवस्थित रहते हैं तो उसका समस्त कारणता मिल गया तो सारे कार्य एक साथ उत्पन्न हो जाने चाहिएँ। ऐसा नियम है कि जो जिस समय अविकल कारण होता है अर्थात् समस्त कारणता जब आता है तो उस समय वह उत्पन्न होता ही है। जैसे अन्तिम समयमें पायी गयी सामग्रीसे अंकुर उत्पन्न होता ही है। बीजोंमें अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्ति है किन्तु अभी सामग्रीकारण नहीं मिली है। खाद मिले, पृथ्वी का सम्बन्ध मिले, कुछ गर्मी भी बने, कुछ पानी भी मिले तो जब सारी सामग्री मिलकर आखिरी सामग्रीसे युक्त हो जाता है तो वहाँ अंकुर नियमसे उत्पन्न होते हैं। तो इस प्रकरणमें ये प्रकृति और ईश्वर दोनों पूर्ण सामर्थ्य वाले हैं और सदा रहते हैं, नित्य हैं। तो जब अविकल कारण मौजूद है तो समस्त कार्यों को उत्पन्न कर देते एक साथ सो ऐसा देखा नहीं जाता। इससे प्रकृतिकी अपेक्षा लेकर ईश्वर इन समस्त कार्यभेदोंको करता है यह बात भी सम्भव न हो सकी।

सत्त्व रज तम गुणका क्रमसे सहयोग होनेके कारण ईश्वर द्वारा सृष्टिक्रम होनेका प्रस्ताव शंकाकार कहता है कि यद्यपि यह बात ठीक है कि प्रकृति और ईश्वर दोनों कारण नित्य हैं और सदा रहते हैं इतने पर भी ये सब कार्य भेद क्रमसे प्रवर्तित होंगे। इसका कारण यह है कि ईश्वरको सहयोग मिला है सृष्टिके रचनेमें वह प्रकृतिमें पाए गए सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंसे मिला है अर्थात् सृष्टिकी रचनामें ईश्वरके सहकारी ये तीन गुण हैं जो कि प्रधानके गुण कहलाते हैं। सो ये सब गुण क्रमसे होते हैं। तो जब जिस गुणका सहयोग मिला तब ईश्वरने उस गुणके अनुरूप सृष्टि की। इसका खुलासा यह है कि प्रधान जिस समय रजोगुणसे युक्त होता है, जब रजोगुणकी वृत्ति उत्पन्न होती है, रजोगुण अपने प्रभवमें प्रकाशमें आता है उस समय रजोगुणसे युक्त हुआ हुआ यह ईश्वर प्रजाकी रचनाको कारण बनता है। विश्वरचनाके प्रसङ्गमें तीन बातें आया करती हैं —एक तो विश्वको उत्पन्न करना, दूसरे विश्वको वैसा बनाये रखना और तीसरी विश्वका प्रलय कर देना। ये तीन बातें हुआ करती हैं सृष्टिके विषयमें। सो रचनामें अर्थात् निर्माणमें सृष्टिके बनानेमें तो रजोगुणकी मुख्यता होती है। जब रजोगुण प्रत्यक्ष प्रकट होता है जब रजोगुण प्रचण्ड होता है उसका प्रकाश अपार होता है तब उस रजोगुणसे सहित होकर यह ईश्वर प्रजाजनोंका निर्माण करनेका कारण बनता है क्योंकि रजोगुणका प्रसव कार्य

है। रजोगुणसे उत्पत्ति चलती है और जब सत्वगुणकी वृत्ति प्रकट होती है, तो जिस का प्रसार हुआ ऐसे सत्वका जब ईश्वर आश्रय लेता है तब वह इस लोककी स्थितिका कारण बनता है, क्योकि वह सत्व जो है वह स्थितिका हेतु हुआ करता है। इसी प्रकार जब उद्भूत शक्ति वाले तमोगुणसे युक्त होता है ईश्वर, उस समय यह समस्त जगतका प्रलय करता है, क्योकि तमोगुण प्रलयका कारणभूत है। ये तीन गुण प्रधान के गुण हैं इसलिए सहयोग भी प्रधानका कहलाया, पर प्रधानके इन गुणोमे जब जिस गुणका प्रकाश प्रसार प्रचार होता है तब उसके माफिक ईश्वर उस प्रकारका कार्य करता है। तो इन तीन गुणोंसे पहिले रजोगुणकी उद्भूति हुई। तो ईश्वरने इस ससारको रच डाला। फिर सत्व गुणका प्रकाश रहता है तब इस विश्वको यह बनाये रहता है यह रचना चलती रहती है और जब तमोगुणका प्रभाव बढता है तब इन सब रचनाओका प्रलय होता है। ईश्वर इन सबको क्रमसे विलीन कर करके सब सृष्टिको प्रकृतिमे विलीन कर देता है। उस समय फिर ये केवल दो ही तत्व रह जाते हैं ईश्वर और प्रकृति। फिर जब उस प्रकृतिमे रजोगुण प्रचड बनता है इसका प्रचार होता है तब फिर यह ईश्वर सृष्टिकर्ता होता है और इसके बाद सत्व गुणके प्रकाशमे इस लोकालोकको बनाये रखता है और तमोगुणके प्रचारमे प्रसारमे यह फिर प्रलय कर देता है। इस तरह यद्यपि प्रधान और प्रकृति दोनो नित्य तत्व हैं और सदा सन्निहित हैं, मौजूद रहते हैं तो भी उन गुणोकी अपेक्षा होनेसे क्रमसे ईश्वर इन कार्यों को करता है। यद्यपि सतोगुण, रजोगुण तमोगुण इनका प्रभाव प्रति पदार्थमे सन्निहित एक ही दिनमे कई बार हो जाता है सो वह एक आवान्तर उत्पादव्यय ध्रौव्य है। जो मुख्य उत्पाद है रचना है वह तो प्रलयके बाद एक बार होती है। और फिर इसके बाद ये सब पदार्थ रहे जायें, परिणमते रहे इस प्रकारका जो अवस्थित-पना रहता है वह सत्व गुणका काम है और फिर अन्तमे सभी अपने अपने कारणमे विलीन हो जायें यह तमोगुणका कार्य है। तो यों ईश्वर प्रधानके इन गुणोकी अपेक्षा लेकर इस क्रमसे उत्पन्न हुए प्रकाशमें आये हुए गुणोके कारण सब कार्योंको एक साथ नही करता किन्तु उस उस तरहसे क्रमसे करता है।

एककार्यकालमे प्रकृति और ईश्वरके अन्य कार्यसामर्थ्य माननेपर सर्वकार्यका युगपत् प्रसङ्ग — अब उक्त आशङ्काके समाधानमे कहते हैं कि प्रकृति और ईश्वर इन दोनोने मिलकर जो लोककी रचना की, लोकको बनाये रखा और लोकका प्रलय किया तो काम ये तीन किये प्रकृति और ईश्वरने मिलकर तो यह बतलाओ कि इन तीन कामोमे जब जो काम किया जा रहा है उसके कार्यके समयमे उस कामसे भिन्न जो और कार्य हैं उनको उत्पन्न करनेकी इसमे सामर्थ्य है या नही? अर्थात् प्रकृति और ईश्वर मिलकर जब लोककी सृष्टि कर रहे हैं तो उस समय प्रकृति और ईश्वरमे लोककी स्थिति और लोकप्रलय करनेका सामर्थ्य है या नही? इसी प्रकार जब प्रकृति और ईश्वर मिलकर इस लोकका प्रलय करते हैं तो उस समय इन

दोनोंमें सृष्टि और स्थिति करनेका सामर्थ्य है या नहीं ? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि कहो कि सामर्थ्य है प्रथम विकल्प मानो तो सृष्टिके समयमें ही स्थिति और प्रलय होनेका प्रसङ्ग आ जायगा, क्योंकि इन दोनोंमे सृष्टि करनेकी तरह स्थिति और प्रलय करनेकी भी पूरी सामर्थ्य है और दोनों नित्य होनेसे सदा हैं तब फिर सबके कार्य एक साथ ही होना चाहिए। इसी प्रकार जिस समय ये दोनों मिलकर इस लोककी स्थिति कर रहे हैं, उस कालमें सृष्टि और प्रलय ये दोनों हो जाने चाहिये ? इसी प्रकार जिस समय ये दोनों मिलकर प्रलय कर रहे हैं, विनाश कर रहे हैं उस समयमें स्थिति और उत्पाद भी हो जाना चाहिए। पर यह तो युक्त है नहीं, क्योंकि इन तीनोंका लक्षण जुदा है। उत्पाद मायने किसी चीजकी उत्पत्ति करना, विनाश मायने नाश करना और स्थिति मायने वह बना रहे। तो परस्पर परिहाररूपसे रह सकने वाले उत्पाद, विनाश और स्थिति इन तीन धर्मोंका एक धर्मीमें एक लोकमें एक कालमें एक साथ सद्भाव कैसे बन सकता है ? कदाचित् यह कहो कि स्याद्वाद दर्शनने भी तो एक साथ उत्पाद व्यय ध्रौव्य माना है लेकिन यह उपालम्भ देना यों ठीक नहीं हो सकता कि स्याद्वादमें तो उन्हीं एकका अपेक्षासे उत्पादव्ययध्रौव्य माना है। जैसे मिट्टीके लौंधेने घड़ा बना तो घड़ेके रूपसे उत्पाद है लौंदेके रूपसे विनाश है मिट्टीके रूपसे स्थिति है उन्हींका उत्पाद और उन्हींका विनाश तो नहीं माना गया। किन्तु यहाँ तो ईश्वरवादमें तो उस एक ही लोकका इस समस्त अर्थसमूहका तो सर्जन होता है और फिर अनेक वर्षकाल व्यतीत होनेके बाद फिर उनका प्रलय करना, तो यहाँ सृष्टिमें और प्रलयके लक्षणमें तो भिन्नता है इससे सृष्टि प्रलय और अवस्थिति ये तीनों धर्म एक साथ ही इस लोकमें लागू नहीं हो सकते। तब यहाँ तो यह कहना ठीक नहीं रहा कि प्रकृति और ईश्वरमें किसी एक कार्य करते समय भी शेष प्रकारका कार्य भी न बने है।

एककार्यकालमें प्रकृति और ईश्वरके अन्य कार्यसामर्थ्य न माननेपर विडम्बनाका दर्शन—अब यदि यह पक्ष लोगे कि प्रकृति और ईश्वर मिलकर उत्पाद स्थिति और प्रलय इन तीनमेंसे कुछ भी एक काम कर रहे हैं उस समय शेष दो कार्योंके करनेका सामर्थ्य नहीं है। तो तो एक ही कोई कार्य उत्पाद स्थिति प्रलयमेंसे सदा होते रहना चाहिये क्योंकि प्रकृति भी ईश्वर उस एक कार्यको करनेमें तो समर्थ हैं और शेष दो कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं। तो किन्हीं भी दो कार्योंके करनेका जब सामर्थ्य नहीं है तो वे दो कार्य कभी हो ही नहीं सकते। सृष्टि करनेमें लगा है तो सृष्टि ही सृष्टि निरन्तर शाश्वत अनन्त काल तक हो क्योंकि शेष दो कार्योंके करनेका उनमें सामर्थ्य ही नहीं है। अथवा मानो स्थितिका कार्य कर रहा है तो सदा स्थिति ही रहो सर्ग प्रलय कभी होंगे ही नहीं। अथवा प्रलयका ही कार्य कर रहे हैं दोनों, तो प्रलय ही प्रलय रहे कभी रचना और अवस्थिति सम्भव ही नहीं हो सकती क्योंकि अन्य दो कार्योंके उत्पन्न करनेमें उसके सदा ही सामर्थ्यका अभाव है। ये दोनों हैं नित्य सो नित्य पदार्थमें जो बात है वही सदा रहेगी, उसमें कोई नई बात आ जाय

यह नित्यमे सम्भव नही। नित्य अविकारी होता है। अविकारी है प्रकृति और ईश्वर दोनो तो इस दुनियामे कोई नई सामर्थ्यकी फिरसे उत्पत्ति हो जाय यह सम्भव नही हो सकता। इन दोनोमे जो सामर्थ्य है सो ही सामर्थ्य है, कोई नई सामर्थ्य नही हो सकती। तो जब ये दोनो मिलकर सृष्टिका कार्य कर रहे है तब वही सामर्थ्य है। सृष्टिके खिलाफ स्थिति विषयक प्रलय विषयक कोई भी सामर्थ्य नही आ सकती। अविकारी पदार्थमे ऐसा नही होता कि अभी तो यह पदार्थ न था अब यह पदार्थ आ गया। यदि ऐसा होने लगे तो इसका अर्थ है कि विकार हो गया। विकार होनेमे वह नित्य नही हो सकता। अन्यथा जो नित्यस्वभाव प्रकृति और ईश्वरका माना है उस स्वभावका घात हो जायगा और जिस पदार्थके स्वभावका घात होता है उसका अर्थ यह हुआ कि वह पदार्थ ही नही रहा। यदि प्रकृति और ईश्वरके अपरिणामित्व स्वभावका नाश हो तो प्रकृति और ईश्वरका भी अभाव हो गया। जैसे अग्निका स्वभाव उष्णता है तो यदि उष्णताका विनाश होता है तो इसका अर्थ यह है कि अग्निका विनाश हो गया। तो जब प्रकृति और ईश्वर ही नही रहे तो फिर उनके बारेमे रचना होना, स्थिति होना, प्रलय करना आदिक कल्पनाजाल बनाना व्यर्थ है। तो प्रधानकी अपेक्षा लेकर वह ईश्वर इस लोककी सृष्टि करनेमे और स्थिति रखनेमे तथा लोकका प्रलय करनेमे भी समर्थ नही हो सकता।

सत्व रज तम गुणकी उद्भूतवृत्तिताके कारण ईश्वरकृत कार्यकी व्यवस्था सिद्ध करनेका प्रयास शङ्काकारका यह मतव्य है कि न तो केवल प्रकृति सृष्टि बनाती है और न केवल ईश्वर बनाता है किन्तु ईश्वर प्रकृतिका सहयोग पाकर सृष्टि बनाता है। सृष्टि बनानेका कर्ता तो ईश्वर है पर सहयोग प्रकृतिका है। प्रकृति मुख्य कर्ता नही है क्योकि वह अचेतन है। तो इस सम्बन्धमे जब यह आपत्ति बताई गई कि प्रकृति भी सदा है और ईश्वर भी सदा है तो सदैव लगातार सृष्टि स्थिति प्रलय सभी कार्य एक साथ क्यो नही हो जाते ? तो इस शङ्काका निवारण शङ्काकारने यो किया कि प्रकृतिमे तीन गुण है सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। सो जिस समय उस प्रकृतिमेमे रजोगुणकी वृत्ति प्रकट होती है उस समय तो ईश्वर सृष्टिकर्ता है क्योकि रजोगुणका धर्म है उत्पन्न करना। और जब यह प्रकृति सत्वगुण से प्रकट होती है तब इस की वृत्ति सत्त्वगुणमे होती है उस समय ईश्वर इस सृष्टिकी स्थिति बनाये रहता है और जब प्रधानमे तमोगुणकी वृत्ति प्रकट होती है तो ईश्वर फिर इस विश्वका प्रलय करता है। इसमे भी आपत्ति दिखाई गई थी कि जिस समय मानो रजोगुणकी वृत्ति प्रकट है उस समय प्रकृति और ईश्वरमे स्थिति और प्रलय करनेकी सामर्थ्य है या नही। यदि सामर्थ्य है तो सब बाते एक साथ हो जानी चाहिएँ और अगर उन दो कार्योकी शक्ति नही है तो फिर कभी भी वह कार्य किया नही जा सकता। उसके समाधानके रूपमे शकाकार कह रहा है कि यद्यपि प्रकृतिमे नित्यत्वका स्वभाव है। स्वभावका घात नही है, लेकिन प्रधानमे प्रकृतिमे सत्वादिक

गुणोके बीचमेसे जो ही गुण अपनी वृत्तिको प्रकट करता है बस वही गुण उस कार्यमे कारण बनता है। आपत्ति यह दी गई थी कि प्रकृति और ईश्वरमे सृष्टिके समय स्थिति और प्रलय करनेकी सामर्थ्य तो नही है फिर सामर्थ्य आती है। जबकि तमो गुण और सत्त्वगुण प्रकट होते हैं तो इस तरह प्रकृति भी अनित्य हो गयी और ईश्वर भी अनित्य हो गया क्योकि पहिले तो सामर्थ्य न थी और अब सामर्थ्य आगई, कोई बदल होनेका ही नाम अनित्यपना है। उसके उत्तरमे शकाकार यह कह रहा है कि प्रकृतिका और ईश्वरका दोनोका स्वभाव तो वही है नित्य, एक लेकिन प्रकृतिमे तो उन तीन गुणोमेसे जिस ही गुणकी वृत्ति प्रकट होती है बस वही गुण कारणपने का प्राप्त होता है, अन्य कुछ कारण नहीं बनता। प्रकृतिमे ३ गुण हैं पर तीन गुण कारण नही बनते कार्यके लिए। जिस समय जो गुण प्रकट हुआ उस गुणके माफिक कार्य बनता है। इस कारणसे सृष्टि स्थिति और प्रलय ये सब एक साथ पडे ऐसा प्रसङ्ग नही आता।

सत्त्व रज तम गुणकी उद्भूतवृत्तिताका नित्य व अनित्य विकल्पोसे निरसन—उक्त शकाका समाधान देते हैं कि अच्छा यह बतलाओ कि प्रकृतिमे जो सत्त्व, रज तमोगुणकी वृत्ति प्रकट हुई है तो उन गुणोकी वृत्ति प्रकट होना यह चीज नित्य है या अनित्य ? प्रधानमे किसी गुणकी वृत्ति उखडती है प्रचण्ड होती है तो ऐसी वृत्ति उखाडनेका प्रकाशमे आनेका जो काम है वह नित्य है या अनित्य ? यदि कहो कि नित्य है तो यह बात यो नही बनती कि जो नित्य होता है वह शाश्वत रहता है पर ये वृत्तियाँ तो कभी कभी उत्पन्न होती हैं। यदि नित्य मान गे तो वही दोष फिर आयगा कि तीनो बातें एक साथ होना चाहिए। सभी गुण हैं प्रकृतिमें और उनमे वृत्ति उनकी बनती है, प्रकट होती है और वह सबका सब नित्य मानता है। तो जब सदा उनकी वृत्ति उद्भूत है तो सभी कार्य एक साथ हो जाना चाहिये। इससे प्रधानमे रहने वाले इन ३ गुणोंकी वृत्तियोका प्रकट होना नित्य तो कहा नही जा सकता और अनित्य मानोगे तो तुम्हारे ही पक्षका उसमे विरोध है। यदि कहो कि अनित्य है प्रधानमे जो सत्त्व गुण प्रकट हुआ या रजोगुण हुआ या तमोगुण हुआ। जब जो गुण प्रकट हुआ उसकी वृत्ति प्रचण्ड हुई सो यह वृत्ति अनित्य है तो अनित्य की कहाँसे उत्पत्ति होती है ? यह बतलाओ कि उन गुणोंके उद्भूत वृत्तिपनेका प्रादुर्भाव कहाँ हुआ ? प्रधानमे ये तीन गुण जो वेगके साथ उखडे इसकी उत्पत्ति किसने की ? क्या प्रकृति ईश्वरसे उत्पत्ति हुई, इन गुणोका प्रसार किसी ईश्वरसे बना या अन्य हेतुसे ? अथवा यह स्वतन्त्र ही चीज है ?

सत्त्व रज तम गुणकी उद्भूतवृत्तिताकी प्रादुर्भूति प्रकृति और ईश्वरसे या अन्यसे माननेपर आपत्ति—यदि कहो कि गुणोका वह उखडना प्रकृति और ईश्वरसे बना है तो गुणोको उद्भूतवृत्तिता सदा रहना चाहिये क्योकि

प्रकृति और ईश्वर तो हेतु हुए उन गुणोके प्रकट होनेके और प्रकृति और ईश्वर हैं नित्य तो इन गुणोका उखडना भी नित्य हो गया क्योकि प्रकृति ईश्वर सदा मौजूद हैं। तो जब कारण सदा मौजूद है और अविकल कारण है तो सदा कार्य होना चाहिये। जिस समय समग्र कारण मौजूद होते हैं जा अन्तिम क्षणमे हुआ करते हैं, उस समय कार्य न हो यह हो ही नहीं सकता। तो जब प्रकृति भी है ईश्वर भी है गुणका उद्भूत वृत्तिपना भी है तब फिर सभी कार्य सदा होने ही चाहियें, सो होते नही। इससे प्रकृति और ईश्वरसे उन ३ गुणोकी उद्भूति हुई है, यह बात न मानी जायगी। यदि कहो कि किसी अन्य कारणसे ही प्रकृतिमे उन गुणोकी वृत्ति प्रकट होती है तो इससे एक तो तीसरी बात सिद्ध हो जायगी प्रकृति और ईश्वरके अलावा भी कोई तीसरा जबरदस्त तत्त्व है कि जिसके बिना भी यह विश्वकी रचना रुक जाती है तब तो एक तीसरा तत्त्व मानना होगा। फिर जो यह कहा कि दो ही तत्त्व हैं मूलमें प्रकृति और पुरुष, इस सिद्धान्तका घात है, सो तुमने माना ही नही कि प्रकृति और ईश्वरको छोडकर कोई तृतीय तत्त्व हो। तो अन्यसे भी प्रकृतिमें सत्त्व रजो तमोगुणकी वृत्ति प्रकट नही हो पाती।

सत्त्व रज तम गुणकी उद्भूतवृत्तिताकी प्रादुर्भूति स्वतन्त्र माननेपर आपत्ति—अब यदि तृतीय पक्ष लोगे कि प्रकृतिमे जो सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण उखडते हैं वे स्वतन्त्र हैं। जब स्वतन्त्र हैं ये वृत्तियाँ फिर ये अनित्य नही रह सकती। कभी हो कभी न हो ऐसा नही हो सकता। जब कादाचित्क न रहे तो सदा ही प्रलय स्थिति आदिक एक साथ हो जाने चाहिये। जहाँ स्वतन्त्र रूपसे होना हो उसके होनेमे देश कालका नियम नही बन सकता। जब उसमे देश कालका नियम नही बना तो यह व्यवस्था कैसे बन सकती कि ईश्वर किसी दिन सृष्टि को और कल्पकालतक उस सृष्टि को बनाये रखे और फिर इस समय उसका प्रलय करे जब यह स्वतन्त्र है इन तीन गुणो का प्रकट होना तो अटपट जब प्रकट हो गए तब साराकाम बनजाय या बिगडजाय क्योकि इन गुणोका यह प्रकाश कादाचित्क न रहा। कादाचित्क तो वह परिणाम होता है जो किसी अन्य कारणके आधीन अपना स्वरूप बना पाते हैं। जैसे आत्मामे रागद्वेष मोहभाव होते है स्याद्वाद सिद्धान्तमे तो ये रागद्वेषमोह भाव स्वभावान्तरके आधीन हैं अर्थात् प्रकृतिकर्म इनका उदय होनेपर होता है इनका उदय न होनेपर नही होता है। तो जितने भी कादाचित्क भाव होते है वे सब किसी अन्य कारणके आधीन अपना स्वरूप रख पाते हैं क्योकि कादाचित्कका तो यही लक्षण है। कार्यका सत्त्व कारणके सद्भाव होनेपर होता है कार्यका असत्त्व, विनाश कारणके अभाव होनेपर होता है। तो कारणके सद्भाव और अभावके साथ कार्यके सत्त्व और असत्त्वका सम्बन्ध होता है। अब इन ३ गुणोका प्रकट होना स्वतन्त्र मान लिया गया। कोई कारण तो रहा नही तब ये कादाचित्क नही रह सकते क्योकि कादाचित्क होनेमें अब अपेक्षामयी क्या तत्त्व रहा जब स्वतन्त्र हो गया। किसीका न आश्रय है न निमित्त है न अपेक्षा है तब फिर

कादाचित्क क्यो होगा ? उसमे कोई नियम नही बन सकता है। इससे यह बात कहकर कि प्रधानमे जो तीन गुण हैं सत्वगुण रजोगुण, तमोगुण, उसमेसे जिस समय जिस गुणकी वृत्ति प्रकट होती है उस समय उस गुणके अनुरूप ईश्वर काय करता है। यह बात नही बन सकती।

पदार्थोंमे त्रिगुणात्मकताका दर्शन -- देखो सीधा पदार्थों को देखा जाय तो इसमे कोई विरोध नही आता कि प्रत्येक पदार्थ जो सत है सब है, उसका कभी विनाश नही हो सकता और जो है वह कभी एक स्वरूप नहीं रह सकता अर्थात् अपरिणामी नहीं रह सकता उनमे परिणमन चलेगा चाहे सदृश परिणमन चले अथवा विसदृश परिणमन चले, तो ये लोकमें जितने पदार्थ स्थित हैं वे सब एक दूसरेके यथायोग्य परिणमन मे निमित्त होते हैं, तो सृष्टि है, रचना है पर इसका कोई कारण मात्र है कोई भी कारण जिस किसीका बनता है जिसका जो बनता है वह कारण उनका है, पर समस्त अर्थ समूहका कोई एक बुद्धिमान कर्ता हो अथवा कोई एक अचेतन ही कोई कर्ता हो यह बात सम्भव नही हैं क्योकि पदार्थ जितने वे सब अपने पूरे अस्तित्वको लिए हुए हैं, उनमें उनके प्रदेश उनके गुण पर्याय, उनकी परिणति उनके भाव उनका सब कुछ सत्त्व उनमे ही पाये जाते हैं तो वे सब समर्थ हैं और अनुकूल साधन पाकर निरन्तर परिणमते रहते है। इन पदार्थसमूहका करने वाला कोई ईश्वर माने अथवा प्रकृति माने या अन्य कुछ माने तो ऐसा कोई एक नही माना जा सकता। सब हैं और हैं होने के कारण निरन्तर परिणमते रहते हैं। इसीका नाम सृष्टि है। सदा सृष्टि होती है सदा प्रलय होता हैं और सदा बने रहते हैं। पदार्थोंका उत्पाद सर्ग अथवा सृष्टि प्रति समय होती रहती है और जब नवीन पर्यायका सग हुआ तो निकट समय पहिलेकी पर्यायका प्रलय हो जाता है और ऐसा सर्ग प्रलय होने पर भी जो आधारभूत है वह तो वहीका वही सत् है इस तरह सृष्टि प्रलय और स्थिति प्रत्येक पदार्थमे निरन्तर चलते रहते हैं। जब कभी कोई विचित्र परिणमन हुआ तो उसे लोग सृष्टि कहने लगते हैं और जब कोई विचित्र विनाश होता, प्रलय होता तो उसे लोग प्रलय कहते हैं, मगर वस्तुका न सर्वथा प्रलय है, न सर्ग है, न ध्रौव्य है। प्रत्येक पदार्थमे ये तीन बातें एक साथ पायी जाती है। जैसे जब मृत्पिण्डसे घट बना, पहिले समयमे जो मृतपिण्डकी अवस्था थी तो घट बननेके समय घट पर्यायका तो सर्ग हुआ और मृत्पिण्ड पर्यायका प्रलय हुआ और मृत्तिका रूपसे स्थिति रही एक बात, दूसरे यह भी देखो कि जिसपर निगाह रखकर हम बात कर रहे हैं वही तो सृष्टि है, वही प्रलय है और वही स्थिति है। तो यों त्रिगुणात्मक प्रत्येक पदार्थ हैं उत्पादमय ध्रौव्यमय सभी पदार्थ प्रतिसमय अपने योग्य अनुकूल साधन मिलने पर परिणमन करते रहते हैं।

सेश्वर प्रकृतिकर्तृत्वमे अनिष्पन्न या निष्पन्न कार्यों द्वारा स्वरूपलाभ कहनेकी असगतता—अब अन्तिम एक प्रश्न और किया जा रहा है शकाकारसे कि

आपका कहना है कि इन सब पदार्थों को कार्योंको ईश्वर प्रकृतिकी मदद लेकर उत्पन्न करता है तब इस कार्यकी ओरसे इस विषयको जाना जाय तो यह कहा जायगा ना कि यह कार्य उस ईश्वरकी प्रेरणा से अपने स्वरूपका लाभ ले लेता है। तो यह कार्य निष्पन्न होकर अपने स्वरूपकी प्राप्ति करता है अपने स्वरूपको उत्पन्न करता है, यह कार्य सबसम्पन्न होकर अपने स्वरूपको उत्पन्न करता है अर्थात् प्रकृतिके सहयोग को पाकर ईश्वरने जो कुछभी चेष्टा की जिस चेष्टामे ये कार्य उत्पन्न हो गयेतो इन कार्य ने जो आत्म स्वरूपका लाभ पाया है अपने ही स्वरूपकी प्राप्ति कर पायी है तो इन कार्योंने निष्पन्न होकर अपने स्वरूपकी प्राप्ति की या अनिष्पन्न कार्योंने अपने स्वरूपकी प्राप्ति की यदि कहो कि निष्पन्न होते हुये इन कार्योंने अपने स्वरूपको पाया तो निष्पन्न हो गया था ही पहिले। जब निष्पन्न कार्योंने स्वरूपकको पैदा किया तो निष्पन्न था ना, उसके स्वरूपको क्या पैदा किया ? निष्पन्न होनेके नाते ही निष्पन्नरूपमे अभिन्न होनेके कारण स्वरूपसे निष्पन्न ही रहा तो किया क्या पैदा ? अपना कार्य था अपना स्वरूप और अलगसे कौन था जिसे पा लिया ? जब वह कार्य स्वय था तो है' के साथ स्वरूप भी बना रहता है तो फिर स्वरूपको उत्पन्न करनेकी बात ही कहाँ रही, यदि कहो कि यह कार्य अनिष्पन्न था और इस अनिष्पन्नने अपने स्वरूपको पाया तो जब जिन कार्योंने स्वरूप पाया तो वे असत् हो गये। जैसे आकाशका फूल, अब यह क्या अपना स्वरूप लाभ करेगा ? जो चीज ही नही है उसका स्वरूप, उसका सत्व, उसका विनाश किसी भी प्रकार नही किया जा सकता, इससे किसी भी तरह यह सिद्ध नही होता कि प्रकृति कर्ता है अथवा ईश्वर कर्ता है, अथवा प्रकृतिका सहयोग लेकर ईश्वर कर्ता है और इसी कारण ईश्वर सर्वज्ञ है, प्रकृति सर्वज्ञ है।

सृष्टिवादके प्रसङ्गमे मूल मुख्य प्रकरण – मुख्य प्रकरण यहाँ कर्तृत्ववाद का न था प्रकरण तो केवल यह था कि एक प्रत्यक्षज्ञान होता है पारमार्थिक सकल प्रत्यक्ष, जो समस्त लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानता है। इसकी सिद्धिका विचार चल रहा था, और इस ही प्रकरणमसे सम्बन्धित आवरणोंकी सत्ता बताई जा रही थी कि इस ज्ञानपर आवरण लगा हुआ है अन्यथा यह सबको क्यो न जान लेता ? और यह आवरण पौद्गलिक है क्योकि सजातीय सजातीयका आवरण नही कर सकता। ज्ञान है ज्ञानात्मक, तो ज्ञानपर जो आवरण करे वह होना चाहिये ज्ञानात्मक। ज्ञानादिक गुण भी क्या आवरण कर सकते है ? जैसे दीपक किसी दूसरे दीपकका आवरण तो नही कर सकता। हाँ भीट है या अन्य कोई चीज है, वह दीपक का आवरण कर सकती है। तो ज्ञानपर आवरण करने वाले जो कुछ भी हो सकते है वे सजातीय ही हो सकते हैं और वे है कर्म। अर्थात् पौद्गलिक है। तो पौद्गलिक कर्म आवरण हैं और उनका विनाश किया जा सकता है। क्योकि जिस आवरणमे कमी वेशी पायी जाती है वह अब और कम हो गया। तो यह सिद्ध है कि यह आवरण कहीं बिल्कुल भी नष्ट हो जाता है। तो जहा आवरण पूर्णतया नष्ट हो जाता है

वहा ज्ञान पूर्ण प्रकट हो जाता है, उसीको ही एक मुक्त अवस्था कहते हैं। उस समय मे यह पूर्ण हुआ सकल ज्ञान, समस्त लोकालोकको जानता है।

सर्वज्ञताके प्रकरणमे अनादिमुक्त चेतनकी सर्वज्ञताकी उत्थापना – यहाँ प्रकरणमे सीधी बात यह चल रही थी इसपर छेड दिया ईश्वर कर्तृत्ववादियोने कि आत्मा सर्वज्ञ नही होता किन्तु जिनपर आवरण लगे रहते हैं ऐसे जीवोका आवरण तो दूर होता है, कर्मोंका क्षय तो होता है पर कर्मोंका क्षय होनेके साथ ही उसका गुण भी नष्ट हो जाता है। ज्ञानगुण फिर उस आत्मामे नही रहता तब वह सर्वज्ञ ही क्या रहेगा ? तो जिसपर कभी आवरण लगा ही न था ऐसा अनादिमुक्त एक ईश्वर है, वह सर्वज्ञ है, उसके अलावा और कोई सर्वज्ञ नही हो सकता, ऐसी शकाकारने छेडाछाडी की और उस ईश्वरको सर्वज्ञ मनानेके लिए यह हेतु रखा कि चूँकि वह समस्त विश्वका करने वाला है इसलिए वह सर्वज्ञ है। कोई अजानकार आदमी किसी कामको नही कर सकता। कोई कुम्हार जिसे घडा बनानेका ज्ञान ही नही है वह घडा क्या बनायेगा ? कोई पुरुष जिसे भोजन बनानेका ज्ञान ही नही है, वह भोजन क्या बनायेगा ? तो ईश्वर चूँकि सारे विश्वका करने वाला है स्वयसिद्ध है, सारे विश्वका ज्ञाता है यह विषय चला था। इसके निराकरणमे युक्तिया दीं।

सर्वज्ञताके प्रकरणमे प्रकृतिवाद एव सेश्वरवादकी उपासना—अनादिमुक्तताकी बात जब निराकृत हुई तो झट प्रकृतिवादी कह उठे कि यह बात सही है, आवरणके विनाशसे सर्वज्ञ बनता है लेकिन वह आवरण आत्मापर नही है किन्तु प्रकृतिपर है और प्रकृतिपर छाया हुआ आवरण नष्ट होता है तो प्रकृति सर्वज्ञ बनता है। इस विषयको समयसारमें भी शकाकारकी ओरसे बताया गया कि कर्म ही अज्ञानी बनाता है कर्म ही ज्ञानी बनाता है। स्याद्वाद शासनका प्रमाण देकर यह सिद्ध होता कि देखो जब ज्ञानावरण कर्मका उदय होता है तब जीव अज्ञानी बनता है और जब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता तब जीव ज्ञानी बनता है, तो कर्म ही ज्ञान कराता कर्म ही ज्ञान मिटाता और कर्म ही सुख दु ख देता। जब साता वेदनीय का उदय होता तो जीव सुखी हो गया और जब असाता वेदनीयका उदय होता तो जीव दुखी हो गया। तो ये सब सृष्टि करने वाले कर्म ही तो हैं, प्रकृति ही तो हैं। ज्ञानको भी प्रकृतिने पैदा किया और अज्ञानको भी प्रकृतिने पैदा किया। जो कुछ भी पुण्य पाप सुख दुख तरङ्ग आदिक हैं वे सब प्रकृतिका काम है। तो आवरण प्रकृति पर है, उस आवरणका विनाश होता है तो प्रकृति सवज्ञ बनता है और प्रकृति सवज्ञ है वह सिद्ध करनेके लिये फिर प्रकृतिको कर्ता बताना पडा। सर्वज्ञ है प्रकृति। चूँकि यह सारे विश्वकी रचना करता है, अजानकार कुछ बता नही सकता तो प्रकृति चूँकि सारे विश्वका निर्माण करने वाली है सो प्रकृति ही सवज्ञ है। इस सम्बन्धमे बहुत विवाद चला और इसका निराकरण किया। तीसरी बात यह रखी गई कि न

केवल प्रकृति करने वाली है, न केवल ईश्वर करने वाला है, किन्तु प्रकृतिका सहयोग लेकर ईश्वर सृष्टि करता है, उसका भी निराकरण किया गया कि कर्तृत्वके साधनसे किसीकी सर्वज्ञता सिद्ध नही होती। अन्य युक्तियाँ बनाकर कि यह कर्ता है ईश्वर सवज्ञ है कर्तृत्वका ज्ञानके साथ अविनाभाव नही है। देखो इन अचेतन पदार्थों में अग्निने पानीको गर्म कर दिया तो ज्ञान न होनेपर भी कर्तृत्व तो आ गया और ज्ञान होनेपर भी कोई योगी सन्यासी समता परिणाममे विराजा है तो वह कर्ता नही बन रहा तो कर्तृत्वका ज्ञानके साथ अविनाभाव नही है। कर्ता होनेसे ही ज्ञाता कहलाये यह बात नही है।

निरावरण प्रभुमे अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्दकी सिद्धि—ज्ञानका काम काम जानना है। ज्ञानपर जब तक आवरण छाया है तब तक उसका ज्ञान रुद्ध है और आवरण दूर हुआ कि समस्त पदार्थ समूहका जाननहार वह ज्ञान बन जाता है, और ज्ञान आत्मामे ही है ऐसी परीक्षा करने वाले बडे बडे विद्वानोने मान लिया है और वह ज्ञान आत्माका ही स्वभाव है। जैसे कि अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य ये आत्माके स्वभाव हैं तो अनन्त ज्ञान इन तीन गुणोका अविनाभावी हो है। न हो अनन्त ज्ञान तो अनन्त दर्शनका क्या स्वरूप बना ? क्योकि दर्शन कहते हैं जाननहार आत्माको प्रतिभासमे लेना। तो जब अनन्त ज्ञानसे जाननहार हो और उस अनन्त ज्ञानस्वरूपको अवलोकनमे ले तब ना अनन्त दर्शन कहलाया। और जब निज स्वरूप दशनमे ज्ञानमे रहे, तब आकुलताएँ दूर हो और तब अनन्त सुख प्रकट हो। और अपने स्वरूपमें अध्यात्म निर्माण रखना, कार्य करना, इसमें जो शक्तिका प्रयोग है वही अनन्त वीर्य है। तो इस प्रकार आत्मामे ये अनन्त चतुष्टय हैं, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य इन चतुष्टयात्मकताके लाभका ही नाम मोक्ष है। इस अनन्त चतुष्टयात्मकताकी प्राप्ति होना उसीको ही सिद्ध करते है और यह सिद्धि तब होती है जब इसका प्रतिबन्ध करने वाले कर्म दूर होते हैं। सो जिस जीवनमुक्तिमे या परम योगियोकी विशुद्ध अवस्थामे यह परिज्ञान होता है कि वह आत्मा स्वतन्त्र है और उसमे इन गुणोका विकास है। जब जीवन्मुक्त अवस्थामे इन अनन्त चतुष्टयोका परिज्ञान होता है तो यह अनन्त चतुष्टय परममुक्त अवस्थामे भी है अर्थात् जहा अभी कर्मोका और शरीरका भी वियोग हो गया वहांपर भी ये ज्ञान दर्शन सुख वीर्य पूर्णरूपसे प्रकट हैं। इस तरह ऐसा सकल ज्ञान ही परमार्थ प्रत्यक्ष कहलाता और वह परम पौरुष परमात्माके प्रकट होता है

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(द्वादश भाग)

प्रवक्ता

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

लोककी चेतन अचेतन पदार्थों और वहिरात्मावोंसे व्याप्तता—इस लोकमे दो जातिके पदार्थ हैं—कुछ चेतन जातिके पदार्थ है और कुछ अचेतन जातिके हैं। जहां ज्ञानदर्शन है, जानने देखनेकी शक्ति है, ऐसा पदार्थ भी लोकमे है और जिसमे जानने देखनेकी शक्ति कभी न हुई है, न है न होगी, ऐसे अचेतन पदार्थ भी लोकमें हैं। हम आप सभी लोग चेतन पदार्थकी जातिके हैं या अचेतन ? हम सब चेतन पदार्थकी जातिके हैं। चेतन पदार्थ तीन प्रकारके पाए जाते हैं—कोई है वहिरात्मा कोई है अन्तरात्मा और कोई है परमात्मा। जिन जीवोंके शरीरमे आपा माननेकी वुद्धि है वे तो वहिरात्मा हैं। अपने आत्माके बाहरकी चीजें हैं उनको आत्मा मानना उसका नाम है वहिरात्मापन। शरीर आत्माये बाहरकी चीज है। शरीरका सत्व अलग है और आत्माका सत्व अलग है। इन्द्रिय तथा मनका व्यापार बन्द करके अन्तरङ्गमे अपने आपके स्वका दर्शन किया जाय तो स्वयं मालूम पडेगा कि मैं चैतन्यात्मक पदार्थ शरीरसे न्यारा कोई स्वतन्त्र हूँ। उस निज स्वतन्त्र आत्माको यह मैं हूँ ऐसा समझता है उसे वहिरात्मा कहते हैं। और जो अपने इस ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्व में ही प्रतीति रखता है कि यह मैं हूँ उसे अन्तरात्मा कहते हैं। अब देख लीजिए कि इस लोकमे वहिरात्माओंकी संख्या अधिक है या अन्तरात्माओंकी ? वहिरात्मा अधिक पाये जाते हैं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टियोंसे भरा यह लोक है।

अन्तरात्मत्व और अपनी परखका कर्तव्य—इन वहिरात्माओंमेसे जो कोई भी आत्मा कुछ कर्मोंका क्षयोपशम प्राप्त करके जब कुछ अपनी निर्मलतामे आता है और गुरुजनोंके उपदेशको पाकर जब अपने परिणामोंको सम्हालता है तो उसमे कुछ योग्यता बढती है, वह अन्तरात्मामा बननेकी तरफ बढने लगता है और जब परिणाम बहुत योग्य हो जाते हैं तो सम्यक्त्वका प्रकाश होता है। यो यह आत्मा वहिरात्मासे अन्तरात्मा बन जाता है। इस प्रसङ्गमे जरा कुछ अपनी भी परीक्षा करलें कि हम

इनमेसे किस लेनके हैं। हम अपने शरीरको ही सब कुछ समझ रहे हैं या शरीरसे न्यारा। मैं स्वतन्त्र कोई चैतन्यमात्र हूँ ऐसी कभी सुधि भी रखते हैं। यह तो अपनी निजकी बात है। यदि सोचनेपर यह निर्णय हो कि हमारी बाह्यमे अधिक दृष्टि रहती है, शरीरके सजानेमे, पोजीशन बनानेमे, अहकार रखनेमे, शरीरके ही पोषणमे यदि अधिक समय गुजरता है तब तो यह खेदकी बात है, और इस बात पर कुछ खेद मानना चाहिए। ये सब तो विडम्बनाके कार्य हैं। बहुतसे लोग इस शरीरको ही बार-बार सजाया करते है बार बार आईना देखते है, यहा तक कि घरोमे जगह जगह आईना गड़वा देते हैं और शरीरके सजानेकी सामग्रिया रख देते हैं ताकि बार–बार अपना चेहरा देख सके और खूब शृङ्गार कर सके। शरीरको लोग बहुत-बार बार तेल फुलेल, साबुन आदिक लगाकर साफ करते हैं। तो इस तरहकी सारी प्रक्रिया तो बेसुधीमे, अज्ञानतामे हो रही हैं। जो लोग आत्मज्ञानके रुचिया हैं उनके पास इन प्रक्रियाओंके करनेका अवकाश ही कहा है। इन प्रक्रियाओंमे तो ये अज्ञानी जन ही अपना उपयोग लगाते है। तो इस बहिरात्माके ही कारण ये जीव ८४ लाख योनियो मे जन्म लेकर भटक रहे हैं। अब तो अपने इस मूढतापूर्ण रवैयेको बदलना चाहिए। आज मनुष्य भवमे हम आए हैं ऐसा पवित्र अवसर मिलना बडा दुर्लभ है। अब तो बाहिरी इन सारी बातोमे हटकर निज ज्ञानके प्रकाशमे आना चाहिए।

अन्तरात्माओंका परम पदमे प्रथम विकास—जो जीव अपने इन तर्क वितर्क विचारविमर्शके बलसे इस निज अन्तस्तत्वकी ओर आते है उन्हे अन्तरात्मा कहते हैं। ये अन्तरात्मा गृहस्थ और मुनि दानो हो सकते है। जब तक केवलज्ञान नही होता ऐसी ऊची श्रेणीमे चढे हुए मुनि भी अन्तरात्मा कहलाते है। जबसे सम्यक्त्वका प्रकाश होता है तबसे अन्तरात्मा कहलाता है। और जब इस जीवको अपनी साधनाके बलसे पूर्ण विशुद्ध निर्मल निरावरण ज्ञान प्रकट होता हैं तो उसे परमात्मा कहते हैं स्याद्वाददर्शनमे (उपासित) मूल मन्त्र है णमोकार मन्त्र। उसमें ५ विकासोको नमस्कार किया है न कि किसी व्यक्तिको। देखिये ! कितना निष्पक्ष मन्त्र है जिसमे कि किसी तीर्थङ्कर अथवा मुनिका नाम नही लिया गया किन्तु आत्माके ५ विकासोकी बात कही गयी है। वे विकास ५ बताए गए हैं पर मूलत ३ हैं वे विकास। साधु अरहन्त और सिद्ध। साधु, आचार्य और उपाध्याय ये तीन रूप साधुके बताए गए है। सो यह एक साधुरूप ही विकास है और ये हैं ३ माने तब ये अरहन्त सिद्ध मिलकर ५ कहे गए है। इन्हें अभेद करके यहा ३ विकासरूपमे देखिए। जब यह अन्तरात्मा ज्ञानी विरक्त गृहस्थ ज्ञान वैराग्यकी प्रचुर साधना कर लेता है तब यह इतना उत्सुक हो जाता है कि परिग्रहका समागमनेका उसे अब भाव नही रहता। फिर परिग्रहको [illegible] तब यह धन वैभव तथा परिजनोंकी ममतासे [illegible] विरक्तचित्त हो रहता तो यह [illegible] तो मिलता है लेकिन भविष्यकालमे भी इसे [illegible] [illegible] होंगे। उनसे विरक्त हो जाता है यह ज्ञानी, और

उसे इतनी विरक्ति हो जाती है कि तन पर वस्त्रको सम्भाहलनेकी सुधि नही रहती है। उसे भी वह विडम्बना समझता है। जब यह मन्कल्पपूर्वक समस्त परिग्रहोका त्याग करता है बस इसीका नाम है साधु। यही है अन्तरात्म परमेष्ठित्वमे प्रथम विकास।

परमपदके प्रथम विकासमे आये हुए आत्माकी चर्या—जो आत्माके स्वभावको साधे उसे साधु कहते हैं। आत्माका स्वभाव है ज्ञान, ज्ञान स्वभाव। जो उस ज्ञानस्वरूपकी साधना बनाए रहे, उसका परिज्ञान करता रहे, उसमे उपयोग जमाए रहे, उसमे ही स्थिर होनेका प्रयास रखे उसे साधु कहते हैं। इसीका दूसरा नाम है मुनि। जो अपने आत्मा के स्वभावका सदा मनन करता रहे, मानता रहे उसे मुनि कहते हैं। ये साधु २४ प्रकारके परिग्रहोसे रहित होते है। गात्र मात्र ही उनका परिग्रह रह गया है। साधुजन इतने विरक्त होते हैं और स्वयके आत्मामे अनुरक्त होते हैं कि वे आहार करनेको भी विडम्बना समझते हैं। करना नही चाहते आहार, पर मानो ज्ञान समझाता है कि अभी ऐसी स्थिति नही बनी है। अभी विकासकी उच्च अवस्था नही बनी है। यदि असमयमें ही मरण हो जायगा तो बहुतसे लाभके अवसर से चूक जायेंगे। अभी आत्मसयमकी साधनाके लिए इस शरीरको आहार करना पडेगा, ऐसा उन्हे ज्ञान समझाता है और आहार करनेके लिए मानो पहुचा पकडकर उठाता है कि चलो आहार कर आवो। यो वे मुनि आहार करते हैं, पर उस आहारसे वे इतने विरक्त हैं कि आहार करनेको वे एक विडम्बना मात्र समझते हैं। केवल आत्मरमणमे ही उनका सारा समय जाता है। पहिले कभी वे मुनि भी बहिरात्मा थे, अपने आपकी सुधि खोए हुए थे। मायाजालमे अपने आपकी सुधि खोये हुए थे, मायाजालमे अपनेको फसाए रहत थे। पर अब उस निम्नपदसे हटकर अपने आत्माकी सुधि बनायें रखनेके विकासमे आये हैं। तो इस विकासको नमस्कार किया है इस मत्र में। जिस आत्माने अपना ऐसा विकास किया हो वही पूज्य है, किसीका नाम लेकर यहा नमस्कार नही किया गया।

अन्तरआत्माका परमपदमे परमात्मस्वरूप विकास—ऐसे ही साधु जब आत्माकी विशुद्ध साधनाके बलसे बहुत ऊचे उठते है, रागद्वेषसे रहित होकर समता परिणाममे आकर निर्विकल्प समाधिमे रहकर जहाँ कि ज्ञानज्ञाताज्ञेय एक हो जाते हैं किसी भी परका विकल्प नहीं है निष्तरग निर्विकल्प स्थिति बनती है तो उस आतरिक परत तपश्चरणके प्रसादसे यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है और घातक कर्मोंका विनाश होता है। पश्चात् वही एकत्ववितर्क अवीचार शुक्ल ध्यानके प्रतापसे, निर्विकल्प उच्च समाधिके प्रतापसे चारघातिया कर्म दूर हो जाते है उस समय अनन्तज्ञानदर्शन आनन्दशक्ति इस चतुष्टसे सम्पन्न हो जाते हैं वे आत्मा और वे अरहत कहलाते हैं। अरहत कोई नाम नही है जैसा कि लोग रख लेते हैं। अरहत देवको मेरा नमस्कार

हो। अरहत शब्दका अर्थ है पूज्य। एक अर्ह पूजाया धातु है उससे अरहत शब्द बना है उसका अर्थ है पूज्य। अब उस आत्माके अन्त स्वरूपको देखिए —वह शरीरमे रह रहा है लेकिन कैसा विकासयुक्त है, जिसका ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है, जिसका आनन्द परम विशुद्ध आत्मीय आनन्द है, ऐसे अनन्त ज्ञान अनन्त आनन्दमे प्रवर्तने वाले आत्माको अरहत कहते हैं।

पूज्य आत्मविकासके वर्णनके समय अपनी भी निगरानी करनेका कर्तव्य इस प्रकरणको सुनकर साथ ही साथ अपनी ओर भी आते जाइये। यह विकास किसी अन्यकी ही कथनी नही है, ये स्वभाव मुझमे मौजूद हैं हम भी ऐसे हो सकते हैं। एक मार्ग मिलना है और चलना है। जैसे समुद्रकी भवरमे फसा हुआ जहाज जब कभी भवरकी किसी ओरसे निकलनेका रास्ता पा जाता है तो बडे वेगसे वह जहाज निकल जाता है ठीक इसी प्रकार हमारा उपयोग अभी इन बाह्य पदार्थोंमें फसा हुआ है। पदार्थोंमे तो क्या फसा हैं इन बाहरी पदार्थोंके विकल्प जालमे फसा कभी किसी पदार्थमे ज्ञान गया कभी किसी पदार्थमे, यो यह ज्ञान चक्कर लगा रहा है, डोल रहा है। इस ज्ञानको कभी मार्ग मिल जाय अर्थात् कभी अपने आपके स्वरूप की दिशा मिल जाय तो वह ऐसे वेगसे इस जालसे निकलता है और विशुद्ध ज्ञान प्रकाशमे आता है कि वह अनुभव करले कि बस यही मेरा स्वरूप है यही तत्व है। थोडा कुछ पुरुषार्थ करना होगा। प्रारम्भ दशामे मन नही लगता है चर्चामे, स्वरूपके स्मरणमे अपने आत्माकी बात सुननेमे और आत्माके मननमे, लेकिन तनिक भी रुचि हो, बस एक उत्साह भर बनाना है अपने आत्माके स्वरूपको समझनेका। देखिये बहुत दुर्लभतासे यह मनुष्य भव पाया है, अच्छी जाति, अच्छा कुल प्राप्त हुआ है। बहुतसे लोग अच्छे कुलमे उत्पन्न हुए हैं मगर बहकाने वाले गुरुजन मिलते हैं। बहकाने वाली कुछ पढने सुननेको उपन्यासकी पुस्तके मिलती हैं और वे इसी विह्वलतामे बने रहते हैं। एक आत्माकी यथार्थ कथनी मिलना बहुत दुर्लभ बात है। ऐसे अवसरसे भी लाभ नही उठाया जाता है तो यह बडी भूल होगी, सत्य शासनके उपदेशोके समझनेकी बुद्धि पायी है, तिस पर भी यदि समझना नही चाहत तो समझ लीजिये कि कितने ये अमूल्य क्षण खोए जा रहे है। कुछ थोडासा उपयोग लगायें तो आत्म-शासनके वे सब मम जो वीतराग ऋषि साधुओने लिखे हैं, बताये हैं वे कुछ समझमे आ सकेंगे। और, यही पढकर समझकर स्पष्टज्ञान बनेगा जिससे कि फिर इस ज्ञानकी ओर ही अपने उपयोगको बनाए रखनेमे तृप्ति होगी। तो ये साधुजन जब अरहत अवस्थामे आते है तो आत्माकी आतरिक अवस्था सर्वज्ञताकी, वीतरागताकी और अनन्त आनन्दका अनुभव करनेकी होती है।

प्रभुमुद्रासे उपदेशलाभ—सकल परमात्माकी हम स्थापना मूर्तिमें करते हैं और जिनेन्द्र मूर्तिके समक्ष हम उपासना किया करते हैं उस मूर्ति मुद्रामे हम यह तो

निरखे कि अहो ! कैसी शान्त मुद्रा है । उस समय मूर्तिको भूल जायें । मूर्तिके सामने खड़े होकर उस मूर्तिको निरखकर भी कुछ ऐसा साक्षात् ही मानो ये अरहन्तदेव विराजे हैं, इस तरहकी कुछ धारणा रखकर ऐसी कल्पना करके वहा निरखें और मूर्तिको भूल जायें और यही दृष्टिमे ले कि ये प्रभु कैसे ज्ञानमय ही अपने ज्ञानको मग्न किए हुए हैं, इनका पलक रच मात्र भी नही चलती । मानो साक्षात् अरहन्त प्रभुका उपदेश मिल रहा है कि शांति चाहते हो तो सर्वकी ममता त्यागकर इस प्रकार अपने आपके स्वरूप में मग्न हो जाओ । यही तुम्हे शरण है अन्य कुछ शरण नही है । जहां जहां घूमते हो जिन जिनके निकट बैठते हो, जिसको तुम अपना हित मानकर अपनी शरण समझ कर अपने आपको सौप देते हो वे कोई भी शरण नही है, इस प्रकारकी बातें उस मुद्रा को देखकर उपदेश पानेकी बात सोचें, और थोडा यहांसे भी चित्त हटाकर साक्षात् अरहन्तदेवकी ओर ले जायें जैसे आकाशमे समवशरण रचा हुआ है और वहां चतुर्मुख भगवान विराजमान हैं । चारो ओर सभा बैठी है । सभीको उनके दर्शन हो रहे हैं । देवदेवियाँ चारो ओरसे गानतान नृत्य करती हुई उल्लासपूर्वक आ रही है । मनुष्योका तांता लगा हुआ है, हाथी शेर सूकर बैल आदिक तिर्यञ्च भी उस सभामें बैठे हुए हैं उस वीतराग सर्वज्ञ प्रभुके दर्शन करनेकी धुनिमें । जरा उसकी आंतरिक अवस्था तो निरखो, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दमय है ।

प्रभुके देहकी अवस्था —अब प्रभुकी थोडी बाहरी अवस्था भी देखो—प्रभु की नासादृष्टि जैसी है, पलक भी न गिरते हैं, न ऊचे उठते हैं । ऐसी स्थिरताकी स्थिति जिनके शरीरमें अब कोई मलिनता नही रही, निर्दोष शरीर हो गया । यहा तक निर्दोष हो गया कि धातु उपधातु भी उनमें नही रहे, निगोद जीवोका भी अब स्थान नही रहा । जब वे अरहन्त भगवान अशुद्ध दशामें थे तब उनके ये सब बातें हुआ करती थी—उनके धातु-उपधातु भी थी, अनेक छोटे कीटाणु भी थे, अनन्त निगोद जीव भी थे । निगोद जीव उन्हे कहते हैं जो एक श्वासमे १८ बार जन्म और मरण किया करते हैं । एक श्वास उतना समय होता है जितना कि नाडीके एक बार उठने और गिरनेमे लगता है । तो ऐसे एक श्वासमे १८ बार जन्म मरण करने वाले निगोदिया जीव भी उनके शरीरमे होते थे । पर जब इन साधुजनोको यह अरहन्त अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय यह शरीर परमौदारिक (उत्कृष्ट) बन जाता है । जहां निगोद जीवोका निवास नही, जिसका स्फटिक मणिकी तरह अन्तर्बाह्य दर्शन हो, जिनके शरीरकी छाया भी नही पडती । हम लोगोके इन मलिन शरीरोकी छाया पडती है, पर प्रभु होनेके बाद उस परम निर्मल औदारिक शरीरकी जो स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ पवित्र होता है उसकी छाया नहीं पडती । यहां भी तो कांचकी छाया नहीं पडती, कांचकी मूर्ति हो तो उसकी छाया नही पडती, क्योकि वह स्वय प्रकाशमय बन गया तो जिसका शरीर स्वय प्रकाशमान है, स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ है, धातु उपधातुओंसे रहित है ऐसे परमौदारिक शरीरमे छाया भी नहीं पडती ।

वे प्रभु कब तक उस शरीरसे सहित रहेंगे जब तक शेष अघातिया र हैं आत्मा के साथ।

सकल परमात्माके कवलाहारकी आशका—अब इस प्रसङ्गमे एक शकाकार यह शका रख रहा है कि ऐसे अरहत प्रभु जब इस शरीरमे करोडो और अरबो वर्षों तक रहते है तो आहार किये बिना तो शरीर टिकता नही है तो वे अरहत प्रभु भी आहार लेते होंगे। इस आहारको कहते हैं कबलाहार। कबल मायने ग्रास। ग्रास लेकर मुखमे भोजन करनेको कवलाहार कहते हैं। ये अरहत प्रभु भोजन क रते ही हैं। यद्यपि जीवनमुक्त हो गए, ठीक है, पर उ का शरीर करोडो वर्षों तक भी रहता है। अर्थात् यदि किसी मनुष्यकी आयु अरबो वर्षकी है और वह ८ ६ वर्षकी आयुमे अरहत बन गया तो वाकी समय तो उस शरीरमे रहेगा। चरम शरीरीका अकाल मरण नही होता। अरहत अवस्था मे यह नही होसकता कि जितनी आयु उनकी है उससे पहले मिट जाय। तब इतने वर्षों तक वह शरीर कबलाहार बिना टिक नही सकता सी शकाकारकी शका है।

प्रभुके कवलाहारकी मान्यतासे अनन्त आनन्दकी असिद्धि—उक्त शका का उत्तर दिया जा रहा है कि यदि भगवानको भोजन करना माना जायगा। कबलाहार माना जायगा, कवलाहार माना जायगा तो फिर उनके अनन्त आनन्द नही माना जा सकता। क्योंकि भूख लगती है तो आकुलता होती है यही बात समस्त इन्द्रिय विषयोमे है कोई भी इन्द्रिय विषय आकुलता बिना नही भोगा जाता है। तो प्रभु जो सर्वज्ञ है अनन्त आनन्दमय है जिसमे अनन्त चतुष्टय प्रकट हुआ है, ऐसे प्रभुके यदि कवलाहारकी बात लायी जाय तो फिर अनन्त आनन्दकी बात नही टिक सकती। यो समझिये कि जैसे हम आप मनुष्योमे कोई नेता होता है उसका कुछ सम्मान हम आप लोगोसे अधिक होता है तो वह भगवान उससे कुछ और बड़े नेता हो गए। फिर प्रभुता कहा रही? प्रभुता तो उसे कहते हैं कि जहा हम आप लोगोसे विलक्षण उच्च विकास प्रकट हुआ है। यदि प्रभुमे कवलाहारकी बात मानी जाय तो फिर उनमे अनन्त आनन्दकी बात नही मानी जा सकती। यद्यपि बहुतसे लोग ऐसा मानते हैं कि प्रभुको किसीने भोजन कराया, मेवा खिलाया, किसीने बेर खिलाया, किसीने अपने खानेमेसे आधा बच गया तो प्रभुको खिला दिया। यो बडी भक्तिके समर्थनमे इस तरहकी बातें कही जाती हैं। लेकिन जरा सोचिये तो सही कि इस तरहसे जो खाए वह क्या उत्कृष्ट आत्मा है? वह कैसे सर्वज्ञ वीतराग और अनन्त आनन्दमय हो सकता है? प्रभु कहीं इस तरहसे भोजन किया करता है। अरे प्रभुका स्वरूप तो एक अनुपम है। वह प्रभु ज्ञानानन्दरसमे लीन रहा करता है। उनका शरीर कैसे टिका रहता है करोडो अरबो वर्षों तक इस बातका आगे वर्णन करेंगे। और यह विषय बहुत विस्तारके साथ बताया जायगा। एक उपयोगको उत्साहित करके हमे प्रभुके

इस सम्बन्धमे इतनी जानकारी बनाना है कि आखिर क्या स्वरूप है और क्या बनाने मे प्रभुकी प्रभुता समाप्त होती है। ऐसे उत्साहके साथ इस प्रकरणको सुनना है और यह सब सुबोध प्रकरण है। और अपने आपकी कहानीकी ही बात है। जब यह मैं बहिरात्मापनसे हटकर अन्तरात्मा होकर परमात्म अवस्थाको प्राप्त होऊंगा तो क्या स्थिति बनती है। यह अपनी ही कहानी है। ऐसा जानकर बडा सावधानीसे सुनना है।

भोजनमे सुखकी अनुकूलता होनेसे जीवनमुक्त प्रभुके कवलाहारका पुन आशंका शकाकार कहता है कि भोजन करना तो सुखके अनुकूल है फिर भगवानके भोजनका निषेध क्यों करते हो? यदि भगवान भोजन करते हैं तो उससे उनका सुख और बढा, उनके अनन्त सुखका अभाव कैसे हुआ? जब हम लोग भी भूखसे पीडित होते हैं और शक्ति क्षीण हो जाती है तो भोजन करनेपर सुख भी उत्पन्न होता है और शक्ति भी उत्पन्न होती है। तो भोजन तो सुख शक्ति ज्ञान सभी के अनुकूल है। तो भगवानके भोजन करनेकी बात निषिद्ध क्यो करते हो? सिद्धात कि प्रभु होनेपर, घातिक कर्मोंके नष्ट होनेपर अनन्त ज्ञानदर्शन सुख और शक्तिकी सिद्धि होती है। तब कवलाहारका निषेध इसीलिए तो किया जा रहा था कि भगवानके सुखमे कमी आ जायगी। आहार करनेसे जब हम लोगोमे सुख देखा जाता है तो फिर भगवानके सुखका नाश कैसे होगा। यहा शकाकारने अपनी बात रखी और सिद्ध करना चाहा कि भगवानके बराबर कवलाहार चलता है।

वीतराग अनन्तशक्तिसम्पन्न प्रभुके कवलाहारकी असंभवता उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि हम लोगोको जो सुखादिक होते हैं वे सब कादाचित्क हैं, कभी होते हैं कभी नही। होते हैं और मिट जाते हैं, इस कारण हम लोगोके सुख विषयोसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। आत्माधीन शाश्वत प्रभुवत ससारी सुख ससारी जीवोके नहीं हुआ करते हैं। भगवानका सुख यदि विषयोसे उत्पन्न हुआ मान लिया जाय तो फिर उनके यह अनन्त सुख न रहेगा। जैसे जब भूख लगती है तो पेट चिपक जाता है। शक्ति भी कमजोर हो जाती है तभी तो भोजनकी प्रवृत्ति करते हैं। तो भगवानके यदि भूख लगी, पेट चिपका कमजोरी आयी तो फिर अनन्तसुख अनन्त वीर्य आदिक कहा रहे? इससे कवलाहार माननेपर प्रभुके अनन्त चतुष्टय नही रह सकता है। और, फिर स्पष्ट सीधी बात यह है कि जब भगवान रागद्वेषसे रहित हो गये तो फिर उनका भोजन ग्रहण करनेका प्रयास कैसे हो सकता है? हम आप लोग जब भोजन करते हैं तो राग भी करते हैं और द्वेष भी। कोई बिना रागके तो भोजन नहीं करता? भोजन खूब कर चुके खूब पेट भर गया और बादमे कोई लड्डू हलुवा आदिक लाकर रख दे तो उस खाने वालेको वे रुचते नहीं हैं, और परोसनेवाला अगर पहले तो वे लड्डू हलुवा आदिक न दे और पेट भर जाने पर देने लगे तो उस पर कुछ

रोषमा आ सकता है। तो भोजनका ग्रहण करना और छोडना ये तो राग और द्वेषका काम है। प्रभुमे जब राग और द्वेष ही नही रहे तो फिर उनमे कवलाहार करनेकी बात कहा सम्भव है।

परम अ त शक्त्यानन्दमय प्रभुके कवलाहारकी अ भवता— अनुमान बना लीजिए, हेतु सिद्ध कर लीजिये। केवली भगवान भोजन नही करते क्योकि रागद्वेषका उनमे अभाव है तथा अनन्त शक्तिका सद्भाव है अन्यथा याने कवलाहार करे। तो रागद्वेष रहेगे और अनन्त शक्ति न हेग फिर तो शक्ति क्षीण हो जायगी। इससे प्रभुका स्वरूप सही मानो वे ज्ञान और आनन्दमे निरन्तर लीन रहते हैं। तीन लोक तीन कालके समस्त ज्ञेयोको जानकर भी समस्त पदार्थ उनके ज्ञानमे एक साथ झलक रहे हैं तिसपर भी वे तो अपने आत्मीय विशुद्ध आनन्दरसमे लीन रहा करते हैं। प्रभुका स्वरूप यही है। प्रभु तो आदर्श है उत्कृष्ट है। भगवानकी तो उपासना की जाती है। भगवान परम उपास्य तत्त्व है, और उसको देखें इस तरह कि लो अब तो प्रभु खाने पीने चले, अब खा चुके, अब वापिस आ गये। इस तरह प्रभुको देखने पर तो वे प्रभु परम उपासनाके विषयभूत नही रह सकते। प्रभुके कवलाहार नहीं है। श्वेतांबर आदिक अनेक लोग प्रभुको भोजन आदिक करने वाला मानते हैं। क्यो? यह बात समझे विना कि शरीरकी स्थिति जुदे जुदे प्रकारसे जीवोकी रहा करती है। सबको एक नापसे नापना ठीक नही। अगर हम आप भोजन किये बिना रह नही पाते तो प्रभु भी भोजन किये बिना रह नही सकता ऐसा कहना ठीक नही देखो मुर्गी आदिक पक्षियोके अ डेमे जो जीव है वह कई दिनो तक जिंदा रहता है, उसे कौन भोजन देता है अथवा देवोकी सागरो पर्यन्तकी आयु होती है वे कहाँ भोजन किया करते हैं, पर बने रहते हैं। तो जीवोके शरी की स्थितिया भिन्न भिन्न ढगसे रहा करती हैं। भगवान केवलीके शरीरकी स्थिति देखिए पवित्र शरीर वर्गणाये निरन्तर आती रहती हैं, उनसे रहा करते हैं। हम भी इस समय भोजन नही कर रहे मगर आहार निरन्तर कर रहे हैं। भोजन और आहारमे अन्तर है। भोजन तो है खानेका नाम और आहार है शरीरके किसी भी हिस्सेसे शरीरके परमाणुओको ग्रहण करनेका नाम। जैसे ये पेड खडे हैं ता ये भोजन नही करते किन्तु अपनी जडोसे जल, खाद आदिक खीचकर आहार किया करते है जिससे वे बने रहा करते हैं। तो कवलाहारको बात भगवानमे निषिद्ध है, वे भोजन नही करते किन्तु पवित्र आहारवर्गणाओ का सर्वाङ्गसे आहार करते हैं और बने रहा करते हैं। अच्छा यही बतावो कि जब भगवान वीतराग हो गये, सर्वज्ञ हो गए तो फिर ऐसा रागद्वेषका काम क्यो करेंगे?

वीतरागतामे भी भोजनकी सभावनाकी शका और समाधान— शकाकार कहता है कि रागद्वेष न रहने पर भी बहुतसे यही जन भोजन करते हुए देखे

जाते हैं। इसी प्रकारसे वे भगवान भी वीतराग हो गए तो बने रहें वीतराग और भोजन भी करते रहें, इसमें कौनसी आपत्ति आती है ? अब उत्तर देते हैं कि जिन साधुओंका आपने दृष्टान्तमें रखा कि भोजन भी करते हैं साधुजन और रागद्वेष भी नहीं रहता है तो यह दृष्टान्त यों अयुक्त है कि बिना रागद्वेषके हुए उनमें भोजन करनेकी वृत्ति नहीं हो सकती। वे साधुजन रागद्वेषसे सर्वथा रहित नहीं है क्योंकि जब साधुजन भोजन करते हैं तो वह प्रमत्तगुणस्थानमें माना जाता है। १४ गुणस्थानोंमें ५ गुणस्थान तक श्रावकवर्ती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी होते हैं, और अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं तो वह चतुर्थ गुणस्थानमें है और अगर सम्यक्त्व नहीं है तो उनमें पहिलेसे तीसरा गुणस्थान तक सम्भव है। पर मुनिके छठा गुणस्थान और उसके ऊपरके गुणस्थान होते हैं। तो छठे गुणस्थानको कहते हैं प्रमत्तविरत। इस गुणस्थानमें वह मुनि प्रमादपूर्वक अपनी वृत्ति करता है। तो ऐसे आहार करने वाले साधुजन भले ही श्रावकोंसे उत्कृष्ट आचरण वाले हैं, उनमें रागद्वेष बहुत कम है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें पूर्ण वीतरागता है। वहाँ भी रागद्वेष सम्भव है इस कारण यह बात बिल्कुल सही है कि केवली भगवान भोजन नहीं करते क्योंकि उनमें रागद्वेषका अभाव है और अनन्त चतुष्टयका सद्भाव है। यदि प्रभुके कवलाहार मान लिया जाय तो वे प्रभु भी सरागी हो जायेंगे। सब देख लो, जैसे मुसाफिर लोग, गृहस्थ लोग जब भोजन करते हैं तो क्या वे वीतराग हैं ? वीतराग तो नहीं है, इसी प्रकार यदि प्रभुमें कवलाहारकी बात मान ली जायगी तो प्रभु भी सरागी हो जायेंगे।

भोजनमें रुचि अरुचिकी अनिवार्यता—भोजन करनेमें राग द्वेष किस तरह होते हैं सो भी देखो—प्रथम तो स्मरण और अभिलाषा इन दो भावोंके साथ बिना कवलाहार नहीं लिया जाता। स्मरण तो चलता ही रहता है ना जैसे दाल खानेकी बात सोचते हैं, दूसरे जब खानेकी इच्छा हो, अभिलाषा हो तभी तो भोजनका ग्रास खानेके लिए उठाते हैं। तो प्रभु केवली यदि ग्रास ले कवलाहार करें तो इसके मायने है कि उन्हें भोजनके स्वादका ख्याल आ गया और उसके खानेकी इच्छा हो गई। तो इस बातसे उनमें राग आ गया कि नहीं ? और खाते थे, खाते खाते खूब पेट भर गया, डटकर खा चुके तो तृप्त हो गये। अब तृप्त हो जानेके बाद फिर उस भोजनसे अरुचि हो गई और छोड़ दिया। भोजन करके तृप्त हो जानेके बाद फिर किसीने बढ़िया चीजें लाकर उपस्थित कर दिया तब तो उस परोसने वालेके ऊपर वे प्रभु रोष भी करने लगेंगे। तो राग और द्वेष इन दोनों बातोंके बिना कवलाहार सम्भव नहीं है।

प्रभुका अन्तर्बाह्य लक्षण—देखिए ! यह बात ऊपरी लक्षणकी कही जा रही है और इसमें भीतरी मर्म भी सम्बन्धित है। जो घातिया कर्मोंसे रहित हो गए, देव कहलाते हैं। शास्त्रोंकी प्रमाणता माननेमें जिनको एक मूल सर्वोत्कृष्ट प्रमाण

माना जाता ऐसे भगवानका स्वरूप किस तरहका होना चाहिए जो हम लोगोके हृदयमे ऐसी श्रद्धा बन सके कि यही प्रभु उत्कृष्ट देव हैं, उपासनीय हैं इनका वचन कभी असत्य नही हो सकता है। वह स्वरूप अनन्त चतुष्टयरूप है। वे प्रभु अनन्त ज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको जानते रहते हैं और उस ही अनन्त ज्ञानके द्वारा अपने आत्माका अवलोकन करते रहते हैं, अनन्त आनन्दके द्वारा परम निराकुल रहा करते हैं और अनन्त शक्तिके द्वारा अटल आनन्द रसका पान किया करते हैं। तो प्रभु अनन्त चतुष्टयसे सम्पन्न है। प्रभुका ऐसा उत्कृष्ट स्वरूप मिट जायगा ऐसा सम्भव नही। इस ही चतुष्टयके प्रतापसे प्रभुने सर्वत परमसमता प्राप्त की है। ऐसी ही शक्ति हम आपमे भी मौजूद है और ऐसी ही प्रभुता हम आप भी पा सकते हैं।

परसम्पर्कमे आकुलताओके अनुभवन – यही देख लीजिये एक मोटीसी बात—अपने आपपर जरा दृष्टि देकर सुनो—जो शरीरसे निराला रूप रस गंध स्पर्श आदिकसे रहित है, जानन देखन जिसका काम है उसको लक्ष्यमे लेकर सुनो! हम क्या करते हैं? ज्ञाता रहते हैं। वर्तमान हालतमे भी कल्पनायें कर लें विकल्प बना लें, आकुलताये भोग लें, सुख भोग लें, इतना ही तो हम आप कर पाते है। लेकिन जरा यह तो विचार करें कि ये सारे खटपट करना इस मुझ आत्माका काम है क्या? बाहरमे जिन जिनमे हम आप अपनी दृष्टि फसा रहे है उनसे इस मुझ आत्माका कोई नाता रिश्ता है क्या? ये सब इस मुझ आत्माके कुछ बनकर रहेगे क्या? अरे जब यह शरीर भी इस आत्माका नही है तो अन्य बाह्य पदार्थ तो इस आत्माके हो ही क्या सकते है लेकिन मिथ्या बुद्धि ऐसी लगी है कि बाह्य पदार्थोंमे जो कि इस जीवसे बिल्कुल भिन्न चीजें है उनमें आपा माना जा रहा है। आचार्य समझाते हैं—अरे! क्यो व्यर्थ इन बाह्य चीजोमे आपा बुद्धि रख रहे हो? ये तुम्हारे कुछ भी नही हैं लेकिन कोई सुनता ही नही उन आचार्योंकी बात। कैसे नही है ये मेरी चीजे? इन पर मेरा ही तो अधिकार है ऐसी मिथ्या बुद्धि रखकर निरन्तर आकुलतायें मचायी जा रही है। परिजनोमे, इन धन वैभवोमे इतना अधिक स्नेह करके उनमे अपनायतकी बुद्धि रखकर इतनी आकुलतायें मचायी जा रही हैं, जरा भी विश्राम नही ले सकते यही सारा दुःखका कारण है।

प्रभुस्वरूपकी विपरीत मान्यतासे भक्तकी हानि – प्रभुके आतरिक औपाधिक सारे झंझट हट गये और आत्मामे अतिशय प्रकट हो गया, सर्वज्ञता प्रकट हो गयी और इस ही कारण परमौदारिक शरीर हो गया, उत्कृष्ट निर्मल स्फटिक मणि की तरह स्वच्छ शरीर हो गया, हड्डी मांस मज्जा आदिक जिस शरीरमे नही रही, निर्मल, सुन्दर पवित्र शरीर हो गया यहाँ अन्तरगमे तो अनन्य चतुष्टयका लाभ हो गया और बाहरमे शरीर भी पवित्र हो गया, ऐसे प्रभु दर्शनीय है। उनके गुणोका स्मरण करें और अपने आत्माको पवित्र करें। अब कदाचित वे प्रभु भोजन करने चले

जायें और उपासक बैठो है उनकी उपासना करनेके लिए तब तो उपासकके दिलमें एक ठेस पहुँचेगी। उन प्रभुमे अनन्त शक्ति होनेके कारण उनमें कभी भोजन करनेकी वृत्ति नही होती। बात तो छोटी सी कही जा रही है—कोई कहता है कि प्रभु भोजन करते हैं कोई कहता कि प्रभु भोजन नही करते, और कोई यह कहने लगे कि भोजन करते मान लो तो क्या न करते मान लो तो क्या ? क्यो झगडते हो ? प्रभु तो प्रभु ही है। अरे प्रभु यथा तथा कृत्तिम प्रभु कैसे रह सकता है। इसका निर्णय किए विना प्रभुकी प्रभुता नही रह सकती। यह भी कोई साधारण विषय नही है। निर्णय करना होगा कि प्रभु तो उपेक्षा की मूर्ति है वीतरागताकी मूर्ति है। अतएव प्रभुके [illegible] में लेनेसे शान्ति मिलती है।

शान्तिका उपाय रागद्वेषका अभाव और कृतार्थताका अनुभव - शाति का उपाय रागद्वेषको मिटाना है। किसी भी प्रकारका रागद्वेष रहते हुए शांतिकी आशा करना व्यर्थ है। रागद्वेष रहित प्रभुको अपने चित्तमे लेनेसे यहाँ भी रागद्वेष मद हो जाते हैं। आनन्द उसका मिलता है। विषयोके भोगनेके समय भी जो सुख मिलता है वह विषयोसे निकलकर नही मिलता किन्तु अपनेमें जो दु खकी कल्पना कर रखी थी, सो विषय भोगनेके प्रसङ्गमें जितने अशमे वे दुखकी कल्पनायें मिटी उतने अशमे यह सुखका अनुभव करता है। शान्ति मिलती है रागद्वेषके हटनेसे। शान्ति मिलती है अपनेको कृतकृत्य अनुभव करनेमे। किसी भी प्रसङ्गमे देख लो। कोई काम करनेको पडा है, कोई छोटी कोठी वनानी है तो जब तक वह नही बन पाती तब तक कितनी विह्वलता बनी रहती है। कितनी अशान्तिकी बातें, कितने झगडे झझटकी बातें, कितनी व्यवस्था सम्बन्धी बातें रहा करती है और उस कोठीके बन जानेपर वह कल्पित मालिक शान्तिका अनुभव करता है। वह शान्ति उस कोठीसे निकलकर तो नही आयी। उस कोठीके बननेके कारण नही आयी, किन्तु अब जो यह भाव बैठ गया कि कोठी बनने का काम अब नही रहा, इस भावसे शान्ति है, काम करनेसे नही। खूब इस बातको गौरसे अनेक घटनाओसे देखते जाइये—जब कभी भी किसी कामके प्रसङ्गमे शान्तिका अनुभव होता है तो अब यह काम मेरेको करनेको नही रहा। इस प्रकारके भावोंके कारण शान्तिका अनुभव होता है। कामसे शान्ति नही मिलती। भगवान तो पूर्ण कृतकृत्य है, उनको अब कुछ करनेको नही पडा, विकल्प भी नही रहा, वे तो एक निरन्तर स्वपरको समस्त विश्वके जाननहार रहा करते है। कैसा विशुद्ध ज्ञान होता है प्रभुका जिस ज्ञानके कारण आकुलताका रचमात्र भी अवकाश नही है। जब कि यहाँ हम आप लोग इस तरहसे ज्ञान कर रहे है कि जिसमे आकुलतायें टपकती रहती है। एक आकुलता मिटी दूसरी आ गई। कैसा ज्ञान बना है। कोई पुरुष यह सोचे कि मैं इतने काम कर लूं। इसके बाद फिर मैं बडा सुखी हो जाऊगा। फिर कोई झझट ही न रहेगा। अरे झझट कैसे न रहेगा। जब तक चित्त

मे रागभाव है तब तक एक के बाद दूसरा काम और सामने आ जायगा। कहासे निपटावा होगा।

कार्य कर करके निवृत्त होनेकी आशाकी विफलतापर एक किवदन्ती के रूपमे दृष्टान्त एक ऐसी किम्वदन्ती है कि एक बार नारदजी नरकलोकमे घूमने गये तो वहा उन्हे खडे होने तकका भी जगह न मिली, वहापर नारकी जीव ठसाठस भरे हुए थे। वहासे झुंझलाकर नारदजी वैकुण्ठ गये। वहापर सब जगह पडी थी। बस वहांके भगवान ही अकेले वहापर पडे हुए मौज कर रहे थे। तो नारदजी बोले—तुम बडे पक्षपाती हो नरकमे तो इतने जीव भर दिये कि वहा खडे होनेकी जगह नही। और इस वैकुण्ठमें एक भी जीव नही है। साराका सारा खाली पडा है। तो वह लौकिक भगवान बोला—अच्छा हम तुम्हे इस बातका अधिकार देते है कि तुम जितने जीव यहाँ ला सकते हो ले आओ। वे नारदजी पास प्राप्त करके मध्यलोकमे आये, सो एक बूढेसे कहा—चलो हम तुम्हे वैकुण्ठ ले चलें। तो उस बूढेने सुनकर नारदको गाली दी। हम ही मिले मरने मिटनेको, क्योकि सभी जानते है कि बिना मरे तो वैकुण्ठ मिल नही सकता। नारदजीने ८-१० बूढोसे कहा मगर कोई भी बूढा वैकुण्ठ चलनेको तैयार न था। इसके बाद नारदजी जवानोके पास गये और बोले चलो हम तुम्हे वैकुण्ठ ले चले! तो नवयुवक बोले—कि बात तो बहुत अच्छी है, यह तो हमारे कल्याणकी बात है, किन्तु महाराज! अभी तो हम इस काममे फँसे है नही तो जरूर आपके साथ वैकुण्ठ चलते। अभी तो हम आपके साथ वैकुण्ठ न जा सकेंगे। ऐसा ही उत्तर सभी जवानोने दिया। खैर, बूढोमे तो वे ठीक ही रहे। बूढोने तो नारदको गाली भी दी है, नवयुवकोने तो नारदजीकी बातको अच्छा तो फिर भी कहा। वहाँसे भी हैरान होकर नारदजी लडकोके पास आये। एक लडका चबूतरेपर वैठा हुआ माला फेर रहा था उससे नारदने कहा—वेटा! तुम हमारे साथ चलो, हम तुम्हें वैकुण्ठ ले चलेंगे। तो वह लडका बडा खुश हुआ और साथ चल दिया। थोडी दूर जाकर बोला—महाराज! दो दिन बादमे हमारी शादीकी तारीख है रिश्तेदार लोग भी आ चुके हैं, अब ऐसे मौकेपर बिना कहे सुने यो ही चल देना अच्छा नही मालूम होता। सो कृपा करके आप हमे ५ वर्षका समय दें। ५ वर्षके बादमे जब आप आयेंगे तो जरूर हम चलेंगे ठीक है नारदजी ५ वर्ष के बादमे पहुचे और बोले-बेटा अब तो चलो! तो वह बोला—महाराज! स्त्रीके गर्भ है, बच्चेका मुख तो देख लें, सो आप १० वर्षके बादमे आना तब हम जरूर चलेंगे। फिर १० वर्षके बादमे नारदजी पहुँचे। बोले बेटा! अब तो चलो। तो वह बोला—महाराज! लडका समर्थ हो जाय, अपने पैरो खडा हो जाय तब हम आपके साथ चलेंगे, सो आप १० वर्षके बादमे आना। फिर १० वर्षके बादमे पहुँचे नारदजी, तो वह बोला महाराज! जरा नाती-पोतोका मुख तो देख लें, सो आप १० वर्षके बादमे आना हम आपके साथ जरूर चलेंगे। फिर १० वर्षके बादमे नारद

जी वहा पहुँचे। उस समय उसने कहा —महाराज ! लडके कुपूत निकल गये, हमने बडा श्रम करके लाखोकी सम्पत्ति जोडी है इसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। सो कृपा करके आप दूसरे भवमे आना तब हम आपके सङ्ग अवश्य चलेंगे। सो जिस कोठेमे अधिक धन भरा था उसीमें वह मरण करके सर्प बना, नारदजी वहाँ भी पहुचे और बोले कि अब तो चलो। तो वह फना हिलाकर कहता है—महाराज ! धन की रक्षा करनेके लिए तो हम यहाँ आये हैं, हम तो इस धनको छोडकर इस भवमे भी आपके साथ वैकुण्ठ नही जा सकते।

अभीसे शक्त्यनुरूप धर्म करनेमे जुटनेका अनुरोध —आप यह बतलावो कि कोई मनुष्य यह सकल्प करे कि मैं इतना काम कर लू इसके बाद फिर निश्चित होकर धर्म ही धर्म करूगा, क्या बन जायगी बात ? भाई धर्म करनेके लिए समयको लम्बा न करो। जो जिस स्थितिमे है उसीके माफिक अपनी योग्यताके माफिक शक्ति को न छिपाकर ज्ञान ध्यान सयममे लगे। आगेकी कोई आशा करे कि मैं आगे अच्छा बनूगा और इस समय तो लस्टम पस्टम जैसे है बने रहने दो। तो क्या यह उम्मीद की जा सकती है कि आगे अच्छे बन ही सकेंगे ? तो जिस मार्गसे चलकर ये प्रभु हुए है उसी मार्गको हम अपनी शक्ति न छिपाकर अपनायें और चलें तो कुछ ही समय बाद कुछ ही भवो बाद हम आप उस प्रभुताको पा सकते है।

वीतरागतान्यथानुपपत्तिसे सकलपरमात्माके कवलाहारका अभाव— अपने आपके आत्मामें शाश्वत विराजमान जो एक ज्ञान ज्योतिस्वरूप अतस्तत्त्व है उसकी जिन साधुवोने भावना की तद्रूप अपनेको अनुभव किया उनके उस परम तपश्चरणके प्रतापमे चार घातिया कर्म नष्ट हुए और अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति प्रकट हुई। बाह्यमें शरीर भी परमोत्कृष्ट हो गया। ऐसे सशरीर परमात्मा सकल परमात्माके सम्बन्धमें शकाकार यह कह रहा था कि उनका यह शरीर हजारो लाखो करोडों वर्षों तक भी जीता रहता है वह क्या भोजन किये बिना रह सकता है ? वे प्रभु भी भोजन किया करते हैं। उसके समाधानमे बताया गया कि प्रभु यदि आहार करने लग जायें तो उनमे अनन्त आनन्द व अनन्त शक्ति आदिक कैसे रह सकते हैं। जो कभी भी कवलाहार करता है, ग्रास खाता है वह स्मरण अभिलाषा आदिक पूर्वक खाता है। चाहे बडे ऊचे योगी साधु भी हो लेकिन जब भी उनकी प्रवृत्ति आहारके लिए होती है तो किसी न किसी रूपमें राग उनके भी रहता है। तो अन्य पुरुषोकी भाँति जब भगवानमें भी अभिलाषा रुचि अरुचि आदिक सिद्ध होते है तो फिर उनमें वीतरागता कहा रही ? और वीतरागता नहीं है तो फिर आप्तपना कहा रहा ?

वीतरागताके स्मरणसे भक्तका लाभ—अनेक लौकिक लोग झट यो कह बैठते है कि जैन मन्दिरमे क्या रखा है ? वहां तो एक बिना शृङ्गार की, बिना कपडो

की, बिना आभूषणोको एक नग्नमूर्ति विराजमान है। वहा क्या लेंगे ? शृङ्गार और वस्त्र सहित भगवानकी मूर्तिमे मन रमाने वाले जैसे लोगोको या स्वच्छन्द जनोको यह शका हो सकती है लेकिन उन्हे यह भी पता है कि जिस समुद्रमे पानी लबालब भरा है उसमेसे कभी एक भी नदी निकली, और जिस पहाडपर पानीका एक बूद भी नही दिखता उस पहाडमे नदियोके स्रोत निकलते है। तो जहाँ धन वैभव पुत्र परिजन शृङ्गार आभूषण आदिक सब ठाटबाट है वहाँसे तो कुछ मिलता भी नही है और जहा वीतरागता है वहा उस वीतरागमय प्रभुके स्मरण व उनकी भक्तिसे पुण्य रस बढता है और स्वयमेव सब सुख सुविधायें सर्व वैभव सर्वफल प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ भगवताकी उपासना की जा रही है वहाँ लोगोका पुण्यरस बदलकर पापरूपमे परिणत हो सकता है। और फिर उनसे पूछा जाए कि तुम क्या चाहते हो ? धन वैभव या लोकमे इज्जत पोजीशन विषयोके सुख ? ये तो सब विडम्बनायें हैं जो कि जीवके साथ अनादिकालसे लगी हुई हैं इनसे कभी तृप्ति जीवको हो नही सकती। यह जीव हर भवमे जहाँ भी नई जगह जन्म लेता है वहा ही इस वैभवके अ आ इ ई से पाठ पढने लगता है। उसे यह दृष्टि नही रहती है कि इससे कई गुना वैभव तो मुझे पिछले भवो में प्राप्त हुआ था। उस वैभवके आगे तो यह कुछ भी नहीं है। इस प्रकारकी दृष्टि इस जीवकी नही बनती।

जीवनकी एकमात्र समस्या भैया ! कुछ तो सोचिये, इन विषयसुखोंसे इस जीवको लाभ क्या मिल जाता है, आखिर इस पर्यायके छूटनेके बाद भी तो कुछ हालत होगी। क्या यह ठेका ले रखा है कि इस पर्यायके बादमे उत्तरोत्तर हमे अच्छी ही पर्यायें प्राप्त होंगी। यह एक बहुत बडी समस्या है सामने जिसकी ओर लौकिक-जनोकी दृष्टि ही नही जाती। लौकिक जनोकी दृष्टि तो इस पर है कि हमारा ऐसा परिवार है ऐसा वैभव है, ऐसी इज्जत है आदिक। मगर बताओ तो सही कि मरण होनेके पश्चात् ये तुम्हारी कुछ मदद कर सकेंगे क्या ? अरे मदद करना तो दूर रहा, इनके कारण सारा बिगाड ही बिगाड है। न जाने किन गतियोमें जन्म लेना होगा। फिर तो निम्न गतियोमे मन भी न मिलेगा, विषयकषायोम ही फसे रहना होगा। वहा तो अपने हितका पथ ही न मिल सकेगा। यहाँ तो ज्ञान मिला है, श्रेष्ठ मन है। ऐसा विचार कर सकते हैं कि यह मैं आत्मा सर्वसे निराला ज्ञानपुञ्ज हू। यदि मैं इस प्रकार का चिन्तवन करता रहूगा तो इसी धर्म साधनाके प्रतापसे समस्त प्रकारके सुख साधन व कल्याणका मार्ग मिलता रहेगा। धर्म साधन करनेमे जीवका स्वयका हित है, इसमे किसी पर एहसान लादनेकी बात नहीं है। खुदको विपत्तियोमे बचानेके लिए धर्म साधना की जाती है। तो धर्म है अपने आत्माके सहज यथार्थस्वरूपका अनुभवन करना।

प्रभुताके कारण प्रभुमे अनेक अतिशय - धर्मके प्रतापसे जो घातिया कर्मो

का नाशकर प्रभु हुए हैं उनमें ऐसा अलौकिक अतिशय है कि वे ग्रासाहार नही करते और विशुद्ध शरीरवर्गणा ये जो उनके शरीरमे चारो तरफसे आती हैं उनके बलपर ही वे बडे सुन्दर जीवनसे जीते हैं। जब तक उनकी आयु है और आयु समाप्त होनेपर वो शरीररहित सिद्ध भगवान हो जाते हैं। उनके आहारकी अभिलाषा आदिककी बातें करना यह तो उनका अपमान करना है, उनके स्वरूपको बिगाडना है। यदि यह कहो कि भगवानके अभिलाषा तो नही है फिर भी वे आहार ग्रहण करते हैं क्योंकि प्रभु में इस ही प्रकारका महान अतिशय है कि उनके इच्छा नही है फिर भी खाते हैं, यह तो कोई भली बात नही है। यहा भी यदि किसी के खानेकी इच्छा न हो और जबरदस्ती खिला दिया जाय तो उस पर क्या बीतती है। तो यही अतिशय मानलो कि प्रभु ग्रासाहारके बिना ही शुद्ध पवित्र वर्गणाओंके बलसे शरीरमे स्थित रहा करते हैं। ऐसे अतिशयशाली प्रभुमे अनन्त गुण है। एक यह भी गुण है कि वे प्रभु आकाशमें गमन करते है। जो भगवान हो जाते है जिनमें प्रभुता प्रकट हो जाती है वे हम आप लोगोकी तरह जमीन पर चलते फिरते बोलते-चालते नजर न आयेंगे। प्रभु सभीको दर्शनमे तो आ सकते हैं पर उनसे बातचीत करने आदिका सम्पर्क कोई बना नही सकता है। वे प्रभु तो अपने अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्दसे सम्पन्न रहा करते है। उनके दर्शन और भव्य जीवोके भाग्यसे और उनके वचनयोगसे जो दिव्य ध्वनि प्रकट होती है उसका श्रवण सभी लोग करते है। तो प्रभुका दर्शन एव उनकी दिव्य ध्वनिका श्रवण ये दो लाभ जीवोको प्राप्त हो सकते है पर उनसे कोई अपनी पाइवेसी नही बना सकता है।

सदेह प्रभुमे आहारमात्रकी अप्रतिषिद्धता अब शंकाकार कहता है कि आहारके अभावमे तो प्रभुके शरीरकी स्थिति ही नही रह सकती। इसीको हेतु सिद्ध करते है कि भगवानके शरीरकी स्थिति ग्रासाहारपूर्वक होती है। शरीरके स्थित होनेमे जैसे हम लोगोके शरीरकी स्थिति है, हम लोगोका आहार किये बिना टिक नही सकता तो प्रभुका भी शरीर ही तो है और हम आप जैसा ही तो शरीर प्रभुका था उसकी भी स्थिति ग्रासाहारके बिना सम्भव नही है। इस शकाके उत्तरमे पूछते है कि इस अनुमानसे क्या प्रभुमे यह सिद्ध करना चाहते कि उनके आहारमात्र होता रहता है या यह सिद्ध करना चाहते कि वे कौर खाकर ग्रास लेकर आहार किया करते है? यदि यह कहो कि हम तो आहारमात्र सिद्ध करना चाहते है। तो ठीक है, चू कि वह देह है और वह टिका हुआ है स्थिर है तो आहार जरूर करते है यह तो सही बात है आहारमात्रका निषेध नही है प्रथमगुणस्थानसे लेकर सयोग केवली पर्यन्त अर्थात् १३वें गुणस्थानमे आहार रहता है यह तो मानते है पर प्रभुके कवलाहार नही रहता, अन्य प्रकारका आहार रहता है याने सदेह प्रभुमे नोकर्माहार रहता है। यहा भी हम आप बैठे है, कुछ खा पी नही रहे फिर भी यह न समझना चाहिए कि हम आहार नही कर रहे। अरे हमारे शरीरके प्रत्येक अगमे पैरोसे लेकर शिर

हारकता है अर्थात् शरीर वर्गणाओंको वह जीव ग्रहण नही कर रहा है। देखिये! एक यह ही विग्रह गतिकी स्थिति है इन संसारी जीवोमे, जहा कि शरीर वर्गणायें नही आतीं किन्तु अंडेमे रहने वाला जीव जिसके ओजाहार होता है, उसके भी नोकर्माहार है, वे देव जिनके मानसिक आहार होता है उनके भी नोकर्माहार है। और ये वृक्ष जिनके लेप्याहार है उनके भी नोकर्माहार हैं जो कवलाहार करते हैं, ग्रास लेकर भोजन करते हैं उनके भी नोकर्माहार चल रहा है। केवल नोकर्माहार नही है, तो विग्रहगतिमे रहने वाले जीवोंके नोकर्माहार नही हैं।

विग्रहगतिमे अनाहारक अवस्थाका तीन समयसे अधिकका अनवसर—कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जैसे मनुष्य मरा तो मरकर जब तक उसकी तेरहीं न हो जाय, जब तक १८, २१, ५० अविकारमन्य लोग अर्थात् खाने-पीने वाले लोग खा-पी न लें तब तक उस जीवको पथ नही मिलता और वह यत्र-तत्र डोलता रहता है, तो ऐसी बात नही है। एक भव छूटनेके बाद दूसरे भवमे उत्पन्न होनेमे नवीन शरीर ग्रहण करनेमे ज्यादहसे ज्यादह ४ समय लगते हैं। और, एक समय कितनेको कहते हैं? आँखको एक पलकके शीघ्रतया एकबार गिरने व उठनेमे जितना समय लगता है उसमे अनगिनते समय होते हैं। तो उन अनगिनते समयोमेसे अधिकसे अधिक ४ समय लगेंगे जीवको नवीन शरीर ग्रहण करनेमे। जीवके गुजरनेके बाद अर्थात् एक भव छूटनेके बाद यह जीव ऊपरसे नीचे, पूरबसे पश्चिम, उत्तरसे दक्षिण ये जो आकाश पंक्तिया है उनके अनुसार जीव चलता है, विदिशाओंमें नही जाता है। जैसे यहा शरीरधारी लोग जैसा चाहे घूम सकते हैं वैसे यह जीव नही घूम सकता। उसकी तो शरीर छूटनेके बाद सीधी गति चलती है। चाहे पूरबसे पश्चिम, चाहे उत्तर से दक्षिण और चाहे ऊपरसे नीचे। विदिशाओंमे उस जीवकी गति नही होती। यदि किसी जीवको साधमें नवीन जन्म लेना है तो वह एक ही समयमे शरीर ग्रहण कर लेगा। किसीको जानेमे एक मोड लेना है जैसे पूरबके बीचसे तो वह मरा और दक्षिणके बीच कही पैदा होना है तो पहिले पश्चिमकी ओर चला, यो एक मोड लेनेमें उस जीवको नवीन शरीर धारण करनेमे दो समय लग जाते हैं। इसी प्रकार दो मोड में तीन समय लग जाते और तीन मोडमे चार समय नवीन शरीरको ग्रहण करनेमे लग जाते हैं। संसारकी कोई भी जगह ऐसी नहीं है, कहीसे भी कही जीव पैदा हो उसे तीन मोडसे अधिक लेनेकी गुंजाइश नही है। तो जीवको नवीन शरीर ग्रहण करनेमें ४ समयसे अधिक नही लगते। तो नवीन शरीर ग्रहण करने और पुराने शरीरके छोडनेके बीचके समयमे जीव अनाहारक रहता है,

नोकर्माहारसे प्रभुदेहकी स्थिति—प्रभु देहमे यदि नोकर्माहारकी बात कहते हो तो प्रभु आहारक हैं ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नही है। तो आहारमात्रकी बात सही है, पर कवलाहार होनेको ही आहारक कहा जाय यह बात युक्त नही है क्योंकि

देवता भी तो कवलाहार नही करते। फिर भी तो उनके शरीरकी स्थिति सागरोपर्यन्त रहा करती है। सागर किसे कहते हैं ? उसका प्रमाण जाननेके लिए गणित नही है। वह तो उपमासे ही जाना जा सकता है। कल्पना करो कि २ हजार कोसका लम्बा, चौडा, गहरा एक गड्ढा है और उसके अन्दर इतने छोटे छोटे बालोके टुकडे भर दिये जायें कि जिनका कैंचीसे दूसरा टुकडा न जा सके और उस पर हाथी भी चला दिये जायें। जब खूब ठसाठस वह गड्ढा उन बालोके टुकडोसे भर जाय तो उन प्रत्येक टुकडोको प्रति १०० वर्षमे निकाला जाय तो समस्त टुकडोको निकालनेमे जितना समय लगेगा उसका नाम है व्यवहारपल्य, और इस व्यवहारपल्यका असख्यात गुना होता है उद्धारपल्य और उस उद्धारपल्यका असख्यात गुना होता है अद्धापल्य, और १ करोड अद्धापल्यमे १ करोड अद्धापल्यका गुणा किया जाये उसे कहते हैं एक कोडाकोडी पल्य, और ऐसे १० कोडाकोडी पल्य व्यतीत हो तो उसका नाम है एक सागर। ऐसे ३३ सागरो तक की आयु देवोकी होती है और ३३ सागर तककी आयु नरकोमे भी होती है। भला देवोके शरीरकी इतने समय तक स्थिति रह जाय, जब यह सम्भव है ग्रासाहारके बिना तो प्रभुका यह परमौदारिक शरीर ग्रासाहारके बिना करोडो वर्षों तक रहे इसमे क्या आश्चर्य है ? उनके शरीरमें शरीर वर्गणाओका आहार निरन्तर रहता है।

साधारण जनोके देहसे प्रभु देहकी तुलनाकी उपहासता—यदि यह कहो कि हम देवताओके शरीरकी बात नही कहते। हम तो यहाँ औदारिक शरीरकी स्थितिकी बात कहते है। जो जो औदारिक शरीरकी स्थिति है। औदारिक शरीर छोटे मोटे शरीरका नाम है जैसे मनुष्य और तिर्यञ्चोके शरीर। जो औदारिक शरीर शरीरकी जितनी स्थिति है वह कवलाहारपूर्वक होती है। जैसे हम लोगोके शरीरकी स्थिति औदारिक शरीरकी स्थिति है और वह खा पीकर रहता है। औदारिक शरीर की स्थिति भगवानके भी हैं। इससे देवताओके शरीरका नाम लेकर भी हेतुमे दोष नही दे सकते हो। समाधान करते हैं कि यह भी बात सारहीन है। भगवानका औदारिक शरीर अब हम लोगो जैसा औदारिक शरीर नही रह गया, वह परमौदारिक शरीर हो गया। तो यहाके औदारिक शरीरकी स्थितिकी तुलना प्रभुके परमौदारिक शरीरकी स्थितिसे नही की जा सकती। प्रभुका वह परमौदारिक शरीर हम आप लोगोके शरीरकी स्थितिसे विलक्षण है तभी तो केवलज्ञान अवस्था होनेपर फिर केश नही बढते। जैसे यहा हम आप लोगोके बाल बढते रहते हैं, कटवाने पडते है, अथवा साधुजन केशलोच करते हैं, केश बढा करते हैं, केवल ज्ञान होनेके बाद, सर्वज्ञ वीतराग प्रभु होनेके बाद जब तक उनका शरीर है वह पवित्र परमौदारिक शरीर है। उसमे केश नही बढते। जितने केशोको लिए हुएमे केवलज्ञान हो उतना ही रहता है। तो जैसे केश नख आदिकका न बढना यह अतिशय केवलज्ञान होने पर है ऐसे ही भोजन का न होना यह भी एक अतिशय है, इसमे कोई विरोध नही है।

भगवानके स्वाधीन आनन्दके स्मरणका सत्य आनन्द -भगवानका आनन्द तो अपने आपके स्वरूपानुभवनका आनन्द है और वह उनमे सहज होता है। जैसे अन्य द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक अचेतन है, पर अचेतनकी तुलनामे बात नहीं कह रहे हैं। एक शुद्धकी तुलनामे कह रहे हैं। जैसे धर्म, अधर्म, आकाश आदिक द्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं, इनका परिणमन जैसे विशुद्ध हैं, इनका परिणमन जैसे अपने स्वरूपमे चल रहा है इसी प्रकार सिद्ध प्रभुका भी अनुभवन परिणमन शुद्ध निरन्तर चलता है और अरहंत देवका भी इसीप्रकार शुद्ध अनुभवन चलता रहता है वे इस शुद्ध परिणमनसे निरन्तर आनन्दयुक्त रहा करते हैं। दुःख हो कोई तो प्रवृत्ति करे। विषयोंमें प्रवृत्ति दुःखके विना नहीं हो सकती। छोटेसे लेकर बडे तकके संसारी जीव भी जो भोजनकी प्रवृत्ति करते हैं वे आकुलतापूर्वक ही करते हैं। प्रभुके तो किसी भी समय रंचमात्र भी आकुलता सम्भव नहीं है। मन्दिरमे जो पत्थर पाषाणकी मूर्ति है वह तो अरहंत भगवानकी मुद्राकी मूर्ति है। उसका दर्शन करके हमे केवल मूर्तिमें ही दृष्टि नही टिकाना है, किन्तु प्रभुको उस मूर्तिको देखकर अपने चित्तको उन प्रभुके गुणो पर लगाना है और प्रभुके गुणोका बार बार स्मरण करना है। उस प्रभुके सम्बन्धमें ही यहाँ यह चर्चा चल रही है कि प्रभुका आंतरिक स्वरूप क्या है और बाहरी स्वरूप क्या है ?

अल्पज्ञोकी तुलना करके प्रभुके कवलाहार मानने पर इन्द्रियज ज्ञान का भी प्रसङ्ग होनेसे प्रभुताके भी अभावका प्रसङ्ग -जो लोग ऐसा कहते हैं कि सकल परमात्मा अरहत भगवानके औदारिक शरीर ही तो है। सो औदारिक शरीरकी स्थिति, कवलाहारके विना नही सम्भव है इस कारण वे ग्रासका आहार करते ही हैं ऐसा कहने वाले लोग यह भी सिद्ध न कर पायेगे कि भगवानका प्रत्यक्ष ज्ञान अतीन्द्रिय होता है। जब उनके शरीरको अपने समान समझकर कवलाहार सिद्ध किया जा रहा है तो उनके ज्ञानको भी अपने ही ज्ञानके समान समझकर उसे इन्द्रियज ज्ञान मानना पडेगा, अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान नही कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा कहा जा सकता है कि भगवानका ज्ञान इन्द्रियजन्य हैं, यद्यपि प्रत्यक्ष ज्ञान शब्दसे भी कह लो। भगवानका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय जन्य होता है प्रत्यक्ष होनेसे। जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्षज्ञान। अपने धर्मसे। अपनी वर्तमान स्थैयामे भगवानकी तुलना करके कवलाहार मानो तो फिर सभी बातोकी तुलना करके भगवानकी सारी बातें अपने ही समान मान लो। हम आहार करते हैं तो भगवान भी आहार करते हैं ऐसा माननेपर मानते जाओ कि हमारा ज्ञान इन्द्रियजन्य है तो प्रभुका ज्ञान भी इन्द्रियजन्य होगा। हम यहाँ सरागी हैं तो प्रभुभी सरागी होगे। यों अनेक अटपट बातें अपनी तरह भगवानमें मान लोगे। हम चूकि बोलने वाले हैं इसलिए रागसहित हैं, भगवान भी तो वक्ता हैं वे भी तो उपदेश करते हैं दिव्य ध्वनि द्वारा तो वे भी रागसहित हो गए। फिर तो भगवानकी भगवत्ता ही क्या रही सभी बातें अपनी जैसी भगवानमें मानलो।

प्रभुमे यहाकी तुलना और स्वेच्छाभिमतमे अनेक अनिष्ट प्रसङ्ग— शकाकार कहता है कि हम लोगोमे देखी गयी बातें, कुछ तो वहा है और कुछ नही हैं कहते हैं कि यह तो स्वेच्छाकारिताकी बात है। जो तुम्हारे सिद्धांतसे अनफिट बैठा उसे और तरहसे कहने लगे और जो बात तुम्हारे सिद्धान्तके अनुकूल बैठी उसे और तरहसे कहने लगे। अरे या तो सब बातें वही मानो या सब कुछ विलक्षण मानो। इस तरह जब भगवान रागी भी हो गए और इन्द्रियजन्य ज्ञानी भी हो गए तो वह केवली ही न रहे। भगवान ही न रहे। तो फिर किसमे कवलाहारकी सिद्धि करते हो? यहा हम आप लोगोमेसे किसी मनुष्यके प्रति कवलाहार सिद्ध करनेका प्रयास करता है क्या। क्योकि सभी मनुष्य भोजन करते हैं। हम लोगोकी तुलनासे उनके शरीरकी तुलना नही दी जा सकती। यहा है औदारिक शरीर जिसमे कि फोडा फुन्सी होते, बदबू निकलती, पसीना आदिक अनेक प्रकारके विकार हैं, पर प्रभुका शरीर तो परमौदारिक है, वहा किसी भी प्रकारका कोई विकार नही है। उनका शरीर स्फटिकमणिकी तरह स्वच्छ तथा हृष्टपुष्ट है। यदि हम लोगोंके शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती है तो इसके मायने यह नही हैं कि सबके शरीरकी स्थितिको भोजनपूर्वक कहने लगोगे। अन्यथा तो जैसे घटपट चौकी आदिक पदार्थोमे आकार पाया जानेसे यह सिद्ध हो रहा है यहाँ कि ये किसी एक बुद्धिमानके द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। तो शरीर आदिकमे भी तो आकार हैं। किसीका कैसा ही आकार है किसीका कैसा तो ये सब शरीरको देखकर यहा भी यह मानना पडेगा कि ये भी किसी एक बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। पर ऐसा तो तुम भी नही मानते। श्वेताम्बरोके प्रति कह रहे हैं कि इसमे तो एक ही मत है कि यह जगत उपादान निमित्त पूर्वक बना है इसके बनाने वाला कोई एक बुद्धिमान नही हैं लेकिन जब यहाँ हम आप लोगोके शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक देखकर भगवानके शरीरकी स्थितिको भी भोजनपूर्वक बनाना चाहते हो तो यहाके घडा आदिकका आकार देखकर इनकी रचना किसी कुम्हार आदिकसे होनेके कारण फिर इन शरीरोका आकार देखकर इनकी रचना भी किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रची गयी ऐसा मानना पडेगा। दूसरी बात— कभी कभी आखमे विकारके कारण या आख पर अगुली आदिक रख देनेके कारण दो चन्द्रमा दिखने लगते हैं तो ये जो दो चन्द्रमा दिख रहे हैं वे निरालम्ब हैं या सालम्ब? तो कहते हैं कि वह तो निरालम्ब ज्ञान है। जो जाना जा रहा है वैसा वहा नही है। एक जगह निरालम्ब ज्ञान पाया गया तो फिर जितने ज्ञान हैं सबको निरालम्ब मान लो क्योकि तुमने तो यह व्याप्ति बना रखी है कि हमारे शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती है इसलिए प्रभुकी भी स्थिति भोजनपूर्वक है। एक जगह भोजनपूर्वक देहस्थिति होनेसे सर्वत्र देहस्थिति भोजनपूर्वक रहा करती हैं। यो माना सो ऐसे ही जब एक जगह निरालम्ब ज्ञान बन गया तो सभी जगह निरालम्ब ज्ञान मानलो। इस तरह यहाँसे तुलना करके प्रभुके देहको भोजनपूर्वक मानना ठीक

नही है। इसमे सबसे बडी आपत्ति तो यह आती है कि प्रभु फिर वीतराग सर्वज्ञ न ठहरेंगे। जो वीतराग है और सर्वज्ञ है उसकी कभी भी राग द्वेष भरी प्रवृत्ति नही हो सकते। भोजन करने जैसी बात रागद्वेषके बिना किसीके होती हो तो बताओ। कोई बडे ऊचे सन्यासी योगी भी हो तो भी उनके किसी न किसी अशमें राग रहता है तभी उनकी भोजनमे प्रवृत्ति होती है।

अल्पज्ञदेहस्थितिके प्रकारका प्रभुदेहस्थितिमे अभाव शकाकार कह रहा है एक उपालम्भ मिटानेके लिये कि जैसे ये पदार्थ घट पट आदिक किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रचे हुए हैं उस प्रकारक ये शरीरादिक नही पाये जाते इसलिए इनको किसी बुद्धिमानपूर्वक नही कहा जा सकता। कहो कि यही बात तो यहाँ है। जैसे औदारिक शरीरकी स्थिति हम लोगोका भोजनपूर्वक देखी जा रही है उस प्रकारकी स्थिति परमौदारिक शरीरकी नही हुआ करती है इसलिये प्रभुके देहकी स्थिति कवलाहारके बिना ही रहती है। और जैसे ज्ञान ज्ञान सब एक हैं दो चन्द्रमाओका ज्ञान हो रहा तब भी ज्ञान है और यहा दरी चौकी आदिकका ज्ञान हो रहा वह भी ज्ञान है तो ज्ञानपनेकी समानता होनेपर भी दो चन्द्रमाओका ज्ञान तो निरालम्ब है, पर यह दरी चौकी आदिकका ज्ञान तो सालम्ब है। इसी प्रकार शरीरकी स्थिति हमारे भी है और प्रभुके भी है। स्थितिकी समानता होनेपर भी हमारा शरीर भोजनपूर्वक स्थिर रहता है और प्रभुका देह निराहार रहकर भी स्थित रहता है। प्रभुके देहमें चारो ओरसे पवित्र शरीरवर्गणाये आती रहती हैं और उससे जीवन रहता है।

अल्पज्ञोसे प्रभुकी विलक्षणता एव परमोपेक्षा—जो पुरुष आत्मसाधना करके एक अपनी अलौकिक दुनियाको अथवा आत्मस्वरूपको प्राप्त हो चुका है जहा अब कोई विकल्प तरङ्ग नहीं उठ रहे हैं, ऐसा जो एक सकल परमात्मा है, उसका अत स्वरूप निरखिये तो सही, वह ज्ञानसमुद्र है शान्त है, क्षोभरहित है, कल्पनाओं का वहा अवकाश नही है। ऐसे परिपूर्ण केवल ज्ञानसे समृद्ध वह अनन्त आनन्दका निरन्तर अनुभवन करने वाला है, उसमें हम अन्य बात क्या घटा सकते हैं ? उनके सामने उनके कुटुम्बी जन चाहे वियोगसे कितना ही रोयें, दुखी हो, विषाद करें, पर वे वहा किसीकी नही सुनते। यो कह लीजिये कि वे पत्थरकी जैसी मूर्ति बन जाते हैं, उनके किसीसे स्नेह नही जगता। वे भगवान पत्थरकी तरह अचेतन पदार्थ तो नही हैं पर वहा ऐसी निष्कम्पता है कि उनके किसीसे भी रच राग द्वेष नहीं हो सकता। उनकी तुलना अपने शरीरसे करके कवलाहारकी बात कहना युक्त नहीं। यदि कहो कि दूसरे प्रकारके औदारिक शरीर हो ही नही सकते। जैसा हमारा शरीर है वैसा हमारा शरीर है वैसा ही प्रभुका शरीर है, अन्य तरह हो ही नही सकता याने क्या ऐसे भी लोग कहीं होंगे कि जो भोजन न करते हो, तो भगवान भी ऐसे कैसे हो सकते हैं कि वे आहार न करते हो। ऐसी अगर सम्भावना और कल्पना रखोगे तो फिर

कोई यों ही कह सकता है कि सर्वज्ञ भी कोई होता होगा क्या ? हम लोगोंमें तो कोई नहीं देखा जाता सर्वज्ञ ? सब अल्पज्ञ हैं, अधिक जाना तो क्या पर सबको तो नहीं जान सकते। कोई पुरुष ५ फिट ऊँचा कूद सकता है, कोई १० फिट ऊँचा कूद सकता है तो इसके मायने यह नहीं कि कोई १० कोश ऊँचा भी कूद सकता है ! अरे, कोई अधिक जानकार बन गया पर उसकी सीमा तो है. ऐसा तो न हो जायगा कि कोई सारे विश्वको भी जाने ! तो यों सर्वज्ञपना सिद्ध नहीं कर सकते। हम लोगोंके शरीरसे ज्ञानसे, अनुभवनसे प्रभुके शरीर, ज्ञान, अनुभवन आदिमें विलक्षणता है।

ज्ञानघनआत्माकी परमसमरूपता – जहाँ अपने आपके उस ज्ञानस्वरूपमें अपने उपयोगको डुबाकर एक रस कर दिया उसकी तुलना हम यहाँके मिथ्यादृष्टिजनोंके रवैयेसे कर सकते हैं क्या ? देखिये एक दृष्टांत लें। सारा समुद्र जल है उस ही जलमें कोई अंश एक नमककी डली बन गया अब नमककी डली बनकर चारों ओर घूम रही है, यहाँ वहाँ बिक रही है एक दूसरेके काम आ रही है और सुयोगसे वही नमककी डली किसीके हाथसे छूटकर या किसी प्रकार समुद्रमें गिर जाय तो वह नमककी डली घुलकर उस समुद्रमें एकरस हो जाती है। अब उसकी क्रिया, हलन चलन या वह पिण्डरूपता अब नहीं रही, वह तो सम हो गयी। यों ही निरखिये कि इस ज्ञानसमुद्रसे यह उपयोग डली जैसा बनकर बाहरमें निकलकर यत्र तत्र डोल रहा है, मोहमें पगा हुआ है। कौन ऐसा अनुभव करता कि जिस उपयोगसे मैं दुनियाके इन समस्त पदार्थोंको जानता हूं वह उपयोग क्या है ? मैं ही तो हूं उपयोगमें तन्मय हो तो हूं, मैं यहाँ डोलता हूं मैं यहाँ अन्यत्र जाता हूं। ऐसा अनुभव करनेवाला तो यहाँ कोई नहीं दिख रहा। जो दिख रहे उनका ज्ञान कभी यहाँ गया कभी यहाँ गया। कभी लड़ाईमें गया तो कभी लड़केके बच्चोंमें गया, तो कभी धन दौलतमें गया। यों यह उपयोग बाहरमें यत्र तत्र डोलता रहता है। अरे अपने उस उपयोगको ज्ञान समुद्रमें डुबो दो। मैं ज्ञानरूप ही तो हूं उस ज्ञानमयको अपने ही विधिसे ज्ञानमयमें डुबो दो और अनुभव करने लगो कि बस मैं तो ज्ञानमय ही हूं, इससे बाहर कहीं कुछ नहीं, इतना ही मात्र मैं हूं। इसमें एकरस करके एक भावना करके कोई, अब उसे यहाँ भी अन्य विकल्प नहीं, कुछ आकुलता नहीं, तो क्या इस महान पुरुषार्थके करनेवालेके लिए निराकुल हो गए हैं ऐसे प्रभुमें अपनी तुलना करके उनके स्वरूपको दिखाया जा सकता है ?

अपावन देहसे प्रभुदेहकी विलक्षणताका संक्षिप्त विश्लेषण – यह जाना जा कि हम जैसे प्रभु भगवान नहीं हैं। भगवान तो हमसे विलक्षण हैं। हम आप लोग तो अल्पज्ञ पर सर्वज्ञ हैं प्रभु। तो यहाँ भी मान लो कि हमारे शरीरकी स्थिति भी कोटिपूर्व है किन्तु उनके देहकी स्थिति बिना भोजनके अधिक शरीरपर्यन्त... आगे आगे रहती है। अधूरा यह देह सदा तो न रहेगा, जितनी आयु उनकी रहे है

उतने तक रहेगा। याने यहाँ कोई साधु पुरुष, अब पंचमकालमें तो नहीं होते प्रभु लेकिन कल्पना करलो चतुर्थकालमें सही, विदेह क्षेत्रमें तो अब भी प्रभु होते रहते हैं तो कोई साधु पुरुष जो प्रभु बना वह हम आप जैसे मनुष्य ही तो थे, मनुष्य जैसा ही तो आहार उनका था, मनुष्यों जैसे ही मल-मूत्र करते, पसीना भी आता, मांस आदिक भी होते थे, ऐसे साधु पुरुष जब अपने अन्तः ज्ञानस्वरूप आत्माकी भावना करते हैं, अपने उपयोगको उस आत्मस्वरूपमें मग्न कर लेते हैं तो वह कर्मोंका विध्वंस होने लगता है। जो चार घातियाकर्म जहाँ नष्ट हुए कि वे पुरुष सर्वज्ञ केवल भगवान बन जाते हैं। सो हो तो गये वे भगवान अरहंत पर अभी वह शरीर मौजूद है। मौजूद तो है वह शरीर किन्तु पवित्र परम उत्कृष्ट शरीर हो जाता है। जहाँ कि मल-मूत्र, रुधिर, पसीना आदिक धातुयें नहीं होती, जहाँ अनेक कीटाणु रहा करते थे वे भी अब उस शरीरमें नहीं रहे। जैसे तपश्चरणके माहात्म्यसे ये बात मानी जाती हैं कि प्रभुके देहमें अब मल नहीं है, प्रभुका मुख अब चारों ओरसे दिखता है ऐसे ही यह मानलो कि उनके भुक्तिका अभाव है।

प्रभुके अन्य अतिशयकी भाँति भुक्त्यभावमें भी देहस्थितिका अतिशय—जब समवशरणमें प्रभु विराजमान होते हैं तो प्रभुकी सभा गोल लगती है चारों तरफ। जैसे आजकल वक्ताके आगे ही सभा बैठायी जाती है, पीछे लोग नहीं बैठते क्योंकि वक्ताके मुखकी ओर ही श्रोता जन बैठना पसन्द करते ताकि वचनोंके घटबढमें भी अर्थका स्पष्ट अवगम हो। इस तरह प्रभुकी सभामें सामने ही आकर बैठें सो बात नहीं उनकी सभा चारों ओरसे लगती है। बारह सभायें होती हैं। जो प्रभुके तपश्चरणका ऐसा माहात्म्य है उस प्रभुताका ऐसा अतिशय है कि चारों ओर उनका मुख दिखता है। जो पीठ पीछे बैठते हैं उन्हें भी मुख दिखता है और जो अगल बगल बैठते है उन्हें भी मुख दीखता है। किसीको भी बाधा नहीं आती। सभाके सभी श्रोता जन उपदेश सुनते हैं और भाव भरते रहते हैं और ऐसा चारों ओर मुख दिखना सम्भव भी है। जैसे स्फटिक मणिकी प्रतिमामें उनका मुख पीछेसे भी दिखता है अगल-बगलसे भी। ऐसे ही चूंकि प्रभुका देह भी स्फटिक मणिके समान स्वच्छ हो गया है, दूसरे उसमें देवकृत अतिशय हैं जिनके कारण उनका मुख चारों ओर दिखता रहता है। जैसे वहाँ तपश्चरणके प्रतापसे अनेक बातें मानी जाती हैं इसी प्रकार यह भी मानलो कि बिना भोजनके उनके शरीरकी स्थिति रहती है इसमें क्या अपराध है?

देहस्थितिके विभिन्न आधार—यहाँ पर भी देखता है कि कोई मनुष्य ४-५ बार खाकर अपने शरीरको स्थिर रख सकता है तो कोई मनुष्य १-२ बार खाकर ही अपने शरीरको ज्योंका त्यों स्थिर रखता है। और जो पुरुष अपने चित्तमें यह कल्पना कर लेते हैं कि बिना चार-पाँच बारके खाये शरीर टिका नहीं रह सकता तो उनका शरीर एक बार खानेपर वैसा न टिक सकेगा क्योंकि उन्होंने अपने चित्तमें

दुर्बलता पहिलेसे ही बसा ली। और, जिसने अपने मनमे यह बात बसा ली कि अरे ४–५ बार खानेसे क्या प्रयोजन ! एक बार ही खानेमे शरीर ज्योका त्यो बना रहता है, तो ऐसा सोचने वाला व्यक्ति चूकि पहिलेसे ही अपने दिलको मजबूत बना लेता है इसलिए एक बार खानेपर ही वह ज्योका त्यो हृष्ट-पुष्ट बना रहता है। अभी दस-लक्षणी वगैरह पर्वके दिनोमे बहुतसे लोग एकाशन किया करते हैं तो चूकि वे पहिले से ही एकाशन करनेकी बात मनमे ठान लेते हैं इसलिए उन ८–१० दिनोमे एकाशन करते रहनेपर भी उनका शरीर ज्योका त्यो बना रहता है, पर ज्यो ही दशलाक्षणीका पर्व व्यतीत होता है त्यो ही वे अपने मनको ऐसा ढीला बना लेते हैं कि बिना ४–५ बार खाये रहा नही जाता है। गर्मीके दिनोमें बहुतसे लोग चूकि अपने मनको ढीला कर लेते हैं इसलिए वे बार बार बिना पानी पिये रह नही पाते। और, जिनका एक बार अन्न-जल ग्रहण करनेका नियम है उन्हे उन गर्मीके दिनोमे भी कुछ परेशानी नही होती। हाँ कभी थोडी वेदना हो सकती है, पर थोडी ही देरमे वह वेदना शात हो जाती है। तो इस त्यागका आत्मबलके साथ भी सम्बन्ध है। देखो बाहुबलि स्वामी १ वर्ष तक खडे रहकर तपस्या करते रहे, अन्न जल कुछ भी नही ग्रहण किया, फिर भी उनके शरीरकी स्थिति विशिष्ट बनी रही। तब शरीरकी स्थितिमे आयु-कर्म प्रधान निमित्त है और भोजन आदिक तो सहायक मात्र हैं। शरीरका स्थित रहना भिन्न भिन्न योग्यताओपर आधारित है। भगवानका शरीर स्थित रहता है और पुष्ट बना रहता है उसका कारण है कि चारघातिया कर्मोमे जो अन्तराय कर्म है वह उनके नही रहा, उनके पवित्र शरीरमे पवित्र परमाणु आते–जाते रहते हैं जिसके कारण भगवानके शरीरकी स्थिति बनी रहती है।

केवलज्ञान होनेपर देहकी दर्शनीयताका नियत अतिशय—कोई साधु यदि वृद्ध है दुबला-पतला है, हड्डियाँ निकली है, विरूप हो रहा है और उस साधुको निर्विकल्प समाधिके बलसे हो जाय केवल ज्ञान, भगवान बन जाय तो फिर वैसा शरीर न रहेगा जैसा कि साधु अवस्थामे था। केवलज्ञान होनेके बाद ही प्रभुका शरीर सुन्दर हृष्ट पुष्ट, युवावस्थासम्पन्न दर्शनीय हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो उसे देखकर लोग कहे कि वह देखो बूढे भगवान बैठे हैं, वह देखो विरूप भगवान बैठे हैं ! यो फिर उस भगवानके प्रति भक्तिका प्रवाह नही रह सकता। तो प्रभु होनेके बाद वह शरीर अत्यन्त पवित्र हो जाता है। तो अपनी अल्पज्ञ अवस्थासे प्रभुके कैवल्य की अवस्था से तुलना करके यदि प्रभुका भोजन मानते तो और भी बातें मानो। प्रभु के अब पलक भी नही गिरते, यत्र तत्र देखते भी नही, प्रभु वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, उत्कृष्ट शरीरमे हैं, उनके ये भोजन आदिकके नटखट और पसीना आदिक, नख केशका बढना आदिक ये सब चीजें अब प्रभुके उस शरीरमे नही रहते हैं। उनके आयुकर्मका अभी सद्भाव है इसलिये देहमे विराजे हैं। जब मनुष्य-आयु पूर्ण हो जायगी तो देहको छोडकर सिद्ध बनेंगे। यो देव दो प्रकारके हैं अरहत और सिद्ध अर्थात् सदेह परमात्मा

और अदेह परमात्मा। जब तक किसी साधुके केवलज्ञान होनेके बाद शरीर बना रहता है तब तक है शरीर सहित परमात्मा और आयुकर्म पूरा होनेके बाद जब समस्त कर्म दूर हो जाते हैं, देहरहित हो जाता है ऐसे परमात्माको कहते हैं सिद्ध भगवान। इस तरह दो तो देव हैं। णमोकार मन्त्रमें जो ५ पद बताये हैं उनमेंसे देव और गुरु ये दो बताये हैं। अरहंत और सिद्ध तो हैं देव और आचार्य उपाध्याय तथा साधु ये गुरु हैं।

प्रभुदेहस्थितिकी अल्पज्ञजनदेहस्थितिमे तुलनाका व्यामोह—शङ्काकार कहता है कि शरीरकी स्थिति भोजनके अभावमें कुछ माह तक रह जायगी या एक वर्ष तक रह जायगी पर सदाकाल तो नहीं रह सकती अर्थात् मरण पर्यन्त बहुत समय शेष हो तो स्थिति तो नहीं रह सकती। और जिन साधु संतोंने एक वर्ष तकके भी उपवास किये हों यदि वे और जीवित रहते हैं तो आखिर उन्हें भी तो बादमें भोजन करनेकी प्रवृत्ति करनी पडती है। अब इस शङ्काके समाधानमें पूछते हैं कि यह बात कैसे समझी जाय? मरणपर्यन्त कवलाहार बिना देहकी स्थिति नहीं पायी जाती, इस कारण यह बात मानी जाय तो इस ही हेतुसे सर्वज्ञ वीतरागकी भी असिद्धि होगी। तो चाहा यह था कि सर्वज्ञकी सिद्धि हो और कवलाहारकी सिद्धि हो, पर सर्वज्ञका सिद्ध करना मुश्किल हो गया। यदि कहो कि सर्वज्ञ तो है क्योंकि सर्वज्ञताके ढाकने वाले रागादिक दोष हैं, ज्ञानावरण आदिक कर्म हैं तो उनमे हानिका अतिशय पाया जा रहा है कि किसीमे तो दोषावरणकी हानि कम है किसीमें और भी कम है और किसीमे बहुत ही कम है। तो इनसे सिद्ध है कि किसी आत्मामें दोष और आवरण बिल्कुल भी नहीं है। इससे सिद्ध है कि वे भगवान होगये जीवन्मुक्त होगए, उनको किसी भी प्रकारकी इच्छा या वेदना नहीं होती है। वे तो अनन्त आनन्दमय हैं अतः प्रभुके देहकी तुलना हम आप अपने शरीरसे नहीं कर सकते।

वेदनीयोदयसे प्रभुके कवलाहारकी सिद्धिकी अशक्यता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि वेदनीय कर्मके सद्भावसे तो भगवानके भोजनकी सिद्धि होती है। कर्म होते हैं ८ प्रकारके जिनमें अघातिया कर्मोंमें एक है वेदनीय कर्म। वेदनीय कर्मके उदयसे क्षुधा तृषा आदिकको अनेक बाधायें होती हैं। प्रभुमें तो चार घातियाकर्मोंका नाश हो गया है ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय आदिकका, किन्तु अभी ४ अघातिया कर्म तो हैं, वेदनीय कर्म भी हैं। वेदनीय कर्मके उदयसे साता भी होता है और असाता भी होता है। जब वेदनीयके ये साता और असाता दोनों उदय सम्भव हैं सकल परमात्माके तो वहाँ क्षुधावेदना भी है, उसका प्रतिकार है कवलाहार। तो कवलाहारकी प्रकृति उस परमात्माके होती है। अनुमान बना लीजिये कि भगवानमें वेदनीय कर्म अपना फल देने वाले होते हैं। कर्म होनेसे आयुकर्मका उदय है तो शरीरमें स्थित बने रहते हैं। आयुकर्म अपना फल दे रहा है ना, इसी प्रकार वेदनीय कर्म भी मौजूद है तो वह भी अपना फल देगा। समाधानमें

कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं इस अनुमानमे यदि तुम फल मात्र सिद्ध कर रहे हो तो ठीक है, होजाय सिद्ध, पर भोजनरूप फल सिद्ध करते हो तो यह सम्भव नहीं। अब जो अघातिया कर्म शेष रह गये हैं वे इच्छासे सम्बन्ध रखकर जितना फल देने वाले हैं वे फल न देंगे और इच्छाके बिना जो फल हुआ करते हैं वे फल हो जायेंगे। सो वेदनीय कर्म इच्छाके बिना फल देनेमें समर्थ नहीं है। जैसे नामकर्मका उदय है, जिससे शरीरकी वर्गणायें बन रही हैं तो ये इच्छाके बिना सम्भव हैं। आयुकर्म इच्छाके बिना सम्भव है, पर भोजन पान करना आदिक तो इच्छाके बिना सम्भव नहीं है। इस कारण मोहनीयका अभाव होनेसे प्रभुको भूख प्यासकी वेदना व भुक्ति नहीं होती।

प्रभुके क्षुधानिमित्तक वेदनीयके उदयकी असिद्धि—यदि यह कहो कि क्षुधा वेदनाका कारणभूत वेदनीयका सद्भाव है इसलिए कवलाहार सिद्ध है तो यह पूछा जा रहा है कि क्षुधा आदिक वेदनाका कारणभूत वेदनीयका सद्भाव कैसे जाना है? यदि यह कहो कि भूख प्यास देखे जाते हैं इससे सिद्ध है कि भूख प्यासकी वेदना का सद्भाव है तो इसमे अन्योन्याश्रित दोष हो गया। अगर भूख सिद्ध हो तो क्षुधाका निमित्तभूत वेदनीयका उदय सिद्ध हो और जब भगवानमें क्षुधानिमित्तक वेदनीय कर्मका सद्भाव सिद्ध हो तो क्षुधाफलकी सिद्धि हो और क्षुधाफलकी सिद्धि हो तो क्षुधात्मक वेदनीय कर्मकी सिद्धि हो। प्रभुमे शरीरबाधा निमित्तिक वेदनीयका उदय नहीं है उनमें अब अनन्त आनन्द प्रकट हुआ है उनमे अब किसीभी प्रकारकी बाधा सम्भव नहीं है। यदि कहो कि असाता वेदनीयका उदय है इसलिए कवलाहार सिद्ध हो जायगा, असिद्ध नहीं। यह बात यों युक्त नहीं है कि जो वेदनीय कर्म रह गया है उसमे अब उतनी सामर्थ्य नहीं है।

मोहनीयके उदय बिना वेदनीयमे फलदानसामर्थ्यका अभाव – अष्टकर्मों के वशमें यह जीव पराधीन होता है ज्ञानावरणके उदयसे जीवका ज्ञान प्रकट नहीं हो पाता है जब ज्ञानावरणका क्षय हो जाता है तब केवलज्ञान प्रकट होता है जिससे समस्त लोकालोकका ज्ञान हो जाता है। यह प्रभुकी बात कही जा रही है। प्रभुके ज्ञानावरण कर्म नहीं है। दर्शनावरण कर्मके उदयसे आत्माका दर्शन गुण प्रकट नहीं होता। अब प्रभुमें दर्शनावरणका क्षय हो गया है तो समस्त लोकालोकके पदार्थोंका जो ज्ञान हो रहा है ऐसा ज्ञान करते हुए आत्माका दर्शन हो रहा जिससे दोनो बातें कह लीजिए कि समस्त लोकालोकका दर्शन हो रहा है और स्वका भी दर्शन हो रहा है। प्रभुमें मोहनीयकर्मका अभाव हो गया इसलिए उनमें ममता मिथ्यात्व क्रोध मान लोभ आदि नहीं रहे वे वीतराग हो गये। अन्तरायकर्मका क्षय हो गया, वे अनन्त शक्तिमान नष्ट [illegible] हो गया उनके आत्मामें जो अनन्तगुण प्रकट हुए हैं वे सब सदा प्रकट रहेंगे, उनमें रंच कभी कमी न हो सकेगी। यों तो प्रभु अनन्त चतुष्टयमय हैं, किन्तु

उनमे अभी ४ अघातिया कर्म मौजूद हैं वेदनीय, आ , नाम और गोत्र । तो गोत्रकर्मके उदयसे ये संसारी जीव प्राय ऊचनीच कुलमे रहते हैं, पर ये भगवान तो उच्चकुलमें ही रहते हैं गोत्रकर्मका फल अरहत भगवानके चल रहा है। नामकर्मका फल भी चल रहा है क्योंकि शरीरकी स्थिति है । अगोपांग आकार आदिक सब चल रहे हैं आयुकर्म आदिक का भी फल चल रहा है जिससे कि वे मनुष्यभवमें बराबर बने हुए हैं और वेदनीय का फल नहीं चल रहा है । उदयमे तो आ रहे हैं पर वे निष्फल होकर खिर जाते हैं । यह अतिशय प्रभुमे प्रकट हुआ है । इससे अघातिया कर्मोंका विपाक चल रहा है पर वेदनीय फल देनेमे सकर्य इस कारण नहीं है कि वेदनीयमें फल देनेकी शक्ति मोहनीयके बलपर ही हो पाती है । अगर मोह हो इष्ट अनिष्टकी बुद्धि हो तो वह वेदनीय अपना फल दे, तो मोहनीयके न होनेसे वेदनीय अपना फल देनेमे असमर्थ रहता है । तो वेदनीय समर्थ नहीं रहता है इसलिए असाता वेदनीय अपना कार्य नहीं कर सकता

दृष्टान्तपूर्वक विकलसामर्थ्य वेदनीयमे बाधा न दे सकनेकी सिद्धि— जिसमे सामर्थ्य पूर्ण हो ऐसा हो असाता वेदनीय अपना कार्य कर सकता है । और यहा प्रभुमे जो वेदनीयकर्म मौजूद है उसकी सामर्थ्य नहीं रही क्योंकि मोहनीय कर्मका नाश हो गया । जैसे दृष्टान्त ले लीजिए कोई सेना यदि कही लड रही है और उस लडाईमें सेनानायक मारा गया तो फिर सैनिकोंमें लडने की सामर्थ्य नहीं रहती है इसी प्रकार मोहनीयकर्मके नष्ट होनेपर भगवानमें अघातिजा कर्मोंका सामर्थ्य नही रहा । जो अभी ३ अघातियाकर्म फल दे रहे हैं वे भी न कुछ जैसे हो गए तो मोहनीय कर्मके नष्ट होने से कोई भी कर्म अपना फल देनेमे समर्थ न रहा । जिन कर्मोंका फल रह गया वे पुद्गल विपाकी हैं, उनका जीवमे कुछ भी भार नही होता, जैसे मत्रसे किसी विषेली चीजको निर्विष कर दिया जाय तो मत्रवादी उस मत्रके बलसे उस चीजको खा भी रहा है, पर वह मूर्छित नहीं होता विषका उसपर कुछ असर नही रहता क्योंकि उस मत्रवादीने उस विषकी सामर्थ्यको मत्रद्वारा खतम कर दिया है ठीक इसी प्रकार असाता वेदनीयका उदय चल रहा है पर मोहनीयके न होने पर उस असातामें सामर्थ्य न रहो अतएव वह असाता अपना फल देनेमें समर्थ नहीं होपाता क्योंकि कार्य तो योग्य सामग्रीसे ही होता है ।

मोह बिना वेदनीयका फल न होनेके परिज्ञानसे प्राप्तव्य शिक्षा— वेदनीयको चाहिये मोहनीयकी सहायता तब उसका कार्य हो सकता है । इससे हम भी यही शिक्षा लें कि समस्त प्रकारके दुःख सुख मोह होने न होनेपर निर्भर हैं । जिसे जितना अधिक मोह है उसे उतना ही अधिक दु ख है । चाहे कोई बडा धनिक बन जाय विद्वान बन जाय, नेता बन जाय, बडा यशस्वी भी हो जाय पर यदि उसमें मोह है तो उसके फलमें उसे सर्वत्र दु ख ही दु ख प्राप्त होता रहेगा । मोह ज्यो ज्यो क्षीण होता जायगा त्यो त्यो दु खकी मात्रामे कमी आती जायगी । यहा इष्टवियोग प्राय: सभीको

होता है क्योंकि मोहकी गदगी सभीमे कुछ न कुछ लगी है, पर जरा सोचो तो सही कि जिन जिनका भी सयोग हुआ है उनका यदि वियोग नहीं होगा तो फिर वे सभी जीव इस धरती पर समायेंगे कैसे ? तो वियोग विछोह तो सभीका होना ही है। अब जिसके जितना अधिक मोह होगा उसे उतना ही अधिक दु खी होना पडेगा। कही ऐसा नही है कि पुत्र मरे तो इतना दु ख होगा और स्त्री मरे तो इतना दु ख होगा। अरे जिससे भी अधिक मोह होगा उसीके वियोगमे अधिक दु ख प्राप्त होगा, और जिससे मोहकी मात्रामें कमी होगी उसमे दु खकी भी मात्रामे कमी रहेगी। इन बाहरी चीजो के सयोग वियोगसे दु खका कोई माप नही है। यदि हम शान्त और सुखी रहना चाहते हैं तो हमे अपने जीवनमे विशुद्ध ज्ञानके धर्मके अर्जन का प्रयास करना चाहिये।

आत्महितकी वर्तमान स्ववशता ज्ञानार्जनका सुख शान्तिका मार्ग अपने वश का है पर जिन जिन कार्योंमे इतने क्षोभ मचाये जारहे हैं वे कार्य अपने वशके नही हैं। आज सभी लोग धनवैभवके पीछे बडी होड मचा रहे हैं पर इस धनवैभवका आना क्या अपने वशकी बात हैं और आज जिनके पास जो धन है वह उनके पिछले भवोमे किए गये शुभ कर्मोंका फल है आजके पुरुषार्थकी बात नही है। इसी प्रकार अनुकूल परिजनोंका मिलना भी आपके पुरुषार्थकी बात नही है यह तो आपकी पूर्वकृत करनीका परिणाम है। यह बात सम्भव है कि यदि आप सम्पदाके पीछे दौड लगाये तो सम्पदा आपसे दूर होती जाय और यदि सम्पदासे आप उपेक्षाका भाव रखें, उससे मूर्छाका परिणाम न रखें तो कहो सम्पदा आपके निकट आती जाय। तो किसीभी चीजके अनुरागमे आशक्तिमें मोहमे लाभ नही है बल्कि उनसे विरक्त रहनेमें लाभ है। जो सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती हुए हैं, जिनमे भरतका नाम मुख्यरूपसे लिया जाता है वे बहुत बडी सम्पत्तिके बीच रहकर भी पूर्ण विरक्त थे। तो रुचि होना चाहिये अपने स्वरूपके समझनेके लिए अपने ज्ञानके अर्जनके लिए बाहरी चीजोके पीछे दौड लगानेसे तो कुछ भी लाभ न प्राप्त होगा।

नियमितता और सतुष्टिसे जीवनमे शान्ति – अभी ही निकटकालमे अनेक लोग ऐसे हो चुके हैं जिसका यह नियम था कि हम प्रतिदिन इतनेका ही सामान बेचकर, इतना ही लाभ लेकर, इतना ही खर्च करके अपना गुजारा चलाऊगा। अपने जीवनका अधिकसे अधिक समय धर्मध्यानमें बिताऊगा। आज तो खैर जमाना ही बदल गया। महगाईका जमाना है, लोगोंका इस तरहका काम करना जरा मुश्किलसा हो गया है, लेकिन कभी ऐसा जमाना था जब कि एक रुपयेका १ मन गेहू मिलता था, एक रुपयेका ४ सेर घी मिलता था। ऐसे सस्ते जमानेकी बात है कि आगरामे पण्डित बनारसीदास जी थे, उनका यह नियम था कि मैं प्रतिदिन १) का ही मुनाफा करके दुकान बन्द कर दूगा। जैसे १६ पगडी बेचूगा, प्रतिपगडी १ आना लाभ लूगा। यो १) प्रतिदिन कमाऊगा और फिर दुकान बन्द करके तीसरे पहर

विज्ञान किया समस्त परकी उपेक्षा की, अपने विशुद्ध ज्ञानप्रकाशको प्रकट किया, उत्कृष्ट पद प्राप्त किया। तो उन अरहंत भगवानने समस्त पर पदार्थोंकी पूर्ण उपेक्षा किया तभी तो ऐसा समवशरण मिलता है कि बडे मूल्यवान रत्न हीरा जवाहिरात आदिकसे सजे सजाये बडी बडी शोभाओसे परिपूर्ण समवशरणके बीचमे वे भगवान विराजे हैं गंधकुटीपर कमलपर लेकिन वे उससे ४ अंगुल ऊंचे विराजे हैं। इस लक्ष्मी का मन नही भरा। इस लक्ष्मीने बहुत चाहा कि मैं भगवानका स्पर्श करके अपनेको सुभग बनाऊँ पर हुआ क्या कि ज्यो ज्यो यह लक्ष्मी भगवानके निकट आती गई त्यो त्यो भगवान अन्तरीक्ष होते गये। तब लक्ष्मीने क्या किया कि जब नीचेसे भगवानका स्पर्श न पाया तो ऊपरसे गिरना शुरु किया। सोचा कि अब तो मैं छू ही लूंगी भगवानको। तो तीन छत्रोके रूपमे वह लक्ष्मी ऊपरसे गिरकर भगवानको छूना चाहती है फिर भी भगवानको छू न सकी।

आत्मजागृतके ज्ञानजागृतिमे अन्यकी अबाधकता— भैया! सब बातें ज्ञानपर निर्भर हैं। बच्चेको गोदमे लेकर खिलाते हुए भी यह ज्ञान जगे कि यह भी कोई एक जीव है, कर्मशरीर और जीवका पिण्ड है, मुझसे भिन्न है, जैसे जगतके और सब जीव हैं वैसा ही यह भी है, मैं इससे निराला था निराला हूँ और निराला ही रहूँगा। ऐसा ज्ञान कोई जगाये तो कोई दूसरा इसमे बाधा डालता है क्या ? अरे बच्चेको गोदमे खिलाता हुआ भी उससे विरक्त रहा जा सकता है। बहुतसे लोग तो ऐसे होते हैं कि परदेशमे पडे है पर अपने स्त्री पुत्रोका ध्यान बना रहता है— अरे न जाने उनका क्या हाल होगा ? न जाने वे क्या कर रहे होगे ? आदि। तो सब जीव हैं सभीसे अत्यन्त भिन्न, पर उनमे राग आसक्ति मोह बराबर बनाये रहते हैं। तो मैं भविष्यमे किस तरहसे रहूँ शान्त या अशान्त यह सब अपने ज्ञान और अज्ञानपर निर्भर है। यदि हमारा ध्यान, हमारा उपयोग निर्विकार आत्मस्वरूपकी ओर लग रहा है, उसका दर्शन अनेक बार होता है, उसकी धुनि बनी है तो हमे समझना चाहिये कि हम बहुत सुभवितव्य वाले हैं और यदि बाह्यमे राग ही चल रहा है तो समझो कि इसके फलमे हमे विडम्बनायें और विपत्तियाँ ही प्राप्त होगी।

स्वप्नवत् मायाकी असारता— किसीको जब स्वप्न आता है, स्वप्नमे वह बडे बडे वैभवके बीच भी अपनेको रहता हुआ देखता है तो जब तक वह स्वप्न देखता है, जब तक उसे सारी बातें सत्य प्रतीत होती रहती हैं। मैं ऐसे वैभव वाला हूँ, मेरी इतनी इज्जत है आदिक सभी बाते उसे सत्य दिखती हैं। कोई स्वप्नमे ही यदि सम्मान कर रहा है तो स्वप्न देखने वाला खुश होता है और यदि कोई अपमान करता है तो वह दुखी होता है। ये सारी बातें स्वप्नमे बिल्कुल सही दिखती हैं। पर क्या वह कुछ सही है ? अरे वह सब झूठ है। तो वह तो केवल दो चार दस मिनटका स्वप्न हैं जिसमे सब बातें सही प्रतीत होती हैं, यहा यह १०—२०—५० वर्षके जीवनका जो मोह

की नींदका स्वप्न है वह भी बिल्कुल सच दीखता है—यही तो मेरा वैभव है, यही तो मेरा वैभव है, यही तो मेरे परिजन हैं, यही तो मेरा सब कुछ है आदि। पर ये सब बातें क्या वास्तवमें सच हैं? अरे! ये सब बातें झूठ हैं। क्योंकि जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला जब जगता है तो उसे वहाँ स्वप्नमें दिखने वाली कोई भी चीज वहाँ नहीं दिखती तो समझ जाता है कि, अरे वह सब झूठ था, इसी प्रकार मोह निद्राके नष्ट होनेपर, अर्थात् ज्ञान नेत्रके खुलनेपर यहाँकी मोहकी निद्रामें दिखने वाली बातें बिल्कुल झूठ, प्रतीत होने लगती हैं।

ज्ञानचक्षुके उन्मीलनका महत्त्व—ये सब बातें अपने ज्ञानपर निर्भर हैं। केवल वचन बोलनेसे ज्ञानकी आँख नहीं खुलती वचन तो जैसे चाहे बोल दिए जा सकते हैं, वचन तो भले सामान्य पुरुष भी बकबका लेता है पर जब तक अपने सहज ज्ञान स्वरूपका अनुभव नहीं जगता तब तक ज्ञानचक्षु नहीं खुलते। जब इस प्रकारका ज्ञान-चक्षु खुल जाता है तो फिर मोह निद्रामें दिखायी देने वाले स्वप्न सब झूठे प्रतीत होने लगते हैं। अरे जिसे मैं अपना समझ रहा था, जिनके पीछे मैं बड़े बड़े पापकार्य भी किया करता था वे तो मेरे कुछ भी नहीं हैं। मैं व्यर्थ ही उन्हें अपना समझकर उनके पीछे हो रहा था। तो उस ज्ञान तत्त्वके जगनेपर वे सारी बातें स्वप्नवत् झूठ प्रतीत होने लगती हैं। ऐसा अपना तत्त्वज्ञान बना रहे तो इसमें कोई कष्टकी बात नहीं है। अरे मानो कुछ धन घट गया किसी इष्टका वियोग हो गया, किसीने कहना न माना, तो इसमें कौनसे कष्टकी बात है। अरे उसे समझलो कि वह तो परमें परकी ही परकी जैसी परिणति हुई। मैं तो इन सबसे निराला ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूँ। बस इतनी जानकारी बना लेना, इसी सत्य बातको मानकर रह जाना यही समस्त प्रकारके कष्टोंके मेटनेका एकमात्र उपाय है। तो उन प्रभुने भी अपने दुःखोंको मेटनेके लिए इसी प्रकारका यथार्थ ज्ञान बनाया था बस उसी सत्य बातको मानकर उसी रूपमें अटलरूपसे रह गये ये जिन प्रभुकी उपासना में बड़े बड़े योगीन्द्र रहा करते हैं।

शुक्लध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका विनाश होनेके कारण वेदनीयकी सामर्थ्यहीनता—समस्त क्लेशोंसे रहित अपने आपके आत्माके स्वभावका उपयोग रख कर जिसने स्वभावका विकास कर लिया है ऐसा सकलपरमात्मा प्रभुके किसी भी प्रकारकी वेदना नहीं होती। उनमें यद्यपि चार अघातियाकर्म शेष रह गये वेदनीय आयु नाम और गोत्र। उनमें चूंकि वेदनीय कर्म जीवविपाकी है इस कारण उसका सम्बंध मोहनीयकर्मसे है। यदि मोहनीयकर्मका उदय है तो वेदनीय अपना फल दे सकता है, पर भगवानके मोहनीयकर्मका अभाव हो चुका, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें उन्होंने शुक्लध्यानरूपी प्रचण्ड अग्निके बलसे घातियाकर्मोंको जला डाला।

आर्तध्यानका अप्रमत्त साधुवोंमें भी अभाव—ध्यान १६ प्रकारके होते हैं ४ आर्तध्यान ४ रौद्रध्यान ४ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान। चार आर्तध्यानोंमें एक है

इष्टवियोगज–किसी इष्टका वियोग हो जाय तो उसके मेल मिलाय बचनव्यवहार आदिके लिए जो चिन्तन चलता है उसे इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं यह दुःखमयी ध्यान है। दूसरा है 'अनिष्टसयोगज किसी भी अनिष्ट पदार्थका सयोग हो जाय तो उसे हटानेके लिए जो ध्यान बनता है उसे अनिष्ट सयोगज आर्तध्यान कहते हैं।' यह भी दुःखमयी ध्यान है। तीसरा है वेदनाप्रभव शरीरमें कोई वेदना जगे, उसमें दुःख माने, उसके सम्बन्धमे कल्पनायें करे कि न जाने इस वेदनासे मेरा क्या हाल होगा। ऐसा चिन्तन करना सो वेदनाप्रभवध्यान है। यह भी दुःखमयी ध्यान है। चौथा है—निदान, निदान का अर्थ है आशायें रखना। इस भवमे मुझे यों मिले यों मिले और परभवमे मुझे यो मिले यो मिले आदि चिन्तन करना सो निदान नामक आर्तध्यान है। ये चार तो दुःखमयी ध्यान हैं। ये तो अप्रमत्त साधुओंके भी नहीं होते।

रौद्रध्यानका प्रमत्तविरत साधुवोमे भी अभाव—अब रौद्रध्यान की बात सुनो रौद्रध्यान भी ४ प्रकारके हैं–हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और विषयसरक्षणानन्द। हिंसानन्द–हिंसामे आनन्द माने हिंसा करने वालेकी प्रशंसा करे, उसे देखकर खुश हो तो यह हिंसानन्द रौद्रध्यान है। मृषानन्द झूठ बोलनेमे व किसी को धोखा देने आदिमे आनन्द मानना सो मृषानन्द नामक रौद्रध्यान है। चौर्यानन्द—किसीकी चीज को चुरानेमे व किसीकी चोरीकी जानकारी होने आदिपर खुश होनेमे जो भी ध्यान बनता है वह चौर्यानन्द नामक रौद्रध्यान है। विषयसंरक्षणानन्द विषयोंके साधनोंको पाकर उनमें मौज मानने सम्बन्धी जो ध्यान बनते हैं वे विषयसंरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यान हैं, अब अपनी यह परीक्षा कर लेना चाहिये कि हम दुःख देने वाले ध्यानोमें कितना रहते हैं, और इस रौद्रध्यानमे कितना रहते है और धर्मध्यानमे कितना रहते हैं विषयसरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यानका बहुत बड़ा विस्तार है। परिग्रहमें लालसा रखना, धन जोड़नेकी इच्छा रखना, धन देखकर खुश होना, बैलेन्स देखकर खुश होना, माल देखकर खुश होना, स्पर्शन इन्द्रियके साधनोको देखकर खुश होना, अनेक प्रकार के रसीले स्वादिष्ट भोजन आदिक को पाकर खुश होना, आदिक ये सब विषयसंरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यान हैं। रौद्रध्यान तो प्रमत्तविरत साधुके भी नही होते। अब हम आप सभी लोग इस बातपर विचार करे कि हमारा २४ घंटेमे कितना समय इन आर्त और रौद्रध्यानोमें व्यतीत होता हैं। विचार करनेपर, यही पायेंगे कि थोड़े से धर्मध्यान के अतिरिक्त हमारा सारा समय आर्तध्यान और रौद्रध्यानमे व्यतीत होता है।

आज्ञाविचय, अपायविचय व विपाकविचय धर्मध्यान—अब धर्मध्यान की बात देखिये। धर्मध्यान भी चार तरहके हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और सस्थानविचय। आज्ञाविचय—भगवानकी आज्ञाको प्रधानता देते हुए, उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए जो भी ध्यान बनते हैं वे आज्ञाविचयनामक धर्मध्यान हैं। अपायविचय– मेरे ये रागद्वेष मोहादिक कैसे दूर हों मेरेमे जो ये गदगियां भर गई

हैं उनको किस प्रकारसे दूर करें, इस प्रकारका जो उपाय चिन्तन किया जाता है उसे उपायविचय या अपायविचयनामक धर्मध्यान कहते हैं। विपाकविचय —कर्मोंके फलके सम्बन्धमे विचारना— ये कर्म कैसे फल देते हैं इस जीवको कर्मके फल देखो —बड़े बड़े पुरुष जैसे श्री रामचन्द्रजी भगवान, जो कि मांगीतुङ्गी पर्वतसे निर्वाण पधारे हैं, उनका कितने कितने प्रकारके सकट सहने पड़े। बड़ा आदमी कहते किसे हैं ? जो बड़े बड़े सकटोंके बीचसे गुजरे, फिर भी धीर रहे बस यही बड़े पुरुषका लक्षण है। बड़े पुराणोंको भी आप देख डालिये, उनमे भी करीब करीब यही बात मिलेगी। जो भी लोग महापुरुष माने गये वे प्रायः इसी बातपर माने गये।

कर्मविपाकका एक उदाहरणमे चिन्तन —श्रीराम भगवानका जीवनचरित्र देखिये ! छुटपनमे ही अपने माँ-बापसे बिछुडकर धर्मात्मा राजा जनकके राज्यमे साधर्मियोपर उपद्रव करने वाले म्लेच्छ राजाओसे युद्ध करनेमे रहे उस समयके कष्ट देखिये ! सीतास्वयम्बरके समयके कष्ट देखिये ! राज्याभिषेक होनेका था पर क्यासे क्या घटना घट जाती है, रामचन्द्रजीको जङ्गल जाना पड़ता है उस समयके सकट देखिये ! यद्यपि कैकेईने रामचन्द्रजीको जङ्गल नही भेजा था, उसने तो जब यह बात देखी कि राजा दशरथ भी विरक्त हो रहे हैं, हमारा पुत्र भरत भी विरक्त हो रहा है, तो अपने पुत्रको विरक्त न होने देने अर्थात अपने पास घर पर ही रखनेके विचारसे अपने पूर्वमे पाये गये वरदानको जो कि अभी राजा दशरथके वचन भण्डारमे रखा था माँग लिया। उस वचनमे कैकेईने अपने पुत्र भरतको राजगद्दी मागा था। बस वचनके माँगनेका उद्देश्य उस समय इतना यही था कि पति दशरथ तो विरक्त होते हैं वे मानेगे ही नही पर मेरा पुत्र भरत तो न विरक्त हो यदि मेरा पुत्र भरत घरपर ही रहेगा तो मैं पुत्र विहीन तो न कहलाऊँगी। केवल यह भाव था कैकेईका भरतको राजगद्दीका वर दान माँगनेका लेकिन रामचन्द्रजीने यह विचारकर जगल जाना चाहा था कि लोगो की दृष्टि हमारे ऊपर है हमारे रहते हुये हमारे भाई भरतका कुछ भी प्रताप न रहेगा तो यही सोचकर वह जगल चले गये थे। तो रामचन्द्रजीके उस समयके सकट देखिये, बादमे जब जगलमे रहे रामचन्द्र जी, तो सीताहरण आदिकके सकट देखिये, रावणसे सीताको जीतनेमे युद्ध करना पड़ा उसका सकट देखिये। खैर किसी तरहसे सीताको लेकर अयोध्या पहुँचे तो कुछ वर्ष व्यतीत होनेके बाद वहाँ फिर एक सकट सामने आ गया धोबिनकी स्त्री ने कह दिया था कि यदि मे दूसरेके घर रही तो क्या हुआ, माताजी भी तो ३ माह तक रावणके घर रही, लो फिर सीताजीको जगलमे छोड़ा, उस समय के सकट देखिये, सीताजीके उस समय गर्भ था। लवकुश नामके दो पुत्र हुए फिर कुछ वर्षो बाद मेलमिलापके प्रसगमे लवकुशको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीसे युद्ध करना पड़ा उस समयके सकट देखिये सीताजीका अग्नि परीक्षाके समयके सकट देखिये, देवोंने जब राम लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षाके लिए एक ढोंग रचा था महिलाये रोती हुई दिखाई, हाय राम हाय रामका शब्द बोलती रही व लक्ष्मणसे कहा दिया था कि रामचन्द्र तो

मर गए सो उनके वियोगने लक्ष्मण मरगये। श्रीराम मरे नहीं थे बल्कि देवोंने वैसा ही ढोंग रच डाला था। आखिर लक्ष्मणको मरा हुआ जानकर रामचन्द्रजी किस तरह से व्याकुल रहे उस समयके संकट देखिये। तो यद्यपि इतने प्रकारके संकट उनके ऊपर आये। तो ये सारे संकट उनपर कब तक आते रहे जब तक उन्होंने सरल परिग्रहोंका त्याग नहीं किया। जब वह निर्ग्रन्थ साधु हुए उस समय भी सीताका जीव जो कि १६ वें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ था वह स्वयं रामको डिगानेके लिए आया था। सीताके उस जीवने अपना सुन्दर स्त्रीका रूप बनाया, बड़े हाव भाव दिखाये रावण सिरके केश पकड़कर सीताको घसीट रहा है, दृश्य दिखाये। पर रामचन्द्रजी तो उस समय पूर्ण विरक्त थे इस कारण उनका मन रंच भी न डिगा सीताका जीव इसलिए उन्हें डिगाने आया था कि यह अभी कुछ समय तक संसारमें ही बने रहें और बादमें हम दोनों एक साथ मोक्ष जायें।

विपाकविचय धर्मध्यानसे आत्मशिक्षा — तो मूलमें यह बात चल रही थी कि ये कर्म जीवको किस किस प्रकारसे फल दिया करते हैं। तो कर्मोंके फलका इस प्रकारका चिन्तन करना सो विपाक विचयनामक धर्मध्यान है बहुत से लोग छिपकर पाप करते हैं। ठीक है कुछ पुण्यका उदय है इसकारण वे पाप यहां छिप भी सकते हैं, जैसा का तैसा पुण्योदय बराबर कुछ ही काल बना रह सकता है पर वे पापकर्म अपना फल अवश्य देकर रहते हैं। इस प्रकारका चिन्तन करना सो विपाकविचय नामक धर्म ध्यान है। इस प्रकारका चिन्तवन करके अपने आपको सावधान रखना चाहिये। यदि थोड़ा बहुत वैभव भी प्राप्त हो रहा है हिंसा करके अथवा अन्याय करके, तो उसे न करें। उस लाभके लोभको छोड़ दे और अपनेको एक ऐसे न्यायपूर्ण जीवनमें ढालें कि दोनों लोकमें प्रकाश और आनन्दमें रहें। यही तो इस विपाकविचय धर्मध्यान का लाभ है।

संस्थानविचय धर्मध्यान और उसका महत्त्व — संस्थानविचयधर्मध्यान — यह ऐसा ध्यान है कि जिसमें तीन लोक और तीन कालकी रचना उपयोगमें बनी रहे, इसका साधारण स्वरूप यह है कि यह ध्यान मुख्य रूपसे मुनियोंके हो पाता है। वैसे चारों धर्मध्यान अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानसे होता है, पर मुख्यरूपसे संस्थान विचय धर्मध्यान मुनि कर पाते हैं। अर्थात् ऐसा ध्यान बनाये रहना कि यह संसार बहुत विशाल है, ३४३ घनराजू प्रमाण है। मध्यलोक इतना बड़ा है कि जहां असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। ऐसी जब लोकके विस्तारकी बात चित्तमें रहती है तो वहां फिर राग करनेका अवकाश नहीं रहता। लोग कीर्तिके लिए, रागके लिए जो इतना अधिक चलते हैं उसका कारण यही है कि उनके चित्तमें इतनी भर बात बसी है कि यह हमारा नगर है यह इतना हमारे पासका क्षेत्र है और यह इतनी सारी दुनिया है, ये इतने लोग हैं इनसे ही हमारा सम्पर्क है, इनसे ही हमारा सब कुछ व्यवहार है, तो

जिनसे अपना व्यवहार चलता है उन्हीसे रागद्वेषकी बातें चलती है लेकिन जहाँ चित्त में यह बात बैठी हो कि अरे यह कितनी बडी दुनिया है, यह तो स्वयभूरमण समुद्रके पानीके सामने एक बूद बराबर भी नही है। स्वयभूरमण समुद्रकी बूदकी चाहे गिनती बन जाय, पर इतनी परिचित दुनिया इतने बडे लोकके सामने कुछ भी तो गिनती नही रखता, वहाँ यह बात चित्तमें बस जाती है कि अरे यहाँ किसलिए पाप करना, किसलिए विकल्प करना, किसलिए कीर्ति चाहना।

सस्थानविचय धर्मध्यानमे आत्मशोधन—सस्थानविचय धर्मध्यानमे यहं उपयोग रहता है कि इस ससारमे न जाने कितनी कितनी प्रकारकी पर्यायें हैं, नाना प्रकारके देह हैं, नाना प्रकारके उनके परिणमन हैं तो ऐसी बातोका ज्ञान होनेसे फिर इन पर्यायोसे सम्पर्क रखनेकी इच्छा नहीं रहती। सस्थानविचय धर्मध्यानका वास्तविक महत्त्व क्या है? जहाँ यह जाना कि समय तो अनन्तानन्त है। इस काल की न कभी आदि हुई है, न कभी अन्त होगा। यह समय तो सदा रहेगा। इतने अनन्त समयके सामने ये १००—५० वर्ष कुछ गिनती भी रखते हैं क्या? इतने छोटेसे जीवनमें यदि विषय कषायोंमें भी रमकर समयको खो दिया तो जन्म मरण करते रहनेकी परम्परा बढती चली जायगी। इसलिए यहाँ सावधान रहना और शाश्वत निज ज्ञानस्वभावकी प्रतीति रखना कि यह ही मैं हूँ, इतना ही मेरा वैभव है, यही मेरा भव है यही मेरा लोक है, इस प्रकारका उन्हे बल मिलता है इस सस्थान विचय धर्म ध्यान से। फिर उसके और भी रूप हैं पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत आदिक तो धर्मध्यानोंमें यह सस्थानविचय धर्मध्यान उत्कृष्ट है।

शुक्लध्यानका प्रभाव—अब शुक्लध्यानकी बात सुनिये-शुक्लध्यान ४ प्रकारके होते हैं जिनमे पहिला है-पृथक्त्व वितर्क वीचार यह पृथक्त्व वितर्क वीचार उच्च श्रेणी के मुनियोके होता है। सप्तम गुण स्थान तक नही होता। इसके बाद दो श्रेणिया होती हैं। उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि क्षपक श्रेणीमे कर्मोंका क्षय करके वह मुनि भगवान बनता है और जो मुनि उपशम श्रेणीमें चढता है वह ११ वें गुणस्थानसे नीचे गिर जाता है, बादमें जब कभी वह अपनेको सम्हालता है तो फिर क्षपकश्रेणीसे चढ कर वह केवली भगवान बनता है, शुक्लका अर्थ है स्वच्छ केवल एक ज्ञानका ही स्वच्छ प्रकाश चल रहा है उसमें जो कुछ भी ध्यान बने रहे हैं वे सब शुक्लध्यान है। तो इस प्रथम शुक्लध्यानमे अभी ज्ञप्तिकी स्थिरतामें कमजोरी है। यदि किसी चीजका विचार करने बैठ जायें और विचार करते करते उसी विचारपर एक दम टिक जायें ऐसा वे कभी नहीं कर पाये, कभी पुद्गलोका विचार बनता है तो कभी जीवोंका। मगर बुद्धि पूर्वक रागद्वेष नही है तो ये ध्यान बिना रागद्वेषके चलते है। फिर आगे बढ़कर दूसरा शुक्लध्यान होता है एकत्त्व वितर्क अवीचार। जिस एक वस्तुका चिन्तन कर रहे हैं। उसीका चिन्तन करते रहेंगे, जिस योगसे जिन शब्दोंसे चिन्तन कर रहे हैं उन्हींसे करेंगे

ऐसा ध्यान अन्तमुहूर्त तक ही होता रहता उसके प्रतापसे केवल ज्ञान हो जाता है।

मोहक्षयसे वेदनीयकी अफलता—यहाँ यह कह रहे हैं कि भगवानने शुक्ल ध्यानके बलसे मोहनीयका पहिले ही अभाव कर दिया है। तो मोह न रहनेपर वेदनीय कर्मका उदय अपना कार्य नहीं कर सकता। यदि मोहनीयके अभावमे वेदनीयका उदय कार्य करदे तब इसका अर्थ यह हुआ कि अरहंत भगवानके परघात नामकर्मका भी उदय चलता है। देखिये परघात किसे कहते है। जिसके उदयमे ऐसी शक्ति हो कि दूसरेका भी घात कर सके। यदि भगवानके परघातका उदय है, तो इसका अर्थ है कि भगवान किसीको मारेंगे भी ताडेंगे भी यदि कहो कि मोहनीयके अभावमे ये कुछ काम नहीं कर पाते हैं तो मोहनीयके अभावमें वेदनीय भी काम नहीं कर पाता यह भी मान लेना चाहिये। मोहनीयके अभावमें यदि वेदनीयके उदयसे दुःख होने लगे तो परघात भी १३ वें गुणस्थान तक है तो उस भगवानके द्वारा भी वेदनीयके कार्यके सिवाय परका ताडन पीडन भी होने लगे? यदि यह कहो कि भगवान तो परम दयालु है इस कारण पर घातका उदय होनेपर भी वे दूसरे से ताडते नही हैं इसी कारण वे भगवान दूसरे के द्वारा भी नहीं ताडे जाते। तो अनन्त सुख, अनन्त वीर्य होनेके कारण भगवानमे कोई क्षुधा ही नही है तो फिर वहां कवलाहारका ही क्या प्रसंग है। फिर यह क्यों नही मान लेते कि असाता वेदनीयका उदय होनेपर भी वे भगवान भोजन नही करते।

प्रभुका अन्तर्वर्तन—प्रभुका काम क्या रह गया इस पर दृष्टि दें। कोई सिद्ध आत्माका अभेद ध्यान करके अरहंत हो गये तो अरहंत अवस्थामे अब वे क्या करने सिवाय जानन और आनन्दानुभवन करनेके। अलौकिक आत्मीय आनन्द भोगना और जाननदेखन हार रहना, बस इतने ही काम उनमे पाये जाते हैं। यहाँ के लोग तो तुलनामें अनेक काम करते हुए पाये जाते हैं इधर उधर देख रहे बातें भी कर रहे काम भी कर रहे मौज भी मान रहे परिश्रममे थककर विश्राम भी कर रहे हैं, इस प्रकार यहाके ससारी जन अनेक काम करते है, पर यहाके लोगोके ज्ञान और सुख नश्वरिक हैं पर भगवानके ज्ञान और आनन्द असीम है और निरन्तर प्रतिसमय उनका यह ज्ञानानन्दका कार्य चलता रहता है लेकिन थकने का कार्य नही है। वही समस्त ज्ञान, आनन्द, निराकुलता उनके, अनन्तकाल तक चलती रहती है। भगवान न तो दयावान है और न निर्दय है न उनके शुभभाव है न अशुभभाव है। दया और निर्दयता आदिकके भाव मोहनीयक कार्य हैं। पर मोहनीयका जब अभाव हो गया तो भगवान में ये शुभ अशुभ भाव नही रहते उन्हें करुणावान, परम करुणावान कहना अयुक्त है उनकी परकी करुणा यही है कि वे अपने आप अनन्त आनन्दमे रत रहा करते हैं और उनके द्वारा ज्ञाता द्रष्टा रहा करते है इसे कहलो करुणा। और उनकी करुणा यही कि जिनका ध्यान करके सम्यग्दृष्टि योगी भव्यजन अपने दुःखको टाल लेते है। यों निमित्त दृष्टिसे करुणाको उपचार करलो पर भगवानमे न करुणाकी बात है और

य ।हसाकी वात है।

प्रभुस्वरूपके परिचयमें आत्मशिक्षण—जो स्वरूप भुक्त है उसको सुन करके हमें अपने मनमें क्या बात लेनी चाहिए ? देखिए ! विषय कषाय भोगनेमें बड़ी थकान रहती है, मनुष्य आकुलित रहता है। उस विषय कषायकी थकानको दो मिनट को भी तो दूर करें अर्थात् अन्तरङ्गमें इस प्रकारका ज्ञान जगायें कि बाहरी कोई चीज इस ज्ञानमें न रहे किसी भी चीजका विकल्प न रहे ऐसा सोचकर कि मैं अपने आप को समझूँ तो कि असलमें मैं हूँ क्या ? ये जो नाना प्रकारकी परेशानियां हो रही हैं, विकल्प चल रहे हैं, किसी एक बातपर भी नहीं टिक रहे हैं यह क्या विडम्बना है। मैं वास्तवमें हूँ क्या, किस तरहका मेरा स्वरूप है बस मुझे यही जानना है इसके ही जाननेका सत्याग्रह करने और जो अटपट विकल्प उठते हैं उनका असहयोग करें अर्थात् उनको अपने दिलमें स्थान न दें। ऐसा सत्यका आग्रह करें कि बस मुझे अब किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं करना है, मैं तो विश्राममें रहूँगा और अपने आपका ही अनुभवूँगा कि वास्तवमें मैं क्या हूँ ऐसा सकल्प करके निस्तब्ध बैठें तो विदित होगा कि वास्तवमें मैं क्या हूँ और उसके विदित हो जानेपर फिर ये अनन्त दुःख मिट जायेंगे। तो ज्ञानरूप यह मैं अपने ज्ञानमें आऊँ, उस समय जो अनुभूति होती है उसके बाद फिर ये दुनियाकी सब चीजें काष्ठ पाषाणकी तरह निश्चल दीखती हैं और इनमें रहने वाला जो जीव तत्त्व है वह भी निश्चल दीखता है। यह सब औपाधिक हो रहा है, यह सारी दुनिया मोहमें अनुरक्त है यहां कुछ भी सार नहीं है। जो सारभूत तत्त्व है जो सबमें मौजूद है उसपर दृष्टि न होनेसे ये सब भटकनायें हो रही हैं। उसे विषय कषायोंके भावमें सार प्रतीत नहीं होता। उस समयके लिए यह शंका न कर बैठें कि उनका जीवन तो फिर मौजरहित होगया और उन्हें तो आत्मीय आनन्द मिल रहा है।

लोकवैभवकी अरम्यता – आज जो आप सबको विषयोंके साधन प्राप्त हैं वे सब तो पुण्योदयसे आते हैं। इनका आना आजके भावोंके आधीन बात नहीं है। कदाचित् आपने किसी चीजकी चाह की और वह चीज आपको प्राप्त हो गई तो आप समझ लेते हैं कि यह चीज हमारे आजके ही परिणामसे प्राप्त हुई, पर ऐसी बात नहीं है, वह तो आपका उदय ठीक चल रहा है पूर्वभवमें आपने धर्मकार्य किया था, उससे जो पुण्यका बंध हुआ था उसके उदयसे आपको वह चीज प्राप्त हुई है। तो इस धन वैभवकी उपेक्षा करना चाहिए। आने दो आयगा आपके न चाहनेपर भी आयगा, रहेगा पर उस वैभवके रहनेपर अब इस सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषको क्या मौज रहा ? देखिये ! विचित्रता कि जब तक अज्ञान था, आशा करते थे तब तक तो मनमाना वैभव नहीं मिल रहा था, जब तत्त्वज्ञान हुआ, सम्यग्दृष्टि हुए किसी वस्तुकी चाह न रही तब चक्री वगैरहके उच्च पद प्राप्त हुए। सो जब चाह थी तब वस्तुकी प्राप्ति न हुई और जब चाह नहीं है तो वस्तुकी प्राप्ति हो रही है तो उस वस्तुकी प्राप्तिसे लाभ क्या ? यहांपर किसी भी वस्तुकी चाह न रहे तो इस लोकमें भी आनन्द है और

भोजन करना पड़ता है।

बलिष्ट आत्माके अशुभ प्रकृतियोकी कार्यकारिताका अनवकाश— अब यहां शंकाकार कह रहा है कि कर्मोंके उदय भी आयें और वे अपने कार्य न कर सकें तो फिर नाम आदिक भी अपना काय करने वाला नहीं रहा। अर्थात् प्रभुके देह तो है ना अभी। जब तक अरहत भगवानको सकल कर्मोंसे मुक्ति नही मिलती तब तक वे देहमे रहते है। चार अघातिया कर्म अभी शेष हैं तो वहां देह बना हुआ है, और नामकर्मके उदयसे देह रहता है तो कर्म जब वेदनीय निष्फल हो गया तो नाम कर्म आदिकका कर्म भी निष्फल हो जाय। तो समाधान देते हैं कि यह कहना असगत है। जो कर्म शेष रह गए हैं अरहत भगवानमे, उनमे कई प्रकृतिया तो शुभ हैं और कई अशुभ। तो शुभ प्रकृतियोका सामर्थ्य खतम नहीं होता। सो शुभ प्रकृतियां तो अपना कार्य कर रही हैं, अशुभ प्रकृतियां कार्य नही करती। जैसे एक दृष्टांत लो— एक बलवान राजा जो अपने न्याय नीतिके मार्गपर चल रहा है अर्थात् दुष्टोका निग्रह करना और सज्जनोंका पालन करना यह जिसने अपना न्याय बना लिया है ऐसे राजा ने अगर कोई देश प्राप्त कर लिया तो उस देशमें जो दुष्ट लोग होंगे वे जीवित रहकर भी अपना दुष्ट आचरण कर सकने वाले नहीं बन सकते, पर सज्जन लोग उनकी वृत्तिका तो प्रतिबन्ध नही। वे अपने कार्यके करने वाले होते हैं। इसी प्रकार अरहत भगवानने घातिया कर्मोंको जीता। अपने आत्मापर विजय प्राप्त की। अब जीवित याने उदित जो शुभ प्रकृतियां हैं वे अपना काय करती हैं किंतु अशुभ प्रकृतियां अपना कार्य नही करती।

अशुभ प्रकृतियोकी कार्यकारिताके अनवकाशका कारण अशुभ प्रकृतियोके अनुभाग रसकी निर्जीर्णता— शंकाकार पूछता है कि ऐसा कौनसा कारण है कि अब अरहत भगवानमे शुभ प्रकृतियोंका सामर्थ्य तो किसीसे रुद्ध नहीं होता और अशुभ प्रकृतियोकी सामर्थ्य बिगड गई अर्थात् खोटी प्रकृतिया जो भी भगवानमे शेष रह गई वे तो फल नहीं देती और शुभ प्रकृतियां अपना कार्य करती हैं। उत्तर देते हैं कि अरहत भगवानने अशुभ प्रकृतियोंकी फलदान शक्तिका घात कर दिया है। अशुभ प्रकृतियोंकी फलदान शक्तिया फिर न होगी। करणानुयोगके शास्त्रोंमें स्पष्ट वर्णन है कि जब कभी कर्म निषेकोका क्षय होता है और संक्रमण विघटन आदिक कर्मोमे चलते हैं उस समय अनुभागका क्षय होता है अशुभ प्रकृतियोंके फल देनेकी शक्तिका क्षय होता है। शुभ प्रकृतियोके फल देनेकी शक्तिका क्षय नही होता। जैसे जो गुणोंका घात करें उन्हे ही तो दण्ड मिलेगा। जो गुणोका घात नहीं करते, जिनमें कोई दोष नही होता है उनका घात नही हुआ करता है।

प्रतिबद्धसामर्थ्य वेदनीयको निष्फल न माननेपर केवलिसमुद्घातकी व्यर्थता— यदि जिसकी सामर्थ्य रोक दी गई ऐसा असाता वेदनीय भी अपना कार्य

रने लगे तो भगवानका दण्ड प्रतर आदिक जो विधान होता है वह व्यर्थ होगा, योकि जब आयु कर्मकी स्थिति थोडी रह जाती है, वेदनीय आदिक कर्मकी अधिक न्थति होती है, तो उनको आयुकर्मके समान बनानेके लिए समुद्घात होता है पर नकी स्थिति अधिक है और अनेक उपाय करनेपर भी वे अपनी सामर्थ्य नही खतम करते तो यह समुद्घात विधान क्यो होता है और फिर मोक्ष भी न हो सकेगा। समुद्घात विधानका यह अर्थ है कि जिस समय अरहत भगवानकी आयुका निकट समय आता है अन्तर्मुहुर्तकी आयु रह गई और शेष कर्मोंकी रह गई हजारो वर्षोंकी तो यह न होगा कि आयु पहले खतम हो जाय और वेदनीय आदि बादमे खतम हो। चार अघातिया कर्म एक साथ वियुक्त हुआ करते हैं। तब वहाँ जो बढी हुई स्थितिके तीन कर्म हैं उनका आयुके बराबर करनेके लिए समुद्घात होता है।

समुद्घातका विधान—समुद्घात कहते हैं उसे कि आत्मा अपने प्रदेशोसे शरीर न छोडकर बाहर फैले। आत्मा शरीर प्रमाण फैला हुआ है इसके प्रदेश उनने मे ही विस्तृत हैं। समुद्घातके समय क्या होता कि आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर भी फैलते हैं, अन्य समुद्घातोंमे भी कुछ सीमा तक यही होता है। जैसे जब कभी मनुष्यमें कषाय तेज जगी तो आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर भी निकल पडते हैं और तेज गुस्सा करने वालेसे लोग कह भी देते हैं कि आप आपेसे बाहर क्यो हो रहे हैं? अध्यात्म-दृष्टिसे इसका यह भी अर्थ लिया जाता है कि आप स्वरूपसे बाहर क्यो हो रहे हो? तो जैसे कषाय तेज जगी तो आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर थोडी देरको फैल जाते हैं। जब शरीरमे तीव्र वेदना हो उस कालमे भी जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर फैल जाते हैं। जब मुनियोंके अच्छे या बुरे तेज भाव होते हैं तो तैजस वर्गणाओंका उनके कधेसे पुतला निकलता है उस रूपमें प्रदेश फैल जाते हैं। यहाँ भगवान अरहतके शेष तीनो कर्मोंको आयुके बराबर करनेके लिए उनका समुद्घात होता है। तो पहले उनके प्रदेश नीचेसे ऊपर तक डंडेके माफिक फैल जाते हैं। फिर अगल बगलमे फैलते हैं तो कपाट के आकार फैल जाते हैं। फिर आगे-पीछे फैलते हैं तो वे प्रतरके आकार हो जाते हैं और फिर जितनी जगह वातवलयमें बची वहा भी फैल जाते हैं तो लोकपूरण हो हो जाता है उस समय लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर आत्माका एक एक प्रदेश ठहरा है। इसे समवगणा कहते हैं, फिर सकुचित होता उसी क्रमसे प्रतर कपाट दण्ड और फिर शरीरमें ज्यो का त्यो रह जाता है। इतने समयमे वे अधिक स्थितिके बाधे हुए कर्म आयुके बराबर हो जाते हैं, उनकी स्थिति सूख जाती है। जैसे धोई हुई धोती फैला दिया तो वह जल्दी सूख जाती है इसी प्रकार प्रदेश फैले तो वे सब सूख करके आयुके बराबर रह जाते हैं। यह कार्य किया जा सकता है तभी तो किया गया। तो यह बात नही रही कि जो कर्म हो वह अपना उतने समय तक फल जरूर ही दे।

प्रभुस्वरूप और भृत्यभावका अतिशय—यदि यह कहो कि तपश्चरण

का ऐसा माहात्म्य है कि उनमे शेष अघातिया कर्मोंकी शक्ति निर्जीर्ण हो जाती है, क्षीण हो जाती है तो वह अधिक स्थितिके रूपमे फल देनेमे समर्थ नही है इसलिए आयु कर्मके बराबर वे तीन कर्म हो जाते हैं। इसी प्रकार वेदनीयकी मानलो कि प्रभु के तपश्चरणका इतना अतिशय है कि मोह क्षीण हो जानेके कारण अब वेदनीय कर्म असाता नहीं उत्पन्न कर सकता है। प्रभुस्वरूप कैसा है इसका भान करनेके लिए अपने आपमे प्रयत्न होना चाहिये, क्योंकि बाहरमे हम कुछ जाननेकी कोशिश करेगे तो वह जानना इन्द्रिय द्वारा बनेगा, और इन्द्रिय द्वारा भगवानका स्वरूप नही जाना जा सकता। साक्षात् समवशरणमे विराजमान अरहन्त भगवान भी आंखोंसे दिखे तो वहा क्या दिखेगा? भगवानका शरीर,जो देह है वह प्रभु नही, जो अन्दरका ज्ञान पुञ्ज है वह प्रभुस्वरूप है। हम लोग भी अवलम्बन लेकर प्रभुका ध्यान करते हैं और नामका अवलम्बन लेते हैं। आदिनाथ अजितनाथ आदि तीर्थङ्करोंका हम ध्यान करते हैं, पर प्रभुस्वरूप प्रभु जिसे कहते है वह उस शरीरका नाम प्रभु नही। प्रभु तो विशुद्ध ज्ञानपुञ्ज है, तब फिर जिन्हे आदिनाथ अजितनाथ आदि नाम लेकर उनके समयमें पुकारा गया, उसे यो ही समझिये जैसे कि हम आप लोगोका नाम पुकारा जाता है। तो नामके द्वारा जिसका बोध किया वह तो एक पर्यायका बोध है, प्रभुका नाम नही। जो नाम है वह प्रभु नही। तो प्रभुस्वरूप चितारनेके लिए अपने आपकी स्थिति कुछ ऐसी बनानेका यत्न करें, स्थिर आसनसे, स्थिर चित्तसे स्थिर आत्मस्वरूप को देखनेका यत्न करें। जहा देहका भी भान न रहे कि देह भी है, ऐसी स्थितिमे जो एक ज्ञानघन अनुभव होगा, केवल ज्ञानज्योति मात्र हो अपने आपके लिए अनुभूत होगा उस अनुभवके द्वारसे अरहन्तके स्वरूपका अनुमान किया जा सकता है फिर वहाँ सोचो प्रभुके क्षुधा भी होती है क्या?

ध्यानासनोंका प्रभाव—देखिये ध्यानके मुख्य आसन दो बताये गए हैं— एक पद्मासन और एक खड्गासन। और एक अर्ध पद्मासन भी कभी उपयोगी कहा जा सकता है। पद्मासन तो सब जानते ही हैं बायें पैरको दाहिनी जाघपर रखा और दाहिने पैरको बाये जघापर रखा, पैरोंके बीच बायें हाथकी गदेलीपर दाहिने हाथकी गदेली रखा। तो इसमे एक वैज्ञानिक मर्म देखो। हाथकी हथेलीसे कुछ चीज छूनेमें जल्दी उसका ज्ञान होता है और हाथकी हथेलीकी जो पीठ है उससे छूनेमें स्पर्श में लगाव जैसा बोध नही चलता। तो अब देखिये कि दोनो पैरोंके तलोकी पृष्ठ छुवा हुआ है दोनों हाथोंके हथेलियोंकी पीठ छुवे हुए हैं और जब बैठेमें अपने शरीरका ऊपरी भाग बिलकुल सीधा करके बैठ जाता है तो इस सीधे आसनसे बैठनेमें श्वासो-च्छवास की रच रुकावट नहीं होती है तो वहाँ श्रम नहीं रहता है। और इस नलीके भीतर ५-६ जगह चक्रावत तथा कमलाकार रचना है जो किसी रूप मे डाक्टर या वैद्य बता सकेंगे। जब ध्यानमुद्रा होती है तो छहों स्थानोके कमल नीचेसे ऊर्ध्वकी वायु का सम्बन्ध पाकर ये षट्चक्र प्रफुल्लित हो जाते हैं। इस शरीरकी बाह्य स्थितिया हैं,

रहे यह भी विडम्बना समझमें आ सकती है क्या ? यदि कहो कि आयुसे अधिक जो जो वेदनीय रहेगी वह फल देनेमे समर्थ नही है तो फिर उनका कर्मत्व नही रहा, फिर उनको घटानेके लिए लोकपूरण आदिक समुद्घात करना व्यथ हो गया। इससे वेदनीय तो है, किन्तु मोहनीयके मिटनेपर असाता आदिकका फल देनेमें वे असमथ हैं यही सीधा मान लो। यदि कहो कि अपने तपश्चरण अनुष्ठान, आदिकके कारण उनमें सामर्थ्य रुक गई इसलिये समान हो जाते हैं त वही यहाके वेदनीयमें भी लगा लो। घातिया कम नष्ट हो गए, मोह दूर हो गया तो अब वह वेदनीय अपना फल नही दे सकता है। मोहापेक्ष वेदनीय कर्मोदय ही फल देनेमें समर्थ हो सकता है। कारण तो है नही और कार्यकी उत्पत्ति मानोगे तो प्रभुके इन्द्रियज्ञान और रागादि-भावके सद्भाव आ जायगा।

क्लेशानुभूतिकी इच्छानुसारिता—हम आप लोग भी जब मोह सताता है, ख्याल बनाते हैं तब अधिक भूखकी पीडा होती है और जब भूखका ध्यान ही नहीं रहता तो फिर वहां भूखकी पीडा नही होती है। कदाचित् थोडी सी होती भी है तो वह शान्त हो जाती है। परन्तु जो तीन चार बार खाने वाले लोग हैं उनका चूकि ध्यान उस ओर बना रहता है इस कारण उन्हे भूखकी वेदना अधिक सताती रहती है। यदि कभी तीन चार बार खानेको न मिल पाय तो वे विह्वल हो जाते हैं। तो एक उपयोग देनेकी बात है, अभी आपके शरीरमे कोई फोडा फुसी हो जाय, और आप उसका बार बार ध्यान दें, ख्याल बनायें तो आपको उसकी अधिक पीडा महसूस होगी। और यदि आप उसकी ओरसे अपना उपयोग हटा लें उसका ध्यान ही न रखें तो वह वेदना फिर उतना अधिक नही सताती है। तो चू कि हम आप लोगोंके यहांकी चीजोंमें मोह लग रहा हैं इस कारण वेदनायें सता रही हैं।

अनन्तज्ञानानन्दपुञ्ज प्रभुस्वरूपके ध्यानमे समस्याओंका समाधान—प्रभु अरहत देव तो अब चार घातियाकर्मोंसे रहित हो गए, उनके अब किसी प्रकार की वेदनाएँ ही नहीं रही। इस कारण वे अनन्तशक्ति अनन्त आनन्द आदिकसे तृप्त रहा करते हैं। प्रभुके स्वरूपपर जब दृष्टि देते हैं तो ये सारी बातें समझमें आती हैं। हम आप भी ज्ञानानुभव करके उस आनन्दका अनुभवन कर सकते हैं। उससे आत्यन्तिक अधिक विशिष्ट निर्मल अनुभवन और स्थिरता प्रभुके हुआ करती है। हां प्रभुके अब इन्द्रियजन्य ज्ञान नहीं रहा, उन्हे अतीन्द्रिय ज्ञान हो रहा है। तो प्रभुका स्वरूप जानें और वे समस्त सकटोंसे रहित केवल ज्ञानपिण्ड हैं, इस तरहका ध्यान बनायें और अपना भी स्वरूप ऐसा ही है, इस तरहका ध्यान बनायें तो इससे मोक्ष मार्गमें बढ़नेमे बहुत सहायता मिलती है, प्रकृत समस्या भी सुलझ जाती है।

सहकारी मोहके अभावमे वेदनीय कर्मकी निष्फलता—सकल परमात्मा २- सारे घातियाकर्म तो नही हैं किन्तु चार अघातिया कर्म हैं। अघातिया कर्मोंमें

वेदनीय कर्म भी हैं, उनका उदय भी है तो उसका उदय होनेके कारण सकल परमात्माके कवलाहार होना चाहिये क्योंकि वेदनीयके उदयमे भूख लगती है और भूखका परिहार है भोजन । ऐसी शकाये रखने वालोके प्रति नाना आपत्तियाँ दिखाई गई हैं । अब शकाकार कहता है कि ये आपत्ति देना कि कारणके विना कार्य हो तो भगवान के इन्द्रियजन्य ज्ञान भी होना चाहिये, रागादिक भी होना चाहिए । यह बात यो सम्भव नही है कि ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो अब रहा नही । प्रभुके ज्ञानावरणका क्षय हो गया है और मोहनीयकर्म सहकारी जो था वह भी नही रहा, उसका भी अत्यन्त क्षय हो गया, इसलिए इन्द्रिया अपने कार्यमे व्यापार नहीं करती । भगवानके शरीरमे नाक, आँख, कान आदिक द्रव्येन्द्रियाँ तो ज्योकी त्यो हैं और विशिष्ट रूपवान हैं लेकिन अपने कार्यमे वे व्यापार नही कर सकती, क्योकि मोहनीय कर्म सहकारी रहा नही । ऐसा कहनेपर समाधान देते हैं कि इसी कारण तो वेदनीयका भी व्यापार न मानना चाहिये क्योंकि वेदनीयके सहकारी है मोहनीय । सो मोह न होनेसे वेदना भी नही, वेदनाका प्रतिकार भी नही । जो अपने आपमें अत्यन्त विरक्त हैं, परपदार्थों से भी अत्यन्त विरत हैं ऐसे विरत व्यामोह जीव विषयके लिये किसी भी चीजको ग्रहण करने या कुछ हटानेके लिये प्रवृत्ति नही करता । प्रयोग है, अनुमान बना लिया जाय कि जो जिस विषयमें अत्यन्त निर्मोह होगा वह उस पदार्थको ग्रहण करनेमें या उसको हटानेमे मेटनेमे प्रवृत्ति नही रखता । जैसे जिस माताका किसी पुत्रसे मोह बिल्कुल दूर हो गया तो उसको ग्रहण करने और छोडनेके लिये प्रवृत्ति भी नही होती तो मोहसे अत्यन्त व्यावृत हैं भगवान । वे भोजनको कैसे ग्रहण करे और क्षुधा आदिक का प्रतीकार करनेकी प्रवृत्ति कैसे करें ? अगर करते हैं प्रवृत्ति प्रभु तो वे मोही सिद्ध हो जायेगे । जो पुरुष भोजन ग्रहण करनेका प्रवर्तन करते हैं वे मोही हैं जैसे हम आप लोग ऐसे ही शकाकारने मान लिया कि प्रभु केवली भी भोजन करते हैं तो फिर उन प्रभुमे सर्वज्ञता कहाँ रही । वे भगवान भी इन गलियोमे फिरने वाले साधारण जनोकी तरहसे ही हो गए ।

प्रभुमे बुभुक्षाका प्रसङ्ग होनेपर रिरंसाका भी प्रसङ्ग – अब शङ्काकार से कहा जा रहा है कि यह जो भूख है, यह मोहनीयकी अपेक्षा न रखकर मात्र वेदनीयका काम नही है जिससे कि मोहरहित भगवानमे भी वेदनीय भूखको सम्भव बता सके । भूखका अर्थ क्या है ? कोई कहे कि कैसी होती है वह भूख जरा दिखावो तो यहां तो क्या कोई उस भूखको दिखा सकेगा ? भूखका अर्थ क्या है ? इसे सस्कृतमें कहते हैं बुभुक्षा । जिसका अर्थ है भूख अर्थात् भोजन करनेकी इच्छा । तो भगवानके मोहनीयका अभाव है इसलिए उनके बुभुक्षा हो ही नही सकती, खानेकी इच्छा हो ही नही सकती । खानेकी इच्छाका नाम है भूख । यदि खानेकी इच्छारूप बुभुक्षा मोहकी अपेक्षा किए बिना केवल वेदनीयका ही कार्य मान लिया जाय तो इच्छाका स्वागत करवा दिया जानेसे फिर उनके रिरसा भी होना चाहिये । रिरसाके मायने है विषय

रमण करनेकी इच्छा। जब मोहके विना भोजनकी इच्छा हो गई तो मोहके विना साधारण गृहस्थोंकी भाँति रमणकी इच्छा मान लीजिये फिर आप स्वकल्पित प्रभुमें। परन्तु प्रभुमें यह तो कभी भी सम्भव नही। बुभुक्षा भी सम्भव नही। तो कवलाहार की तरह स्त्री आदिकमें भी प्रवृत्तिके प्रसङ्ग आनेसे फिर इन प्रभुमें और उन साधारण जनोंमें फर्क क्या रहा ? तो जैसे रिरंसा मोहके न होनेसे नही है प्रतिपक्ष भावनासे नही है, दूर हो गई इसी प्रकार भोजनकी इच्छा भी कभी नही होती है इच्छा विनष्ट हो गई। जैसे स्त्री आलिंगनकी आकांक्षा निर्मोह ज्ञानके भावसे, विनष्ट हो जाती है और यह सभव नही कि इच्छा न हो फिर भी प्रवृत्ति हो। यदि कहो कि भूखकी इच्छा नही है फिर भी कवलाहार करते हैं तो यो भी कोई कह डाले कि स्त्रीमें रमण करने की इच्छा नही है फिर भी स्त्रीमें रमण करते हैं। तो प्रभुमें कवलाहार बिल्कुल सम्भव नही है यह बात कही जा रही है।

अनन्तानन्दमय प्रभुमें दुःखरूप क्षुधादि बाधाका अभाव यदि ऐसा कहो कि भाई इच्छा वाली भूख तो नही है पर भूख है इसलिए निर्मोहमें भी भूख सम्भव है। उत्तर देते हैं कि खैर, विना इच्छाके भी भूख होना मान लो जो कि होती तो नही है, तो भी यह बताओ कि वह भूख दुःखरूप है कि सुखरूप है ? तो अनन्त सुख वाले भगवानमें यह भूख कैसे सम्भव है ? देखो जिसका जो बलवान विरोधी मौजूद है वहा उसका कारण भी हो तो भी वह प्रकट नहीं हो सकता। जैसे अत्यन्त गर्म प्रदेशमें शीतका कोई कारण भी मौजूद हो तो भी शीत नही हो सकता। जैसे वहाँ बहुत तेज अग्नि जल रही है जिस कमरेके अन्दर और वहाँ ठंढा करने वाली मशीन रख दी जाय तो वहा मशीन काम नही कर सकती, क्योंकि विरोधी बलवान मौजूद है इसी प्रकार क्षुधा आदिक दुःखोंका विरोधी बलवान है अनन्त आनन्दका अनुभव। तो उसके रहते हुए क्षुधा आदिक दुःख उत्पन्न हो जायें यह कभी सम्भव नहीं।

समवशरणमें स्थित ही प्रभुके कवलाहार माननेपर मार्गविनाश— अब कुछ फुटकर बातें सुनो ! मानलो कि वेदनीय कर्म है और भूखका फल देने वाला है, पर यह बताओ कि उस भूखके कारण वे भगवान समवशरणमें बैठे हुए ही खा लेते हैं या चर्या करके खाते हैं ? यदि कहो कि समवशरणमें बैठें ही वे खा लेते हैं तो उन्होंने आहारविधिका मार्ग नष्ट कर दिया। आहार तो चर्याविधिसे लिया जाता है और उन्होने वहा ही अपने घरमें बैठे हुए भोजन कर लिया तो फिर उन्होंने खण्डन कर दिया इस आहारविधिका।

समवशरणस्थित प्रभुके कवलाहार माननेपर अन्य दोष—दिगम्बर जैन सिद्धान्तमें तो आहार माना ही नही गया, वहाँ प्रश्न क्या उठाना ? श्वेताम्बर सिद्धान्तमे जो आहारविधि बतायी गई कि घरोंसे भोजन माँग लाये और फिर किसी

जगह बैठकर खा लिया तो ऐसी वह आहारकी विधि तुम्हारे कल्पित प्रभुमे न रही। दूसरी बात यह है कि भूख लगी तो उसके बाद यदि तुरन्त आहार न मिले तो वे प्रभु उदास हो जायेंगे, कमजोर हो जायेंगे। तो जैसा ज्ञान समर्थ अवस्थामे रह सकता था, वैसा ज्ञान कमजोर अवस्थामे तो न रहेगा, ज्ञानमें कमी आ जायगी। तो फिर मार्गका उपदेश करना कैसे सम्भव है? यदि यह कहो कि भगवानके जब असाता वेदनीयका उदय आता है, भूख होती है तो देवता लोग उनका आहार सम्पादित कर देते हैं, उसकी विधि वही बना देते हैं, तो कहते हैं कि यह बात तो कपोलकल्पित है। यदि कहो कि आगममे लिखा है तो ऐसा आगम बताओ कि हमे भी मान्य हो और तुम्हे भी। ऐसा तो कही नही लिखा कि देवता लोग प्रभु केवलीका आहार सम्पादित कर देते हैं। साधु अवस्थामे भी देवता लोग आहार दें तो वे आहार न लेंगे। यदि यह कहे श्वेताम्बर जैन कि हमारे आगममे लिखा है कि जब भगवान्के क्षुधा होती है तो देवता लोग ही समवशरणमे उन्हे आहार रख देते हैं तो तुम्हारे आगममे यह भी तो लिखा है कि किसी प्रकारका उपसर्ग भी प्रभुपर नही होता। तो फिर यह भूखका उपसर्ग कैसे हो गया? यह भी लिखा है कि भूखके उपसर्गका प्रभुमे अभाव है तो फिर यह विकल्प न बना कि वे प्रभु समवशरणमे बैठे ही भोजन कर लेते हैं।

घर घर-जाकर व एक घरसे भिक्षा लेनेपर प्रभुत्वका नाश— देखो भोजनकी बात प्रभुमे किसी प्रकार सम्भव नही है और श्वेताम्बर सिद्धांतमे लोग मान रहे हैं तो उनसे पूछा जा रहा है कि वे प्रभु आहार विधिसे भोजन करते हैं क्या? आहारके लिए जाते हैं क्या? तो यह बताओ कि घर-घर जाते हैं या एक ही घरसे भिक्षा ले आते हैं। क्योकि उन्हे तो ज्ञान होगा ही कि आज हमारी भिक्षा इस घरमे मिलेगी। तो जिस घरका ज्ञान है उसी घरमे जाकर भिक्षा ले लेते हैं या दसो घरोमे जाकर भिक्षा ले लेते हैं? शङ्काकारके सिद्धान्तमें कहा है कि साधुकी चर्यामे घर घर से भोजन लाया जाता है और फिर उसे इकट्ठा करके अपने स्थानपर बैठकर खाया जाता है। यद्यपि शीघ्र सुननेमे भला लग सकता है कि बडा ठीक करते हैं। थोड़ा-थोडा इधर उधरसे माग लिया और फिर बैठकर खा लिया, तो आजकल शुद्ध भोजन करनेमे असुविधा चली इससे चाहे अच्छा मान लो लेकिन उसमे अनेक आपत्तिया हैं। अनेक प्रकारके बर्तन रखने पडे, उनमे मूर्छा जगे, उनके धरने उठानेकी सम्हाल करनी पडे। और अपने आप भोजन किया तो स्वच्छन्द होकर किया। वहा अन्तराय आदिक का कोई विचार नही रहता। जैसे गृहस्थ लोग टिफिन बक्समे अपना खाना रख लेते हैं और जब चाहे उसे निकालकर खा लेते हैं। तो ऐसी ही स्वच्छन्दता उन साधुवोमे हो जाती है। साधु यदि बर्तन रखेगा तो बर्तनोको धोना सुखाना उठाना रखना होगा, साधु यदि बर्तन रखेगा तो उसे [illegible]

वे नहीं रखते है। यहां तक कि शास्त्रोके बन्डल भी बनाकर वे साथमें नहीं रखते। शास्त्र जहा जो मिले उससे वे आत्मस्वाध्याय करते हैं, सहज ही कोई एक पाठ पुस्तक रही जाय शास्त्रो तक का भी परिग्रह वे नही रखते। ध्यानकी स्थिति भी वास्तवमें तब ही सही बन पाती है जब कि निष्परिग्रहता हो। तो साधुजन यदि भोजनके लिए बर्तन भाडे आदिका परिग्रह रखें तो फिर उनके ध्यानकी स्थिति कैसे बन सकती है? श्वेतपट नियमानुसार साधु यत्र तत्र भिक्षा मांगने जाया करते हैं, उन्हीसे पूछा जा रहा है कि वे प्रभु यदि कवलाहार करते है तो उन्हें तो यह ज्ञान रहता ही है कि हमारा आहार आज अमुक अमुक जगह होगा, तो वे वहां जाकर आहार ले आते हैं या घर घर जाकर भिक्षाकी खोज (एषणा) करते हैं? यदि यह कहो कि वे प्रभु आहार लेनेके लिए घर घर जाते हैं तो इसके मायने है कि भगवानके अज्ञान है उन्हें पता ही नही कि हमारा कहा कहा भोजन मिलेगा और यदि यह कहो कि प्रभु तो उस ही एक घर जाते हैं और आहार अपने निवास स्थानपर लाकर कर लेते हैं तो इसमें फिर भिक्षाशुद्धि नही रहती है।

मास, जीववध, विष्टादिकका साक्षात्कार करते हुए भी भोजन लेने पर निष्करुणता व हीनताका प्रसङ्ग – और भी पूछा जा रहा है शङ्काकारसे कि वे प्रभु जब भोजन करते हैं तो उनके केवलज्ञान रहता है या नदारत हो जाता है? यदि कहो कि सदा केवलज्ञान रहता है तो भोजन करते समय भी सारी दुनियां ज्ञानमें रहती है कि नही, अर्थात् शिकारी लोग, जीववध मांस आदिक गन्दी चीजें और ये मल मूत्रादि अपवित्र चीजें ये भी सब उस समय ज्ञानमें रहती है या नही? यदि ये सब चीजें उस समय ज्ञानमे रहती हैं तो इसके मायने है कि उन प्रभुमें करुणा नहीं है यहां तो साधारण गृहस्थ लोग भी यदि किसी बिल्लीको किसी चूहेको खाती हुई देख लेता है तो वह भी करुणावश अपने सामने रखा हुआ भोजन भी छोड देता है। पर वे भगवान यदि समस्त विश्वका ज्ञान रखते हुए भी यदि भोजन करते समय भोजन को न छोड दे तो वे तो करुणारहित माने जायेगे। यदि कहो कि उस भोजन करते समय उन्हे सारा विश्व ज्ञानमें तो आता है फिर भी वे भोजन करते हैं तो यहाके मामूली आदमियोसे भी वे प्रभु हीन हो गए।

प्रभुकी विशुद्ध ज्ञानवतंता—सकल परमात्मा प्रभुका स्वरूपतो अत्यन्त निर्मल है, वे मनुष्य शरीरमे इस समय स्थित है। केवलज्ञान होनेके बाद जब तक आयु समाप्त नहीं होती तब तक वे केवली भगवान शरीरमें रह रहे, और उनका वह शरीर परमौदारिक हो गया। उनका वह शरीर समस्त प्रकारकी अपवित्रताओसे रहित हो गया। तो ऐसे पवित्र शरीरमे स्थित हैं वे प्रभु, पर उनका स्वरूप क्या है, उनका अनुभवन क्या है, उनका कार्य क्या चल रहा इस पर भी तो दृष्टि दें। भगवान केवलज्ञान ज्योतिके पुञ्ज हैं ना, उनमे क्या बातें बीत रही हैं इसे भी तो निरखें?

उनके केवल जानन जानन ही चल रहा है। तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ निर्विकल्प होकर ज्ञेय हो रहे हैं। हम आप जिस तरह परपदार्थोंका ज्ञान करते समय अनेक प्रकारकी कल्पनायें करते, अनेक प्रकारके क्षोभ मचाते, ऐसी बात अब उन प्रभुमे नही रही। वे तो जो हैं सो यथार्थ रूपसे जानते हैं। जैसे हम आप लोग जानते हैं कि यह हमारा घर है, यह अमुकका घर है इस प्रकारसे प्रभु नही जाना करते हैं। हम आपके जाननेमे तो अनेक प्रकारके विकल्प, अनेक प्रकारके क्षोभ मचा करते हैं, पर प्रभुके निर्विकल्प, निस्तरंग ज्ञान है। तो ऐसी दशामें प्रभुमे भूखप्यासादिककी वेदनायें कहाँ सम्भव है। ये वेदनायें तो एक उपसर्ग हैं।

ज्ञानज्योतिमात्र अपनी प्रतीति करनेका कर्तव्य—भैया! हम आप भी अपने बारेमे सोचें कि हमे आखिर कैसा बनना चाहिए कि जिस स्थितिमें मेरेका कोई भी सङ्कट न रहे। ऐसा तो सभी लोग सोचते हैं मगर भली विधिसे नही सोचते। चाहते तो सभी ऐसा हैं कि मैं अपनी ऐसी पोजीशन बना लूं कि फिर कोई सङ्कट न आ सके। उसीके लिए प्रयास करते हैं पर अन्य वस्तुपर हमारा अधिकार है नहीं और प्रयत्न करते हैं अन्य वस्तुके सम्बन्धमे। इसलिए उसमे सफलता नही मिल सकती। हमारा एक सङ्कट मिटा कि दूसरा सङ्कट सामने आ गया, तो इससे अच्छा यह है कि हमारी ऐसी स्थिति बने कि फिर एक भी सङ्कट न रहे। पर निर्णय तो कर लो कि वह कौनसी स्थिति है जिसमे फिर कोई सङ्कट नही रहता। वह स्थिति है कैवल्यकी। मैं आत्मा आखिर हूँ कौन। मैं जो हूँ वह शरीर नही है। यह बात तो स्पष्ट विदित है कि जब जीव शरीरको छोडकर चला जाता है तो वह शरीर मुर्दा हो जाता है वह शरीर जीवरहित होजाता है उसे फिर सभी लोग जीवरहित समझकर ही नि शक होकर जला डालते हैं। तो मैं देह नही हूँ। मैं तो स्वतन्त्र सत्तावान आत्मा हूँ। उस मेरेका स्वरूप क्या है? किस तत्त्वसे रचा हुआ हूँ। उसमे क्या तत्त्व भरा है? बस एक ज्ञान ज्योति, ज्ञान स्वरूप, ज्ञान प्रकाश भरा है। अपने अन्दर निरखो तो कुछ ध्यानमें आयगा कि यह है ज्ञान ज्योति जाननमात्र। जिस स्वरूपको पकडकर नही बता सकते, किन्तु समझमे आयगा। ऐसा जो ज्ञानमात्र भाव हो, ऐसा ज्ञान भावात्मक मैं आत्मतत्त्व हूँ तो ज्ञानमात्र यह आत्मतत्त्व जिसके पूर्ण निर्मल प्रकट हो गया है पूर्ण विकास जहा हो गया है, ऐसी है प्रभुकी स्थिति, जहाँ कोई कल्पना नही, किसी ओरका विचार नही, तर्क नही, रागद्वेष नही। ऐसी मलरहित जो स्थिति है उस स्थितिमें सङ्कट नहीं है।

शरीररहित अवस्थामे सर्वथा नि सङ्कट परिणमन—मोटे रूपसे विचारो तो लोकके सारे सङ्कटोकी जड तो यह शरीर है, शरीर है तभी भूख लगती है तभी ठड, गर्मी लगती है। तभी सभीको इज्जत पोजीशन सम्मान अपमान आदिककी बातें महसूस होती हैं। तो इन सभी चीजोंके कारण इस जीवको दुःखी होना पडता है।

... यह है और अनेक प्रकारके दु ख उठा रहे है उ

कारण यह शरीर है। तो इस लोकके समस्त दु खोका मूलकारण यह शरीर है।
शरीर ही न रहे तो फिर कोई सङ्कट ही नही रह सकता। आप सबकी समझमें तो
बात आ रही होगी ? मगर कभी ऐसी भी इच्छा जगी कि नही कि मैं भी इन समस्त
दु खोसे छूट जाना चाहता हूँ। मेरे शरीर भी न रहे, मैं तो इस शरीरसे रहित निर्मल
ज्ञानप्रकाश मात्र, ज्ञानपुञ्ज रह जाऊ। जो ऐसे रह गए उन्हीका नाम भगवान है।
भगवान सर्व सङ्कटोसे रहित हैं। इस विशुद्ध स्वरूपके चिन्तनसे समस्त सङ्कट सदा
के लिए विदा हो जाते हैं। कितने ही सङ्कटोमें फसा हो कोई मनुष्य, सङ्कट तो असल
हैं नही कल्पनायें करके सङ्कट मान लिया है पर कल्पनायें करके भी माने गए
सङ्कट कैसे ही विकट आ गये हो, लेकिन यह आत्मा उन सङ्कटोके विषयभूत बाह्य
पदार्थोंसे भिन्न अपने आपको निरखकर उसका लगाव छोडकर जैसे ही वह अपने
सहज ज्ञायकस्वरूपके अनुभवनमें आता है आप बतलावो उस समय उसके कोई सङ्कट है
क्या ? कोई भी तो सङ्कट नहीं है। हमें भी यदि उन समस्त सङ्कटोसे सदाके लिए
दूर होनेकी इच्छा है तो सङ्कटोसे दूर होनेका जो यह ज्ञानानुभवरूप यत्न है। यह तो
बार बार किया जाना चाहिये ना, तो इस ज्ञानानुभवके यत्नसे हम आपमें भी अन्त-
में ऐसा बल प्रकट होगा कि किसी समय समस्त सङ्कटोंसे मुक्त हो जायेंगे। यही
समस्त सङ्कटोसे पार हुएकी अवस्था।

जीवबध, मांस आदिका साक्षात्कार करते हुए भोजन करनेमें प्रभुकी
...मयता—अब शंकाकार कह रहा है कि जैसे हम लोग यहा पर कुछ भी चीज
अशुद्ध देखी हुईका स्मरण करते हुए भी भोजन करते हैं इसी प्रकार केवली
...न इन शुद्ध अशुद्ध पदार्थोंका साक्षात्कार करते हुए भी भोजन कर लिया करते।
समाधानमें कहते हैं कि यह असङ्गत बात है। हम लोगोकी सर्वज्ञ भगवानके साथ
तुलना नहीं की जा सकती है। वे परम चारित्र पदपर प्राप्त है। जिनके यथा-
संयम प्रकट हो गया है, जिनके रागद्वेषकी कणिका भी नहीं रही, जो अनन्त
...से सदा तृप्त रहा करते हैं ऐसे सर्वज्ञ परमात्माके साथ अपनी तुलना करके
करतूतोकी तरह प्रभुकी करतूत मान लेना सङ्गत बात नहीं है। और फिर
...क हम लोग भी जब किसी प्रकारसे जिस मार्गमें चल रहे, मार्गमें जो चीज
...ई किसी भी प्रकारसे किसी भी देखी हुई अशुद्ध वस्तुका स्मरण कर लेते हैं।
...रण करते हुए भी भोजनका परित्याग करनेमें असमर्थ होकर भोजन करते हैं।
...ही तो माना जाता है। यथार्थ बात तो यह है कि हम लोग भी जब मांस
...का स्मरण हो जाय तो उस कालमें भोजन नही करना चाहते, पर प्रभुत
...मो हो रहा, जानकारी भी चल रही और फिर भी भोजन नही छोड सकत
...र लिया तो आखिर दोष ही तो रहा। और फिर दोषकी शुद्धिके लिए

गुरुवोंके समीप निंदा करते हुए, जो गुरु प्रायश्चित बताये वे साधुजन करते है, साधारण गृहस्थ भी करते हैं और जो ऐसी स्थितिमे अशुद्ध पदार्थका स्मरण करते हुएमे भोजनका परित्याग करनेमे समर्थ हैं वे विरक्त पुरुष आहारशुद्धिमे निर्दोष विधिका अपना सकल्प बनाए हुए हैं, वे परम विरक्त पुरुष हैं। उन्होने शरीरकी अपेक्षा भी छोड दी है। जिह्वाको जिन्होने वश कर लिया है। जो अन्तरायके विषयमे बहुत निपुण बुद्धि रखते हैं, जिन्हे समस्त दोषोका परिज्ञान है कि इन्हे छोड देना चाहिए, ऐसे साधुजन अशुद्ध पदार्थोंका स्मरण करते हुए भी भोजन नही करते।

प्रभु अकेले या ससघ भिक्षा करनेमे दीनता व सावद्य दोषका प्रसङ्ग—अब शङ्काकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे केवली प्रभु भोजन करते है तो यह बतलावो कि वे प्रभु अकेले ही भोजन करते है या अपने सघमे जो सैकडोकी सख्यामे शिष्यजन रहते है उनके साथ भोजन करते हैं ? जैसे यहाँपर भी तो कुछ लोग इकट्टे बैठ जाते है, गप्पे भी करते रहते है और खाते भी जाते है। उस तरह से बैठकर प्रभु भोजन करते है या सभी शिष्योसे अलग होकर अकेले ही भोजन करने चले जाते है ? यदि कहो कि प्रभु अकेले ही भोजन करने चले जाते है तो फिर उन प्रभुमे उदारता कहा आयी ? जैसे कोई खानेका आसक्त पुरुष यहा भी अपने साथियोको छोडकर अकेला ही भोजन करने चला जाता है और भोजन कर आता है उसी तरहसे यदि प्रभु भी करते है तो उनमे प्रभुता कहाँ रही। वे तो दीन रहे। यदि कहो कि शिष्योके सगमे बैठकर भोजन कर आते हैं तो फिर उसमे [illegible]का प्रसङ्ग आ गया, राग हो गया, पूछाताछी हो गई, एक दूसरेका निरखना गया और विधिमे भी स्नेह आदिक आनेसे पाप लगा।

प्रभुके भोजन करके प्रतिक्रमण करने या न करनेमे सदोषताका [illegible]पादन—अच्छा—एक बात और भी बतलावो कि प्रभु मानलो तुम्हारे [illegible]से भोजन कर लेते है तो फिर वे भोजन करके प्रतिक्रमण आदिक करते है [illegible] नही। भोजन कितना ही निर्दोष विधिसे किया जाय, भोजन करना स्वय दोषमयी है, इसीलिए तो साधुजन भोजन करनेसे पहिले भी और भोजन करने के बाद प्रतिक्रमण किया करते है। जैसे सामान्यत आहार करनेके बाद सिद्धभक्ति पढ़ कायोत्सर्ग करना ये सब साधुजन करते है। क्यो करते है कि भोजन करनेमे कुछ स्नेह जगा है, कही पर दृष्टि लगी है, स्वभावकी सुधि भूलकर उस ओर [illegible]ए हैं। वे सब दोष मेरे दूर हो उस अभिप्रायको लेकर प्रतिक्रमण किया जाता [illegible] णमोकार मत्रका स्मरण किया जाता है। आहार ग्रहण करनेके पहिले जो कायो- [illegible]किया जाता है, हमारे ख्यालसे उसका प्रयोजन यह है कि भोजन जैसा विकल्प [illegible] वाला काम जिसमे हम पड रहे हैं, जिस काममे हम लगने जा रहे हैं उस काम [illegible] है, कही भोजन करके मेरेमे प्रमाद न उत्पन्न हो जाय, मैं प्रसक्त न बन जाऊ,

कही मेरी सावधानी न खतम हो जाय, कहीं मेरे प्रभुकी सुध न हट जाय, कहीं मैं उस भोजनका रागी न बन जाऊ, आदि। इस प्रकारके दोष भाजामे समझकर वे साधुजन कार्योत्सर्ग किया करते है। तो ज्ञानी ध्यानी साधु पुरषोने कितनी ही सावधानिया रखकर भोजन किया लेकिन उस प्रसङ्गमें चूंकि यह काम ही ऐसा है कि कुछ राग भी होता, किसी वस्तुके स्वादमें भी थोडा पहुचते, सो ये सब दोष भोजन करते समय हो गए। अब उस भोजनसे निवृत्त होनेके बाद एकदम अपनी सुधि आती है और उन गल्तियोका ख्याल होता है तो उससे सीधे प्रभुकी शरणमे अपने उपयोगको पहुँचाते हैं और उस समयमें प्रभुके निराहार स्वरूपका विचार करके अपने आपको निहारते हैं। कहां तो मेरा ऐसा निराहार स्वभाव था। कहा तो अपने ज्ञानानन्द स्वरूपमे रत रहने का काम था और यहां कितना विकल्पोमें विपत्तियोंमें अपनेको फंसा डाला और इस पर्यायमें मैं कैसा एक बन्धनमें जकडा हुआ हू कि प्रमाद किए बिना यहा गुजारा नहीं हो रहा है। यो वे साधुजन अपनी निंदा करते हुए प्रभु स्मरण करते हैं और जो दोष हो गए वे मेरे दूर हो, इस प्रकारकी भावना रखते हुए कार्योत्सर्ग करते हैं।

भोजन करके प्रतिक्रमण करने व न करनेमे प्रभुके सदोषत्वका विवरण शकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे प्रभु यदि कबलाहार करते हैं तो भोजन करके फिर प्रतिक्रमण करते हैं या नहीं? यदि कहो कि प्रतिक्रमण करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि प्रभुने दोष किया! प्रभु दोषरहित होते तो प्रतिक्रमणकी आवश्यकता क्या थी? प्रतिक्रमण कहते ही उसे हैं जो लगे हुए दोषको दूर करनेके लिए प्रायश्चित्त किया जाय। और यदि कहो कि प्रतिक्रमण नहीं करते हैं तो बतलाओ भोजनके कार्य से उत्पन्न हुए जो दोष हैं उन दोषोको प्रभु कैसे दूर करें? जब भोजन मात्रकी कथा करनेसे भी साधुजन प्रमादी माने गए हैं और तुम्हारे कल्पित अरहत भगवान भोजन करते हुए भी प्रमत्त न कहलायें, प्रमादवान न कहलायें तो यह तो केवल कथन मात्र है। तुम ऐसे सदोष स्वरूपको प्रभु मानकर भी चल रहे हो यह तुम्हारे घरकी श्रद्धा मात्र है। और, कहोगे कि हो जाते हैं वे प्रमत्त, कषायवान तो वे प्रभु कहा रहे, वे ता श्रेणिसे भी गिरकर प्रमत्त साधु हो गए।

प्रमादके परिहारका अनुरोध—प्रमादी उसे कहते हैं जो अपने आत्म-कल्याणके कार्यमे प्रमाद करे। कोई पुरुष घरमें आलसी पडा हुआ है उसका ही नाम प्रमाद न समझिये, कोई पुरुष खूब आरम्भ व्यापार रोजिगार आदिकमें लगा रहता है खूब स्नेह करके मौजसे रह रहा है तो क्या वह प्रमादी नहीं है? अरे ये सांसारिक काम कोई आत्माके काम नहीं हैं। ये हो गए तो उनमे राजी रहे, न हुए तो राजी रहो। धन कम है तो कुछ बात नही, अधिक हो गया तो कुछ बात नही, ये कोई बडी समस्यायें नही हैं, इनमें कुछ हर्ष विषाद न मानिये। सबसे बडी समस्या तो यह है कि जो अपने जन्म-मरणकी परम्परा चल रही है, इस जन्म-मरणकी परम्परा मेटनेकी

बात सोचिये ! मानलो, आपका मरण भी हो रहा हो तो वह भी कोई बडी समस्या नही है। ऐसे मरण तो अनन्त बार हुए, चलो एक मरण और सही। अरे, मरण करते करते तो मरण करनेमें अभ्यस्त हो जाना चाहिये। मरण करना कोई अनहोनी बात तो नहीं हो रही। तो मरणकी भी कोई बडी समस्या नही। सबसे बडी समस्या की बात है इस जन्ममरणकी परम्पराका चलना। बस इस जन्म-मरणकी परम्पराका निवारण करनेका यत्न कीजिये।

बडोके कार्यकी सराहनामे बडोका आदर—अच्छा आप यह बतलावो कि जिन बडोको हम आप पूजते हैं प्रभुको, अरहन्तको सिद्धको, उन बडोने जो काम किया है उस कामकी आप सराहना रख रहे कि नही ? अगर नही रख रहे तो पूजन क्या ? यह तो केवल एक रूढि है, ढोंग है या और कुछ है। बडोके कामकी सराहना हो रही हो चित्तमे तो समझना चाहिए कि बडोके प्रति हमारा आदर है और जिनके कामकी सराहना नही वहाँ तो आदर न समझिये। प्रभुने क्या किया था ? वे भी हम आप जैसे ही पुरुष थे, पर उन्होने वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान करके, सही जानकारी के बलसे उन्होने जो कि सहज प्रकृत्या होना ही चाहिए, परसे उपेक्षा की, अपने आपके उस सहज पवित्र ज्ञान ज्योति स्वरूपमें रुचि की और उस रुचिका प्रभाव यह था कि उनके निरन्तर यह प्रतीति रहती थी कि मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूँ, यह जो बाहरमे दिखने वाला शरीर पिण्डोला दिखता है यह मैं नही हू यहा तक कि अपने आपके अन्दर कर्म उपाधिके सम्पर्कके कारण जो रागादिक विभाव विकल्प वितर्क उत्पन्न हो रहे हैं यह भी मैं नहीं, केवलज्ञान ज्योतिमात्र हूँ, जो कि सर्व आत्माओंमे समानरूपसे विस्तृत है, जो सामान्य है, जहा कोई विकल्प नही, तरङ्ग नही ऐसा ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हूँ। ऐसी सच्ची प्रतीति यदि अपने बारेमे हो तो फिर कषायें कहाँसे उत्पन्न हों, फिर सम्मान अपमान आदिककी बातें क्यो जगेंगी ? उसे फिर सङ्कट ही क्या रहा ? तो प्रभुने छद्मस्थ अवस्थामे निष्पङ्कुट ज्ञान ज्योतिमात्र विशुद्ध आत्मतत्त्वकी प्रतीति की, जिसके बलसे उत्तरोत्तर अपने ज्ञानस्वभावमे स्थित होकर अन्तर्बाह्य परिग्रहका जब लवलेश न रहा और केवल एक अंतस्तत्व की भावना की तो उस निर्विकल्प समाधिके बलसे उस परम शुक्ल ध्यानके बलसे उनके चार घातिया कर्म दूर हो गए और वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख, अनन्त शक्तिसे सम्पन्न हो गए। बतलावो प्रभुकी ऐसी स्थिति हम भी अपने बारेमें चाहते हैं या नहीं ? जैसे प्रत्येक पुरुष अपने बारेमें जीवनका कोई एकमात्र प्रोग्राम रखा करता है। मुझे जीवनमे करना क्या है आखिर। कोई लोग तो अपना प्रोग्राम बनाते हैं राष्ट्रका मिनिस्टर बननेके लिए, कोई लोग धनिक बननेका प्रोग्राम बनाते हैं अथवा कोई लोग कुछ थोडेसे आदमियोका नायक बननेका अपना प्रोग्राम बनाते हैं। ये सभी लोग अपना कोई न कोई प्रोग्राम बनाते हैं, पर एकमात्र यदि यह प्रोग्राम बना लिया जाय कि निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप मात्र स्थिति जो अरहन्तदेवकी है, प्रभुकी है ऐसी ही स्थिति मेरी बने, बस मैं तो यहाँ

मात्र हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी बात मैं त्रिकालमे नही चाहता। ऐसा एकमात्र अपना प्रोग्राम बना हो तब तो समझिये कि प्रभुके हम अच्छे भक्त बन गए और तभी प्रभुके वन्दन करनेके अधिकारी हैं। प्रभुका स्वरूप वीतराग और परिपूर्णज्ञानानन्द मात्र है। किन्तु यहा शङ्काकार मान रहा है कि ऐसे ये प्रभु भी भोजन करते हैं। तो देखो ! सारे ऐब भोजनके साथ हैं। सो भोजनके प्रसङ्गसे वे प्रमादी हो गए, प्रमादी हो गए तो वे श्रेणीसे गिर गए। प्रभुता तो दूरकी बात है। वह तो श्रेणीके गुणस्थान मे भी नही हैं, फिर उन्हें केवली कैसे कहा जायगा।

गुणस्थान—गुणस्थान १४ होते हैं। गुणस्थानके मायने है आत्माके गुणोंके स्थान याने कक्ष। आत्मामे दो मुख्य गुण हैं जिनके विपरीत रहनेसे ससारमें रुलना पडता है और जिनके विशुद्ध विकाससे ससारसे मुक्त हो जाते हैं। वे दो गुण हैं श्रद्धा और चारित्र। ज्ञान इसके साथ ही लगा हुआ है। जैसे जीवकी श्रद्धा यदि विपरीत हो—देहको माने कि यह मैं हूँ, धन वैभवको माने कि यह मेरा है अपने आपके अन्दर उठने वाले विकल्पोको माने कि यह मैं हूँ तो यह सब उल्टी श्रद्धा है। रागी देवोको माने कि ये प्रभु हैं, राग भरी अज्ञान भरी बातोको लेकर जो शास्त्र लिखे हुए हैं, उन्हें माने कि ये शास्त्र हैं सारम्भ सपरिग्रह साधुवोको माने कि ये साधु हैं, इस प्रकारकी विपरीत श्रद्धा रहे तो ये बातें जीवको ससारमें भटकाने वाली हैं। और अगर श्रद्धा सही हो जाय तो इसके बलपर, जीव मोक्षमार्गमें बढता है। तो श्रद्धा और चारित्र इन दो गुणोके कारण ये गुणस्थान बने हैं। साथमे एक योग भी है पर उसकी प्रधानता नहीं। उसका अन्तिम प्रतियोग एक सहज बात है इस कारण इन दो गुणो पर दृष्टि देकर विचार करें।

साधुतासे पहिलेके ५ गुणस्थान—जब जीवकी उल्टी श्रद्धा होती है तब उसका पहिला गुणस्थान माना जाता है, यह मिथ्यात्व गुणस्थान है और जब उसकी श्रद्धा सही हो जाती है, मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूँ इस प्रकारकी उसकी प्रतीति हो जाती है तब उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ऐसा सम्यग्दृष्टि यदि कोई व्रत नही धारण कर रहा है तो उसे चतुर्थ गुणस्थान वाला माना जाता है। पहिले गुणस्थानमे मिथ्यादृष्टि और चतुर्थ गुणस्थानमें अविरत सम्यग्दृष्टि। कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने सम्यक्त्वसे बिगकर सीधे मिश्र अवस्थामे आ जाय कि जहाँ सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले जुले परिणाम हैं। जैसे शक्कर और दही मिलाकर खाये तो कोई तीसरा ही स्वाद रहता है, न खालिश दहीका ही स्वाद मिलता है और न खालिश शक्करका ही। ऐसे ही यह सम्यक्मिथ्यात्वका परिणाम यह ऐसी तीसरी अवस्था है कि जहा न केवल सम्यक्त्वकी अनुभूति है और न केवल मिथ्यात्वकी। उनमे कोई सम्यग्दृष्टि गिरकर मिथ्यात्वमे आकर भी इस तीसरे गुणस्थानमें आता है। कोई सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वसे बिगकर अनन्तानुबन्धी कषायमे आ गया, पर अभी मिथ्यात्व [illegible]

गुणस्थान पा जाता है। यहाँ मुख्यतया प्रथम गुणस्थान और चतुर्थ गुणस्थानका कथन जानो। सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि विषयोंसे एकदेश विरक्त है तो उसे समझना चाहिए कि वह पंचमगुणस्थानमें माना जाता है।

साधुजीवनके गुणस्थान— वह सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त विरक्त होकर शरीर की भी अपेक्षा तजकर सब विषयोंका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करके निर्ग्रन्थ होकर आत्मसाधनामें लगता है तो वह साधु कहलाता है। सो साधुजन अपने जीवनमें बहुत काल तक छठे गुणस्थानमें रहा करते हैं। छठे गुणस्थानका नाम है प्रमत्त विरत अर्थात् साधु हैं विषयोंसे विरक्त हैं मगर उपदेश देनेमें, शिक्षा-दीक्षा देनेमें, आहार करनेमें इन कामोंमें लग जाते हैं तो वे प्रमत्त विरत साधु कहलाते हैं। प्रमाद आगया, आत्माके निर्विकल्प ध्यानमें नहीं ठहरे हैं लेकिन वे प्रमत्त विरत गुणस्थानमें देर तक नहीं ठहर सकते फिर सावधान हो जाते हैं, फिर उनके अप्रमत्त अवस्था होती है। फिर प्रमादका परित्याग करके ७वें गुणस्थानमें आते हैं, वहाँ अधिक देर नहीं ठहरते, फिर प्रमत्त अवस्थामें आते हैं। जैसे झुलाने वाला पालना एक ही तरफ तो नहीं रहता, वह तो आगे और पीछे दोनों ओरको चलता रहता है। इसी प्रकार साधुका जीवन प्रमत्त अवस्थासे अप्रमत्त अवस्थामें यों एक घंटेमें सैकड़ों बार बदल-बदलकर प्रमत्तविरत – अप्रमत्तविरतमें चलता रहता है। यों उनका जीवन चला, यहाँ तक श्रेणी नहीं कही जाती। जैसे कहते कि श्रेणी मांडकर वह साधु बहुत ऊँचे परिणामोंमें पहुँच गया। अभी श्रेणीकी बात नहीं आयी।

देखो ! पहिले प्रभु श्रेणीमें बढ़कर १३वें गुणस्थानमें पहुँचे । अरहन्त भगवान सयोग केवली हुए । श्रेणीमें ८-९-१०-१२ में चढ़कर वहां शेष घातियाकर्मोंका विनाश करके वे १३वें गुणस्थानमें पहुँचते हैं । तो तुम्हारा प्रभु पहिले तो १३वें गुणस्थानमें पहुँचा और अब भोजन करनेकी खटपट लगा देनेसे प्रमाद उनमें आ गया सो श्रेणीसे गिर गए । अब छठे गुणस्थानमें आ गए । फिर केवली क्या रहे ?

मूलत निर्दोष प्रभुके कवलाहारकी असंगतता —१२वें गुणस्थानमें तो क्षीणमोह कहलाता है । वहां राग रंच मात्र भी नहीं रहता । क्षपक श्रेणीमें १०वें गुणस्थान के बाद १२वें में पहुँचते हैं और १३ वें में अरहन्त होते है । अब जितनी भी आयु शेष रही उतने काल तक सयोग केवली अवस्थामें रहकर फिर १४ वां गुणस्थान अयोग केवलीका होगा । यहां आत्मप्रदेशपरिस्पंद रंच भी नही रहता । कोई पुरुष पद्मासनमें बैठ जाए । कुछ भी हिले डुले नहीं तो भी योग चलता रहता है । आत्मप्रदेश यहीं भीतर ही भीतर हिलते डुलते चक्कर लगाते रहते हैं उसे कहते है योग । तो उन प्रभुके पहिले योग था, १४वें गुणस्थानमें योग नहीं रहता । विहार उपदे आदि सब कुछ बन्द करके परम विश्राममें रह जाते हैं, यह है स्थूलतया योग निरोध इसके बाद होता है १४वां गुणस्थान, यहां योगका अभाव है । इसमें कितनी देर रहते है पांच ह्रस्व स्वरोंके बोलनेके बराबर काल है । वे १४वें गुणस्थानसे मु हो जाते हैं । अघातिया कर्मोंसे रहित सिद्धप्रभु बन जाते है । तो ऐसे वीतराग अनन ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति इनसे सहित ये सकल परमात्मा सि बन जाते है । तो ऐसे वीतराग अरहन्त प्रभु जो कि बड़े बड़े योगीन्द्रोंसे आराध्य है उनमें क्षुधा आदिकका मानना व उसका प्रतिकार मानना यह किसी भी प्रकार सग नहीं बैठता ।

शङ्काकारके प्रभुके भोजनके प्रयोजनमे चार विकल्प—ज्ञानस्वरू आत्मामें उपयोगको स्थिर करके साधुजनोंने अपने अन्तरङ्गमें स्वच्छ ज्ञानप्रकाश प्रक किया और ज्ञानमात्र मैं हू इस प्रकारकी तीव्र भावनासे अभेद भावनासे उन्होंने बाहर समस्त विकल्पोंका विनाश किया था । ऐसे परम ध्यानके प्रतापसे निर्ग्रन्थ साधुजनोंक कैवल्य प्राप्त हुआ । अब वहां अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्तआनन्दक प्रतिसमय अनुभवन चलता है । ऐसे प्रभुमें अब किसी प्रकारकी बाधा नही रहती । प्रभ हो गए, परमात्मा है, योगीन्द्रोके आदर्श है, ध्येय है । उस परम विकासमें को शङ्काकार ऐसी कल्पनाएं कर डालता है कि वे प्रभु जब वर्षों, सैकडो वर्षों तक जीवित रहते है तो भोजन करते है । उनसे पूछा जा रहा है कि प्रभु भोजन किसलिए करते है । कुछ तो प्रयोजन होगा । बिना प्रयोजनके साधारण आदमी प्रवृत्ति नहीं करता । मोहीजन यदि ससारकी विडम्बना नहीं मानते, मगर किसी प्रयोजनसे ही तो उन प्रवृत्तियोंमें रहते हैं । शरीरको माना कि यह मैं हूँ, इसकी तरक्की करना है । दुनिया

लिए ही भोजन करते हैं तो वे निग्रन्थ तो नही कहलाते। यह तो बड़ी विडम्बना है कि शरीरका ध्यान रखकर अपने आत्मामे कुछ विकल्प मचाय, कुछ कल्पनारूप प्रवृत्ति करे।

शरीररागकी असारता—भैया! शरीर किसका है? शरीरकी पुष्टि कर लेनेमें आत्माको क्या पुष्टि मिलती है? आत्माकी पुष्टि तो शान्तिलाभसे है। जितना यह शान्त स्थितिमे रहेगा उतना ही समझिये आत्मा पुष्ट है। शरीरके पुष्ट होनेसे आत्माकी पुष्टि नही है। और फिर जीव देहके बन्धनमें पड़ा है, क्लेशोंका तांता दूसरोंका राग लग रहा है, शरीरको हिफाजत भी रखनी पड़ती है, सभी विडम्बना हैं। वस्तुतः पूछो तो शरीर हो तो हमारे सब दुःखोंकी जड़ है। यह दृष्टि जो खिंची खिंची फिर रही है बाह्य पदार्थोंमे, किसी ममत्व मे लग रहे हैं, किसी ममत्वमें लग रहे हैं, आसक्त हो रहे हैं, कल्पनायें उठा करती हैं। यदि यह शरीर न होता, केवल यह मैं आत्मा ही आत्मा होता तो कैसी पवित्र स्थितिमे होता, फिर ये मोहके रागके बन्धन कहाँ ठहरते। लोग चाहते हैं कि रागसे उत्पन्न हुए क्लेशको हम राग करके दूर करेंगे। मगर जैसे कपड़ेमें लगे हुए खूनके दागको खूनमे ही धोनेपर वह साफ नहीं होता है इसी तरह रागसे मोहस हो तो दुःख उत्पन्न होता है और रागसे ही हम उस दुःखको मिटाना चाहें, तो यह मिटानेकी युक्ति नहीं है। करते क्या हैं लोग सिवाय इसके। राग हो परिवारपर, मित्रपर, इज्जतपर, शरीरपर तो क्या होता है? रागसे वेदना उत्पन्न होती है, भीतरमे आकुलता होती है, अशान्ति होती है, उस अशान्तिको न सह सकनेसे काम क्या किया। बस प्रेम करने लगे, रागभरी बातें बोलने लगे, राग बढ़ाने लगे। यह जाननेकी, समझनेकी कोशिश करते हैं कि हमारा तुमपर अधिक राग है, तुम्हारा भी हमपर पूर्ण राग है या नहीं, ऐसी बुद्धि द्वारा, प्रवृत्ति द्वारा जाननेकी कोशिश करते हैं और ये मोही जीव कुछ समझ जाय कि हां जितना हम चाहते हैं उतना ही ये चाहते हैं तो य अपनेमे कुछ मौज सा मानने लगते हैं। पर वहाँ क्या मिला? सिवाय एक अशान्तिके और बन्धन बढ़ानेके, अशान्ति बढ़ानेके। अभी तक कम रागमेये, दूर थे, खबर न थी, परिचय न था, बालबाल व्यवहार न था। जहाँ रागकी बात चली, बन्धन बना, व्यवहार बना अब उतना बन्धन बन गया कि अशांति बढ़ गई। तो रागसे उत्पन्न हुई वेदनाको शांत करनेका उपाय राग करना कभी नहीं हो सकता।

राग आगकी जलन बुझनेका उपाय ज्ञानवर्षण—राग आगमे जल रहे प्राणियोंको इस जलनसे बचा सकनेमे समर्थ है। वर्षा यो कह रहे कि यह ज्ञान चूंकि अपनी भूमिसे दूर पहुंच गया, अब दूरसे अपनी भूमिकी तरफ ज्ञानको लाना है तो जैसे समुद्रका ही जल जब सूर्यके आतापके कारण समुद्रसे उठकर दूर चला जाता है और उसका रूप बदलकर बादल बन जाता है, अब वह ही जल था समुद्रका ही जल, पर

जब इतने ऊंचेसे बादलोसे बरपकर समुद्रमे आता है तो इसे बरपना कहते हैं। यो ही समझिये कि हमारे इस ज्ञान समुद्रसे यह ज्ञान जल रागकी गर्मीमे ज्ञानमय भाप सा बनकर यानें कल्पनाओका रूप रखकर कल्पनाओके रूपसे चलकर बहुत दूर चला गया है। यह ज्ञानजल जो मेरा ही अंग है वह अपना रूप बिगाडकर कल्पनाओका बादल बनकर दूर चला गया है, अब यह मेरे निकट आता है तो इस आनेको हम बरपना कह सकते हैं क्योकि जैसे बादल जब बरपते है और समुद्रमें मिलते हैं तो वह बादल अपने बादलपनेका रूप छोडकर पानी जैसी भाप बनकर ही तो समुद्रमे मिल सकता है इसी प्रकार हमारा यह ज्ञानजल जो कि यथार्थ रूप बिगाडकर कल्पनाओका रूप रखकर मुझसे दूर निकल गया, वह ज्ञान मेरे पास आयगा तो उन कल्पनाओका रूप तोडकर, खतम करके एक विशुद्ध जाननमात्र अपना स्वरूप जैसा रूप रखकर यह मेरे पास आता है तब तो मेरेसे मिल सकता है अन्यथा कल्पनाके रूपमे यह ज्ञान उडा उडा फिर रहा है। सो रागकी वेदनासे उत्पन्न हुई क्लेशकी जलनको बुझानेमे समर्थ एक ज्ञानवर्षा ही है। अन्य कोई उपाय नहीं है। रह रहकर इस २४ घटमें दो एक बार कभी तो अपने आपकी इस सूचकी पुष्टि तो करना चाहिए। मैं आत्मा ज्ञानरूप हूँ। उस ज्ञान द्वारा मैं अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर आऊ तो इस आत्मामे एक बल बढ़ता है।

ज्ञानके सम्पर्कमे सर्व ओरसे समृद्धिलाभ,—भैया ! चाहिये क्या सिवाय आनन्दके और क्या वाञ्छा है ? सभी लोग यही चाहते हैं कि मेरेको उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त हो। आनन्दके सिवाय और कुछ वाञ्छा तो नही। सो उसका यह उपाय है कि मैं अपने आत्माके ज्ञानस्वरूपको समझू और कुछ समय तो इसके निकट रह लू ऐसा जो उपाय है वह इतना अच्छा उपाय है कि जिसमे समस्त समृद्धियां भरी हुई है। ऐसा ज्ञान करने वाले आत्माके विवेकपूर्ण शुभरागसे पुण्य इतना बढता है कि अन्य भावोसे पुण्य उतना नही बढ सकता। ज्ञानी पुरुषकी भक्तिदान आदिक प्रवृत्तिमे पुण्यरस इतना बढता है कि अज्ञानी पुरुष कभी भी नहीं बढा सकते हैं। चक्रवर्ती जैसे वैभवका प्राप्त करनेका पुण्य प्राप्त करना इन अज्ञानी मोही पुरुषोंका काम नहीं है। जो ज्ञानी पुरुष हैं, जिन्हें सयम तपश्चरणसे प्रेम रहा है ऐसे पुरुषोने ही ऐसा पुण्यरस प्राप्त कि चक्रवर्ती हुए। वही चक्रवर्ती अगर अपने ज्ञानको बिगाडले मिथ्यात्व दशामे आ जाय यो भले ही फिर निम्नदशामे आ जाय पर उत्कृष्ट पुण्यरस जो भी प्राप्त होता है वह मोहके कारण नही प्राप्त होता। उसका पूर्वभवका एक श्रेष्ठ आदर्श जीवन था। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जो बन्ध होता है उसके करनेमे समर्थ क्या ये मोहीजन हैं ? अरे ज्ञानी पुरुष ही अपने आपमे अपने ज्ञानस्वरूपका आदर रखकर जो एक आन्तरिक सुख प्राप्त कर रहा है उससे यहा भी तुरन्त आनन्द मिल रहा है और परलोकमे भी उसकी बुद्धि निर्मल रहेगी। वहा भी धर्मसाधना करके वह अपनेको संसारके समस्त सकटोंसे दूर कर देता है।

सर्वविशुद्ध प्रभुके भोजन और शरीरोपचयका प्रयोजन दोनोंकी असभवता – अपने आपकी बात समझनमे, अपने निकट रहनेमें इस ज्ञानस्वरूपका अनुभव करनेमें आनन्द ही आनन्द है। जैसे कहते हैं कि मिश्री सब तरफसे मीठी होती है, इसी तरह इस आत्माका स्मरण करना, इसकी चर्चा करना, इसके निकट बसना, इन कार्योंमें भी स्वाद सर्वत मधुर ही मधुर है। बाकी जो आकुलता, चिंता, तृष्णा, क्षोभ आदिक मचे हुए हैं वे सब तो एक कष्टमयी चीजें हैं। आत्माका स्पर्श करना यह एक मङ्गलरूप, आनन्दरूप कार्य है, यह वैभव इस जीवने अब तक न प्राप्त किया। बस यही इस जीवपर गरीबी लगी हुई है। अन्य बाहरी बातें तो वे सब भिन्न ही हैं। उनसे अपना क्या बड़प्पन मानना ? अधिक धन आ गया तो क्या, लोक मे अपना चला चल गया तो क्या, साम्राज्य हो गया तो क्या, ये तो सब मोहअानसे सम्बन्धित बातें हैं। इनसे आत्माकी अमीरी नही, किंतु अपने आपका सहज ज्ञानस्वरूप क्या है इसका अनुभव आये तो एक ऐसी अमीरी है कि जिसके प्रतापसे ससारके समस्त सकट सदाके लिए टल सकते हैं। आत्माका विशुद्ध वैभव पूर्णरूपसे जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसे सकल परमात्मा प्रभु अरहत देवके सम्बन्धमें यह कहना कि शरीरकी पुष्टिके लिए वे भोजन करते हैं, तो यह बात युक्त नहीं है। यदि मोही जीवोंकी तरहसे वे प्रभु भी शरीरकी पुष्टिके लिए भोजन करने लगें तो फिर उनमें प्रभुता क्या रही। वे तो साधारण पुरुषोंकी तरह दीन हो गए।

ज्ञानध्यानसयमसिद्धिके लिये प्रभुभोजन माननेकी मूढता—प्रभुके तो अब केवलज्ञान हो गया जिसके द्वारा समस्त पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिसमय स्पष्ट साक्षात्कार करते हैं। यदि प्राप्त न होता ज्ञान तो कहा जा सकता कि ज्ञानलाभके लिये वे कुछ काम करते हैं। जहाँ परिपूर्ण ज्ञान लाभ है जिसके आगे और कुछ चाहिये ही नहीं, ऐसा असीम अनन्त ज्ञान जिनके प्रकट हुआ है उनके विषयमें कहना कि वे ज्ञान सिद्धिके लिए भोजन करते हैं तो यह अपवादकी बात है। उनके ज्ञान उत्पन्न हुआ है और विशुद्ध हो जानेके कारण यह ज्ञान अक्षयस्वरूप है, त्रिकालमे कभी नष्ट नहीं हो सकता। तब फिर ज्ञान शुद्धिके लिये भोजन प्रवृत्ति कहना तो प्रभुके लिये अयुक्त है। ध्यानकी बात कहो तो प्रभुमें तो ध्यान परमार्थसे है ही नहीं, क्योंकि ध्यान कहते हैं चित्तके निरोध को। एक तत्त्वमें किसी पदार्थमे किसी विषयमे अपने मनको लगा देनेका नाम ध्यान है। मन प्रभुमें रहा नहीं भावमन प्रभुमें है ही नहीं जिससे कल्पना करें और किसी विषयमें उपयोगको स्थिर करें, ध्यान करें। ध्यान वहाँ सम्भव ही नहीं। करणानुयोगमें जो ध्यान बताये गये हैं—सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती और व्युपरत क्रियानिवृत्ति, सो उपचारसे कहे गए हैं अर्थात् ध्यानका काम है कर्मक्षय वैसे ही उनके हो रहा है तो उन परमात्माके कर्मक्षय निरखकर एक ध्यानका उपचार कर दिया गया है। तो ध्यान प्रभुमें वस्तुत होता ही नहीं है। ध्यान तो परम पहिले ही हो चुका। उस ध्यानके प्रतापसे ही वे परमात्मा हुए। अब परमात्मामे यदि कुछ ध्यान

करना बाकी रहा तो समझो कि वे अधूरे हैं। तो प्रभुप ध्यानकी बात कहना भी युक्त नहीं। संयमकी सिद्धिके लिए भी आहारकी बात लेना युक्त नही क्योंकि संयम है यथाख्यात। वह तो सदा रहता है। यथाख्यातका अर्थ है जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा प्रकट हो गया है, जहा किसी भी प्रकारका विकार नही है, आत्माका जो विशुद्ध स्वरूप है वह प्रकट हो गया है। वह यथाख्यात संयम प्रभुके सदा ही रहता है। अब इसके आगे किस संयमकी सिद्धि करना ? इससे यह बात कहना भी ठीक नही है कि प्रभु ज्ञानध्यानसंयमकी सिद्धिके लिए आहार करते हैं।

क्षुधावेदनाप्रतीकारके लिये प्रभुभोजन माननेकी अज्ञानता—तीसरा विकल्प भी ठीक नही कि प्रभु भूखकी वेदनाका प्रतिकार करनेके लिए भोजन करते हैं अनन्त सुख अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवानको क्षुधाकी वेदना सम्भव ही नही है। अपने स्वभावको लेकर थोडा प्रभुके स्वरूपका निर्णय तो बनावें। प्रभु क्या है ? एक ज्ञान-पिण्ड आनन्दमात्र आत्मा तो अमूर्त है ही, उसमें रूप, रस गंध, स्पर्श नही है पर यह संसार अवस्थामें आत्माका जो यह अमूर्त रूप मूर्त शरीरमे जकड़ा है, एक दूसरेसे व्यवहार करता है, चाहे किसी रूपमे सही, ऐसा जो मूर्तिक ढङ्ग बन गया है यह स्वय के स्वरूपकी सम्हाल न करनेके कारण बन गया है। यही तो विडम्बना है जिसको देखकर मोही लोग खुश होते हैं। यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह तो सारी विडम्बना है। इनसे रहित आत्माकी जो एक विशुद्ध अवस्था है वह अपने अमूर्त ज्ञानस्वरूपमें रहने की अवस्था है, बात तो असलमें वह है आत्माकी। जहा ज्ञान प्रकाशमात्र रह गया, परिपूर्ण रह गया, ऐसा ज्ञानपुञ्ज जो कि अनन्त आनन्दका अविनाभावी है ऐसे अनन्त शक्तिसम्पन्न प्रभुमें किसी प्रकारकी वेदना बताना यह तो अत्यन्त अयुक्त बात है। इसलिये यह तीसरा विकल्प भी ठीक नही कि प्रभु क्षुधावेदनाके लिए भोजन करते हैं।

प्राणरक्षार्थ प्रभुभोजन माननेकी असङ्गतता—अब चौथा विकल्प क्या सम्भव हो सकता है ? क्या प्रभु प्राणोकी रक्षाके लिए भोजन करता है ? क्या यह बात जच सकती है ? अरे ! प्रभु तो चरमशरीरी हैं। चरमशरीरी जितने भी हैं वे सब अपमृत्युसे रहित होते हैं और केवलज्ञान होनेपर क्या यह सम्भव है कि उनकी आयु बीचमें कभी भी खतम हो सकती है ? वे प्रभु अपमृत्युसे रहित हैं, वे अब सर्व प्रकार अमर हो गए हैं। अमर उसे कहते हैं जिसका मरण न हो। मरण तो किसी भी आत्माका नहीं है पर इस संसार अवस्थामे यह जीव अपने मरणकी कल्पना करता है पर आत्माका विनाश नही होता। प्राणरक्षार्थ प्रभुका भोजन बतानेकी बात तो यहा दीनताकी है। दूसरी बात इस जीवके साथ आयुकर्मका सम्बन्ध लगा है। जब समस्त घातियाकर्मोंको दूर करके वे प्रभु अनन्त चतुष्टय सम्पन्न होते हैं तो फिर अप-मृत्युकी बात उनमें सम्भव नही रहती। ऐसे भोगभूमियाँ देव आदि अनेक जीव हैं जिनके अपमृत्यु नही होती। प्रभु तो अनन्त चतुष्टय सम्पन्न हैं, इनकी बीचमें मृत्यु

हो जाय यह बात सम्भव नही । सो यह भी कहना ठीक नही कि प्राणोकी रक्षाके लिए प्रभु भोजन किया करते हैं ।

अनन्त गुणवीर्यसम्पन्न प्रभुमे कवलाहारकी असंभवता— किसी प्रकार प्रभुमे कोई अवगुण लाना यह उनमे सम्भव नही है । प्रभु तो सर्वत समस्त गुण सम्पन्न हैं उनमे एक भी अवगुण नही है । भक्तामर स्तोत्रमें कहते हैं कि—"को विस्मयोऽत्र यदि नामगुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश । दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।" हे प्रभो ! आपका आश्रय समस्त गुणोंने ले लिया है । समस्त गुण आपकी शरणमें आगये हैं । आप समस्त गुणोंसे भरपूर हो गए हैं । इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही है । क्यो आश्चर्य नही ? हे प्रभो, इन गुणोने बहुत कोशिश की कि हम कही रहें आयें । इन गुणोंने बहुत निवेदन किया इन ससारी जीवोसे कि हमें ठहरनेके लिए स्थान दो, पर किसी भी ससारी जीवने इन गुणोको ठहरनेके लिए स्थान नही दिया । अरे भगो, भगो ! ऐसा कहकर सभी ससारी जीवोंने उन समस्त गुणोको भगा दिया । तो वे बेचारे सारेके सारे गुण झकमारकर आपमे आ गये तो इसमें कौनसा आश्चर्य है ? इसका प्रमाण ? देखिये ! जब दोषोंने इन ससारी जीवोके पास जाकर निवेदन किया कि हमें ठहरनेके लिए स्थान दो ! तो सभी ससारी जीवोने आदरसे बुलाया, और कहा—आवो, आवो ! तुम्हारे ठहरनेके लिए यहा खूब जगह है । तो सारेके सारे दोष इन ससारी जीवोके पास आ गए । देखो ना, हे प्रभो ! आपके पास कोई भी दोष न आ सका । तो सारेके सारे गुण प्रभुके पास आ गए और सारे दोष इन ससारी जीवोके पास आ गये । इसमे आश्चर्यकी कोई बात नही । प्रभुके इन गुणोका वर्णन करनेमे मूलमे यह भी बात हो सकती है कि यह जताना कि प्रभु संसारमें उच्च गुणवान तो आप ही हैं ससारी जीव तो दोषोसे भरे हुए हैं, गुण तो समस्त आपके पास आ चुके हैं । तो ऐसे उत्कृष्ट गुण सम्पन्न प्रभुमें किसी भी प्रकारकी वेदनाकी बात जोडना यह सङ्गत बात नही है । प्रभु १८ दोषोसे रहित हैं—क्षुधा, तृषा, ठण्ड, गर्मी, जन्म, जरा, मरण, विषाद शोक आदिक जितने भी दोष हैं वे एक भी दोष अब प्रभुमे नही रहे । ऐसे निर्दोष प्रभुके ज्ञानस्वरूपपर दृष्टि देकर यदि हम भक्ति स्तुति ध्यान आदिक करें तो खुदमें भी एक प्रभाव बढ़ता है जिससे कि स्वयकी उन्नति है । प्रभुका स्वरूप बिगाड़ कर फिर प्रभुकी भक्ति करनेमें कोई सिद्धि नहीं है ।

वेदनीय सद्भावमात्रसे प्रभुमे परीषहका उपचार कथन—शङ्काकार कहता है कि यदि सकल परमात्मा प्रभु भोजन नही करते हैं, तो फिर आगममें यह क्यों कहा कि—'एकादशजिनेपरीषय' । जिनेन्द्र भगवानमें ११ परीषह होते हैं फिर तो इस आगमसे विरोध आ जायगा । समाधानमें कहते हैं कि 'एकादशजिने' इस सूत्र [illegible] कि उन परीषहोका जिनेन्द्र भगवानमे उपचारसे

प्रतिपादन किया गया है। वस्तुत: प्रभुमें परीषह नहीं हैं, किन्तु वेदनीय कर्मका अभी सद्भाव है इस कारण उपचारसे परीषह बताया गया है। उपचारका कारण वेदनीय का सद्भावमात्र है अन्य और कुछ नहीं। परमार्थदृष्टिसे निरखा जाय तो प्रभुमें परीषहोंका सद्भाव होनेपर भी क्षुधा आदिक परीषहोंके सद्भावसे यदि भूख मान ली जाय तो रोग वध, तृष्णाजन्य परिग्रह भी हो जाने चाहिए, तब तो प्रभुके महान दु:ख हो गया जैसे वेदनीयके रहने मात्रसे प्रभुमें भूख मान बैठते हो ऐसे ही फिर रोग मान बैठो क्योंकि रोग भी असाता वेदनीयसे होता है फिर तो प्रभुको बुखार भी आने लगे डाक्टरकी भी जरूरत पड़े, उन प्रभुको पलङ्गपर भी लिटाना पड़े। ये सब ऐब आ जायेंगे। फिर तो उन्हें कोई चोट भी दे, उनका वध भी कर दे तब तो फिर वे प्रभु महान दु:खी हो गए और जब वे प्रभु इतने अधिक दु:खी हो गए तो फिर उनमें प्रभुता ही क्या रही? जैसे यहाँके संसारी लोग भूख प्यास, रोग, शोक, छेदन, भेदन आदिके दु:ख पाते हैं वैसे ही दु:ख प्रभुके लग गए? तो फिर उनमें प्रभुता ही कहाँ रही?

रसनासे भोजन परिज्ञान करनेपर मतिज्ञानका व अन्य बाधाओंका प्रसङ्ग—अब और भी विचार करो। भोजन करनेका ढंग तो सबका एकसा ही होता है। हाथसे कौर उठाकर मुखमें डालकर ही तो सभी लोग भोजन किया करते हैं खट्टा मीठा, चरपरा आदिक स्वादोंका अनुभवन किया करते हैं, तो ऐसा ही भोजन करनेका ढङ्ग उन प्रभुका भी होगा वे भी सब प्रकारके स्वादोंका अनुभवन किया करते होंगे। तब तो भगवानके मतिज्ञान आ गया अर्थात् इन्द्रियज ज्ञान बन गया। तो तुम ही बताओ कि प्रभु जो भोजनमें गुणादिकका ज्ञान करते हैं या जो भी उनका उपयोग होता है वह अगर रसना इन्द्रियके द्वारा हो तब तो भगवानमें मतिज्ञानका प्रसङ्ग आ गया। यदि कहो कि केवल ज्ञानके द्वारा प्रभु भोजनका अनुभव करते हैं तब तो सारा भोजन जो दूसरे प्राणीने भी खाया उसका भी उन्हें अनुभवन हो जाना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानके द्वारा प्रभु भोजनका अनुभव करते हैं और केवलज्ञानसे ही अपना खाया जाना जा रहा ऐसे ही सबका खाया भी जान रहे। यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान अपने शरीरमें ठहरे हुए भोजनका ही अनुभव करते हैं, दूसरेके शरीरमें ठहरे हुए भोजनका अनुभव नहीं करते, क्योंकि भगवान तो निर्मोह हैं, उनमें यह मेरा शरीर है यह दूसरेका शरीर है ऐसी दृष्टिका विभाग नहीं है। उनके लिए सब पदार्थ हैं सो वे समान हैं, उनमें यह विभाग नहीं किया जा सकता कि यह मेरा शरीर है और यह दूसरेका शरीर है, यह मेरा खाया भोजन है ऐसा अनुभव वे प्रभु नहीं किया करते यदि ऐसा अनुभव करें तो वे रागी द्वेषी कहलावेंगे। तो यदि केवल ज्ञानसे अनुभव करते हैं तो केवलज्ञानसे तो सारा भोजन जाना जा रहा है, दूसरा जो खाता और खाया भी जाता। सभी भोजनोंका अनुभव होना चाहिये। इसलिए क्षुधापरीषह और उसका प्रतिकार आहारादि प्रभुमें युक्त नहीं है। तो क्षुधादिक परीषह, यह सूत्र इसका

जो भगवानमें परीषह बताये गये वे उपचारसे बताये गए हैं।

"एकादश जिने" सूत्रमे परीषहोंके अभावकी ध्वनि—एकादश जिने ऐसा सूत्र है उसका अर्थ यदि यह करते हो कि प्रभुमे ११ परीषह हैं तो उसका भाव यह लेना होगा कि वे ११ परीषह उपचारसे हैं, वास्तवमे प्रभुमे ११ परीषह नहीं हैं। और यदि उसका यह अर्थ करते हो कि एक न दश इति एकादश, १ भी नही, १० भी नही, अर्थात् कोई भी परीषह प्रभुमे नही तो इससे यह स्पष्ट होगा कि उपचारसे भी प्रभुमे परीषह नही माने जाते। इस सम्बन्धमे स्पष्ट प्रयोग है कि भगवान क्षुधा आदिक परीषहोंसे रहित है क्योंकि अनन्त सुखी होनेसे। जो अनन्त आनन्दमय है वह परीषहोसे युक्त नही होता। जैसे सिद्ध भगवान अनन्त आनन्दमे सम्पन्न हैं, क्या उनके क्षुधादिक परीषह है ? तो श्वेताम्बर लोग भी यों नहीं मानते कि सिद्धमे ११ परीषह है। जैसे सिद्ध प्रभुमे कोई परीषह नही इसी प्रकार सकल परमात्मा भी अनन्त आनन्दमय हैं इसलिए उनमे कोई परीषह नही है।

भोजन करते हुए प्रभुके अदृश्य होनेके कारणके तीन विकल्प—अब कुछ दो एक आखिरी बातें भी सुनो। प्रभुके कवलाहारके शङ्का समाधानमे बहुत सा समय गुजर गया, आखिर अब विराम लेना चाहिये और कुछ आगेकी प्रयोजनभूत बात सुनना चाहिए। मोक्ष क्या है ? मोक्षका स्वरूप क्या है, इस प्रकरणको आगे बहुत विस्तारसे कहा जायगा। सो इस प्रकरणको अब समाप्त करना ही चाहिए। बहुत हो गया। प्रभुमे कवलाहार माननेकी कोई गुंजाइश ही नही रही। आखिरी कुछ बातोंमे एक बात यह पूछनी है शङ्काकारसे कि भगवान भोजन करते हुए लोगोंको दिखते हैं या नही ? क्या लोगोको ऐसा दिखता है कि यह देखो प्रभु बैठे हुए भोजन कर रहे हैं। इस तरहसे हाथ उठा रहे हैं, इस तरहसे कौर तोड-तोडकर खा रहे हैं ? यदि प्रभु इस तरह दिखें तो उनमें हीनता नजर आवेगी। तो इस बातको शङ्काकार भी नही मानता क्योंकि इसमे तो एक बहुत बडी विडम्बना और तुच्छता जैसी बात लोगोको प्रतीत होने लगेगी। क्या है, जैसे यहाँके मनुष्य लोग भोजन किया करते हैं तो उनमे कोई प्रभुताकी श्रद्धा तो नहीं होती ? दिखनपर श्रद्धामें कमी आ जायगी। तो यहा मानते हैं शङ्काकार लोग कि भगवान भोजन कर रहे हैं, पर मनुष्योंको आँखोंसे नहीं दिखते हैं। तो यह बतलावो कि भगवान जो नही दिखा करते हैं भोजन करते समय सो क्यो नहीं दीखा करते है ? क्या वे कोई अयोग्य काम कर रहे इसलिए एकान्तका आश्रय कर मानो छिपकर वे खा रहे है, सो लोगोको नहीं दिख रहे है ? या गहन अन्धकारमें स्थित होकर भोजन करते सो नही दिखते या विद्या विशेषसे अपनेको उस समय तिरोहित कर देते इस कारण नही दिखते।

भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेके प्रथम दो कारणोपर विचार—यदि एकांत

मे आकर इस तरहसे छिप करके प्रभु भोजन करते है तो इसमे तो बहुत बडी हीनता की बात आ जायगी। जैसे कोई परस्त्रीलम्पटी पुरुष कोई अनुचित काम करता है, पाप करता है तो वह लोगोसे छिप करके करता है क्योकि वह अयोग्य काम है। इसी तरह एकांतमे खाने वाली भी बात हो गई। यदि प्रभु छिपकर भोजन करते है तो इसमे तो एक बहुत बडे दोषकी बात है। वे भी जानते है कि यह खानेकी बात दोषीक है इसलिए वे छिपकर भोजन करते है तो सारा परिणाम ही दूषित हो गया, प्रभुता क्या रही वहाँ तो दीनता आ गई। यदि कहो कि जिस समय प्रभु भोजन करते है उस समय अधेरा छा जाता है। सो उस समय भोजन करते हुए वे दिखा नहीं करते अथवा जब या जहा गहन अन्धकार होता है वहाँ स्थित होकर भोजन करते यह कहना अयुक्त है क्योकि वहा अन्धेरेकी तो सम्भावना है ही नही। प्रभुका शरीर ही ऐसा प्रकाशमय है कि उसकी दीप्तिसे ही अन्धकार दूर हो जाता है। प्रभु जहाँ बैठे वहा सर्वत्र प्रकाश बना रहता है। उनका देह स्वयं प्रकाशमय है, अन्धकारकी भी सम्भावना नही है जिससे माना जाय कि प्रभु अन्धेरेमे खा रहे है इसलिए लोगोको नहीं दिखते। तो यह विकल्प नहीं उठाया जा सकता कि भगवान इसलिए नहीं दिखते है आंखोसे कि वहा अंधकार छाया रहता है।

विद्याविशेषके उपयोगसे भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेका विकल्प—अब शङ्काकार कहता है कि भगवान आखोसे इस कारण नही दिखते कि भगवानमे ऐसी विद्या विशेष है कि जिस समय वे भोजन करते हैं उस समय वे ऐसी विद्याका उपयोग करते है कि वे भोजन करते हुए लोगोको न दिखे। यहा भी जादूगर लोग ऐसे होते है जो ऐसा आखोको धोखा दे देते हैं कि कुछसे कुछ दिखने लगता है। अगर बहुत से लोग खडे है घडी बाँधे हुए और समय तो हो करीब ४ बजे दिनका, पर जादूगर कहदे कि देखो इस समय घडीमे ठीक १२ बज रहे है तो देखने वाले उन सभी लोगो को अपनी अपनी घडीमे १२ बजनेका ही समय दिखता है। अब तथ्य उसमे क्या है, बात क्या है इसपर हम कुछ नही कह रहे है लेकिन ये जादूगर लोग ऐसी ही अनेक बातें दिखा देते है कि लोगोको कुछसे कुछ दिखने लगता है। कहो एक रुपएका दो रुपया बना दे। एक जादूगर था। तो उसने बहुतसे खेल दिखाये पर एक खेल ऐसा दिखाया कि जब वह अपना डिब्बा लेकर चला किसी मनुष्यकी टोपी उठाकर हिलाई तो उस टोपीसे कुछ कनखना करके रुपए गिरे, यो ही जिसकी भी कमीज, धोती, कुर्ता आदि पकडकर हिलाया, वहीसे खनखनकी आवाज आई, बादमें वह सभी लोगोसे एक एक दो दो पैसा मागने लगा। तो वहा था क्या ? केवल आखोका धोखामात्र था। तो ये तान्त्रिक लोग भी कुछस कुछ बात करके दिखा देते है। तो इसी प्रकारसे ये प्रभु भी अपनी विद्याविशेषसे ऐसा दृश्य उपस्थित कर देते है कि प्रभु भोजन करते जाते है पर लोगोको दिखते नही है ऐसा शङ्काकार कह रहा है।

विद्याविशेषके उपयोगसे भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेके विकल्पका निराकरण—अब उक्त आशङ्काका उत्तर देते हैं कि यदि वह अपनेको ओझल करने के लिए विद्याविशेषका उपयोग करते हैं तो फिर उनमे निर्ग्रंथता कहां रही ? बडे ऊँचे महर्षिजनोमे अनेक ऋद्धिया उत्पन्न हो जाती हैं और उन्हें पता भी नही रहता कि मेरेको कोई ऋद्धि उत्पन्न हुई है। जिस समय मुनि अकम्पनाचार्यके सघपर हस्तिनापुरमे विपत्ति आयी थी कि मुनिहत्याप्रयासमें कीलित बलि आदिक ४ मन्त्री देशनिकाला पाकर यहा वहा डोलकर जब हस्तिनापुरके राजा पद्मके यहां मन्त्री बन कर रहने लगे थे उस समय एक सिहपल-नामक विरुद्ध राजाको छल कपटसे बलिने अपने वशमें कर लिया, उस समय राजाने उस बलि मन्त्रीपर प्रसन्न होकर यह वचन दिया था कि तुम्हे जो मांगना हो मांगलो। उस समय बलिने यह कह दिया था कि हमारे वचनको भण्डारमें रख लो समय पाकर माग लेंगे। जब अकम्पनाचार्य आदिक ७०० मुनियोका सघ हस्तिनापुर आया, उस समय बलिने अपनी कषायको पूरा करने का मौका समझा। बलिने ७ दिनका राज्य उस राजासे मांगा। अब तो वे बलि आदिक चारो मन्त्री पूर्ण स्वतन्त्र हो गए। मुनिसघको चारो ओरसे कांटोंसे वेढ दिया, उसके भीतर और भी कूडा करकट आदिक गंदी चीजें भरदीं और उसमें आग लगा दी। उस समय उन मुनियोके कण्ठ रुद्ध हो गए थे पर वे सब ससार, शरीर, भोगोंको अनित्य जानकर जीवनकी इच्छा न रखकर ध्यानस्थ होगए। उस समय श्रवण नक्षत्र कांप रहा था। सावन सुदी पूर्णिमाका वृत्तान्त है, चतुर्थकालकी यह घटना है। उस कम्पित श्रवण नक्षत्रको देखकर अन्य देशकी पहाडीपर स्थित एक मुनिराजने रात्रिके समय हाय शब्द बोला। साधुजन रात्रिको मौन रहते हैं, मगर यह एक भयानक उपद्रवका समय था तो हाय शब्द बोल आया, यद्यपि साधुजन जरा भी अपने नियम सयमसे किसी भी परिस्थितिसे थोडा भी डिगते हैं तो उसका भी वे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होते हैं, तो भी परिस्थितिया ऐसी आती हैं कि जहां धर्मका अधिक सम्बन्ध है, तीर्थरक्षाका तो बोल आना ऐसा हो जाता है, तो उस समय उनके निकट पुष्पदन्त क्षुल्लक थे उन्होने पूछा महाराज ! क्या विपत्ति है ? तो बताया कि एक सघपर ऐसी आपत्ति आ रही है और उसके निवारणका एक उपाय भी है। तो पुष्पदन्त महाराज बोले—वह कौनसा उपाय है? मुनिने कहा कि विष्णुकुमार-मुनिको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है, वे यदि चाहें तो उस उपद्रवको समाप्त कर सकते हैं और जिस तरह कर सकते हैं वे अपने बुद्धिबलसे विचार लेंगे। तब यह पुष्पदन्त क्षुल्लक इनको विद्याविशेष सिद्ध थी, सो शीघ्र ही विष्णुकुमार मुनिराजके पास पहुचे और बिनती की कि महाराज ! अकम्पनाचार्य आदिक ७०० मुनियोके सघपर ऐसी विपत्ति आई है और उसका उद्धार कर सकनेमे आप ही समर्थ हैं। उपद्रवको बात सुनकर विष्णुकुमार बोले कि वह कौनसा उपाय है ? तो पुष्पदन्त महाराजने कहा कि आप को विक्रिया ऋद्धि सिद्ध है। अब आप स्वय विचार कर सकते कि कौनसा उपाय है

जिनमें वे प्रमत्त मुनि संकटसे बच सकते हैं । बलिने ७ दिनका राज्य मांगकर ब्राह्मणोंको दान देनेका बहाना रखकर लोगोंपर छार डाल दिया और उस मुनिसंघ पर इतना बड़ा उपद्रव किया । तो विष्णुकुमार मुनिने पूछा कि हमको विक्रिया ऋद्धि भी मिल है क्या ? बात यहां यही बतानी थी कि बड़े बड़े योगीश्वरोंको बड़ी बड़ी ऋद्धियां भी उत्पन्न हो जाती हैं पर उन्हें उनका पता नहीं रहता । आखिर विष्णु कुमारने परीक्षा करनेके लिये अपना हाथ बढ़ाना शुरू किया तो हाथ बढ़ता ही गया, अब क्या था, अति छोटा वामन शरीर धारणकर विष्णुकुमार मुनि बलिके पास पहुँचे और बोले —हमें भी कुछ दान दो ! बलिने कहा —जो चाहो सो मांगलो । तो विष्णुकुमारने कहा कि हमें तो ३ पग भूमि चाहिये और कुछ भी न चाहिये ... नहीं, नहीं और कुछ मांगो तीन पग भूमिसे क्या होगा ? तुम वैसे ही नाटे कदके हो ! तो विष्णुकुमारने कहा —नहीं, हमें और कुछ न चाहिये ! तो बलि बोला — अच्छा, तीन पग भूमि नापलो । विष्णुकुमार मुनिने विक्रियाऋद्धिसे अपने शरीरको इतना बड़ा बना लिया कि दो पगमें ही सारे मनुष्य लोकको नाप लिया, तीसरे पगके लिए उन्हें जगह ही न मिली । यह दृश्य देखकर बड़ा हाहाकार मच गया । बलिसे विष्णुकुमारने तीसरा पग धरनेके लिये जगह मांगी तो वह बलि क्षमा मांगता हुआ कहता है—महाराज ! तीसरा पग धरनेके लिये हमारी पीठ है । क्षमा करो ! आखिर जैसा विष्णुकुमारने कहा वैसा बलिको करना पड़ा । इस तरहसे उन ७०० मुनियोंका उपसर्ग दूर हुआ । तो मूल बात यह बतानी थी कि बहुतसे योगीश्वरोंको बड़ा अतिशय ऋद्धिका प्राप्त हो जाता है फिर भी वे उसका ध्यान भी नहीं करते, अपने विद्याविशेषका उपयोग नहीं करते । फिर जो परमात्मा हो गए उनमें विद्या विशेषका उपयोग करनेकी बात थोपना यह तो असङ्गत बात है । यदि वे प्रभु ऐसा करने लगें तो फिर उनमें निर्ग्रन्थता कहां रही ? प्रभुपने की बात तो दूर जाने दो ।

सकल परमात्माको अदृश्य होनेकी अनावश्यकता— अच्छा, अब एक बात और बतलावो कि ये प्रभु तो अदृश्य है किसीको दिखते नहीं हैं तो ऐसे प्रभुको आहारदाता आहार कैसे दे पाता होगा ? जब कोई दिखता ही नहीं तो वह आहार किसे दे ? तो यह बात कहना युक्त नहीं है कि भोजन करते हुएमें भगवान दूसरेकी आंखोंसे नहीं दिखते हैं । यदि कहो कि प्रभुका ऐसा अतिशय विशेष है उसमें विकल्प क्या उठाते हो, क्यों नहीं दिखते, क्यों नहीं दिखते, अरे प्रभुके एसा अतिशय है कि वे भोजन करते जाते हैं फिर भी दिखाई नहीं देते । तो ऐसा ही अतिशय यहां तुम क्यों नहीं विशुद्ध मानलो कि प्रभुमें भोजनका अभाव है । वे कवलाहार नहीं करते । अन्य अन्य अभिप्राय लेकर प्रभुमें कवलाहार सिद्ध करना और उनकी प्रभुताकी लाज रखने की कोशिश भी करना यह बात सिद्ध नहीं हो सकती है । प्रभु हैं परमात्मा । तीनों लोकके जीवों अधिपतिके हैं । वे क्षुधा तृष्णा आदिक समस्त दोषोंसे रहित हैं, ऐसा परमात्माका स्वरूप है और यही परमात्म स्वरूप हम सब उपासकोंके लिए ध्येय है ।

परमपवित्र आदर्श ध्येय सकल परमात्माके कवलाहारकी असंभवता — देखो हम आप लोगोके मन तो है ही और यह कहीं न कहीं लगता है, इस मनके लगानेका ही नाम भक्ति है। भजन करना और सेवन करना एकार्थक है। पर भजन करना यह शब्द सभीको अच्छा लगता है, सेवन करना यह शब्द किसीको नही अच्छा लगता, पर हैं दोनो एकार्थक शब्द। भगवानके ज्ञानानन्दादिक गुणोके समान ही जो अपना स्वरूप है उस स्वरूपको उपयोगमें लेना उस स्वरूपका इस्तेमाल करना, उसे व्यवहारमे लेना तन्मात्र अपना आचरण करनेका प्रयास करना यही तो भगवानका सेवन है। तो उस प्रभुका ध्यान करके भक्तजन करते क्यो हैं ? उनका उद्देश्य क्या है ? उनका उद्देश्य मात्र एक ज्ञानानन्दका है। जीवनमें अनेक काम किए हैं। जीवन भर सांसारिक खूब विषय कषाय भोगे, अनेक प्रकारके सांसारिक मौज माने, सभी प्रकारके प्रयोग कर लिए इसलिए कि हमे सुख मिलेगा, मगर उन सब प्रयोगों से इस जीवको अभी तक सुख न मिला क्योकि सुख मिला होता तो फिर दु खी होने की जरूरत क्या थी ? इस दु खकी ही परम्परामे पडा हुआ यह जीव जन्ममरणके घोर दु खमयी चक्कर लगाता हुआ अपनेको सदा बरबाद ही करता रहा। इस जीवने अभी तक लाभकी कुछ भी बात न पाई। हम अभी अपनी अपनी दुनियामे नही आये हैं, बाहरी बाहरी दुनियामें ही हमने अपना उपयोग लगाया है। हम इस उपयोगसे हटकर अपने निजी स्वरूपकी अपनी दुनियामें आयें तो ऐसा पवित्र आनन्द प्रकट होगा कि जो मैल जो सकट इस जीवके साथ लगे हुए हैं वे समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही उपाय करके जिन्होने घातिया कर्मोंका विनाश किया और अनन्त चतुष्टयस्वरूप पाया जिनका ज्ञान अनन्त है, जो कुछ भी सत् हैं, थे, और होंगे, वे सब उनके ज्ञानमें आये हैं। या यो कहो कि जो उनके ज्ञानमे नहीं है वह सत है ही नही। जो है वह सब ज्ञानमें आया। इतना जिनका विशाल ज्ञान और ऐसे विशाल ज्ञानका अवलोकन करने का दर्शन और सदा निराकुल रहे, भविष्यमें कभी भी उस स्वरूप विकाससे रचमात्र की हानि नही हो सकती है, ऐसे जिनके अनन्त सामर्थ्य है, अनन्त आनन्द है, अनन्त चतुष्टय सम्पन्नता है ऐसे प्रभु तो कवलाहार रहित ही रहना चाहिए।

निरावरण विशद ज्ञानके सकल प्रत्यक्षत्वकी सिद्धि — यह प्रसङ्ग इस बात पर चला था, प्रकरण मूलमें यह था कि कोई प्रत्यक्ष ज्ञान होता है निरावरण। इसपर एकने शका की कि निरावरण ज्ञान प्रत्यक्ष नही होता। अनादिमुक्त ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है। एकने कहा कि निरावरण ज्ञान तो होता है मगर प्रकृति ही सावरण थी, वही निरावरण हो गई, वही सर्वज्ञ भगवान है। इसके बाद श्वेतांबर सिद्धांतवादी कहते हैं कि तुम्हारी सब बातें ठीक हैं मगर प्रभुकी स्थिति भोजन किये बिना नही रह सकती। सो इन्हें भोजनकी सुधि आई और प्रभुमे भोजनकी सिद्धि करनी चाही, मगर कवलाहार प्रभुमें सम्भव हो ही नही सकता। वह प्रभु अन्तरङ्ग बहिरङ्ग समस्त दोषोंसे रहित है। ऐसे समस्त दोषोंसे रहित जो सकल परमात्मा है वह प्रत्यक्ष ज्ञानी

है। उन पर घातिया कर्मोंका आवरण नहीं रहा। उनका ध्यान करनेसे हमे अपनी शान्तिका मार्ग मिलता है। और जब तक राग है, ससार है तब तक ऐसा पुण्यवर्द्धन मिलता है कि इनको यहा भी समृद्धियाँ प्राप्त होती है और अन्तमे सबका परित्याग करके निर्वाण प्राप्त कर लेते है। इसलिए हमे इन प्रभुकी भक्ति करना योग्य है।

जीवका अनादिमुक्त स्थान—इस जीवका आदिस्थान निगोद है। इस जीवके चिरकाल बसे रहनेके घर बताये जा रहे हैं। जीव चिरकाल तक जिस घरमे रह सकता है, रहता है और रहेगा वे दो हैं—एक तो निगोद और दूसरा मोक्ष। तो यह जीव अनादिसे निगोदमें बसता चला आया था। जहाँ बहुत छोटा शरीर, एक शरीरके अनन्त जीव धनी, एक श्वास लें तो सबका श्वास हो, और लब्धपर्याप्तक होने से श्वासकी बात ही नही है। एक श्वासमे १८ बार जन्म मरण हो, अर्थात एक सेकेण्डमे करीब २३ बार जन्मते और मरते हैं। जहा जन्म लेना, मरण करना, आयु का क्षय होना, नई आयुका भोगना फिर उसका क्षय होना यही निरन्तर जिनका काम है। केवल स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा बहुत तुच्छ जिनका ज्ञान है, जो सदा आकुलताओमे ही निरन्तर पडे रहा करते हैं जिनकी आकुलताओका व्यक्त रूप भी हम आप जैसा नही बन पाता और जैसे भीतर धधकती आग है, ऊपर पता नही पर भीतर जल भुन रहे है यो ही वे निगोदिया जीव आकुलित रहते हैं।

एकेन्द्रियके भवोंमे भी तुच्छता—उस निगोदभवसे निकलनेका क्या उपाय रचे ? जब सुभवितव्यतासे स्वयं ही परिणामोमे यथानुरूप मदता आती है। किसी प्रकारका कोई शुभ भावसा बना, कुछ बना तो यहा वहासे निकलते हैं पर निकलकर यदि पृथ्वी बने, आग, हवा, पेड इनमें ही रमा, इनमे ही जन्म लिया तो निगोदसे कुछ तो अच्छा हो गया। लेकिन एकेन्द्रियके जालसे छुटकारा तो नही मिला, इसमें भी कितना दु ख है। पृथ्वीको खोदलो, काटलो तो क्या पृथ्वीके जीव बाधित नही होगे ? पानीको गर्म किया जाता, आगको बुझा दिया जाता, हवाको रबडमें रोक लिया जाता, पेडोको छिन्न भिन्न कर दिया जाता तो क्या यह उनपर क्लेश नहीं ? ये तो परघातजन्य बातें हैं पर स्वय अपने आपमे जो निरन्तर आकुलता बनी रहती है वह तो है ही।

इन्द्रियादि असञ्ज्ञी भवोमे भी हितदर्शनकी असभवता—एकेन्द्रियसे निकले तो दो इन्द्रिय जीव हुये। इतना विकास हुआ कि अब रसना इन्द्रियसे भी यह जीव ज्ञान करने लगे। जैसे लट, केचुवा, जोंक इनमे जरा ज्ञान और बढ गया। अब उसमें रसना इन्द्रियके द्वारा कैसा ज्ञान बढा सो हम सब उसमे समझ बनायें तो वह तुच्छ लगता है। वहाँसे तीन इन्द्रिय जीव हुए, तो इस जीवमे सिर्फ इतना ही और विकास हुआ कि घ्राण इन्द्रियके द्वारा भी ज्ञान करने लगे, जैसे चींटी कीडी आदि।

ये गधका भी ज्ञान करते हैं और जो इष्ट गंध हैं उन्हें पहिचान जाते हैं। इससे कुछ और विकास हुआ न चार इन्द्रिय जीव हुए। ये उडने वाले, कई पैरों वाले जो जीव नजर आते हैं वे चार इद्रिय जीव हैं। जैसे भँवरा, मच्छर, टिड्डी आदि। इनको चक्षु इद्रिय प्राप्त हो जाती है तो इनमे रूपका ज्ञान करनेकी भी थोड़ी सामर्थ्य आ जाती है। इससे और विकास हुआ तो पचेन्द्रिय जीव हुये। अब कानोके द्वारा भी कुछ ज्ञान करनेका विकास हो गया लेकिन मन न मिलनेसे वहाँ भी अहितसे बचने व हितके मार्ग मे लगनेका पुरुषार्थ नहीं चल सकता।

सज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी हितका अप्रयास और संसारभ्रमणकी असमाप्ति—पञ्चेन्द्रिय भी हो जायें और मन मिले, इतना होनेपर भी यदि पशु रहे, सिंहादिक क्रूर जानवर रहे तो पापकर्मोंको करके ही अपना अनर्थ कर लेते हैं। नारकी बने तो वहाँ भी क्लेश भोगते हैं। मनुष्य बने तो यहाँ भी यदि विषय कषायोंमें ही रमकर जीवन खो दिया तो उससे लाभ क्या पाया ? मनुष्य होनेमें और पशु पक्षी होनेमे फिर तो कोई अन्तरकी बात न रही। कदाचित मरकर देव हुए तो वहाँ भी विषयोंमे रमकर दूसरोंके सुख साधन देखकर, दूसरोंके वैभवको निरखकर अन्दर ही अन्दर जल भुनकर जीवन खो दिया, तो उसमें भी कोई लाभकी बात न मिली। ऐसी यह संसारकी भटकना चल रही है।

ससार परिभ्रमणका कारण—ससारकी भटकनाका कारण है मिथ्या श्रद्धान मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण। जो चीजें अपनी नहीं उन्हें मान लिया कि ये मेरी हैं, घर, धन, सम्पदा, परिवार, ठाटबाट, इज्जत, सम्मान आदिक, ये सब इससे भिन्न चीजें हैं, पर इन्हें मान लेते हैं कि सब मेरी चीजे हैं, यही तो मिथ्याश्रद्धान है। जैसे सबका सकोच करके थोडे शब्दोंमें कहा जाय तो यही कि पर्याय बुद्धिपना है जो पर्याय मिली उसीको मान लिया कि यह ही मैं हूँ। यह मिथ्या श्रद्धान लदा हुआ है और इसी मिथ्या श्रद्धानके विस्तारमें यो अनेक अनुभव चल रहे हैं। शरीर उत्पन्न हुआ तो इसने समझ लिया कि मैं उत्पन्न हो गया। शरीरका वियोग हो गया तो इसने समझ लिया कि मैं उत्पन्न हो गया। शरीरका वियोग हो गया तो इसने समझ लिया कि मैं मर गया। जो काम अच्छे हैं ज्ञान और वैराग्यके हैं उनकी ओर तो रुचि नहीं जगती, उन्हें तो दुखका कारण माना। अरे कहाँ फस गए, आज तो पडितोंके चक्कर में पड गए। अब यहाँ इस ज्ञानसभासे इस ज्ञानचर्चाके बीचमेंसे कैसे भागा जाय ? कुछ कष्ट सा अनुभव करते। प्रथम तो इस ओर आते ही नहीं हैं। सम्वेगकी बातें भी नहीं रुचती। भला जिस आत्माका निराहार स्वभाव है, नि शरीर रहनेमें ही जिस आत्माकी भलाई है, यह कल्याणकी अन्तिम अवस्था है। उसे भूलकर उत्साह-हीन, कायर हो रहे हैं। अगर बात आये कि रातको न खावो तो बडा बोझ सा लगता, बुरा सा लगता। भला इन २४ घटोंमे मनुष्यताके नाते दिनमे ही एक दो

बार खा लिया तो इससे स्वास्थ्य बिगडता है कि सुधरता है ? बीमार होनेपर डाक्टर लोग खाना खानेके लिए बताते हैं कि छोडनेके लिए ? खाना छोडनेके लिए बताते हैं। तो यह तो केवल स्वच्छन्दताकी मनकी प्रवृत्ति है जो कि जरा भी सयमको चित्त नही चाहता, और रागभाव स्नेहभाव जो अहितरूप हैं उनकी बात आये तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। अभी कोई सिनेमाका प्रोग्राम बन जाय तो देखो कितना हर्षित होकर कितने उमङ्गसे उस प्रोग्राममे आते है। तो जीवोको विषयोका सस्कार बनानेमे ज्ञान और वैराग्यकी बात तो रुचती नही और रागकी बात रुचती है, धनकी बात रुचती है उसकी कभी बाट नही जोहते। जो आत्माकी अन्तिम पावन कल्याण की अवस्था है। मैं कब ऐसा समय पाऊ समस्त सम्पर्कोंसे रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रह जाऊ, ऐसी बात मनमे कहा आती ? स्वप्नसम मायावी दुनियामे इस कल्पित पर्यायकी यशकी ठान रखी है दुनियामें मेरा नाम हो, विषयोके भरपूर साधन मिलें। विषयोमेसे रुचनेकी जिन्होंने अपनी प्रवृत्ति की है उन्हे इन विषयविषोका ही पान करना रुच रहा है। कुछ तात्कालिक मधुर होनेके कारण उन्हे मोक्षकी प्रतीक्षा करनेकी बात कैसे आ सकती है। यो मिथ्या ही श्रद्धा है और ऐसा ही अपना उपयोग बनाये रहते हैं और विषय-कषायोका ही आचरण कर रहे हैं इससे ससारमे इतना परिभ्रमण कर रहे हैं।

ससारसङ्कटोसे मुक्त होनेके मार्गका दर्शन कदाचित किसी जीवको कुछ ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे मदकषायके अवसरसे कुछ लाभ उठानेकी बात आये और कुछ आत्महितकी रुचि जगे तो वह वस्तुस्वरूपके यथार्थ जाननेका अभ्यास रखता है और ऐसा ही अपने ज्ञानको बनाता है, परसे उपेक्षा करके एक इस निज केवल ज्ञान आनन्दस्वरूप अपने आपमे ठहरनेकी सोचता है, उद्यम करता है और इस यत्नपे जब कभी ज्ञानके द्वारा इस ज्ञानस्वरूपकी अनुभूति हुई तब यह जानता है—अहो मेरा सर्वस्व तो यह है और ये सारे समागम सम्पर्क तो अहितरूप ही हैं। ऐसे अन्त यत्न-शील आत्माको सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। सम्यक्त्वके समान इस जीवको कुछ भी हितकर नहीं है। जीवको सम्यक्त्व हो अर्थात् इस शरीर तकसे भी निराला केवलज्ञान ज्योतिमात्र आनन्द भरपूर अपने आपके सर्वस्व स्वरूपरूप इस अतस्तत्त्वका भान हो तो इस जीवको ससारसे छूटनेका मार्ग मिलता है।

ज्ञानी सतका सवेगपरक तत्त्वचिन्तन—यह अन्तस्तत्वका रुचिया ज्ञानी सत अपनेमें तत्त्वचिन्तन करता है। जगतके समस्त पदार्थोंका समागम अहित है, विनाशक है ये सम्पर्क सदा नही रह सकते हैं पर मेरे आत्माके इस स्वरूपका सम्बन्ध तो जो स्वय आनन्दमय है निरन्तर रहा करता है। इस जगतमे मेरे को मेरे सिवाय अन्य कुछ शरण नही है, बल्कि परको शरण माननेकी दृष्टि करनेसे मैं अपने स्वरूप-दृष्टिसे दूर हो गया, रीता हो गया, तो अशरण बन गया, परको शरण माननेकी बुद्धि

में यह मैं अशरण हो जाता हूँ। इस मेरेका मेरे सिवाय और कोई शरण नही। इस मेरेका केवल यह मैं ही ज्ञानस्वरूप शरण हूँ। वही स्वाभाविक आनन्द है। ससार के इन रागादिक भावोमे तो दुःख ही दुःख है। इन सब दुःखोका करने वाला और दुःखोसे छूटनेका उपाय बनाने वाला और दुःखोसे छूट सकने वाला यह मैं सर्वत्र अकेला ही तो रहा करता हूँ। अकेला ही ससारमे रुलता हूँ, अकेला ही ससारसे छूट कर मुक्त होकर अपने आपमे समृद्धिका अनुभव करता हू। मेरा मेरे सिवाय अन्य कुछ मेरा नही है। यह मैं स्वय पवित्र हूँ। उस ज्ञानस्वरूपमे अपवित्रताका कहाँ अवसर है? मोही पुरुष जिस शरीरमें आसक्त हो रहे हैं, दृष्टि बना रहे हैं यह शरीर भीतरसे ऊपर तक सर्वत्र गदा है, अशुचि है, अत्यन्त अपवित्र है। मनुष्यका यह अशुचि शरीर तो इससे वैराग्य बनाकर विरक्त रहकर आत्मसाधना करके मोक्षका उपाय बनानेके लिए मानो मिला है। देखो, तो जब इतना गदा शरीर मिला इसपर तो मोही इतराते हैं यदि यह कुछ देवोके शरीरकी भाँति भला सा मिल जाता, गदगी न होती तब तो न जाने ये जीव कितना इस शरीरमे रम जाते। तो यह शरीर मिला है विरक्त रहनेके लिए किन्तु मोही जीव विष्टाके कीडाकी भाँति इसी अपवित्र शरीर मे रमते हैं। इससे इस आत्माका कुछ भी हित नही है। अपने आपके पवित्र ज्ञानानन्दस्वरूपको निहारनेमें ही कल्याण है। इस ही वृत्तिमे कर्म रुकेंगे। कर्मोका बन्ध कटेगा और यह लोकभ्रमण मिटेगा। ऐसा महा दुर्लभ यह रत्नत्रय इस जीवको जब प्राप्त होता है, जब यह जीव धर्ममे आता है तब समस्त ससार शरीर भोगोसे परिग्रहो से आरम्भोमे विरक्त होकर निर्ग्रन्थ होकर केवल आत्माकी साधनामे रहा करता है।

साधु सतो द्वारा ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वकी साधना—*ततज्ञ साधुजन* अपने आत्मसिद्धिकी धुनमे कहाँ रहते हैं? गुफामे बनमे। ककरीली जमीनमें पडे रहते हैं। बाह्य दुःखोकी ओर कुछ भी ध्यान नही है। शरीरके आरामकी तरफ उनका कोई ख्याल नही है। केवल एक इस जीवनको रखनेके लिए जिसमे कि सयमकी साधना करना है। जब कभी क्षुधाकी वेदना होती है तो शरीरकी, प्राणकी रक्षाके लिए योग्य विधिसे आहारचर्यामे भोजन ले आते हैं। मैंने तुझे खिलाया, अब तुझे काम भूगा, बस ज्ञानमे, ध्यानमे, स्वाध्यायमें, इनमे अपने आपके चित्तका लगाना है। और, विषय कषायोसे विरक्ति बढ़ानेके अर्थ अनेक प्रकारके तपश्चरणोमे लगाना, इस प्रकार अनेक यत्नोसे साधुजन एक इस आत्माकी ही साधना करते हैं, जो आत्मा ज्ञानमय है जिस ज्ञानकी यहा चर्चा चल रही है।

ज्ञानी निर्ग्रन्थ सतोकी विशुद्धिवृद्धि—*ज्ञान कहो, प्रमाण कहो।* प्रमाण का स्वरूप बताया जा रहा है, प्रमाणके भेद बताये जा रहे हैं और इस प्रमाणमे प्रत्यक्ष प्रमाणकी चर्चा चल रही है। जिस ज्ञानमे ये सब विकास है, इन सब विकासों मे स्रोतभूत जो अपने आपमे सहज ज्ञानस्वभाव है उसकी उपासनामे साधुजन रहा

करते हैं। तो जब इस ज्ञानस्वभावकी आराधनामे रह रहकर साधुजन इसपर अपना अधिकार पा लेते है और ऐसा अधिकार पा लेते है कि जैसे गृहस्थको धनीजनोको अपने खाने पीने आदिकका साधन सुलभ है। जब चाहा तब खाया, जब चाहा तब लेटा जब प्यास लगी तभी झट टोटी खोला और उस कल्पवृक्षसे पानी झरने लगा, जैसे चाहे सुखके साधन पडे है, मन आया तो भोग लिया। देखो, इसमे अब भी पराधीनता है, विलम्ब लगता है, लेकिन साधु पुरुष जो कि आत्मसाधनामे अभ्यस्त है उन्हे विलम्ब नही लगता। जब दृष्टि दी, जब ही भीतरम निहारा तभी वह परमात्वत्व समक्ष है।

साधु सतोकी अप्रमत्तता और वीतरागताप्राप्ति—कारणपरमात्मतत्त्वकी आराधनाके अभ्यस्त साधुजन अब प्रमाद अवस्थाको छोडकर अप्रमत्त होते है, निर्विकल्प समाधिमे आते है अब बुद्धिपूर्वक रागादिकका अश भी नहीं रहता है। साधु-अवस्थामे भी समाजके शिक्षणमे, सम्बोधनेमे कुछ विकल्प भी उठते है, राग भी सताते है पर बीच-बीच उनसे छूटकर वे अप्रमत्त ज्ञानस्वरूपका ध्यान भी करते हैं, लेकिन अब इस ज्ञानस्वभावके निरन्तर आराधनके बलसे ऐसा विकास हुआ है कि अब वे निर्विकल्प समाधिमें आ गये। राग भी अब नही सता रहा और अबुद्धिपूर्वक जो रागद्वेषकर्म बध गये थे व भी सब निर्जराको प्राप्त हो रहे है। होते-होते इस निर्विकल्प समाधिके बलसे ही एक अवस्था ऐसी आती है कि जहा समस्त मोहनीयकर्म दूर हो जाते है, वीतराग हो जाते हैं, रागद्वेष रंच नहीं रहते, इतने पर भी जब तक (अन्तर्मुहूर्तमात्र) केवलज्ञान नही होता, उसे कहते है १२ गुणस्थान, क्षीणमोह। १०वें गुणस्थानके अन्तमे रचमात्र भी जो लोभ था उस सबका भी क्षय हो गया, और अब क्षपक श्रेणीमे १०वें गुणस्थानसे १२वे में आये, वीतराग हो गए, पवित्र हो गए। अब यह इस वीतरागतामें छोटे ही अन्तर्मुहूर्तमे रहकर केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है।

वीतराग आत्माके अनन्त चतुष्टयका लाभ—जब केवलज्ञान हुआ कैसे हुआ? बाहरी बात तो यो ही है कि समस्त ज्ञानावरणका क्षय होनेसे हुआ, ज्ञानावरणके क्षयका निमित्त पाकर यह केवलज्ञान प्रकट हुआ। तो यह केवलज्ञान निरावरण है। इसमे कोई आवरण नही है, विशद है। जगतमे जो भी सत् हैं वे सब एक साथ ज्ञात हो रहे, ऐसा सम्पूर्णरूपसे विशद निरावरण ज्ञान सकल प्रत्यक्ष कहलाता है। ऐसा केवलज्ञान जहा प्रकट हुआ है, उसके ही साथ साथ केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति प्रकट हुई है, उसे कहते हैं अनन्त चतुष्टय। चतुष्टय मायने चौकडी कोई चौकडी खराब होती है कोई भली। जब चार बच्चे जुडते हैं तो लोग कहते हैं कि इस चौकडीमे पडकर यह बच्चा खराब हो गया और जब चार समझदार आदमी जुडते हैं तो लोग कहते हैं कि इस चौकडीने भला निर्णय विचारा। तो यहा नारक,

तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि चार गतियोंकी चौरासी है जिसमें समार परिभ्रमण करता है, और यहांतक अनन्त चतुष्टयकी चोटी दखिये। प्रभुके पद जनसुख प्राप्त हुआ है, इन्हें अनन्त चतुष्टयका लाभ हो गया है अब इससे आगे और क्या चाहिये। अब प्रभुका शरीर अभी और छूटना शेष रह गया है। शरीर छूटनेपर वे सिद्ध होंगे। वहां भी वे प्रभु अनन्त चतुष्टय सम्पन्न है। यही तो मोक्ष कहलाता है। अब इसके आगे क्या आवश्यकता रही?

सामारिक कल्पित वैभवोंके लाभमे आत्माका अलाभ - भैया! सोचिए कौन सा काम इस जीवको करना अब शेष रहा? यहां तो संसार अवस्थामें किसी भी सबमें ही एक न एक आगे काम पडा हुआ है। वे काम पूरे होते ही नहीं। सभी लोग अपनी अपनी स्थिति देख लो। गृहस्थोंके काम ये कभी पूरे ही नहीं हो रहे। खूब धन जोड लिया, मानो इतना धन जोड लिया कि केवल ब्याज आवक ही सारा खर्च चल रहा है अब कुछ चिन्ता न रहना चाहिए फिर भी उस धनके रक्षण सम्बन्धी, उस धनकी सन्तान सम्बन्धी विकल्पोंमें व सुख माननेके समय उनके विकल्पोंमे इतना अधिक बढ गये कि उन्हें अब प्रभुस्मरणके लिए भी एक मिनटकी फुरसत नहीं। जब गरीबीकी हालतमे थे, कुछ दुःखमय जीवन बीतता था उस समय तो कभी कभी प्रभुका स्मरण भी हो जाता था पर अब धनिक बन जानेपर प्रभुभक्तिके लिए अवकाश ही नहीं रहा। पहिले तो विनयगुण भी था, दूसरोंका सम्मान भी करते थे, कुछ धर्मकी बात भी याद आती थी पर अब धनिक बन जानेपर तो ये सभी बातें गायब हो गयी हैं। एक बहुत बडी विकल्पोंकी दुनियामें पहुँच गए हैं। विपत्ति ही तो विपदा है विपत्ति और किसका नाम है?

विकल्प विपदायें और उनके अभावका अमोघ यत्न -भैया! अनेक घटनामें आप निर्णय कर लो कोई मकान गिर गया, बिजली तडक गई, भूकम्प आ गया, हवेलियां गिर गयीं, वहां भी यह जीव बडा दुःख मचाता है पर जरा सोचो तो सही कि उससे इस आत्मामें कौनसी दुःखकी बात आ गई? केवल वहां विकल्प मचा कर ही तो दुःख बना लिए गए हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस आत्माके अन्दर वह भूकम्प पहुंच गया हो। यों ही किसी इष्टका वियोग हो गया तो उस इष्टके वियोगसे इस आत्मामें कोई दुःखकी चीज नहीं आई, फिर भी यह जीव विकल्प मचाकर दुःखी हो जाता है। अरे इस इष्टसे न पहिले ही इस जीवका कुछ सम्बन्ध था और न वियोग होते समय कुछ सम्बन्ध है फिर भी यह जीव उस इष्टके प्रति विकल्प मचाता है और अपनेको हैरान कर डालता है। यह जीव संयोगके कालमे भी विकल्पोंसे ही हैरान हो रहा था, और वियोगके कालमें भी इन विकल्पोंसे हैरान होता है। एक विकल्पोंका रङ्ग बदला, पर इस आत्माका अनर्थ कुछ नहीं हुआ। अनर्थ पहिले भी था अब भी है। कुछ ऐसा नहीं कि पहिले अनर्थोंसे बचे हुए थे और अब अनर्थ आ

गये । तब फिर इस दु खको मेटनेके लिए ऐसा ही तो यत्न करना होगा कि जिस यत्नके द्वारा हम विकल्पोसे ये विकल्प मिटें। बस एक ही निर्णय है। उसी यत्नसे हम सुखी हो सकते हैं। जिस यत्नके द्वारा हम विकल्पोसे दूर हो वह कौनसा हो सकता है ? धन वैभव बढा लेना, यह तो शान्तिका यत्न नही हो सकता । सिर्फ एक सम्यग्ज्ञानका ही यत्न है ऐसा कि जिसके बनसे विकल्प दूर हो सकते है। जहा वस्तुका स्वातत्र्य अनुभवमे आया, प्रतीतिमे आया वहाँ सब विकल्प दूर होते है।

अनन्त चतुष्टयस्वरूपलाभरूप मोक्षके लक्षणमे विशेषवादकी एक आशका—इस सहज ज्ञानके उपयोगकी स्थिरताके बलसे निर्विकल्प समाधिको उत्पन्न करके साधुजनोने अनन्त चतुष्टयका लाभ लिया है और फिर शरीररहित होकर वे आत्मसिद्ध हो गए तो वहा भी अनन्त चतुष्टयके स्वरूपका लाभ है। इस हीका नाम मोक्ष है। इस प्रकरणमे एक शङ्काकार यहा कहेगा कि मोक्षका स्वरूप बनाना कि अनन्त चतुष्टय स्वरूपका लाभ होना सो यह अयुक्त वात है। यह शङ्काकार विशेष-विशेषवादी है जिसका यह हठ है कि किसी भी वस्तुमे कुछ भी विलक्षणता समझमें आये तो, झट उसे न्यारा सत्त्व बना दो कि यह न्यारी चीज है। और इसी हठके अनुसार जब इसने अपनी बुद्धिके द्वारा निरखा कि इतने विकल्प किए जा रहे हैं तो यही तो ज्ञान है जब यह ज्ञान मिटे तब मोक्ष होगा। ज्ञान अलग चीज है, आत्मा अलग चीज है। इस ज्ञानका लक्षण केवल जानना है और आत्माका लक्षण चित्स्वरूप मात्र है। लक्षणका भेद है, ज्ञान जुदा है, आत्मा जुदा है। तब फिर जब ज्ञान मिटता है तब मोक्ष होता है कि जब ज्ञान मिलता है तब मोक्ष होता है ? यह समस्या उस विशेषवादीके सामने थी। तो उसने यही निर्णय किय कि जब ज्ञान मिटता है तब मोक्ष होता है ऐसी आशका रखने वाला विशेषवादी यह शङ्का करेगा कि अनन्त चतुष्टयके स्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है यह बात अयुक्त है, किन्तु ज्ञानादिक गुण जो आत्मामें घर कर रहे हैं इनका विनाश हो जाय इसका नाम मोक्ष है। अब शकाकार इस हीकी पुष्टिमें अपने प्रमाण देगा। कुछ समय तक शका चलेगी। इसके बाद उसका उत्तर होगा।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[त्रयोदश भाग]

●

प्रवक्ता

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

ज्ञानादिक गुणोके मूलोच्छेदनको मोक्ष माननेकी शङ्का—विशेषवादी दार्शनिक शङ्का कर रहा है कि मोक्षका स्वरूप ज्ञान दर्शन शक्ति आनन्द इन अनन्त चतुष्टयोका लाभ होना नहीं हो सकता है। मोक्षका स्वरूप तो बुद्धि, सुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, सस्कार इन ६ गुणोके उच्छेदरूप है अर्थात् जहाँ आत्मामें ये ६ गुण नहीं रहे, ये नष्ट हो जायें ऐसा निर्गुण हो जाय आत्मा उसका नाम मोक्ष है। इन गुणोका उच्छेद हो जाया करता है इसका प्रमाण है। इसका अनुमान प्रयोग कर लीजिये। आत्माके नवो विशेष गुणोका संतान बिल्कुल नष्ट हो जाता है क्योंकि सतान होनेसे। जो जो सतान है वह संतान कभी एकदम सब समाप्त हो सकता है। जैसे प्रदीप सतान। एक दीपकमे जितने तेलके बूँद जल रहे हैं क्रमश दीपक वे उतने हैं, एक एक बूँद एक एक दीपक बनता जा रहा है और ऐसा १५ मिनट तक दीपक जले तो उसमें हजार दीपक बन गये। ये दीपक न्यारे न्यारे हैं क्योंकि उनके कारण-भूत बूँद भी न्यारे न्यारे हैं। तो उन न्यारे न्यारे दीपकोमे जो यह भ्रम हो गया है कि एक दीपक है और उससे फिर जो व्यवहार चल उठा है इसका कारण है सतान। उन नाना दीपकोमें जो एक सतान बन गया उस सतानसे यह व्यक्तरूप हो गया है। तब देखो कभी ये सतान मिट जाते हैं ना ? मिट जाते हैं ! दीपक बुझ जाता है, पिता पुत्रकी सतान चलती है, चलती रहती है, कभी यह सतान नष्ट हो भी जाती है ना कहीं ? हो भी जाती है। इसी प्रकार इस आत्माके ज्ञानादिक गुणोकी सतान चल रही है तो वह सतान भी नष्ट हो जाती है। तो जहा ज्ञानादिक गुणोकी सतान नष्ट हुई है उसका नाम मोक्ष है। शङ्काकारका भाव यह है कि आत्मा तो एक चित् स्वरूपमात्र है उसका विकास नहीं, परिणमन नहीं, व्यक्तरूप नही, वह तो एक परि-णामी तत्त्व है, आधारभूत है। अब उस आत्मामे जब ज्ञान सुख दुःख इच्छा आदिक बातें लग बैठी तो आत्मामे ये बातें लग गयी और ये चल रही हैं तो इन गुणोका जो

। चलना है आत्मामे बस इसका नाम संसार है । जिस समय इसकी यह संतान
माप्त हो जायगी तो ये गुण खतम हो जायेंगे और तब आत्माका मोक्ष कहलाता है ।

काल्पनिक भी कुछ फर्क विदित होनेपर भिन्न भिन्न सत् माननेका
द्धान्त—इस विशेषवादमे यह मूल तत्र बताया है अपने सिद्धान्तका कि जहा
गुणसे या अन्य भी किसी निगाहसे जरा भी फर्क समझमे आया, भेद ज्ञानमे आया
वे न्यारी-न्यारी चीजें है उनका सत्त्व जुदा जुदा है । जैसे विशेषवादकी झलकमे
जकल वैज्ञानिक भी अपनी बुद्धिमे आये हुए अणुवोमे जो कि स्कधरूप ही है उनमे
शक्तियाँ हैं उन शक्तियोंको जुदा जुदा तत्व माने जा रहे हैं और स्वतन्त्र माने जा
हैं और प्रयोग भी ऐसा किया करते है कि उसकी शक्ति वहासे हटा दे कही अन्यत्र
ा दे । शक्तिमय ही वह सूक्ष्म स्कन्ध है इस ओर उनका ध्यान नही । इसका मत-
ब है कि शक्तिको ही वे एक पदार्थ मानने लगे । इनर्जी कोई किसी आधारमें रहती
इस मन्तव्यसे हटकर इनर्जी स्वय एक स्वतन्त्र तत्त्व है, ऐसा आजकलके वैज्ञानिक
ा भी मानने लगे है, ऐसे ही विशेषवादके सिद्धान्तमे यह तत्र अपना लगाया कि
ाँ समझमे कुछ भी भेद आया कि समझमे वे सब जुदी जुदी चीजें है । तो आत्मा
ज्ञान है, शक्ति है, सुख है, दुःख है, इच्छा है, ये अनेक बातें समझमे आ रही हैं
र भिन्न समझमे आ रही हैं । आत्मा तो कोई एक है । जितने ये सुख हैं ये आत्मा
ी हैं, जितनी ये इच्छायें हैं ये आत्मा नही हैं । इच्छाका स्वरूप न्यारा है आत्माका
रूप न्यारा है, ज्ञानका स्वरूप न्यारा है । ज्ञानगुण है, आत्मा द्रव्य है । तो द्रव्यकी
ा न्यारी है गुणकी सत्ता न्यारी है ।

विशेषवादमे गुणोच्छेदको मोक्ष माननेका प्रयोग—यह विशेषवाद
द्धान्तकी बात चल रही है जिसकी कि यह प्रकृति है कि किसी भी पदार्थमे स्व-
का, लक्षणका, शक्तिका, गुणका, क्रियाका भेद करके उन सबको जुदे जुदे सत् मान
है वे तत्त्व पदार्थ, ऐसा मानलें । ऐसा इनका तत्र है, युक्ति है, उसी युक्तिपर यह
रहे है कि मोक्ष इसका नाम नही है कि आत्मामे ज्ञान अनन्त हो गया, शक्ति
न्त हो गई आनन्द अनन्त हो गया, इसके मायने मोक्ष नही है किन्तु आत्मामेसे
न उड गया, खतम हो गया, शक्ति नष्ट हो गयी, आनन्द समाप्त हो गया, खाली
आत्मद्रव्य रह गया, गुण सब खतम हो गए इसका नाम मोक्ष है । ऐसा विशेष-
ी मोक्षके स्वरूपकी बात कह रहे हैं और इस सिद्धान्तके रखनेमे वे अनुमान प्रयोग
रहे है कि ज्ञानादिक गुणोंकी संतानका कही मूलत उच्छेद हो सकता है, क्योंकि
ान होनेसे । लोकमे जो भी संतान हैं, जो एक परम्परा हैं जिससे वह संतान
लाता है जो भी संतान है वह कभी नष्ट हो जाता है । जैसे दीपककी संतान है तो
ी वह नष्ट हो जाती है ।

गुणोच्छेद सिद्ध करनेके लिये दिये गये हेतुको निर्दोष बतलानेका

उपक्रम—बुद्धयादिक सतानोच्छेदके अनुमान प्रयोगमें दिये गये हेतुके दोषको दूर करनेके लिए बतला रहे हैं कि हमारा हेतु असिद्ध नहीं है। हेतु असिद्ध उसे कहते हैं कि जिस पक्षमें हेतु रहता है उस पक्षमें हेतु न पाया जाय। जैसे इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे, यह अनुमान बनाया। अगर धूम पर्वतमें नहीं पाया जा रहा है फिर भी कोई हेतु बना रहा है तो यह असिद्ध हेतु कहलाता है। इस तरह ये ज्ञानादिककी सतान असिद्ध नहीं हैं। ज्ञानादिकमे सतान पाया जा रहा है। विरुद्ध हेतु भी यह नहीं है। विरुद्ध हेतु उसे कहते हैं कि जिसका अन्य कोई दृष्टान्त ही न मिले। जैसे पवतमे अग्नि है, धुवा होनेसे। इसको हम बता सकते हैं कि हमारा हेतु यह अनुकूल है, विरुद्ध नही है। देखो रसोईघरमे भी धुवा दिखता है और अग्नि वहा पाई जाती है। तो यह हमारा सतान हेतु भी अविरुद्ध है। जैसे दिया जल रहा है ना, तो १५ मिनटमे तेलकी हजारो बूँदें जलती हैं तो १५ मिनटमे वे दीपक हजारो हैं, एक दीपक नही है, पर उन हजारो दीपकोमे अन्तर नहीं आ पाया, वे निरन्तर जलती रहीं—यही तो सतान है। तो यह सतान नष्ट हो जाती है ना। दीपकके आगे कूडा अड गया तो दीपक बुझ गया। तो सतान हेतु विरुद्ध भी नही है। सतानत्व हेतु अनैकान्तिक भी नही है। अनैकान्तिक वह कहलाता है जो हेतु अपने अनिष्ट साध्यको भी सिद्ध करदे और इष्ट साध्यको भी सिद्ध करदे। जैसे कोई यह अनुमान बनाये कि अग्नि ठढी होती है क्योंकि पदार्थ होनेसे। जो भी पदार्थ होते हैं वे ठढे होते हैं—जैसे पानी। ठीक है, पानीमे बात आ गई पर विद्युत आदिक गर्म चीजोमें तो यह बात नही घटित होती। यह प्रत्यक्षबाधित भी है, तो भी उभयवृत्तिपना देखें। जो इष्ट अनिष्ट दोनोको सिद्ध करे उसे अनेकान्तिक कहते हैं। तो सतानत्व हेतु अनेकान्तिक दोषसे दूषित भी नही है क्योंकि विपक्ष परमाणु आदिकमे सतानत्व हेतुकी प्रवृत्ति है नही, सतानत्व हेतु कालात्ययापदिष्ट भी नही है। जो हेतु सिद्ध किया जा रहा है उससे विरुद्ध बात यदि प्रत्यक्षसे ही सिद्ध हो तो वह हेतु बाधित कहलाता है। हमारा सतानत्व हेतु बाधित नही होता, न उसमे प्रत्यक्षसे बाधा है न परोक्षसे। यो सतानपना होनेसे यह सिद्ध है कि आत्मामें जो ज्ञान सुख दुःख आदिक गुण पाये जा रहे हैं इनका कही मूलत नाश हो जाता है। और गुणोका मूलत नाश हो जानेका नाम ही मोक्ष है ऐसा वैसेसिक दर्शनवादी कह रहे हैं।

गुणोच्छेदको मोक्ष माननेकी असङ्गतताका प्रतिपादन अब इसके समाधानमे कहते हैं कि यह कहना युक्त नही है कि आत्मामें जो ६ विशेष गुण पाये जाते हैं उनका अत्यन्त उच्छेद हो जाता है, क्योंकि सतान होनेसे। अरे, पहिले यह ही सिद्ध नही कर सकते कि उसमे सतान होती है और ये भिन्न भिन्न चीजें हैं और इनका फिर समवाय सम्बन्ध होता है तब ये जुडते हैं यह बात भी सिद्ध नहीं कर सकते। जब हेतु ही सिद्ध न रहा तो हेतु आश्रयासिद्ध हो गया। जैसे पर्वतमें धुवाँ नही है तो यह कैसे सिद्ध करोगे कि इस पर्वतमें अग्नि है!

विशेषवादमे पदार्थोंकी संख्या— विशेष सिद्धान्तमे इस तरहकी व्यवस्था मानी है कि पदार्थ ६ तरहके होते हैं– द्रव्य, गुण, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। जब कि स्याद्वादमें ६ पदार्थ इस तरह माने हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। ये छहोंके छहो पदार्थ जो स्याद्वाद दर्शनमे माने गए हैं इन सबको वे एक द्रव्यमे ही मान लेते हैं, किन्तु उसमे कुछ माने भी गए कुछ नही भी माने गए। जैसे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, तो विशेषवाद ही क्या, किसी भी दर्शनने नहीं माना कि है कोई लोकमे ईथर सूक्ष्मतत्त्व जो जीव और पुद्गलकी गतिमे सहायक होता है। व जीव और पुद्गल चलते हुए ठहरें तो जीव पुद्गलके ठहरनेमे सहायक होता है अधर्मद्रव्य। ऐसे धर्म अधर्म द्रव्य जैन शासनके अतिरिक्त कही नही माने गए। कल्पना तो इनकी अब भी की जा रही है। वैज्ञानिक लोग आकाशमे तत्त्वकी खोज कर रहे हैं जो कि सबके गमनमे आश्रय रूप पड़ा है।

वैशेषिक सिद्धान्तके संक्षिप्त विवरणमे द्रव्य और गुणका सत्त्व— यहाँ विशेषवाद सिद्धान्तका थोडा विवेचन किया जा रहा है। देखिये—६ जातिके पदार्थ स्याद्वाददर्शनमे माने गए हैं वे सब पदार्थ इनके कथित द्रव्यमे गर्भित नहीं है, कुछ हैं। तो सब पदार्थ आवें या न आवें, या कुछ पुनरुक्त हो, उन सबको एक द्रव्यमे ही शामिल कर लिया गया विशेषवादमे। अब द्रव्यमे गुण भी तो पाए जा रहे हैं। जैसे ये पुद्गल पदार्थ है – इनमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाए जा रहे हैं कि नही? तो इसमें रूप है जो कि कालापनेमे व्यक्त हो रहा है। गुण है, इसके अन्दर रूप आदिक हैं तो विशेषवादमें रूप आदिक गुण जुदे सत् माने गए हैं जब कि स्याद्वाद दर्शनमे पुद्गलकी शक्ति पुद्गलमे ही तन्मय है। उनको छोडकर अणु और कुछ चीज नही है, ऐसा माना गया है और विशेषवादमें गुण स्वतन्त्र सत् है, ये भौतिक पदार्थ स्वतन्त्र सत् हैं यो विशेषका, भेदका विस्तार किया गया है। फिर प्रश्न होता है कि जब वे स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत् हैं गुण और गुणी, द्रव्य और गुण जब ये अपना स्वतन्त्र स्वरूप रख रहे हैं तो स्वतन्त्र ही कहलाए। फिर हमारे आत्मामे सम्बन्ध कैसे जुडा? जैसे दो पुरुष न्यारे हैं तो न्यारे ही हैं। उनमे यह कैसे कहा जायगा कि इसका यह है। इसमे यह है। तो इसके लिए एक पदार्थ माना गया है समवाय। समवाय एक ऐसा विचित्र तत्व माना है जो सारी दुनियामे एक है और उस समवायके कारण आत्मामे ज्ञानका समवाय हो जाता आदि। समवाय मायने घनिष्ट सम्बन्ध, मिलाप। आत्मामें ज्ञानका मिलाप, उस समवाय सम्बन्धके कारण है। परमाणुमे रूप रस आदिकका मिलाप समवाय सम्बन्धसे है।

विशेषवादमे क्रियाका स्वतन्त्र सत्त्व— विशेषवादमें कर्म (क्रिया) भी स्वतन्त्र सत् है। जैसे यह गुण अलग सत् माना गया है। इसी प्रकार क्रिया भी अलग सत् है। अगुलीने सीधा टेढा परिणमन जो किया तो यह सीधा टेढा

अलग चीज है और गुणी अलग चीज है ऐसा माना गया है। आत्मामें जो भी क्रिया हो रही है, परिणतियां होती हैं जो भी चेष्टायें होती है वे अलग स्वतन्त्र सत् हैं। आत्मा अलग स्वतन्त्र सत् है। फिर इनका सम्बन्ध कैसे जुड़े। जबकि स्याद्वाद दर्शनमें माना गया है कि पदार्थकी परिणति उस कालमें उस पदार्थ में तन्मय है, फिर बादमें वह परिणति है ही नहीं। चूंकि वह स्वयं सत् न था इसलिए अभाव माननेमें विरोध नहीं। स्वतन्त्र सत् होता तो प्रत्येक परिणति सदा रहनी चाहिए थी।

वैशेषिकसिद्धान्तमें सामान्य, विशेष और अभाव —द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय कुछ ऐसा भी तो नजर आता है कि द्रव्य गुण कर्मके सिवाय भी कोई चीज होती है। जैसे मनुष्य मनुष्य सब हैं। पर इसमें मनुष्य सामान्य भी तो कुछ है ना। जैसे कहा कि एक मनुष्यको बुला लावो तो चाहे वह बूढ़ेको लावे, चाहे जवानको लावे बच्चेको लावे, विद्वानको लावे मूर्खको लावे दीनको लावे अथवा धनीको लावे, चाहे जिसे लावे क्योंकि उसने मनुष्य सामान्यके लिए कहा था। और, कोई यदि यह कहे कि पण्डितजीको बुला लावो तो पण्डितजी ही सिर्फ आयें, और कोई न आवे तब तो बात सही मानी जायगी। इससे मालूम होता है कि पदार्थमें सामान्य भी कोई चीज होती और विशेष भी कोई चीज होती। जब कुछ समझमें आया, कुछ जुदा सा दीखा तो विशेषवादियोंने उसे स्वतन्त्र सत् मान लिया। सामान्य भी स्वतन्त्र सत् है और विशेष भी स्वतन्त्र सत् है। हां स्वतन्त्र सत् तो है पर वह पदार्थमें कैसे आ गया? एक और विलक्षण अभाव नामक पदार्थ माना है। जब कि स्याद्वादमें पदार्थ वह माना गया है जिसका सत्व हो, परिणमन हो, अर्थक्रिया हो। लेकिन विशेषवादमें कुछ समझ में आना चाहिए अलगसे बात कि सत मान लिया गया। विशेषवादमें अभाव भी एक पदार्थ है। किसीने कहा कि उस कमरेसे घड़ा उठा लावो। और घड़ा वहां था नहीं, घड़ेका वहां अभाव था। तो जो अभाव है वह भी एक पदार्थ है क्योंकि ज्ञानमें आया ना, अभाव समझमें आया ना? जो समझमें आया वह पदार्थ है। यों ६ जातिके पदार्थ माने गए हैं।

गुणोच्छेदकी कल्पनापर विचार—इस प्रसङ्गमें यह दिखाया गया है कि गुण जितने होते हैं वे सब अलग-हुआ करते हैं किसी पदार्थके गुण नहीं होते। उस पदार्थमें गुणका सम्बन्ध होता है तब वह गुणी कहलाता है। आत्मा ज्ञानी नहीं है, आत्मा अलग चीज है, ज्ञान अलग चीज है। जब ज्ञान गुणका समवाय सम्बन्ध आत्मामें होता है तो यह ज्ञानी कहलाता है। कोई उन विशेषवादियोंसे पूछ सकता है कि जब यह गुण अलग है आत्मा अलग है, ज्ञान न्यारा है आत्मा न्यारा है तो यह ज्ञान आत्मामें ही क्यों विराजे पृथ्वी आदिक अन्य भौतिक पदार्थोंमें क्यों नहीं सम्बन्ध कर लेता? ऐसे ऐसे प्रश्नोंके उत्तर देनेकी कोशिश की गई है किन्तु अन्तमें उत्तर देनेका प्रयास सफल नहीं हो पाता। आप ही सोच लो कि ज्ञान तो अलग वस्तु है और

आत्मा अलग वस्तु है तो पहिले तो यह ही ध्यानमे न आयेगा कि खाली ज्ञान आत्मा को छू करके किस प्रकारका होता होगा, जिसका कोई साधन नहीं जिसमे अवगाहने वाला गुण नहीं, वह क्या सत्व होना होगा यह समझमे न आयगा। और यहा यह आत्मा जिसमें ज्ञान नहीं कोई गुण नहीं, फिर भी कुछ द्रव्य है, ऐसा निर्गुण द्रव्य क्या होता होगा ? यह भी ध्यानमे नहीं आ सकता। हां स्वरूपभेद है, ज्ञानका स्वरूप एक गुणके रूपमे है, आत्माका स्वरूप पूर्ण पदार्थरूपमे है, पर हैं वे दोनो एक। ज्ञान बिना आत्मा क्या ? आत्मा बिना ज्ञान क्या ? लेकिन लक्षणभेद होनेसे कुछ समझ-भेद होनेसे ये अलग अलग मान लिए गए हैं। ऐसे वैशेषिक सिद्धान्तका एक सामान्य विवरण किया है।

गुणोच्छेदकी सिद्धिमे दिये गये संतानत्व हेतुकी असिद्धता—गुणोच्छेद को मोक्ष माननेपर कहा जा रहा है कि तुम सतान ही सिद्ध नही कर सकते। और, सतान सिद्ध करनेकी बात जाने दो। प्रथम तो तुमने ज्ञानको अस्वसंविदित माना है, तो तुम ज्ञानका स्वरूप भी सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि विशेषवादमे ज्ञानका स्वरूप अस्वसन्निहित माना गया है अर्थात् जो ज्ञान उत्पन्न हो रहा है वह अपने आपको नही जानता, फिर उस ज्ञानको जाननेके लिए दूसरा ज्ञान चाहिए। जैसे हम आप भी कभी कभी महसूस करते है कब, जबकि ज्ञानमे सदेह होता है। कोई चीज जाना, जैसे दूर पड़ा हुआ अभ्रकका कोई टुकडा ऐसा समझमे आया कि वह तो चांदीका टुकडा मालूम होता है, फिर उसमें संशय हो गया कि यह पता नही कि चांदी है या अभ्रक ? तो अब वह ज्ञान निर्बल पड गया, क्योंकि उस ज्ञानमे संशय आ गया। तो मेरा यह ज्ञान सही है क्या ?-यो उस ज्ञानकी ठिकाई जानने वाला एक दुसरा ज्ञान बनाना पडा ना ? तो विशेषवादमे ज्ञानको अज्ञानरूप माना है अर्थात् ज्ञान स्वय अपने आपकी समझ नही कर सकता। तो जब एक ज्ञानका स्वरूप बनानेके लिए दूसरे ज्ञानकी जरूरत पडी तो उसके लिए तीसर ज्ञानकी जरूरत पडी, यो तो अनवस्था दोष हो जायगा। उससे फिर ज्ञान हीका सत्व सिद्ध नहीं हो सकता। फिर आप सतान किसकी बनाना चाहते ?

गुणोच्छेद और सतानत्व दोनोकी असिद्धि—इस प्रसङ्गमें मूल बात इतनी कही जा रही थी कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द इनकी प्राप्ति हो जानेका नाम मोक्ष है। जो आत्मामे गुण हैं उनका पूरा विकास हो जानेका नाम मोक्ष है किन्तु एक वैशेषिक सिद्धान्तमे आत्मा और गुणको भिन्न भिन्न माना है। और सिद्धान्त है उनका कि ये सब गुण जब आत्मामे नष्ट हो जायेंगे तब आत्माका मोक्ष कहलाता है। तो आत्माके ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदमें ही मोक्ष मानने वाले वैशेषिक यहा अपना पक्ष रख रहे थे कि बुद्धि, सुख, आदिक गुणोका उच्छेद हो जानेका नाम मोक्ष है, न कि ज्ञानकी प्राप्तिका नाम मोक्ष-

है। उसके निराकरणमे कह रहे हैं कि न तो ज्ञानकी समान सिद्धि होती है न स्वरूप, फिर उच्छेदकी बात कहां लगाई जाय ? आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानके अतिरिक्त आत्मा अन्य कुछ चीज नहीं है। ज्ञानपर अभी आवरण है, रागद्वेष, विषयकषाय कर्म आदिकका आवरण पडा है जिसके कारण ज्ञान प्रकट नहीं हो पाता। जब अंतरङ्ग और बहिरङ्ग समस्त प्रकारके आवरण दूर हो जाते हैं तो ज्ञानका परिपूर्ण विकास होता है, वे गुण असीम हैं। उनके विकाससे त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। देखो कहाँ तो मोक्षका ऐसा समृद्धिशाली स्वरूप कि अनन्त ज्ञान है, अनन्त आनन्द है, बहुत ही पावनस्वरूप है और कहां मोक्षका यह स्वरूप शङ्काकारके द्वारा कहा जा रहा है कि अरे, मोक्ष तो उसका नाम है जहां न ज्ञान रहता, न आनन्द रहता न सुख-दुःख रहते न धर्म अधर्म रहते। कुछ भी जहां गुण नहीं रहते। आत्मा कोरा रह जाय, इसका नाम मोक्ष है। तो मोक्षके उस पूर्व निरूपित स्वरूपके खिलाफ यह स्वरूप रखा जा रहा है शङ्काकारके द्वारा कि आत्माके समस्त गुण समाप्त हो जायें तो इसका नाम मोक्ष है। इस गुणोच्छेदके मतव्यका यहाँ निराकरण किया जा रहा है।

द्रव्यसे प्रथक गुणोके सत्त्वका अभाव--वस्तुतत्त्व ऐसा है कि कोई भी पदार्थ हो, है तो वह अनन्त गुणात्मक अर्थात् वस्तुके अनन्त गुण ही सब वस्तु कहलाता है अथवा पदार्थमें गुण नहीं है, पदार्थ तो पदार्थ ही है। उस पदार्थका स्वरूप समझनेके लिए उसमें जो उसके अनुरूप परिज्ञान किया गया कि यह गुण है, गुण तो भेद है पर्याय अभेद है। गुण सदा रहता है पर्याय सदा नहीं रहती। यह तो अन्तर है पर जैसे पर्याय भेद है वैसे ही गुण भी भेद है। वस्तु तो एक स्वरूप अभेदात्मक है प्रत्येक पदार्थकी यह बात निरखलो। अणु-अणु जीव आकाश आदिक समस्त सत् पदार्थोंकी यही बात है कि वे हैं और जैसे हैं वैसे ही हैं, इनको समझनेके लिए गुण भेद किये जाते हैं। जैसे आत्मा तो एक स्वरूप जैसा है वैसा ही है। आत्मा है और वह जो है सो है और प्रतिसमय जिस रूप परिणम रहा सो परिणम रहा है। अब हमें उसे समझायें कैसे ? दूसरोंके द्वारा हम समझें कैसे ? ऐसा समझनेके लिये व्यवहारसे उस अखण्ड अभेद पदार्थमें गुणके भेद बनाये हैं और पर्यायके भेद बनाये हैं। इससे यह सिद्ध है कि पदार्थ जुदी चीज नहीं है, गुण जुदी चीज नहीं है। अखण्ड पदार्थोंको समझनेके लिए जो उनकी शक्तियां बताई जाती हैं उनका नाम गुण है।

आत्मासे पृथक् ज्ञानादि गुणोंके सत्त्वका अभाव : जैसे जिन्हें आत्माका अनुभव है, परिज्ञान है वे एक आत्मा इतने शब्द कहने हीसे पूरे आत्मपदार्थको लक्ष्यमें ले लेते हैं कि आत्मा शब्दसे यह कहा गया है। और जिन्हें उसका परिचय ही नहीं है अथवा कुछ परिज्ञान भी है तो जो बारबार उसे भूलते हैं अथवा उसपर उपयोग जमता नहीं है। तो ऐसे लोगोके लिए उस आत्माके सम्बन्धमें आत्माकी शक्तियोंकी

चर्चा की जाती है। देखो ! जिसमें ज्ञान है वह आत्मा है, जिसमे दर्शन है चारित्र है शक्ति है आनन्द है वह आत्मा है। पर आत्मा एक अलग सत् हो और उसमे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदिक गुण कुछ अलग सत् हो। जैसे मटकेमे चने भर दिए तो चनोका अलग तत्त्व है मटकाका अलग सत्त्व है, उन चनोको मटकेसे अलग रख दिया। इसी प्रकार आत्मा कोई खाली चीज हो और उसमे ज्ञानादिक गुण भरे जाते हो ऐसी वस्तुव्यवस्था नही है। आत्मा ही ज्ञानादिक अनन्त गुणस्वरूप है। अब ऐसे आत्मामें जहाँ कि वस्तुत अभेद है और समझनेके लिए व्यवहारमे भेद किया जाता है तो कुछ स्वरूप भेद बनाया गया तभी तो भेद बना। देखो ! ज्ञान आनन्द आदिक एक एक गुण हैं, वे धर्म हैं, उन गुणोमे पृथक नही हैं, वे गुण स्वय और गुण वाले नही हैं वे गुण इकाई हैं तब स्वरूपभेदसे लक्षणभेदसे गुणभेदसे अभेदरूप आत्मामें भी भेद किया गया है कि आत्मा समस्त गुणोंका पिण्ड है और उसमे अनन्त गुण रहते हैं, पर इतना व्यवहारके लिए उपकारी कथन होनेसे ऐसा नही माना जाना चाहिए कि ज्ञानादिक गुण पूरे स्वतन्त्र सत् हैं और आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र सत् है। लेकिन विशेषवादमे यही माना जा रहा है। इसे कहते हैं भेदवाद !

भेदवाद और अभेदवादका सिद्धान्त—देखिये ! विशेषवादका सिद्धान्त है भेदवाद। और इसके विपरीत होता है अभेदवाद। ये दोनो बातें एक दूसरेसे बिल्कुल उल्टी चल रही है। जैसे नित्यवाद और क्षणिकवाद ये दोनो एक दूसरेके उल्टे है। नित्यवादमें प्रत्येक पदार्थको सर्वथा नित्य बताया जाता है, अपरिणामी सदा रहने वाला। तो क्षणिकवादमें ऐसा क्षणिक बताया जाता कि द्रव्यसे तो निरश जो एक एक अणु है सो द्रव्य है। उस अणुमे भी शक्तिके क्षण कर दिए गए। उनमें जो एक एकभाव है सो सत् है। उनमें भी परिणतियोंके क्षण कर दिए गए। जो एक एक परिणमन है सो पूरी चीज है। क्षणिकवादने क्षण-क्षण करनेकी, टुकडे-टुकडे करने की ठानी है तो नित्यवादने एक कूटस्थ अपरिणामी माननेकी ठानी है। तो यो ही समझिये कि अद्वैतवाद जब कि सारे विश्वको एक मानकर चल रहा। क्या हैं ये समस्त पदार्थ ? एक प्रश्न है अथवा एक अज्ञानाद्वैत है। ज्यादह किसीने हैरान किया कि कहा ये पदार्थ अद्वैत हैं ? पदार्थ देखो नाना हो ज्ञानमे देखो नाना झलकें उत्पन्न होती हैं तो वे कहते हैं कि रहो सब चित्र विचित्र किन्तु उनका जो एक प्रतिभास है चित्राद्वैत इस अद्वैतको नहीं छोडता सबको एक मानता, यह अद्वैतवादकी हठ है। तो विशेषवादकी यह हठ है कि किसी भी पदार्थमे कुछ भी बात समझमे आये तो उसको स्वतंत्र सत् मानकर उसके टुकड़े-टुकडे कर देते। इन दोनो वादोंके समन्वयका प्रतीक है लोकप्रसिद्ध गणेशकी मूर्ति। जैसे लोग मानते हैं कि गणेशके सूड लगी है और वे चूहेपर बैठत हैं, वाहन चूहा है। ऊपर सूड अभेदरूपसे फिट है। वह किसी समयमे एक दार्शनिक प्रतीक होगा। जो इन दो तत्त्वोपर दृष्टि डालता है कि

देखो पदार्थ इस रूप है जैसे कि गणेशकी ऊपरी अवस्थामें यह सूंड जो मनुष्यसे विपरीत है या बाहरकी चीज है वह भी यहाँ ऐसी फिट अभेदरूप हो गई कि वहाँ कुछ भेद नहीं नजर आता। यह है एक अभेदवादका प्रतीक और वाहन चूहा यह भेदवाद का प्रतीक है। जैसे चूहा कहीं बजाजकी दुकानमें पहुँच जाय और कोई कपड़ा पा जाय तो उस कपड़ेके वह इतने छोटे-छोटे अंश कर डालता है कि जितने छोटे कैंचीसे भी टुकड़े करना सम्भव नहीं है।

विशेषवादमें एक ही पदार्थमें भेद करनेकी प्रकृति—विशेषवादकी प्रकृति है भेद करना। एक ही पदार्थ जो सर्व प्रकारसे समृद्ध है, परिपूर्ण है अभेद है, उसमें ही गुण समझमें आया, तो लो अभी गुणकी सत्ता अलग है। गुण इस आत्मामें फिर किये जाते हैं समवायसम्बन्धसे। यह आत्मा कुछ अगर परिणति कर रहा, समझमें आ रहा, राग किया द्वेष किया परिज्ञान किया, चेष्टाकी या किन्हीं पदार्थोंमें हलन चलन हो तो यह हलन चलन यह क्रिया यह चेष्टा ये कर्म ये स्वतंत्र सत् हैं, इतना तो पदार्थमें फिट कराया जाता है। और की तो बात जाने दो, सामान्य और विशेषको स्वतंत्र सत् मान लिया गया। अब बतलावो १०० मनुष्य बैठे हैं और इन सबमें मनुष्यत्व पाया जा रहा है तो यह मनुष्यत्व सामान्य एक तत्त्व बन गया। यह भी एक पदार्थ है लेकिन सामान्य या स्वरूप तो है, पदार्थ नहीं। पदार्थमें तो अर्थ क्रिया होती है, काम भी बनता है। दूध चाहिये ? तो गायके पास पहुँचते हैं तब दूध मिलता है, तो वह गाय विशेष है। कहीं गाय सामान्य से तो दूध नहीं मिल सकता वह गाय सामान्य तो एक विशेषनिष्ठ कल्पना है ? सदृशताका जो भाव है उसका नाम सामान्य है। कहीं काली पीली सफेद आदिक गाय जो एक पदार्थ है यह पदार्थ न हो तो दूध कहाँ से मिल सकेगा। विशेष वादियोंने तो अपना ढंग ही यह बनाया है कि भेद करना। देखिये भेद करना भी एक हितका उपाय बन सकता है और अभेद मानना भी हितका उपाय बन सकता है। मगर सबमें उचित और अनुचित पनेकी बात होती ही है।

दृष्टिभेदसे ही भेद करनेका औचित्य—ऋजु सूत्र नयका और काम क्या है सिवाय भेद करनेके भेद करते जायें। पर्यायका भेद किया, मोटी पर्याय मानी उसमें सन्तोष नहीं हुआ। सूक्ष्म पर्याय माना, उसमें भी सन्तोष नहीं हुआ तो एक समय की पर्यायको बुद्धिमें लिया ज्ञानमें तो सब सामर्थ्य है। एक रागभाव आधा मिनट तक बराबर किया जा रहा है। भक्त ही हम आपकी समझमें इस रागका प्रभाव आधा मिनट किया जानेपर आया लेकिन ३० सेकेण्डमें प्रतिसेकेण्डमें ही तो राग परिणमन चल रहा और एक सेकेण्डमें जितने समय हैं, प्रतिसमय राग परिणमन चल रहा, पर अनुभाव्य राग जहाँ अनुभव किया जा सके वह एक समयके राग परिणमनकी बात नहीं है, वहाँ असंख्यात समय तक उपयोग जब उस रागमें होता है तब बनता है, लेकिन समय समयपर परिणमन न हो तो अन्तर्मुहूर्तमें भी परिणमनका रूप नहीं बन सकता।

तो ऋजुसूत्रनय एक समयके परिणमन पर दृष्टि डालना चाहता है जो कि शुद्ध ऋजुसूत्र है। यह शुद्ध ऋजुसूत्रनय शुद्ध पर्यायकी एक परिणतिसे ध्यान दिलानेके लिए नहीं कहा जा रहा है शुद्ध हो अशुद्ध हो, कोई परिणमन हो, केवल एक समय के परिणमनपर दृष्टि दिलाये उसे शुद्ध ऋजुसूत्र कहते हैं। अब इसमे जो जाना गया वह निरश जाना गया। देखिये एक निरश होता है अभेद निरश सबका एक अखण्ड रूप और एक निरश होता है भेद करते करते जो ऐसा अन्तिम भेद जिसका भेद नहीं किया जा सकता है वह भी निरश है और निरंशतत्त्वका परिज्ञान भी इस मोहभावको दूर करनेमें समर्थ हो सकता है। तो भेद करना अभेद करना सब ठीक है, किन्तु एक विशेष प्रमाणसे अविरुद्ध हो करके उनका भेद किया जाना चाहिये।

ज्ञानादिक गुणोंको आत्मासे पृथक् सत् माननेपर गुण गुणीकी अव्यवस्था—प्रकरणमें यह चल रहा है कि मोक्षका स्वरूप तो सिद्धान्तमें यह बताया गया कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द इनका विकास हो जाय, इस स्वरूपका लाभ हो जाय इसे मोक्ष कहते हैं। और सब स्वरूप ये सब गुण आत्माके अभिन्न गुण हैं। इस ही रूप आत्मा है इनका विकास हुआ अर्थात् आत्माका विकास हुआ, पर इस रूपमें न मानकर वैशेषिक सिद्धान्तवादी तो अपनी पेश यह रख रहे है कि आत्माके गुणोंका नाश होनेका नाम मोक्ष है ज्ञान, सुख, दुख, इच्छा आदिक जो भी गुण हैं, समस्त गुणोंका अभाव हो जाय, ये गुण आत्मासे निकल जायें, आत्मा कोरा रह जाय उसका नाम मोक्ष है। उसीके उत्तरमें यह कहा गया है कि देखो अगर आत्मा न्यारा है और ज्ञानादिक न्यारे हैं तो पहिले तो यह ही व्यवस्था नहीं बन सकती कि यह ज्ञान आत्मामें जुड जाय! अगर कोई सम्बन्ध भी मानते समवायसे जुड जायगा ज्ञान आत्मामें, तो यह ज्ञान आत्मामें ही क्यो जुडता है, आकाश वगैरहमें क्यो नहीं जुड जाता है? जब स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं ये सब तो उसमें यह द्विविधा क्यो हुई?

अस्वसंविदित और अचेतन ज्ञानकी सिद्धि न होनेसे सतानत्व हेतुकी असिद्धहेत्वाभासपना—गुणोच्छेदरूप मोक्षके प्रसङ्गमें अब देखिये! दूसरी बात ज्ञान स्वय अपनेको नही जानता, ऐसा शङ्काकार मानता है। ज्ञानको जाननेके लिए दूसरा ज्ञान चाहिए, तब उसे जाननेके लिए तीसरा ज्ञान चाहिये। जब प्रकट ज्ञान ही नही बन पाया तो ज्ञानोंकी सतान बताना ये सब बातें भी असङ्गत हो जायेंगी। तीसरी बात सतान स्वय ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप? आत्मामें ज्ञानके बाद ज्ञान, ज्ञानके बाद ज्ञान यह तो चलता रहता है, अथवा यह ज्ञानकी परम्परा चल रही है, सो यहाँ जो तुमने सतान माना है वह सतान खुद ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप? ज्ञानरूप तो माना ही नही है, ज्ञानरूप तो ज्ञान है। विशेषवादमें जितने शब्द हैं, जितने स्वरूप हैं, जितनी समझ है, उतने ही स्वतन्त्र पदार्थ हैं? इस अज्ञानरूप सतानका सत्त्व ही सिद्ध नही होता। वह किसरूप है सतान, क्या आकार रखता है? उसका कोई स्वरूप न

होनेसे सतान सिद्ध नहीं होता। और सतानत्व हेतु देते, इस कारण असिद्ध हेतु है, तुमने यह हेतु दिया था कि ज्ञान सुख दु ख आदिकके बिल्कुल नष्ट होनेका नाम मोक्ष है, और ये सब गुण कभी बिल्कुल नष्ट हो जाते है क्योंकि सतान होनेसे। तो गुणोच्छेद साध्यका बनाया हेतु सतानत्व, तो सतानत्व बना हेतु और गुणोका उच्छेद बना साध्य। लेकिन यह हेतु ही सिद्ध नही होरहा है. अत. यह अनुमान सही नही है।

विकृत गुणोंके उच्छेदकी मोहस्वरूपमे अविरुद्धता—आत्मा स्वय ज्ञानमय है। जिन्हें हम ज्ञान कहते हैं जो मोटेरूपसे समझमे आते हैं वे ज्ञान ज्ञानके वास्तविक स्वरूप नही हैं। जैसे विकल्प विचार चिन्ता शोक इनमे जिस प्रकारका ज्ञान चलता है ये ज्ञान ज्ञानके विशुद्ध स्वरुप नहीं हैं, ये तो रागद्वेष ममता आदिक बटसे ज्ञानका कौल्पनिकरुप बन गया है। यदि इस ही ज्ञानके विनाशका नाम मोक्ष कहते हो तब तो कोई आपत्ति नही। ये क्षायोपशमिक ज्ञान, छुटपुट ज्ञान ये आत्मामे न रहे उसका नाम मोक्ष है यह ठीक बात है। यदि आकुलताके जनक ऐसे ही ज्ञान बने रहें तो वहाँ मोक्ष कैसे होता है? लेकिन इन विकल्पात्मक खोटे ज्ञानोंसे परे कोई एक ज्ञानरुप है जहा केवल जाननहार स्थिति रहती है, जहाँ रागद्वेष आदिक कोई तरङ्ग नहीं उठती है, ऐसा जो ज्ञानका सहज विलास है, उस विलासमे ज्ञानको नही परखा गया।

आत्मगुणोच्छेदसे आत्मोच्छेदका प्रसग—शकाकारका मन्तव्य है कि ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष है अच्छा तो, बताओ, वे गुण आत्मासे भिन्न हैं या अभिन्न? उन ज्ञानादिक गुणोको आत्मासे भिन्न माननेपर न तो सतान बनती है, न सम्बध जुडता और न कोई व्यवस्था बनती तब यदि उन गुणोको आत्मासे अभिन्न मान लोगे कि गुण वे सब ज्ञानादिक आत्मामें अभिन्न हैं। तन्मय हैं एकरूप हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि जब ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हुआ तो आत्माका नाश हो गया, क्यों कि अब आत्माको ज्ञानसे अभिन्न माना और फिर ज्ञानका उच्छेद माना तो जो आत्मा का ही उच्छेद कहलाया फिर मोक्ष किसका हुआ? कथञ्चित् भेद मानो, अभेद मानो तब तो व्यवस्था बन सकती है, पर यह कथंचिद्वाद वैशेषिकोंने नहीं माना है।

स्याद्वादके स्वरूपका दिग्दर्शन—कथंचिद्वाद कहो, स्याद्वाद कहो एक ही प्रयोजन है स्याद्वादका रूप क्या है जो कि जैन दर्शनके तत्त्व का मूल साधन है। स्याद्वाद मायने अपेक्षावाद। अपेक्षा रखकर निर्णयकी बात कहना स्याद्वाद है। जैसे कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है। इसमें एक बात विशेष जाननेकी है। स्याद्वाद निर्णयवाद है सशयवाद नही है। यद्यपि एक मोटेरूपसे अपेक्षाको अन्तर्गत करकेभले ही भी, लगा देते हैं, जीव नित्य भी हैं जीव अनित्य भी है, मगर भी शब्द सशयवादका भी प्रतीक है बहुत सीमामे और "ही" निर्णयवादका ही प्रतीक है

स्याद्वादके प्रयोगमे महर्षियोकी प्रक्रिया 'भी' लगानेकी नहीं रही। यह तो उसका भाव समझकर हम सरलतासे उसे बतलानेके लिए भी का प्रयोग करते हैं। 'स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव, स्यान्नित्यमेव स्यादनित्यमेव।' इस प्रकार एव लगा लगाकर प्रयोग है। जैसे किसी एक युवकका परिचय लेना था तो परिचय देने वाला जैसे कोई नाम रखलो मोहन सोहन और रोहन। यहा सोहन युवकका परिचय देना है। सोहनका पिता है मोहन और पुत्र है रोहन। तो कोई इस प्रकार तो नहीं कहता कि सोहन मोहनका पुत्र भी है, है पुत्र, पर भी लगानेका भाव हुआ कि और कुछ भी है। याने सोहन मोहनका पुत्र भी है। ऐसा कहने मे तो वह गाली समझेगा। क्योकि उसका भाव है कि सोहन मोहनका पिता भी होगा तो अपेक्षा लगाकर दृष्टि लगाकर धर्म बतानेके साथ लगाद गलत हो जाता है। वहा 'ही' का प्रयोग चलता है। जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है। और कोई यो कह बैठे कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य भी है। तो नित्य है यद्यपि लेकिन भी लगानेसे गलत हो गया याने द्रव्यदृष्टिसे वह अनित्य भी होता होगा? वहाँ निर्णय नही आया। स्याद्वादमे निर्णय पडा हुआ है कि यह इस दृष्टिसे ऐसा ही है। जीव पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है, स्याद्वादमे निर्णय पडा हुआ है एकदृष्टिकी स्पष्टता बताई गई है। किसी भी पदार्थको परिपूर्ण जाननेके लिए हमे अपेक्षा चाहिए। इस बेंचके बारेमे कोई परिचय दे तो कोई कहेगा कि यह बेंच ५ फिट लम्बी है, कोई कहेगा कि यह १ फुट ऊँची है तो कोई कहेगा कि यह १५ इंच चौडी है। तो यद्यपि ये सभी बातें सही हैं ५ फिट लम्बी लम्बाईकी अपेक्षासे है, १ फुट ऊँचाईकी अपेक्षासे है और १५ इंच चौडाईकी अपेक्षासे है। मगर कोई कहे कि लम्बाईकी दृष्टिसे यह बेंच ५ फिट भी है तो उसका यह कहना गलत है। वहा 'ही' आयगा। लम्बाईकी अपेक्षासे यह चौकी ५ फिट ही है, ऐसा कहनेमे अपेक्षाका स्पष्ट बोध होगा। जब अपेक्षासे वस्तुको निरख रहे हैं तो वहा संशयका क्या काम? निर्णय ही वहाँ पडा हुआ है। तो वस्तुस्वरूपके तत्त्वपरिचयका साधन एक स्याद्वाद है।

स्याद्वादका उपकार—यदि यह स्याद्वाद न होता तो हम लोग तत्वज्ञान ही क्या करते? तत्वज्ञानकी बात तो जाने दो, व्यवहारका भी काम नही चल सकता था, हम जीवित भी न रह सकते थे। ये सभी काम स्याद्वादके प्रसादसे हो रहे हैं। चाहे व्यापार हो, रोजिगार हो, खाने-पीने पहिनने ओढने आदिके कार्य हो, सभी जगह स्याद्वादका प्रयोग कर रहे हैं, फिर भी उसीका निषेध कर रहे हैं तो यह उन नास्तिको जैसी बात है जो कहते कि आत्मा नही है; जो समझ रहा है वह आत्मा नही है क्या? वह समझने वाला है क्या? समझने वाला होकर भी अपनी समझका निषेध करे, उस प्रकारकी यह बात है। हां, यह आखिरी बात है कि स्याद्वादसे पदार्थ का निर्णय करके फिर उसमे हेय बुद्धिका परिज्ञान किया जाता। हा, पर्यायदृष्टिसे यह जीव अनित्य है द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर उस अनित्यको उपयोगमे रखनेसे हमारा प्रयोजन सिद्ध नही होता इसलिए उस अनित्य विषयको छोडिए और इस नित्य ध्रुव

स्वभावका आश्रय कीजिए। तो अभी, निश्चयका विकल्प पकड़ लिया, इसके बाद फिर एक स्थिति ऐसी आती है कि जहां न छोड़नेकी बात रहती न ग्रहणके विकल्पकी बात रहती, किन्तु एक विशुद्ध आत्मानुभव रहता है ज्ञानानुभव रहता है। तो वह अनुभव साध्य है और उसके निकट यह भेद साधन है, तो उसका उपयोग करनेकी बात जिन अवस्थामें होती है वह तो होती है परन्तु स्याद्वादके बिना नहीं होपाती। मोह छोड़ो किनसे मोह छोड़ें? इन परिवारजनोंसे मोह छोड़ो। कैसे छोड़ें? यथार्थ बात जान लो कि इन परिवार जनोंके मायने क्या? इन परिवारजनोंके मायने है शरीरसे मोह छोड़ दो। यह शरीर जीव, कर्म और शरीर इन तीनका समूह है, अनन्त अणुवोंका पुञ्ज यह शरीर है और कर्म उससे भी अनन्तगुणे अणुवोंका पुञ्ज है, और उसके बीच पड़ा हुआ यह जीव एक है। जिसे हम आप अह अह इस प्रत्ययसे बोध करते हैं तो यह जीव, कर्म और शरीर इन तीन चीजोंका समूह है। तो इनमेंसे जीव-तत्त्वसे तो कोई मोह करता नहीं। वह तो अमूर्त है। यदि उस जीवतत्त्वसे कोई मोह कर बैठे तो उसे मोह करनेका होश ही न रहेगा। अर्थात् उसकी वेहोशी मिट जायगी। उसके तो तत्त्वज्ञान जग जायेगा। कर्मोंसे भी कोई मोह नहीं करता, उनका तो कोई खयाल भी नहीं करता। और इस शरीरसे भी कोई मोह नहीं करता, क्योंकि इस शरीरसे जब जीव बाहर निकल जाता है तो लोग निःशंक होकर उसे जला देते हैं। उससे फिर कोई प्रीति करता है क्या? तो मोह करना कुछ व्यर्थसा लगने लगा। ये सब ऐसी युक्तियां इस स्याद्वादसे अपने आप मिल जाती हैं। तो तत्त्वज्ञानका मूल साधन है यह स्याद्वाद।

जैनदर्शनमें महत्त्वपूर्ण मूल उपाय—कोई पूछे अथवा खुद ही कोई मनमें यह शङ्का लाये कि ऐसी कौनसी बात है जैनदर्शनमें जो अन्यत्र हमें प्राप्त नहीं होती? पापोंका त्याग करो। यह बात तो सब जगह सुननेको मिलती है, दूसरोंको अपना जैसा मानो; ऐसा सब जगह सुननेको मिलता है। नियम-संयमसे रहो, तपश्चरण करो ऐसा सभी जगह सुननेको मिलता है। भले ही एक मूल प्रकाशके पाये बिना उन सब बातोंमें अन्तर है लेकिन मोटेरूपमें तो सभी जगह यह बात मिलती है, उपदेश होते हैं। खास बात वह कौनसी है जो हमें यहीं (जैनदर्शनमें) प्राप्त होती है? तो वह खास बात है—तत्त्वज्ञान करनेका जो उपाय है वह जैनदर्शनमें सही बताया गया है और जिसके बलपर फिर निर्णय होनेपर पाप छोड़े, उसमें भी विशेषता आती है, नियम पाले उसमें भी विशेषता आती है। जब उद्देश्य एक सही बन जाता है और तत्त्वस्वरूप एक दृष्टिमें आ जाता है तब समझिये कि हमारे उन नियम, संयम, त्याग आदि में एक सहीपन (यथार्थता) आ जाता है। तो हमारा कर्तव्य है यह कि ऐसी बुद्धिको प्राप्त करके ऐसे शासन समागमको प्राप्त करके हम इस ओर विशेष ध्यान दें कि हम वस्तुस्वरूपका ज्ञान करें कि वास्तविक तत्त्व क्या है? मैं क्या हूँ? विश्व क्या है? समागम क्या है? यह ज्ञानप्रकाश होगा तो मोह दूर होगा, भीतरमें एक विशिष्ट

आनन्दका अनुभव होगा और ससारके सङ्कटोसे सदाके लिए छूट जायेंगे।

सतानत्व हेतुमे परसामान्यरूप व अपरसामान्यरूपका विकल्प – ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष है, इसकी सिद्धिमे जो सतानत्व हेतु दिया है कि सतानपना होनेके कारण ज्ञानादिक गुणोका अभाव हो जाता है तो यह सतानत्व हेतु सामान्यरूप है या विशेषरूप ? याने सामान्य सतानपना या विशेष सतानपना ? इन दोमेसे कौनसा सतानपना हेतु है ? यदि कहो कि सामान्यरूप सतानका हेतु है तो सामान्य दो प्रकारके हुआ करते हैं—परसामान्य और अपरसामान्य। परसामान्य उसे कहते हैं जिससे और व्यापी कोई सामान्य न हो। जैसे मनुष्य सामान्यको कहा तो मनुष्य सामान्यमें मनुष्य आ गए, मगर कुछ और बच गए। जैसे—पशु पक्षी। तो अभी यहांपर सामान्य नही हो सका, परसामान्य वह कहलाता है, कि जिससे बढकर जिससे व्यापी और सामान्य न हो। जब कहना चाहें जीवसामान्यको तो जीवसामान्य कहनेपर जीव जीव तो सब आ गए मगर अजीव पदार्थ नही आये। तो यह भी परसामान्य नहीं रहा। जब कहो सद् सामान्य तो इसमे सब आ गये, कोई नही बचा। तो यह कहलाया परसामान्य और परसामान्यके भेद करके किसी भी भेदको सामान्य रूपसे बोला जाय उसका नाम है अपरसामान्य। जैसे—सत्के दो भेद किए हैं—जीव और अजीव। अब उनमे जीवसामान्य बोलोगे तो वह अपरसामान्य है। तो सतानपना हेतु जो कहा है वह परसामान्यरूपसे है या अपरसामान्यरूपसे ? ये दो विकल्प रखे।

परसामान्यरूप सतानत्वहेतुमे अनैकान्तिक दोष—यदि कहो कि सतानपना परसामान्यरूप है तो उसका मतलब यही तो हुआ ना कि परसामान्यरूप सतानपना होनेसे ज्ञानादिक गुणोका उच्छेद हो जाता है। जो जो परसामान्यरूप सतान हो उसका नाश हो जाता है। यह उसकी व्याप्ति बनी, तो जैसे आकाश है। वह परसामान्यरूप सतान है। समझमें आता है ना, कि आकाशके एक स्थानके बाद दूसरा स्थान लगा, प्रदेशोकी सतान बराबर चल रही है। एक प्रदेशके बाद दूसरा, दूसरके बाद तीसरा है, इस तरह प्रदेशोकी सतान बराबर चल रही है, अथवा आकाश पहिले था, अब भी है आगे भी रहेगा। तीन कालकी अपेक्षा भी सतान है लेकिन आकाशका कभी उच्छेद होता है क्या ? तो परसामान्यरूप सतानपना हेतु रखकर भी आकाशमें साध्य नही रहा अर्थात् उच्छेदरूप साध्य नही रहा। तो यह हेतु अनेकान्तिक हो गया, क्योकि आकाशका अन्त उच्छेद न होनेपर भी सतानत्व हेतु वहाँ बराबर रहता है। फिर दूसरी बात यह है कि सतानत्व हेतु परसामान्यरूप माना है तो परसामान्यरूपका प्रयोग है सत् सामान्यरूप। तो सतानत्वमे माना ना, सतानरूप, तो सतानत्वमे यदि सत् सामान्यपना माना है तो वहाँ सत् सत् इस प्रकारका ही ज्ञान होना चाहिये। सतान सतान इस तरहके ज्ञानका ही वह कारण होना चाहिये। यह नहीं कि सतानत्वके ज्ञानका कारण हो जाय। तो इससे परसामान्यरूप सतानपना हेतु है, यह बात

सिद्ध नही होती।

अपरसामान्यरूप संतानत्व हेतु माननेपर दृष्टान्तकी साधनविकलता—यदि कहो कि अपर सामान्यरूप सतानत्व हेतु है अर्थात् विशेष गुणका आश्रय रखने वाला एक जातिरूप सतानपना हेतु है तो हेतु तो बन गया किसी विशेष गुणात्मक जातिरूप। तो वह हेतु तुम्हारे कल्पित पक्षमें रहे तो रहा आये, परन्तु किसी दृष्टान्तमें रह नहीं सकता, क्योंकि विशेष गुणात्मक संतानपना हेतु माना है। तो जिस गुणरूप सतानत्व ज्ञानादिक गुणके उच्छेदरूप हो सकते हैं उस गुणरूप संतानत्व हेतु प्रदीपमें कैसे होगा ? प्रदीपमे अन्य गुणारूप सतानपना है, तो जब दृष्टान्तमे हेतु नही रह सकता तो दृष्टान्त साधनविकल हो गया। जो दृष्टान्त दिया गया उसमें साध्य तो तुम मान रहे क्योंकि साध्य होता है इष्ट। सो तुम्हारा इष्ट है ही पर साधन तो वादी प्रतिवादी दोनोंके द्वारा सम्मत होना है। तो यहा सतानपना कहा है प्रदीपमे। तो साधन नहीं रहा. इस कारण अपरसामान्यरूप भी सतानपना हेतु युक्त नहीं है।

सामान्यरूप सतानत्वका गुणादिकमे सम्बन्धका अनियम—तीसरी बात यह है कि सतानत्व चाहे परसामान्यरूप हो चाहे अपर सामान्यरूप हो, सामान्य तो द्रव्यसे भिन्न माना गया है वैशेषिकसिद्धान्तमें, क्योंकि विशेषवादमें ६ प्रकारके पदार्थ हैं और वे सभी सत् हैं, स्वतन्त्र हैं। वे छे. कौन हैं ? द्रव्य गुण, क्रिया अर्थात् पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। तो सामान्य एक स्वतन्त्र सत् है तो वह हो गया भिन्न ज्ञानादिक गुणोंसे तो उस भिन्न पर सामान्यका अथवा अपरसामान्यका गुणमें सम्बन्ध कैसे बन गया, जो सर्वथा भिन्न होता है उसका सम्बध नहीं बन सकता। यदि समवाय सम्बधसे सम्बन्ध जोडनेकी टेक रखो तो इसका उत्तर दो कि यह परसामान्य ज्ञानमें ही क्यों लगा अन्य सतमें क्यों नहीं लगा ? तो सर्वथा भिन्न पदार्थका समवाय सम्बन्ध नही हो सकता है। और समवायका स्वरूप भी कुछ नहीं। समवाय क्या चीज है। जैसे जीव है, भौतिक पदाथ है इस तरह समवाय भी क्या कोई सत स्वरूप है। उसका क्या आकार है क्या गुण है यह सब कुछ भी नहीं सिद्ध होता। सो सतानत्वहेतु सामान्यरूप होकर ज्ञानादिक गुणोके उच्छेदरूप साध्यको सिद्ध करना यह तो बात असगत रही।

विशेषरूप सतानत्वहेतुके दो विकल्प—यदि कहो कि सतानत्व हेतु विशेष रूप है तो विशेषरूप होते है दो प्रकारके। विशेषरूपकी सतान होनेका अर्थ यह हुआ ना कि विशेष के बाद फिर विशेष फिर विशेष इस तरह विशेष के बाद विशेष लगातार चल रहे हो तो उसके मायने है कि विशेषरूप सतान हुआ तो वह विशेषरूप क्या है ? सतान जो विशेषरूप आ सकते हैं वे दो प्रकारके हो सकते हैं एक तो उपादान उपादेय रूप और दूसरा पूर्वापर पहिले और आगे समान जाति वाला सत निरन्तर चलता रहे, यों समान जातीय सत्का प्रवाह चले इसको भी सतान कह सकते हैं। तो सतानके इन

दो प्रकारोमेसे तुम्हारा विशेषरूप सतानपना किस प्रकारका है ? जैसे दृष्टान्तमें देखो बीजसे वृक्ष हुआ, वृक्षसे बीज हुआ तो यह सतान है उपादान उपादेयभूत । बीजसे वृक्ष हुआ तो बीज तो है उपादान और उपादेय है वृक्ष । जब वृक्षसे बीज हुआ तो वृक्ष है उपादान और बीज है उपादेय । तो एक सतान उपादान उपादेय रूप चलती है । जैसे घडा बना तो मृतपिन्ड है उपादान । तो जब आपकी जो अवस्था है वह है उपादेय फिर तो जब उसके बाद जो दशा बनी उसमे भी उपादान उपादेय है । तो उपादान उपादेय भूत ज्ञानादिक लक्षण वाला आपका विशेषरूप सामान्य है अथवा पूर्वापर समान जातीय सत्के प्रवाह रूप आपका यह सतान है । जैसे पानी बह रहा है तो जो जल बहा उसके आगे जो जल बहा वह सब समान जातीय बह रहा है । उसे भी सतान कहते हैं । उसमें उपादान उपादेय तो कुछ है नही । समान जातीय जीव पिण्ड है और वह लगातार धारामें चल रहा है उसे भी सतान कहते हैं । तो सतानके इन दो प्रकारोमेसे तुम्हारा कौन सा प्रकार है इस तरह यहाँ ये दो विकल्प किये गये ।

उपादानोपादेयभूतगुणक्षणविशेषरूप सतानत्व हेतुकी सदोषता — मोक्ष का गुणोच्छेद स्वरूप सिद्ध करनेके लिए जो सतानत्व हेतु दिया है वह सतानत्व सामान्य रूप तो बना नही । विशेषरूप माननेपर ये दो विकल्प किए गये । क्या उपादान उपादेय भूत बुद्धि आदिक रूप वह सतानत्व है या पूर्वापर समान जातीय पर्यायके प्रवाह रूप वह सतानत्व है । यदि कहो कि उपादान उपादेयभूत ज्ञानादिकरूप जो पर्याय है, उस विशेषताको लिए हुए सतानत्व हेतु यहा अभीष्ट है तो ऐसे सतानत्वहेतुमे असाधारण अनैकांतिकपनेका दोष आता है, क्योकि ऐसा सतानत्व हेतु दृष्टान्तमें नही पाया जाता । प्रदीप दृष्टान्तमे दृष्टान्तपना बनाने की दो किस्मे हो सकती हैं एक तो उस ही दीपकमें जो पूर्वापर ज्वलन चलता रहता है उसमें सतान समझना और एक दीपकसे दूसरा दीपक जलाया जाये उससे तीसरा दीपक जलाया जाय यो भी सतानपना दीपकमे माना जा सकता है । तो दीपकसे दीपक जलते रहे ऐसा जो सतानत्व है उसमें उपादान उपादेय भूत सतानपना नहीं पाया जाता तथा विशेषवादका उपादानोपादेय रूप सतानत्व भी नही हो सकता दूसरी बात यह है कि इससे तुम्हारे ही सिद्धान्तसे विरोध आता है क्योकि शकाकार ने खुद ऐसा नहीं माना कि पूर्वज्ञान तो उपादान होता है और अपर ज्ञान उपादेय होता हो, क्यो नही माना ऐसा ? कि यदि यह शंकाकार यो मान बैठता है कि पूर्वज्ञान तो उपादान होता है और पश्चात् होने वाला ज्ञान उपादेय होता है तो मुक्त अवस्थामें भी पूर्व पूर्वज्ञान उपादान बनने के कारण औ उत्तर उत्तरज्ञान उपादेय बनते चले जायेंगे तो मुक्त होनेपर भी ज्ञानके सतानका उच्छेद नही हो सकता । और ज्ञान सतानके उच्छेद को ही मोक्ष कहा जारहा है । इससे इस प्रकारका विशेषरूप सतानपना न शकाकारने माना है और न बनता हैं । वैसे देखा जाय तो सतानत्वका यह अर्थ बहुत अच्छा है कि पूर्वक्षण उपादान बने और दूसरा क्षण उपादेय बने । इस तरह उपादान उपादेय बन बनकर वह चलता रहे यह सतानपना बहुत युक्त जचता है, जैसे

बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज, तो यह सतानत्व रहे लेकिन ऐसा सतानपना मान लेनेसे मुक्त होनेपर भी यह सतान चलता रहेगा। जब अन्तिम ज्ञान उपादानरूप है तो वह अन्तिम कैसे रहा ? उसके आगे अन्य ज्ञान बनेगा, तो ज्ञानसे ज्ञान उत्पन्न होते चले जायेंगे ज्ञानका उच्छेद नही हो सकता।

पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमय विशेषरूप सतानत्व हेतुकी सदोषता—यदि यह कहोगे कि हम विशेषरूप सामान्यका अर्थ यह करते हैं कि पूर्व और उत्तर कालमे जो समान जातीय प्रवाह चल रहा है। जैसे किसी पदार्थमें रूप है। अब उस रूपके बाद इस ही प्रकारका रूप चल रहा है। कोई पदार्थ पीला है तो पीला पीला निरन्तर बन रहा है ना तो समान जातीय पर्यायका प्रवाह होना, इसका नाम सतान है तो ऐसा सतान माननेपर तो परमाणुके रूप आदिकके साथ अनैकान्तिक हो जायगा, अर्थात् ऐसा सतान परमाणुके रूप गध रस आदिकमें मिल गया उस ही प्रकारके रूपके बाद अन्य रूप होते जाये, गध होते जायें ऐसी इन परिणतियोंकी परम्परा रूप सतान परमाणु मे तो मिल गयी पर उसका उच्छेद नही होता। तो साधन होते पर भी साध्य न हो तो उसे अनैकातिक दोष कहते हैं। तो इस प्रकार यह सतानत्वहेतु ही असिद्ध है। असिद्ध दो प्रकारके होते हैं एक स्वरूपासिद्ध और दूसरा आश्रयासिद्ध। जिसका स्वरूप ही सिद्ध न हो उसे स्वरूपासिद्ध कहते हैं और जिसका स्वरूप तो सिद्ध हो पर हेतु पक्षमें न पाया जाय उसे आश्रयासिद्ध कहते हैं। अब देखिये स्वतन्त्र सत् गुणोंकी सतान क्या चीज होती है गुणोमे सतान भी नहीं पाया जा रहा है तो यह हेतु असिद्ध दोषसे दूषित हो जाता है।

भेदवादमें सन्तानकी असगतता—यह सतानत्व हेतु घटित भी न हो सकेगा विशेषवादमें कि पूर्वक्षण कारण हो उत्तरक्षण कार्य हो, क्योंकि सतानपना तो वहां ही सम्भव है जहां वस्तु नित्यनित्यात्मक हो। कार्यकारणभाव न एकान्त नित्यमें बन सकता न अनित्यमे सर्वथा नित्य या अनित्यमें उसकी अर्थक्रिया सम्भव नहीं इस कारण सतानत्व हेतु देकरके गुणोच्छेद रूप मोक्षको सिद्ध करनेकी बात असंगत है। जिस मन्तव्यमें प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र सत् है, प्रत्येक गुण स्वतन्त्र सत् हैं। प्रत्येक कर्म (क्रिया) अर्थात् विविध परिणतियाँ स्वतन्त्र सत् हैं, सामान्य भी स्वतन्त्र सत् है, विशेष भी स्वतन्त्र सत् है वहाँ न तो कार्यकारणभाव बन सकता और न उनमें प्रवाहरूप सतानत्व बन सकता है। जितने भी सत् हैं वे स्वतन्त्र ही हुआ करते हैं। कोई भी सत् अपने सत्त्व के लिये परकी अपेक्षा नहीं कर सकता है। सत् स्वतः सिद्ध होते हैं। स्वसहाय होते हैं। अत किसी भी सत् किसी अन्य सत्के साथ सतानत्व जोडना असगत है। लोकव्यवहार में जो सन्तान कहा करते हैं वहाँ निमित्तनैमित्तिकभावकी विशेषता दिखानेका प्रयोजन है। और फिर आत्माचरूप ज्ञान गुणका उच्छेद बतानेके लिये सन्तानत्व हेतु देना तो सगत ही कैसे हो सकता है।

मोक्षकी आत्महितरूपता—आत्माका हित मोक्षमे है अर्थात् संसारके समस्त सङ्कटोंसे छूट जानेमें ही आत्माकी भलाई है। और चाहते हैं सभी लोग यही कि सब सङ्कटोंसे मुक्ति मिले तथा उपाय भी जितने करते हैं इसीका करते हैं कि सङ्कटोंसे छुटकारा हो। लेकिन मूलमे यह फर्क आ गया है उपायमें कि सङ्कट मान लिया है किसी और ही बातको! सङ्कट तो है उनके विकल्प भी, पर उसके अलावा और भी सङ्कट हैं। जो मूल सकट है उसकी पहिचान नही हुई इसलिए न तो सकट मेटनेका उपाय बना पा रहे हैं और न सकटसे ही छूट पा रहे हैं। लोगोने सकट इसमे मान रखा है कि धन कम हो गया, किसी इष्टका वियोग हो गया, शरीरमे रोग हो गया, किसीने अपमान कर दिया आदि। पर ये कोई भी इस जीवको सकट नही हैं। जीव तो अमूर्त है, उससे इन सब बाहरी चीजोंका कोई सम्बन्ध नही है। यहाँ तक कि जिस शरीरमें यह जीव बंध रहा है इस शरीरसे भी यह जीव बिल्कुल पृथक है। शरीर शरीर ही है, जीव जीव ही है। शरीरमे कोई रोग हो गया, किसीने अपमान कर दिया, धन कम होगया आदिक किसी भी चीजसे इस जीवका कुछ सम्बन्ध नहीं है। तो इन बाहरी चीजोंसे जीवपर सकट मानना यह तो मूढताभरी बात है। इसी तरह इन बाहरी पदार्थोंसे अगर अपना सम्मान अपमान समझे तो यह भी मूढता भरी बात है। तो लोगोंने बाहरी बातोंसे तो इस जीवपर संकट माना पर जीवपर जो मूल संकट है उसकी कुछ खबर नहीं की। इस कारण सकटोंसे छूटनेके उपायमें श्रम करके भी सकटोसे छूट नही पाते।

जीवपर मूल सकट—मूल संकट जीवपर यह है कि जीव तो जीव है। परमात्मस्वरूप है, ज्ञानानन्द मूर्ति है, यहाँ किसी प्रकारका उपद्रव नही, लेकिन इस जीवके साथ कुछ दूसरी उपाधि लग बैठी, यह उपाधिका लगना ही इस जीवपर बडा सकट है। यह उपाधि क्या लग गयी? वह पहिली (दृश्यमान होनेके कारण पहिली उपाधि) उपाधि है शरीर। भव भवमे इस शरीरकी विडम्बना जीवके साथ लगी हुई है। दूसरी उपाधि है कर्मकी। कर्म साथ लगे हैं, उन प्रकृतियोके उदयमें यह जीव नाना रागद्वेष विभाव मचाता है। इसका जो ज्ञानस्वरूप है, वह भी विकसित नही हो पा रहा है, अशान्ति ही छा रही है। तो ये सब बातें सङ्कटकी इस जीवपर लगी हैं। इन सङ्कटोंसे छूटना है। इसका अर्थ यह है कि शरीर अलग हो कर्म भी अलग हो तो सङ्कट दूर हो। और सङ्कट लगा है तीसरा भीतरी जो एकदम साक्षात् सङ्कट है, वह है रागद्वेष मोह आदिक भाव उत्पन्न होनेका। रागद्वेष आये हैं इन सङ्कटोसे हमे दूर होना है। यदि ऐसा भाव बने तो उसका यह अर्थ लगाना चाहिये कि हमें राग-द्वेष मोह भावोंसे दूर होना है।

सकल सकटोसे मुक्त होनेमे मोक्षस्वरूपता—जब ये सङ्कट छूट जाते हैं, रागद्वेषमोहभाव दूर हो जाते हैं, शरीर भी दूर हो जाता है, कर्म भी विदा हो जाते हैं

उस समय वह जीव केवल जीव रहता है। इसके साथ दूसरा कोई अजीव पदार्थ अब नहीं लगा हुआ है, ऐसा जब केवल जीव रह जाता है तो उस समय इसकी क्या स्थिति होती है ? अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्दरूप विकास हो जाता है। इसे निषेधरूपसे यों कहो कि शरीर, कर्म, रागद्वेष इन तीन प्रकारके कर्मोंका विनाश होना इसका नाम मोक्ष है। इस मोक्ष अवस्थामें ही जीवका हित है। मोक्ष अवस्थामें अपने ही स्वरूपका लाभ है अर्थात् शुद्ध पूर्ण विकसित हो जाय इसीका नाम मोक्ष है।

गुणोच्छेदरूप मोक्षस्वरूपपर विचार—मोक्षका अनन्तचतुष्टय लाभ स्वरूप सुनकर भेदैकान्तवादी दार्शनिकने कहा कि हमें मोक्षका यह स्वरूप नहीं जचता मोक्ष अनन्त चतुष्टयके लाभका नाम नहीं है किन्तु जीवके साथ ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये ९ चीजें लगी हैं, ये ९ गुण लगे हुए हैं। इनका विनाश हो जाय, ये आत्मामें न रहें इसका नाम मोक्ष है। अब भैया ! थोड़ी परख कीजिये। मोक्षके इस समय दो स्वरूप रखे हैं उनकी तुलना भी करते जायें। स्याद्वाददर्शन तो कहता है कि अनन्तज्ञानदर्शनसुखशक्तिचतुष्टयका लाभ हो जाना इसका नाम मोक्ष है। जिन भगवानकी हम मूर्ति स्थापित करके पूजते हैं, मूर्तिको तो नहीं पूजते, किन्तु पूज्य प्रभुकी मूर्तिकी स्थापना की है, तो स्थापित मूर्तिमें हमारा आदर है और आदरपूर्वक हम मूर्तिके समक्ष ध्यान करते हैं प्रभु अरहतका, सकल परमात्माका। इससे आगे अवस्था है सिद्ध भगवानकी जिसकी मूर्ति हम निराकारके रूपमें बनाते हैं तो उस मूर्तिको भी सामने रखकर पूजना किसको है ? सिद्ध भगवान को ! तो अरहत और सिद्ध विधिरूपमें दोनोंके मोक्ष है और उस मोक्षका स्वरूप है। अनन्तज्ञानदर्शनशक्तिआनन्दचतुष्टयका लाभ हो जाना। जैनदर्शनने तो मोक्षका यह स्वरूप कहा, और वैशेषिक दर्शन जो भेद ही भेदको मानता है, उसके मोक्षका स्वरूप यह है कि आत्मामें जो ज्ञानादिक गुण लगे हुए हैं ये गुण नष्ट हो जायें, गुणोंका वियोग हो जाय, आत्मा गुणरहित हो जाय उसका नाम मोक्ष है। और इसीपर आलोचना चल रही है कि मोक्षका वास्तविक स्वरूप क्या है ?

संतानत्व हेतुकी असिद्धता और विरुद्धता—मोक्षका स्वरूप कहता कि बुद्धि आदिक गुणोंका उच्छेद हो जाय इसका नाम मुक्ति है और इस मुक्तिको सिद्ध करनेमें वैशेषिक दर्शन यह हेतु देता है कि संतानपना होनेसे चूँकि आत्मामें ज्ञानकी संतान चल रही है, ज्ञान हुआ फिर ज्ञान हुआ, यों ज्ञानकी परम्परा चलती रहती है, उसका कहीं उच्छेद हो जाता है यह वैशेषिक लोगोंका हेतु है। जैसे दीपक जल रहा है तो दीपककी संतान चलती रहती है। अगर एक घंटे दीपक जला तो एक एक बूँद तेलकी बराबर आ आकर जलती रहती है इसी प्रकार ज्ञानकी संतान चल रही है। तो जब कोई संतान न रहेगी, ज्ञान नष्ट हो जायगा तब आत्मा ज्ञानरहित हो गया

इसका नाम मोक्ष है। इस प्रकार वैशेषिक सिद्धान्तवादी मोक्षका जैसा स्वरूप कहते हैं उसके प्रति कहा जा रहा है कि यह हेतु विरुद्ध है, क्योंकि सतान नाम किसका है? कारण कार्य बनते जानेको। वहुत बूंदोसे जलने वाले दीपकमे वे पूर्व पूर्व बूंद वाले दीप ज्योतिकी कारण बनती हैं और उसकी अगली ज्योति कार्य बनती है। जैसे वृक्ष और बीजोकी सतान चलती है तो बीज कारण बनता है, वृक्ष कार्य बनता है, वृक्षसे फिर बीज होते, तो वृक्ष कारण बनता है, बीज कार्य बनता है। यो बीज और वृक्षकी परम्परा चलती रहती है। तो ऐसे ही आत्मामे ज्ञानकी सतान ... है, ज्ञानमें परम्परा चलती है, तो एकके बाद एक ज्ञानका अर्थ है कि पहिला ज्ञान छोड़ कर हुआ तो पूर्वज्ञान कारण हुआ और अगला कार्य हुआ। कार्यकारणरूप जो सतान है, यह एकान्त नित्य क्यों कार्यकारणभाव नही बनता। अर्थात् कोई चीज ज्योकी त्यो, अपरिणामी सदा बनी हुई है। जब उसमें कोई विकार ही नहो आ सकता, तो उसमें कार्य क्या बने? यदि सतानपनेका आधार एकान्त नित्य वाला ज्ञान आदि बनाया जाय तो, कार्यकारण नहीं बन सकता और एकान्तत. अनित्य ही पदार्थ तो उसमे भी सतान नही बनती। जैसे बिखरे हुए चने पडे हैं, स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं तो उनकी सतान क्या बने? इसी प्रकार अनित्यमे प्रत्येक समयका जो कार्य है, पदार्थ है, यह तो स्वतन्त्र है, वह तो होकर मिट गया, फिर नये समयमे नया आया तो उसकी सतान क्या बने?

अनेकान्तमे अर्थक्रियाकी संभवता—एकान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्यके आशयमें न सतान बन सकती है न उसका उच्छेद सम्भव है, अर्थक्रिया बिना सत् क्या अपना कोई पदार्थ कुछ काम कर सके यह बात अनेकान्तमें ही सम्भव है। जैसे सीधी अगुलीको टेढ़ी करदी तो अगुली यदि अनित्य है, पहिले समयमें थी, अब नही रही तो फिर अगुलीका टेढ़ा काम होना तो नही बन सकता। यदि अगुली अपरिणामी है, इसमे कुछ भी विकार नही आता तो टेढ़ी नही की जा सकती। काम बनता है उस पदार्थमें जो कथचित् नित्य हो कथचित् अनित्य हो। जब द्रव्यरूपसे पदार्थ आगे तक है तब कहा जायगा पर्यायदृष्टिसे ज्ञात होने वाले परिणमनको निरखकर कि इसमें काई बात हुई। जैसे अगुली अपरिणामी है तो अर्थक्रिया क्या? और यदि क्षण—क्षणमें नई—नई होती अनित्य में, तो बात किसमें मानोगे? इसी प्रकार पदार्थ अगर नित्य ही है तो इससे कोई काम नहीं बन सकता तथा अनित्य ही है तो उसमें अर्थक्रिया नही बन सकती। हां, द्रव्यदृष्टिसे नित्य पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, पदार्थका स्वरूप ही ऐसा है कि पदार्थ सदा रहता है और उसमे पहिली पर्याय विलीन होती है और अगली पर्याय उत्पन्न होती है तो उसमें कार्य बन जाता है। तो अर्थ न होनेसे, अर्थक्रिया न होनेसे सतानपना तुम्हारे बुद्धि आदिकमें बन नही सकता।

गुणोच्छेदके अनुमानप्रयोगमें दिये गये दृष्टान्तकी साध्यविकलता—दूसरी बात यह है कि तुम्हारे सतानत्व हेतुके साध्य उच्छेदके लिये दृष्टान्त कुछ भी

नहीं मिलता। दृष्टान्त दिया था यह कि जैसे दीपककी सन्तान चलती है सो दीपक भी बिल्कुल मिट जाता है, यह दृष्टान्त नही बनता दीपक बिल्कुल कभी नही मिटता। कैसे ? जब दीपक बुझ गया तो यह नही होता कि दीपकमें जो परमाणु थे, वे परमाणु नष्ट हो गए। अरे, वे धुवारूपमें पतले होकर आकाशमें फैल गए या अन्य किसी रूपमें ? जो अभी परमाणु उजेलेके रूपमें जल रहे थे वे कुछ अंधेरेरूपमें फैल गए, पर परमाणुवोंका विनाश नही होता। अन्य विद्युत दीपक आदिक जो भी दृष्टान्त दोगे कि ये नष्ट हो जाते हैं वे सर्वथा नष्ट नही होते; किसी न किसी रूपमें वे पदार्थ बने रहते हैं। यह मेघोंमें जो पतला उजाला आता है, वह पहिले उजाला रूपमें दीखा बादमें अंधेरे रूपमें आ गया, उसका सर्वथा विनाश नही हुआ। यह भी नही कह सकते कि "ध्वस्त होजानेपर भी उस दीपक आदिकमें दूसरा परिणमन तुम मान रहे हो तो उसमें प्रत्यक्षसे बाधा आ रही। कहा है दीपक ? उसमें कैसे हुई नई बात, वह तो बिल्कुल ही मिट गया।" यों प्रत्यक्ष बाधाकी नई बात यहां कह नही सकते। आंखोंसे दृश्य न होनेसे प्रदीपादिके अणुवोंमें प्रत्यक्ष बाधा यदि कहते हो तो उष्ण जलमें तेजो द्रव्यभी प्रत्यक्ष बाधित है उसे बाधित क्यों नहीं मानते? वैशेषिक दर्शनमें इस तरहकी व्यवस्था मानी गई है कि जितनी गर्मी है वह सब तेजो द्रव्यकी है, अग्निकी है। जहां जहां गर्मी मिले वहां चमकती हुई कुछ न कुछ आग पडी है। तो जब पानी गरम हो जाता है तो गरम पानीके भीतर आग है या जलकी उष्णता है ? सो वे जलकी उष्णता वैशेषिकवादी कहते हैं कि जब जल गर्म हो जाता है तो वह जलकी गर्मी नही है। जो आग है उसकी गर्मी है तो वहां भी प्रत्यक्ष बाधा है। उस पानीमें चमकती हुई भासुररूप निर्मल अग्नि तो दिखती नही, वहां भी प्रत्यक्ष बाधा है। यदि यह कहो कि गर्मी भासुररूप वाले तेजो द्रव्यके बिना बिल्कुल हो नही सकता इसलिए यद्यपि वह अग्निरूप द्रव्य पानीमें प्रकट नही हो रहा फिर भी उसका अनुमान ज्ञान होता है कि उष्ण जलमें भासुर तेजोद्रव्य है। तो कहते हैं कि इस तरह यह भी मानना चाहिये कि दीपक बुझ गया तो इसके मायने यह नही है कि दीपकका सर्वथा उच्छेद होगया, जिन स्कन्धोंसे दीपक बना था वह अंधकाररूपमें रहकर अब भी बना हुआ है। इसमें कोई बाधा नहीं आती, यह क्यो न मानलो !

वस्तुस्वरूप और मोक्षस्वरूप—स्वरूपकी यथार्थता यह है, कि प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है। जिस समय जो उनकी परिणति है उस समय वही परिणति है। तो दीपक है वह भी एक स्कन्ध है और उसकी परिणति इस समय उजेले रूप है फिर अंधेरेरूप हो जाती है। आत्मा है वह ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसकी परिणति संसार अवस्थामें तुच्छ हो रही है, अल्पज्ञानरूप हो रही है। हमारे आत्माका जो ज्ञानानन्द स्वरूप है वह विकृत हो गया है। जब विकार छूट गया तब मोक्षका स्वभाव क्या रह गया ? जैसा स्वभाव था वैसा ही पूराका पूरा रह गया, इसका नाम मोक्ष है। कहीं ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष नहीं है। जिन प्रभुको हम रोज

पूछते हैं, गुणस्मरण करते हैं, क्या हम उन प्रभुको इस रूपमे निरखें कि वहाँ ज्ञान भी नहीं, आनन्द भी नहीं, सब गुण खतम हो गए, अवगुण खतम हो गए वह बात तो मान ली जा सकती है। और भक्त इसके माननेमें इन्कार नहीं करता। उसका उत्साह है ऐसा माननेमे कि प्रभु समस्त अवगुणरहित है, उनमे दु.ख नहीं, इच्छा नही द्वेष नहीं, पुण्य-पाप नही, सांसारिक वासनाओके सस्कार नही किन्तु उनके साथ ही साथ यह हठ करना युक्त नही कि यह भी मान लीजिये कि उनमें ज्ञान नही, उनमें आनन्द नही। यदि ज्ञानानन्दका अभाव मान लिया तो फिर आत्मा क्या रहा? तथा जो ऐसा जानेगा कि मैं आत्मा ज्ञानविहीन हो जाऊगा, आनन्दविहीन हो जाऊगा तो वह मोक्ष प्राप्त करनेका उद्यम ही क्या करेगा? मोक्षका स्वरूप ही है - उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट आनन्द।

आप्तमीमासामें सकटमुक्त आप्तकी मीमांसा—समतभद्राचार्यने जब जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति प्रारम्भ की आप्तमीमांसा स्तोत्रके रूपमें, उससे पहिले वे आप्तमीमांसाकी रचना कर चुके थे, उसके बाद जब युक्त्यनुशासन स्तोत्र रचने लगे और उस समय जब आचार्यने यह कहा कि भगवान अब हम आपकी स्तुति करते हैं तो कुछ लोग पूछ उठे कि ऐ समन्तभद्राचार्य! तुमने आप्तमीमांसाके रूपमें इतना बड़ा स्तोत्र रच लिया, पर आप अब कह रहे हो कि हे भगवान, अब हम आपकी स्तुति प्रारम्भ करते हैं। तो आचार्य देव कहते हैं कि अभी तक हमने स्तुति न की थी बल्कि भगवानकी परीक्षा की थी कि जिन भगवानकी हम आप उपासना करते हैं उनका स्वरूप क्या है। उस परीक्षामें सब मत मतांतरोका विवेचन आना ही पड़ा। आप्तमीमांसाका प्रारम्भ यो हुआ ये प्रभु इसलिए हमारे भगवान नही हैं कि ये आकाश में चलते हैं। अरे आकाशमें तो मायावी पुरुष, देव आदि भी चल सकते हैं। ये प्रभु इसलिए भी हमारे भगवान नहीं हैं कि इनके ऊपर चमर ढुलते हैं, छत्र लगा हुआ है। ऐसा तो मायावी पुरुष भी करा सकते हैं। ये प्रभु इसलिए भी हमारे भगवान नहीं हैं कि उनके शरीरमें धातु उपधातु आदिकके कोई मल नहीं हैं, अरे ऐसे शरीर तो देव-गतिके जीवोमें भी पाये जाते हैं। ये प्रभु इसलिए भी भगवान नहीं है कि इन्होंने एक धर्म (जैनधर्म) चलाया। अरे ऐसे तो अनेकों लोग हुए जिन्होंने धर्म चलाया। पर, वे प्रभु भगवान किस कारण बने, इसे सुनिए—

भगवान आप्तकी पूज्यताका, महत्ताका कारण—आप्तमीमांसामे समतभद्राचार्यने यह बात बतायी कि भगवान इसलिए पूज्य हैं, महान हैं कि उनमें रच भी दोष नहीं रहे, और जो उनका ज्ञानस्वरूप है उसका पूर्ण विकास हो गया। ये दो बातें हैं जिससे कि प्रभु हैं, भगवान हैं। तो अब यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि कैसे तुमने जाना कि भगवानमें दोष नहीं रहे? तो इसमें अन्य भी युक्तियाँ हैं, पर जिस युक्ति पर यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ रचा गया है उसकी बात कह रहे हैं। भगवान

में दोष रंच भी नहीं रहे, इसका प्रमाण यह है कि भगवानके वचनोंमें परस्पर विरोध नहीं है सो निर्दोष वचन है। प्रभुने जो उपदेश किया, जो तत्वका स्वरूप बताया, जो विवेचना की, जितना जो कुछ वर्णन है उस समस्त वर्णनमें कहीं दोष नहीं आता, ऐसे प्रभुके निर्दोष वचन ; इससे यह सिद्ध है कि प्रभुमें दोष कुछ नहीं रहे। जैसे किसी व्यक्तिके जुखाम हो जाता है तो वह जो वचन बोलता है, उन वचनोंसे ही लोग पहिचान लेते हैं कि इसको जुखाम हो गया है ऐसे ही चूंकि प्रभुके वचन निर्दोष हैं, उनके वचनोंकी निर्दोषताका हमें ज्ञान होता है इस कारण हम कह सकते हैं प्रभुमें कोई दोष नहीं है। और, जो दोषरहित है वही भगवान है, सर्वज्ञ है। तो अब कुछ विवेचन है। तो अब कुछ विवेचन चलना चाहिए कि कैसे नहीं है उनकी वाणीमें दोष, तो उसके लिए दोषीक जो इतर वाणीमें आते हैं उन्हें बताना चाहिए था, तो बस इसमें मतमतांतरोंका विवेचन हो गया।

वचनोकी निर्दोषता बनानेके लिए सदोष मन्तव्योके निरूपणकी अनिवार्यता—देखिए जिन लोगोंने पदार्थोंको नित्य कहा है उनके वचन सदोष हैं, सर्वथा नित्य पदार्थ होते ही नहीं, अर्थात् पदार्थ हो, उसमें अवस्था कुछ न हो, परिणमन भी कुछ न आये, ऐसा कभी हो नहीं सकता, पदार्थ ही न रहेंगे तो सर्वथा नित्यमें पदार्थत्व माननेका वचन सदोष है। यदि क्षण क्षणमें नया नया आत्मा बनती है, क्षण क्षणमें नये-नये परमाणु उत्पन्न होते हैं तो इसका सत्व ही नहीं रह सकता। तो असत् कहांसे आए ? जो सत् है उसका सर्वथा विनाश कैसे होगा और फिर जब नये-नये ज्ञान हैं तो हमे खबर क्यों रहती है ? हमने कल अमुकको अमुक चीज दी थी उससे अब लेना है। अरे जिसको दिया था वह तो नष्ट हो गया, अब यह दूसरा आत्मा है। तो इसकी खबर कैसे रहा करती है ? यों अनेक बातें दोषकी बतानी पड़ीं। बहुत विस्तार है। यहां तो संक्षेपमें प्रसङ्गवश यों कह रहे हैं कि सर्वथा नित्य एकांतमें भी अर्थक्रिया नहीं बनती और सर्वथा अनित्य एकान्तमें भी अर्थक्रिया नहीं बनती।

संक्षेपमें प्रभुस्वरूपको और मोक्षस्वरूपका सपूर्ण निर्णय—जब समन्तभद्रस्वामी सदोष वचनोंका विवेचन करके उसीके साथ निर्दोष वचन क्या है यह परीक्षासे जब सिद्ध कर लिया अपने आपमें कि हे प्रभो, तुम ही एक निर्दोष हो, तुम ही एक उपासनीय हो। तुम्हारा स्वरूप जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्त आनन्दमय है, उस ही स्वरूपका ध्यानकर भव्यजीव संसारके संकटोंसे पार हो सकते हैं। जब यह निर्णय हो चुका तो इस निर्णयके बाद अब समन्तभद्रस्वामी स्तवन कर रहे हैं। तो स्तवन करते हुएमें अपनी अशक्ति बताकर कह रहे हैं कि हे प्रभु ! मुझमें यह सामर्थ्य नहीं है कि आपके गुणोंका वर्णन कर सकूं, क्योंकि गुण अनन्त हैं, उनका प्रतिपादन वचनोंसे असम्भव है। और जो कुछ समझमें आते हैं

ऐसे अनन्त गुणोंका भी वचनों द्वारा प्रतिपादन नहीं हो सकता। तो प्रभु आप अनन्त सद्गुणवान हैं। आपकी यथार्थता बतानेमें हमारे वचन असमर्थ हैं किन्तु सिर्फ इतनी ही बात कहकर हम सन्तोष कर पाते हैं। ज्यादा विस्तार करनेकी बातका सामर्थ्य वचनोंमें नहीं? इतना ही कहकर चुप होते हैं कि हे भगवान, आप ज्ञानकी परमकाष्ठा हो और आनन्दकी भी परमकाष्ठा हो, यह है आपका स्वरूप। अब देखो— इस स्वरूपमें कुछ कमी नहीं रही, पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण आनन्द है, इससे बढ़कर और कुछ क्या कहा जाय। तो जहां पूर्ण ज्ञान और आनन्दका विकास है वह मोक्ष कहलाता है। ऐसा मोक्षका स्वरूप जानकर ही हम अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं कि मोक्ष ऐसा पूर्णज्ञान होना, सर्व लोकके जाननहार रहना, रागद्वेष रंच न रहना और आनन्दमय बने रहना यही है जीवका विशुद्ध स्वरूप। इसी को कहते हैं मोक्ष, ऐसा स्वरूप जाननेपर ही मोक्षके लिए हम आप लोगोंका प्रयत्न हो सकता है, कहीं आत्मिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष है ऐसा जानकर मोक्षके लिए यत्न नहीं किया जा सकता।

आत्माके कैवल्यकी मोक्षरूपता - मोक्षके स्वरूपकी बात चल रही है कि मोक्ष कहते किसे हैं। मोक्षका शाब्दिक अर्थ है छुटकारा पाना। संसारके संकटोंसे छुटकारा पानेका नाम है मोक्ष। संसारके संकट हैं रोग, शोक आदिक। लेकिन उन संकटोंमें मूल संकट है जन्म और मरणका। जन्म मरणसे छुटकारा पानेका नाम मोक्ष है। जब जन्म मरणसे छुटकारा हो जाता है तो आत्मामें रहा क्या? शरीर तो रहा नहीं क्योंकि जन्ममरण छूट गया। कर्म भी रहे नहीं क्योंकि जन्म मरणका कारण कर्म है। और जन्म मरण न रहा इस कारण जाना जाता है कि अब कारण नहीं रहा। तो कर्म भी नहीं रहे, शरीर भी नहीं रहा तो फिर रागद्वेष किसमें होंगे? रागद्वेष होनेका कारण तो उपाधिका सम्बन्ध है। जब उपाधि न रही तो रागद्वेष कैसे हो। अब रागद्वेष भी नहीं, कर्म भी नहीं, शरीर भी नहीं, खालिस आत्मा ही आत्मा रह जाता है इसका नाम है मोक्ष।

आत्माके गुणोंके उच्छेदकी असम्भवता—इस प्रसंगमें एक विवाद यह चला था कि ज्ञानादिक गुणोंका भी आत्मासे निकल जाना इसका नाम है मोक्ष। जैसे कि शरीर निकल गया, कर्म निकल गए, रागद्वेष आदि निकल गए इसी प्रकार बुद्धि ज्ञान भी अलग हो जाए आत्मासे वह स्वरूप कहलाता है आत्माके मोक्षका। इसपर विचार चल रहा है। जैसे शरीर कर्म और रागादिक निकल गए इस तरह आत्माके ज्ञानादिक गुण नहीं निकलते। इसका कारण यह है कि आत्मा स्वयं ज्ञानमय है, आनन्दरूप है। यदि स्वरूपका उच्छेद हो जाय, स्वरूप नष्ट हो जाय तो पदार्थ ही न रहेगा। जैसे अग्निका स्वरूप है गर्मी। अगर गर्मी अलग हो जाय तो फिर अग्नि ही क्या रही? कहीं ऐसी भी अग्नि किसीने देखा कि बरफकी हुई अग्नि हो है वरं ठंडी

गर्मी नहीं है ? अग्निका स्वरूप ही गर्मी है तो स्वरूप निकल जानेपर फिर वह पदार्थ नही रह सकता इसी प्रकार आत्माका स्वरूप है ज्ञान। ज्ञानका अभाव हो जाय तो फिर आत्माका सद्भाव नही रह सकता।

शंकाकारके द्वारा दृष्टांतमें दिये गये प्रदीपादिक स्कधोंके सर्वथा उच्छेदका अभाव—इस प्रसगमें शकाकारने रागादिक गुणोंके उच्छेदको सिद्ध करने के लिए हेतु दिया था कि चू कि ज्ञानकी परम्परा लग रही है, आत्मामें, एक ज्ञानके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा, इस तरह जब ज्ञानकी डोर लग गयी है तो जिसकी डोर लगती है, जिसकी संतान होती है उसका कहीं खातमा जरूर होता है। जैसे दीपककी संतान है, एक दीपक जल रहा है, उसमें क्रम क्रमसे नए-नए दीपक ही तो जल रहे हैं, अब जो बूद आकर दीपक बने वह नया नया दीपक है, तो जैसे दीपककी संतान बन जाया करती है इसी प्रकारसे आत्मामें ज्ञानकी संतान चल रही है, और जो संतान होती है जिसकी संतान है तो उसका कहीं खातमा भी होता है। तो जैसे दीपककी संतान है और दीपक बुझ जाता है, मिट जाता है इसी प्रकार जब ज्ञानकी संतान है तो यह ज्ञानभी कही मिट जाता है, और ऐसा सिद्ध करनेमें दृष्टान्त दिए गए हैं प्रदीप शब्द आदिकके। लेकिन दीपकका, शब्दका, बिजली आदिकका सर्वथा अभाव नही होता। जो परमाणु स्कन्ध अभी बिजली शब्द आदिकके रूपसे है वे परमाणुस्कंध कही नष्ट नही होते, वे अन्यरूप परिणम जाते हैं। बिना उपादानके जैसे उत्पत्ति यहाँ देखी नही जाती वैसे ही उपादानसे कार्य होते रहेंगे। कोई सा भी कार्य ले लो, उसका कुछ न कुछ वजूद था तब काम हुआ। जैसे दीपक काहेसे बने। तेल बाती आदिक (अग्नि) वगैरहका सम्बन्ध किया, दीपक बन गया तो किन्ही पदार्थोंसे ही तो बना हुआ है जैसे बिना कुछ उपादानके उसमे कुछ कार्य नही बनता इसी प्रकार अब भी समझो कि जो उपादान है वह आगेके किसी कार्यको उत्पन्न करता ही रहता है। तो जिन स्कंधोंमें इस समय दीपककी उत्पत्ति हुई है उन स्कंधोंमें दीपक बुझनेपर धुवा अन्धकार आदिक रूपसे परिणमे हुए उन परमाणुओंकी सत्ता न मिटेगी, वह और रूप परिणम गया, क्योंकि जो भी सत है उसका स्वभाव है कि पूर्व पर्यायका त्याग करे और उत्तर पर्यायका ग्रहण करे और उस सतमें भी उसकी स्थिति बनी रहे, उसका कहीं विनाश न हो। जैसे ये जीव हैं ना, हम आप जैसे आज मनुष्य पर्यायमें हैं। इससे पहिले भी हम किसी पर्यायमें थे, तो उस पूर्वपर्यायका त्याग किया और इस पर्यायका ग्रहण किया।

आत्माका त्रैकालिक सत्त्व, परिणमनका सन्तान और गुणोच्छेदका अभाव—कोई कहेगा कि हमने तो देखा नही, हमें कुछ मालूम नहीं, हम तो अभीसे हैं, पहिले कुछ थे ही नहीं, तो यह बात यों नही बनती कि एक बात यह है कि जो था नहीं, सत् नहीं, वह कभी सत् हो ही नही सकता। अब यह ध्यानसे लावो कि मैं

जीव आज ऐसी अशुद्ध अवस्थामें है, मनुष्य पर्याय रूपमें है। तो यह जो अशुद्ध अवस्था मेरी बनी ऐसा जो एक कुछ भी मैं हूं, जो मैं सत हूं है ऐसा तो ध्यानमें आता है। तो जो है, होता है वह उपादानसे ही रचा हुआ होता है, अर्थात् कुछ न हो और हो जाय ऐसी किसी भी वस्तुकी बात नही है। जो भी चीज बनती है। तो मैं हूं तो मैं पहिले भी था, जब इस शरीरमें आया उसके पहिले भी मैं था। तो मैं था अवश्य यह निर्णय हो जानेके बाद फिर यह विचारो कि वह मैं किस रूपमे हो सकता था। मैं केवल मैं ही होता, शुद्ध होता, अशुद्ध न होता तो अशुद्धता मुझमें आ नही सकती थी। आजकी अशुद्धता यह प्रमाणित करती है कि हम इससे पहिले भी अशुद्ध अवमे थे। तो इससे पहिले भी थे उस पर्यायका तो व्यय हुआ और अब मनुष्य पर्यायका उत्पाद हुआ और दोनों पर्यायोमें हम नही हैं जो पहिले थे वही आज है। तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य ऐसा यहां देखा जा रहा है। ऐसे सब पदार्थोंमें उत्पादव्यय ध्रौव्यमय रूपता जाननी चाहिए। तो आत्मामें ज्ञानादिक जो गुण हैं वे मिट गए तो नए ज्ञान उत्पन्न हो गए। यहां संसार अवस्थामें होने वाले ज्ञानकी तुलना करके प्रभुके ज्ञानका उच्छेद करना यह बात युक्त नही है। यह तो माना जा सकता है कि हम आप लोगों के जैसे गडबड ज्ञान हो रहे हैं, ज्ञान होते हैं, मिटते हैं, दु खके कारण भी बन रहे हैं ऐसे ज्ञानोका विकल्पोका तो मोक्षमे सद्भाव नहीं है, पर ज्ञानका जो काम है जानना वह कभी छूट नही सकता। किसी भी अवस्थामें कोई जीव हो, जाननसे रहित कोई नही होता। प्रभु सिद्ध हो गए हैं तो उनमें शुद्ध ज्ञान चल रहा है। ज्ञानादिकगुणका उच्छेद नही है।

गुणोच्छेदके अभावका साधक अनुमान—अब तुम्हारे (शंकाकारके) द्वारा दिये गए अनुमानके विरोधमें एक अनुमान भी बताया जा रहा है कि ज्ञानादिकका जो सतान है, ज्ञानोंका होते रहना है यह कभी नष्ट नही होता, क्योंकि उस प्रकारके नष्ट होनेका कोई प्रमाण नही पाया जा रहा। जैसे हम देखते हैं कि ये दृश्यमान पदार्थ स्कध इनमें रूपकी सतान चल रही, काला, पीला, नीला आदिक, तो कल्पनामें आता है क्या कि जब इसमें रूपकी सतान चली है तो कभी न कभी इस पुद्गलमें रूपका उच्छेद भी हो सकता है। इस पदार्थमें कितने ही रूप बदल गए, कितने ही बदलेंगे पर ऐसा समय तो कभी न आयगा कि इन पदार्थोंमे रूप न रहे। कुछ भी तो रहेगा। काला, पीला, नीला, सफेद आदिक कुछ भी न हो तो क्या होगा इस पुद्गलमे, इस पिण्डमें। यह कल्पना ही नहीं हो पाती है कि इसके रूपका कही विनाश है। सतान तो इसकी भी है। तो जिसकी परिपाटी है उसका विनाश हो यह नियम नहीं बनता।

गुणोच्छेदरूप मोक्षकी निर्हेतुकता—खैर किसी प्रकार तुम्हारी हठ थोडी देरको स्वीकार भी करलें कि चलो सतानका उच्छेद हो जाता है पर यह बतलावो कि ऐसा मोक्ष होनेमें, जहां ज्ञानादिक गुणोंकी संतान नहीं रहती उस मोक्षका कारण क्या

है? बिना कारणके तो किसीका विनाश नहीं होता है। अगर ज्ञानादिक गुणोंका विनाश होता है ऐसा मोक्ष मानते हो तो बतलाओ? कारण कुछ नहीं मिल सकेगा। शंकाकार कहता है कि है कारण। ज्ञानादिक गुणों का उच्छेद हो जाता है उसको नाम मोक्ष है और आत्मा ज्ञानहीन हो जाता है तो आत्माके ज्ञानके नष्ट होनेका कारण हम बतलाते हैं। उस मोहका कारण यह है कि उस जीवको तत्त्वज्ञान हुआ और वह तत्त्वज्ञान पहिले तो विपरीत ज्ञानको हटाकर हुआ, फिर उस तत्त्वज्ञानमें कुछ और विशेषता आयी, यही तत्त्वज्ञान मोक्षका कारण बन जाता है और वह मोक्ष है गुणोंके उच्छेद रूप। अब देखो कैसी बलहीन दलील है कि गुणोंके उच्छेदका कारण, ज्ञानके विनाश हो जाने का कारण क्या है? तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञान हो तो उससे ज्ञानका नाश होगा। और ज्ञान का नाश होनेसे मोक्ष मान लिया गया। तो तत्त्वज्ञान हुआ और वह ज्ञान ज्ञानको नाश करने वाला बन गया यह बात किसी युक्तिमें आ सकती है क्या? और, तत्त्वज्ञान जब मोक्षका कारण है तो वह तत्त्वज्ञान उपादेयभूत हुआ। कोई परमार्थ बात हुई। उस तत्त्वज्ञानके उत्पन्न होनेके बाद फिर वह कैसे ज्ञानके उच्छेदका हेतु रहा?

गुणोच्छेदवादमें तत्त्वज्ञान द्वारा विपर्ययज्ञानके उच्छेदकी असिद्धि—खैर, मान लो कि तत्त्वज्ञान तुम्हारे कल्पित मोक्षका कारण है, तो फिर तत्त्वज्ञानमें विपरीत ज्ञानको नाश करनेका सामर्थ्य है, यह तुमने कैसे निर्णय किया? यदि कहो कि सम्यग्ज्ञानमें ऐसी प्रकृति ही है कि मिथ्याज्ञानका विनाश करदे। जैसे पड़ी तो थी सीप और सन्देह हो गया कि यह सीप है या चांदी? अथवा विपर्यय ज्ञान हो गया कि यह तो चांदी ही है। जब उसकी परीक्षा की जाती है तो निर्णय हो जाता है कि यह तो कोरी सीप है। तो जैसे सीप है ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ, तो उससे विपरीत ज्ञान का विनाश हो गया था। तब ऐसा ही समझना चाहिए कि जिस जीवको तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है उसको जो विपर्यय ज्ञान पहिले लगा हुआ था संसारको पर्यायको आत्मा माननेका या ज्ञानगुणको ही आत्मा माननेका जो कुछ विपर्यय भाव लगा था उसका उच्छेद हो जाता है। शङ्काकारकी इस युक्तिपर प्रश्न उठता है कि जैसे सीप चांदीके विषयके परिज्ञानमें जो पीछे ज्ञान हुआ है उसको बताते हो कि पिछले ज्ञानके हटनेका कारण है तो हम भी तो कह सकते कि मिथ्याज्ञानसे सम्यग्ज्ञान भी नष्ट होता है। जैसे सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञान नष्ट होता है इसी तरह मिथ्याज्ञानसे सम्यग्ज्ञान नष्ट होता है। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान ये तो परस्पर विरोधी हैं। सम्यग्ज्ञान होगा तो मिथ्याज्ञान नहीं रह सकता, मिथ्याज्ञान होगा तो सम्यग्ज्ञान नहीं रह सकता जैसे—तत्त्वज्ञानके द्वारा विपर्ययज्ञानका उच्छेद बताते हो इसी प्रकार मिथ्याज्ञानके द्वारा सम्यग्ज्ञानका भी उच्छेद जानो।

तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञानकी सतानके उच्छेदका प्रस्ताव—शंकाकार कहता है कि हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि सम्यग्ज्ञानके द्वारा मिथ्याज्ञानका उच्छेद

होता है और मिथ्याज्ञानके द्वारा सम्यग्यानका उच्छेद होता है, किन्तु हम तो ज्ञानके सतानके उच्छेदकी बात कह रहे हैं। सम्यग्ज्ञान होनेसे मिथ्याज्ञानकी जो परम्परा लगी हुई थी उसका विनाश हो जाता है। जैसे जो देह है सो मे हूँ ऐसा जो मिथ्याज्ञान अनादिसे लग रहा है और उसकी परिपाटी चल रही है उस मिथ्याज्ञानकी सतानका विनाश तत्वज्ञानसे हुआ। ऐसी बात यहा नही लगा सकते कि यो सम्यग्ज्ञानकी परम्परा चल उठे तो उस सतान ा मिथ्याज्ञान विनाश कर देगा। सम्यग्ज्ञान है सत्यबात और मिथ्याज्ञान है विपरीत। सत्यबात बलवान होती है। बलवानके द्वारा निर्बलका सतान ही मिटायी जा सकती है, निर्बलके द्वारा बलवानकी सतान नही मिटाई जा सकती है। तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि मिथ्याज्ञानकी जो सतति चल रही है वह सम्यग्ज्ञान के द्वारा नष्ट कर दी जाती है। जब मिथ्याज्ञान दूर हुआ तो फिर रागादिक भी दूर हो गये, और जब रागादिक न रहे, कारण न रहा तो रागका काम था मन, वचन, कायकी चेष्टामे होना तो रागके न होनेसे मन वचन कायकी चेष्टायें भी समाप्त हो गई मन, बचन, कायकी चेष्टायें दूर होनेसे तत्वज्ञान हो गया, और उस तत्वज्ञानके होनेसे मिथ्याज्ञान दूर हो गया, अब धर्म अधर्म आदिक भी उत्पन्न नही हो सकते। तो यो धर्म अधर्म जब न उत्पन्न हुए पुण्यपाप जब न इसके उत्पन्न हो तब उनका मोक्ष होता है। तो इस मोक्षमे धर्म अधर्म नहीं रहते सुख दुःख भी नही रहते, इच्छा द्वेष भी नहीं रहते और ज्ञान भी नही रहता, समस्त गुणोका उच्छेद हो जाता है।

तत्त्वज्ञान द्वारा विपर्ययताका उच्छेद होनेपर भी ज्ञानगुणके उच्छेदकी सिद्धिका अभाव— देखिये! शङ्काकारके इस कथनमे कुछ कथन तो भले लगते हैं, पर जहा एक किया हुआ पक्ष जब सामने आता है कि गुणके अभावका नाम मोक्ष है, तब यह कही हुई सची बात भी फीकी पड जाती है। क्या यह बात ठीक नही है कि जब तत्त्वज्ञान होता है तो मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है? सब कोई मान लेंगे कि जब मिथ्याज्ञान दूर हुआ तो रागादिक भाव भी दूर होने लगते हैं यह बात भी तो सही है। जब राग भाव दूर हो जाता है तो मन, वचन कायकी चेष्टायें भी समाप्त होती हैं। यह भी ठीक है। और जब मन, वचन, कायका योग समाप्त हो गया तो वहां न न पुण्यका आश्रय हुआ न पापका। पर इस सबके कहनेका उद्देश्य क्या है शङ्काकार का कि जहा पुण्य—पाप, सुख-दुख ज्ञान आदिक सब गुण समाप्त हो जायें, केवल आत्मा रहे, केवल चिन्मात्र रहे। जहा परिणति कुछ नही उसका नाम मोक्ष है। जहां यह बात सामने रखी कि अब जो बात तत्वज्ञान आदिककी कही वह भी खण्डित करने योग्य बन जाती है।

तत्त्वज्ञानद्वारा विपरीतताका उच्छेद और ज्ञानादिगुणोका पूर्णविकास तत्त्वज्ञान विपरीत ज्ञानके हटनेके क्रमसे बढकर मोक्षका हेतु बनता है अर्थात् तत्वज्ञान से ही तो विपरीत ज्ञान हटा, उसके हटनेमे रागादिक हटे, रागादिकके हटनेसे धर्म

अधर्म आदिक हटे, उनके हटनेसे फिर मोक्ष होता है। इस प्रकार तत्वज्ञान उस गु च्छेदरूप मोक्षका कारण है यह कहना अयुक्त है। उस तत्वज्ञानसे यद्यपि विपर्यय इ तो हट जाता है धर्म अधर्म पुण्य पाप ये भी हट जाते हैं, पुण्य पापके कार्यभूत शरी दिक भी हट जाते हैं पर इतनी उपाधियाँ हट जानेपर भी अनन्त अतीन्द्रिय सम पदार्थोंको विषय करने वाला ज्ञान हट जाय यह सिद्ध न होगा। तत्वज्ञानसे विपरी तायें, सब उल्टी बातें, सब हट गयीं, यहां तक तो कथन ठीक है, पर ज्ञानादिक भी हट गए यह कैसे सिद्ध होगा? तत्वज्ञानसे तो ज्ञानादिक गुणोंका परिपूर्ण विक हो जाता है। तत्वज्ञानका प्रकाश अन्य गुणोंसे हटा रहे, फिर कहो वह प्रकाश बुझ जाय इसका नाम है यह तो तत्वज्ञानसे विपरीत बात हो जाएगी। इसी प्र आनन्दकी सन्तान भी नहीं हटती। ऐसा तत्वज्ञान कौन उपार्जन करेगा जो आनन्द भी मिटा दे? किसीसे कहा जाय कि तुम एक उपाय करो जैसे तुम्हारा प्राण खतम हो जाय वह उपाय करो। तो इस बातको कोई सुनना भी नहीं पसंद करे उपाय करेगा! यही बात तुमने मोक्षके स्वरूपमें बता दी। ऐसा मोक्ष उत्पन्न क जहां ज्ञान नहीं रहे। ऐसे मोक्षके लिए कौन प्रयत्न करे? हाँ यह बात तो युक्त कि संसारी जीवोंने जिन विषयोंके सुखको सुख मान रखा है, खाना, पीना, देख सुनना, मनके विकल्प बढ़ना यश नाम आदिककी बात सोचना, इनमें जो सुख म रखा है यह सुख नहीं रहता मोक्षमें। कल्पित सुख निराकुल है, यह तो नहीं रहत किन्तु सहज अनन्त जो वहां आनन्द है, जो आत्माका स्वरूप है वह भी समाप्त जाय यह बात नहीं जमती। तो तत्वज्ञानसे ये सब क्षायोपशमिक ज्ञान, सराग ज्ञ भी मिट जायें, यह भी मंजूर है, ये काल्पनिक संसारके सुख भी समाप्त हो जायें भी स्वीकार है, पर इन सबके मिट जानेपर ज्ञानस्वरूप मिट जाता है यह बात स्वी कार नहीं हो सकती।

ज्ञानके स्वरूपके अपरिचयमें ही ज्ञानोच्छेदरूप मोक्षकी कल्पना — कोई पुरुष यदि मोक्षमें ज्ञानका अभाव स्वीकार करे तो उसका अर्थ यह है कि उस ज्ञानका स्वरूप नहीं समझ पाया। इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान हुआ बस उसे ही सम पाया। जो कानोंसे सुनकर, आंखोंसे देखकर, नाक रसना, इन्द्रिय आदिकसे जानक समझा इतना ही ज्ञान समझा, इसके आगे ज्ञान और कुछ नहीं है ऐसा जिसका आ हो, ज्ञान हो, सो ज्ञानके स्वरूपको न समझता हो वही यह मान सकता है कि अ यह ज्ञान खतम हो जायगा उसका नाम मोक्ष है क्योंकि इन ज्ञानोंमें बड़ा दुःख भ है। कल्पनानुसार जो ज्ञानका स्वरूप बताया गया है, देख लो सारा दुःख ज्ञानमें पड़ हुआ है। कहीं लाख दो लाखका टोटा पड़ गया है इस प्रकारकी बात ज्ञानमें आए तो झट दुःख हो गया। कहीं चाहे २ लाखका लाभ हुआ हो और तारमें ऐसा कु पढ़नेमें आ जाय कि २ लाखकी हानि हुई तो उस ज्ञानके होनेसे कितना दुःख होत है। तो दुःखका कारण उन्होंने ज्ञान समझा है। ज्ञान न हो तो ये सब दुःख मि

जायेंगे ऐसा समझा है पर यह नही जान सके कि आत्माका स्वरूप फिर है क्या ? केवल चिन्मात्र कहनेसे आत्माके स्वरूपकी व्यवस्था नही बनती। चिन्मात्र मायने चेतता। अब वह चेतना क्या स्वरूप रखती है उस चेतनाका भाव क्या है उस चेतनामे आता क्या है जरा स्वरूपपर दृष्टि दो तो इतना तो मालूम ही पडेगा। और, प्रतिभासके मायने है, जानना है।

लौकिक ज्ञानोमे सरागताके कारण व्यावहारिकता भैया ! यह जो ज्ञानका ऐसा मोटा रूप बन गया है सो वह केवल प्रतिभासमात्र नही है इसलिए मोटारूप दिख रहा है एक दूसरेकी झट समझमे आ जाता है। उस ज्ञानके साथ राग लगा है, विकल्प विचार लगे हैं और इस कारण उनके कुछ समझने लायक मूर्तरूप बन गया है, परन्तु ज्ञानका सत्यस्वरूप क्या है ? केवल जाननहार। जाननहारकी अवस्था है, जिसमे वस्तु पकडी नही जाती, उसमें स्नेह नही रहता, उसमें विकल्प नहीं रहता। केवल जाननहार। जैसे आप मार्गसे चले जा रहे हैं, बीसो आदमी आपको दिखते हैं जिनको कभी देखा ही नही, जिनसे कुछ मतलब ही नही, उनमे आपका चित्त नही अटकता और सामनेसे कोई घरका आदमी या मित्र या रिश्तेदार आता हुआ दिख जाय तो उसमे आपका चित्त झट अटक जाता है। तो जहा आपका चित्त अटकता नहीं वह तो है जाननका शुद्ध रूप और जहाँ आपका चित्त अटक जाता है वह है जाननका अशुद्ध रूप। वहा सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान नही है। रागादिक भावके मिलापसे ज्ञानका वह रूप बना है। ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है। ज्ञान न रहे तो आत्मा क्या रहा ?

ज्ञानस्वरूपके परिचयका प्रयत्न—अब भी आप परख लो। जब आप अपने आत्माको जानना चाहे तो क्या उपाय करना चाहिए। आत्मासे अतिरिक्त अन्य जितने पदार्थ हैं उन पदार्थोंका समागम मेरी भलाईका कारण नही है, इतना तो मोटा निर्णय सबका हो सकता है। आप ही विचारें जिस घरमें जिस परिवारके साथ आप रह रहे हैं, जिन ग्राहकोके बीच आप बैठा करते हैं ये सभी समागम आपकी शान्तिके कारण होते हैं या अशान्तिके ? उनसे आपको कुछ आत्माका लाभ मिलता है क्या ? ये सब समागम छोड जाने पडेंगे। ये कोई भी समागम इस जीवकी मदद न कर सकेंगे। यहांसे मरण हो जानेके बाद नया शरीर धारण करना पड़ेगा, नया समागम होगा, फिर वही नये ढगसे ज्ञान चलेगा, वहांपर पिछले भवका कोई समागम मदद न कर सकेगा। तो इतना निर्णय होना चाहिए कि यहांके कोई भी समागम मेरे हितरूप नही हैं। अब उन समस्त समागमोमे उपेक्षा होनी चाहिए। उन समागमोका विकल्प करते करते थक गए, अब तो कुछ उनके विकल्पोसे विश्राम लेना चाहिए। किसी भी पर पदार्थकी बात सोचनेमें न आए ऐसे सफलतापूर्वक बैठे तो अन्दर ही अन्दर जो ज्ञानप्रकाश है वह भीतर ही भीतर प्रवेश करके एक ज्ञानस्वरूपको जानेगा।

यह आप स्वयं भी अनुभव कर सकते हैं। आत्मा का स्वरूप ज्ञान है, उसका जानना कैसे छूटेगा ? सब कुछ भी बाह्यज्ञान छूट जायें मगर ज्ञानस्वरूप ज्ञानकी झलक, ज्ञानका प्रकाश ये कभी भी नहीं छूट सकते है, इससे ज्ञानके अभावका नाम मोक्ष नहीं है किन्तु ज्ञानके साथ जो रागादिक विकार लग रहे थे उनका खात्मा हो जाना और ज्ञानका विकास हो जाना इसका नाम मोक्ष है। तो मोक्ष ज्ञान, दर्शन, शक्ति, आनन्द इन चतुष्टयोकी सिद्धिको ही कहते हैं।

इन्द्रियोके बिना ज्ञानसंतान सभव होनेसे आत्माकी ज्ञानप्रयत्नकी सिद्धिमे बाधाका अभाव—शरीरके अलग होनेपर मोक्ष होता है इतनी बात तो सर्वसम्मत है, इसमे किसीको भ्रम नही। मोक्षमे ज्ञानादिक गुणोका विनाश हो जाता है इसमे विसवाद है। इस भ्रमका कारण यह भी हो सकता है कि जब शरीर न रहा तो तो इन्द्रिय भी न रही, अब वह ज्ञान किसके द्वारा करे जो पुरुष इन्द्रियके द्वारा ही ज्ञानका विकास समझते हैं वे इन्द्रियके बिना ज्ञानकी असम्भवता जानकर मोक्ष अवस्थामे ज्ञानगुणका विनाश मान सकते हैं, लेकिन यह भ्रम रखना भ्रम ही है। इन्द्रिय के नष्ट होनेपर भी ज्ञानादिक गुणोकी सन्तान बराबर चलती रहती है इसका कारण यह है कि ज्ञानका अविनाभाव इन्द्रियके साथ नही है। ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है। ज्ञान तो आत्माके साथ ही अनादिसे है अनन्तकाल तक रहेगा। अथवा वहाँ दो बाते हैं ही नहीं कि ज्ञान कोई अलग सत् हो आत्मा अलग सत् हो। आत्मा ही ज्ञानमय है। तो इन्द्रियके विनष्ट होनेपर ज्ञान बराबर बना रहता है। ज्ञानकी साधक इन्द्रिया नही हैं। इन्द्रियाँ तो बल्कि ज्ञानकी बाधक समझना चाहिए। जैसे कोई पुरुष किसी मकानके भीतर बैठा हो, खिडकियोमेसे बाहरकी बात देखे तो देखने वाली खिडकिया हैं ? देखने वाला तो पुरुष है। उस बन्धनकी अवस्थामे अर्थात् मकानके अन्दर वह पडा हुआ है इस बन्धनके कारण उसे इस समय खिडकियोके द्वारे ही देखनेकी बात आती है। खिडकिया देखनेका साधन नही वह तो बन्धन वाली बात है। देखनेका साधन तो उस पुरुषकी आँख ही स्वय है। वे खिडकिया तो बल्कि देखनेमें बाधक हैं। यदि खिडकियाँ न होती, भीटका आवरण न होता तो वह पुरुष चारों ओरसे निरख सकता था, इसी प्रकार ज्ञानमय यह आत्मा शरीरके महलमे पडा हुआ है, अब शरीर की ये दीवालें चारो तरफ हैं, ऐसी स्थितिमे यह आत्मा इन इन्द्रियके द्वारसे इन खिडकियोसे देख सकता है, बाहरकी बात जान सकता है, पर देखने जाने वाली ये इन्द्रियाँ नही हैं, यह आत्मा ही है। ये इन्द्रियाँ तो बल्कि देखने जाननेमें बाधक हैं। यदि शरीर न होता, ये इन्द्रिय न होती तो यह आत्मा तो चारों ओरसे जानता।

शरीरप्रीतिका कारण इन्द्रियज ज्ञान व सुखमे अपना ज्ञान व सुख माननेका भ्रम—इस शरीरसे बहुत बडी प्रीति हो जानेका कारण एक यह भी हो सकता है कि चू कि इस अवस्थामे इन्द्रियोंके द्वारा ज्ञान होता है और ज्ञान करना सब

को प्रिय है, इन्द्रियोके द्वारा ही सुखका अनुभव होता है, सुख भी सब चाहते हैं तो इस हालतमे ज्ञान और सुखका साधन इद्रियोको मान रहे है तो इद्रिय और ज्ञानके साधनोको सुरक्षित रखनेका ख्याल उनके मनमे आएगा ही। परन्तु जब यह विदित हो जाय कि ये इद्रियाँ हमारे ज्ञान और आनन्दमे साधक नहीं बल्कि बाधक हैं तो इतना ज्ञान होनेपर फिर उसे इद्रिय ज्ञानोसे, इन इद्रिय सुखोसे प्रीति नही रहेगी। जैसे किसी नाबालिग बच्चेकी करोडो रुपयेकी सम्पत्तिपर गवर्नमेटने कोर्ट कर रखा हो और १०००) मासिक उसके खर्चके लिए दे रही हो तो जब तक वह बच्चा बालिग नही बनता है तब तक तो वह सरकारके गुण गाता है, पर जब उसे यह सही ज्ञान हो जाता है कि अरे मेरी करोडो रुपयोकी सम्पत्तिको सरकारने कोर्ट कर रखा है तो अब उसे १०००) मासिकमे प्रीति नही रहती। वह तो सरकारको नोटिस दे देता हैं कि मुझे नही चाहिए ये १०००) मासिक मुझे तो मेरी करोडो रुपयोंकी सम्पत्त दी जाय। इसी प्रकार ये ससारी नाबालिग अनजान प्राणी इन इद्रिय ज्ञानो के इद्रिय सुखोके गुण गाते हैं पर जब सही ज्ञान बन जाता है कि ओह ! इन इद्रिय ज्ञानो, इंद्रिय सुखोको नोटिस दे देता है अर्थात् इन समस्त इद्रिय विषयोका परित्याग कर देता है और अपने अनन्त आनन्दकी विभूतिको प्राप्त कर लेता है। तो इन इद्रिय जन्य ज्ञानोसे व सुखोमे प्रीतिकरके मुक्तिका मार्ग नही मिल सकता। मुक्तिके मार्गसे चलनेपर ये शरीर इद्रिय आदिके आवरण सब हट जाते हैं पर जाननहार जो अपना आत्मस्वरूप है जो ज्ञान है वह बराबर रहता है। इन इद्रियोके नष्ट होनेपर ज्ञान की सन्तान नष्ट नही होती। इस कारण यह भ्रम भरी बात मत मानो कि मुक्त होने पर आत्मामे ज्ञानादिक गुण नही रहते।

अतीन्द्रिय ज्ञानकी सिद्धिकी सफलता—शङ्काकारसे कहा जा रहा है कि यदि तुम अतीन्द्रिय ज्ञान नही मानते तो फिर तुम्हारे महेश्वरमे ज्ञानका सद्भाव कैसे रहेगा ? यहां थोडा शङ्काकारका सिद्धान्त समझ लीजिये। इनके सिद्धान्तमे जगतकी व्यवस्था इस प्रकार है कि कोई एक महेश्वर अनादिमुक्त है, वह समस्त जगतको जानता है और इसी कारण वह जगतकी सृष्टि रचता है। सृष्टिके रचनेमे जीव रचे और भौतिक पदार्थ ये सब रचे। रचनेके बाद अब ज्ञानादिक गुण उत्पन्न हुए, उनका हुआ आत्मामे सम्बन्ध, अब ये विकल्प करने लगे। इनमे ज्ञानादिक विषयादिक लग गए ना। अब यह जीव तत्वज्ञान करता है तो इसे मोक्ष प्राप्त होता है। वहा शरीर नही रहता, ज्ञान नही रहता इस प्रकार ज्ञानादिकके उच्छेदसे उन्हे मोक्ष होता है। तो दो तरहके मुक्त हुए एक अनादिमुक्त और एक कर्ममुक्त। तो महेश्वर अनादिमुक्त और ये अनन्त योगी जीव कर्ममुक्त हुए। ऐसा सिद्धान्त है उन शङ्का करने वालोका। तो उनसे पूछा जा रहा है कि अतीन्द्रिय ज्ञान तो तुमने भी माना, चाहे महेश्वरमे ही माना सही, तो यह तो निश्चित हो गया कि शरीर न रहनेपर भी ज्ञान रहता है। यह भी नही कह सकते कि ईश्वरका ज्ञान नित्य है उनका ज्ञान तो सदासे चला आया

है। यदि नित्य है ज्ञान तो उसमे फिर क्रिया नही हो सकती। तो जैसे अनन्त ज्ञान वाला महेश्वर है इसी तरह कर्ममुक्त आत्माका भी ज्ञान रहना चाहिए क्योंकि शरीर के बिना भी तो तुमने ज्ञान माना है। यदि स्वभाव नष्ट हो जाय तो बड़ी अव्यवस्था हो जायगी। हम कहेंगे कि देखो ! यह है हमारे हाथपर घडा। अरे कहाँ है घडा ? घडा होता तो उसका आकार, उसका धर्म भी तो होता। अरे धर्मके बिना भी पदार्थ रहने लगा शङ्काकारके मतमें। देखो ज्ञानके बिना भी आत्मा रहता है यों अटपट कितनी ही बातें कही जा सकती हैं फिर तो कोई वस्तुकी व्यवस्था न रहेगी।

फलोपभोगके बिना कर्मप्रक्षयका अभाव माननेका ऐकान्तिक ख्याल— विशेषवादीके सिद्धान्तसे ये जीव यह शरीर ही मैं हूँ यह ग्राम मैं हूँ, इस मिथ्याज्ञान से जन्म मरण करते हैं, कर्मफल भोगते हैं। जब उन्हें तत्वज्ञान हो जाता है तो उनका मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है। मिथ्याज्ञानके दूर होनेसे रागादिक दूर हुए और रागादिक दूर होनेसे मन वचन कायकी प्रवृत्तिया भी नष्ट हुई। और उन प्रवृत्तियोके नष्ट होनेसे धर्म अधर्म पुण्य पाप आदिक नष्ट हुए। अब आगे पुण्य पाप न बधेंगे। तो उनसे समाधानके लिए पूछा जा रहा है कि यह तो बतलावो कि आगेके लिए पुण्य-पाप तो न बधेंगे, पर वर्तमानमें जो करोडो कल्पकालके लिए कर्म बंधे हैं और करोडो कल्पकाल तक बंधे रह भी सकते हैं तो उनका क्षय कैसे होगा ? इसके उत्तरमें शङ्काकार कह रहा है कि जिन कर्मोने अपना काम शुरू कर दिया है, शरीरका मिलना, इन्द्रियोका मिलना आदिक जो भी कार्य उन कर्मोंका है वे साधन मिल गए तो सुख दुःखके भोगनेसे ही उनके कर्म दूर हो सकते हैं। और, जो कर्म कभी सत्तामें मौजूद हैं, वे कर्म भी अपना फल देकर नष्ट होगे। कर्म जो होते हैं वे फल दिये बिना नष्ट नहीं हो सकते, यह शङ्काकारका सिद्धान्त है। कितना ही तत्वज्ञान हो जाय, तत्वज्ञान होनेसे आगामी कर्म न बंधेंगे, मगर जो कर्म बध चुके हैं वे तो अपना फल देकर ही दूर हो सकेंगे उनका फल भोगे बिना वे कर्म दूर नही होते। इस विषयमें शङ्काकार आगमका भी प्रमाण दे सकता है जैसेकि उनके अभिमत ग्रन्थोंमें लिखा है "सैंकडो करोडो कल्प व्यतीत हो जायें तो भी बधे हुए कर्म बिना भोगे नही खिरते हैं।" शङ्काकारका यह सिद्धान्त है कि आगामी कर्मोंका आना बन्द होनेपर भी जो कर्म सत्तामे पडे हैं वे तो फल देकर ही खिरेंगे।

उत्तम अन्तरात्मावोके फलोपभोगके बिना भी कर्मप्रक्षयकी सिद्धि— अब इसके उत्तरमे कह रहे हैं कि तुम्हारा यह कहना युक्त नही है कि जिस कर्मने अपने कार्यका प्रारम्भ कर दिया है वह कर्म भी उपभोगसे ही दूर होता है और जिसने काम शुरू नही किया है, सत्तामे है वह कर्म भी फलके उपभोगसे ही नष्ट होता है, यह बात क्यो युक्त नही है कि यदि कर्म फल देकर ही नष्ट होते हैं तो कर्मोंके फलके समयमें मन, वचन, कायकी चेष्टा तो है ना, अन्यथा फल नाम किसका है ? मन न

बिगड़े, वचन न बिगड़े, काय न बिगड़े, इनकी चेष्टा न हो तो फल नाम किसका है ? यदि फल देकर कर्म झड़ते हैं तो फलमें हुई मन, वचन कायकी प्रवृत्ति, और मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिसे बँधता है कर्म। जब उसमें नवीन कर्म और बँध गये तो फिर उनका क्षय कैसे होगा ? वह तो कर्मोंकी परम्परा चलती ही जायगी। वास्तविकता तो यह है कि कर्मोंका फल भोगनेसे भी कर्म दूर होते हैं और बिना फल भोगे भी ज्ञान आराधनाके बलसे, परम ध्यानके प्रतापसे अनेक कर्म फल भोगे बिना भी खिराये जा सकते हैं। यह कहना ठीक नहीं कि चाहे कितना ही तत्वज्ञानी हो उसके भी कर्म फल देकर ही दूर होंगे और कर्मका कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है कि फल दिये बिना दूर हो सके। अरे, चरणानुसारी सम्यग्ज्ञानमें ही वह सब सामर्थ्य पड़ी है कि उससे ही कर्मोंका निरोध होता है और उसीसे कर्मोंका प्रक्षय होता है। जैसे सम्यग्ज्ञान होकर मिथ्याज्ञान नहीं रहता। सम्यग्ज्ञानके बलसे मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है। तो उसी सम्यग्ज्ञानमें जब बाह्य योग दूर हुए, अन्तरङ्ग विकल्प दूर हुए सम्यग्ज्ञानकी स्थिरता बढ़ी, चारित्र बढ़ा, तो उस समय उसका ज्ञान भी है, सम्यक्चारित्र भी है, तो उस समय सम्यग्ज्ञानमें जो कि परमार्थ चारित्रसे युक्त है उसमें कर्म न आने देनेकी भी सामर्थ्य और कर्मोंका क्षय करनेकी भी सामर्थ्य है। जैसे गर्मीका स्पर्श है। बड़ी ठंड बढ़ रही हो और वहां अगीठी या हीटर रख दिया, बहुत तेज कोई गर्मीका साधन रख दिया तो उस गर्मीके स्पर्शमें दोनों ही सामर्थ्य हैं—निकट भविष्यमें भी शीतको न आने दे और वर्तमान शीतको भी नष्ट कर दे। तो जैसे उस उष्णस्पर्शमें दोनों ही सामर्थ्य हैं इसी प्रकार इस चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानमें, ये दोनों ही सामर्थ्य हैं कि आगामी कालमें बंधने वाले कर्म भी न आयें और पूर्वबद्ध कर्मोंको भी खिरा दे।

अनेकान्तवादमें ही सम्यग्ज्ञानसे कर्मोच्छेदकी सिद्धि—सम्यग्ज्ञानसे कर्मानुत्पत्तिकी बात सुनकर शङ्काकार कहता है कि इसमें एक बात तो तुमने हमारी ही कह दी कि तत्त्वज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि भविष्यमें कर्म नहीं बंधते, धर्म अधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। आचार्य कहते हैं कि तुम तो यह भी सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि यह बात वहां ही सिद्ध हो सकती है कि जहां जीव और अजीव पदार्थमें नित्य और अनित्यपनेका यथार्थ ज्ञान हो जाय। पदार्थ द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। जीव सदा रहेगा ना, यह हुआ द्रव्य और जीव कभी मनुष्य होता, तिर्यञ्च होता, नारक आदिक होता, कभी क्रोधी बनता, मानी बनता, मायावी बनता लोभी बनता, इस तरहके अनेक भेद हैं, तो देखो पर्यायदृष्टिसे अनित्य हुआ जीव। जीव किसी भी एक अवस्थारूप बनकर नहीं रह सकता। यही तो अनित्यपनेकी बात है। तो जहाँ कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य रूप प्रतिपादन है वहाँ ही सम्यग्ज्ञान बन सकता है। पहिले तुम सत्यज्ञानकी सिद्धि कर लो पीछे मन्त्रकी बात कहना। एकांत नित्य तुम्हारा अपरिणामी आत्म पदार्थ है, उसमें कुछ बिगाड़ तो है नहीं उस ही की चीज, उस ही की परिणति कभी आए कभी न रहे, यह बात एकांत नित्यमें तो बन

नहीं सकती, तो फिर वहाँ फल ही क्या कर्म भी क्या, कर्मका कारण भी क्या ? कुछ भी सम्भव नही है। उसका न ससार बन्धन न मोक्ष। यदि अनित्य ही अनित्य सर्वथा माना जाय तो वहां भी कोई व्यवस्था नहीं बनती। जो विपरीत अर्थका ग्रहण करने वाला ज्ञान है क्या वह तत्त्वज्ञान हो सकता है ? और, विपरीत पदार्थको जानने वाले ज्ञानमे क्या यह सामर्थ्य है कि आगामी कम भी न आयें ? ये सब बातें एक सम्यग्ज्ञानमे ही घटित हो सकती हैं मिथ्याज्ञानमे नहीं। जिसे शङ्काकार तत्त्वज्ञान कह रहा है वह तो मिथ्याज्ञान है उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक वस्तुके यथार्थस्वरूपका सम्यग्ज्ञान हो और उस सम्यग्ज्ञानकी स्थिरता हो कि यह आत्मा अपने आत्मामें ही रम जाय ऐसा परम ध्यान बने तो उसमे यह सामर्थ्य है कि आगामी कर्मोंका बन्ध भी न हो और पूर्वसचित कर्मोंका क्षय भी हो जाय। पर इस विशेषवादमे चूकि फलके भोगनेको ही कर्मका क्षय माना गया है, तो जब फलका भोग होगा उस समय मन, वचन, कायकी चेष्टायें होंगी, रागद्वेष होंगे, सुख-दुःख होंगे, तो फिर उन परिणामोंसे कर्म बधेंगे तो कैसे क्षय जल्दी हो जायगा ? परम्परा हो जानेसे क्षय होगा भी नहीं।

समाधिवलसे भावी समस्त शरीरोंका एक ही भवमे धारण व फलोपभोगका पक्ष—शङ्काकार कह रहा है कि देखो कर्म जितने भी होते हैं वे तत्त्वज्ञानी के हो या मिथ्याज्ञानीके हों, कर्मोंका स्वभाव ही ऐसा है कि वे फल दिये बिना खिर ही नहीं सकते। यह शङ्का करना व्यर्थ है कि फिर तो परम्परा हो जानेसे कभी मोक्ष ही न होगा। बडा लम्बा समय लग जायगा और उसमे भी वह भोगोमे नवीनकर्मोंका बन्ध करेगा यह शङ्का करना यो युक्त नहीं है (शङ्काकार अपने सिद्धान्तसे कह रहा है) कि जिस समय तत्त्वज्ञानी पुरुषको समाधि प्राप्त होती है तो उस समाधिके बलसे जिसके तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ है उसने समझ ली न कर्मोंकी सामर्थ्य, कर्म फल दिए बिना खिरते नहीं, तब वह करता क्या है कि जितने शरीर उसे पाने पड़ेंगे उन सब शरीरोको वे समाधिके बलसे यहीं पैदा कर लेते हैं और उन शरीरसे जो कुछ कर्मोंका भोग करते थे वे सारे भोग उपभोग यहीं पा लेते हैं तो बडी जल्दी कर्मोंका क्षय हो जाता है और ससार फिर उसका नष्ट हो गया, मुक्ति हो गयी। क्योंकि, अगले कर्मों की उत्पत्तिका कारण तो है मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न होते हैं रागद्वेष। तो रागद्वेष उस तत्त्वज्ञानीके नहीं हैं उस समाधिमे, उस ध्यानमें। और, शरीर सारे उसने यही पा लिये तो कर्म तो दूर हो गए। भोग तो मिल गए पर रागद्वेष न होनेसे कर्मोंका बन्ध नहीं कर सका क्योकि जितने भी बन्धन होते हैं वे अनुसधानसे होते हैं। अनुसधानके मायने है रागद्वेष। अब मिथ्याज्ञान जब नष्ट हो गया तो अभिलाषा तो रहा नहीं। जब अभिलाषा न रही तो कर्मबन्धन नहीं हो सकते। ऐसी भी शङ्का करना युक्त नही है कि उस तत्त्वज्ञानीके उन अनेक शरीरोका कैसे उपभोग हो जायगा, क्योकि कर्मोंके क्षय करनेकी वाञ्छा है तो उसे यहां सारे शरीरोंका उपभोग पाना पडेगा। तब उसके कर्म दूर हो सकेंगे। जैसे कोई रोगी ही है, कडवी होनेके कारण उसकी इच्छा नहीं

है कि मैं इस औपधिको खाऊं पर उसे खाना पड़ता है तब उसका रोग दूर होता है इसी तरह जिसे पूर्वबद्ध कर्मोंको निर्जरा करना है उसे समस्त कर्मोंका फल भोगना होगा तभी पूर्वबद्ध कर्म निर्जराको प्राप्त हो सकेंगे।

फलोपभोगके एकान्तमे कर्ममुक्तिका अनवकाश—अब शङ्काकारकी उक्त बातका उत्तर आचार्य देव देते हैं कि वाह तुम्हारे ग्रन्थोमे तो यह भी लिखा है कि जैसे बहुत बड़ा भारी ईंधनका ढेर हो तो अग्नि सारे ईंधनको क्षण भरमे जला देती है, भस्म कर देती है इसी प्रकार तत्त्वज्ञानकी अग्नि सारे कर्मोंको क्षण भरमे जला देती है। शङ्काकारका यह कहना है कि जब तत्त्वज्ञान हो जाता है तो इच्छा न रहकर भी सारे शरीरोंको यही अपनी समाधिमे उत्पन्न करता है और उन सबका फल भी भोगता है और उस भोगसे कर्म दूर होते हैं। तो इसके मायने यह नही हुआ कि इच्छाके बिना भी रागादिकके बिना भी शरीर धारण कर लिया, कर्मफलको भोग लिया। रागके बिना स्त्री आदिकका उपभोग वहाँ सम्भव नही है, क्योंकि कर्म तो फल दिए बिना नष्ट नही होते, और कर्म कुछ ऐसे पड़े हैं कि पञ्चेन्द्रिय विषयोका भोगना ही उसका फल है सो उस समाधिमे यदि विषयोका उपभोग भी करते हैं स्त्री का उपभोग करते हैं तो ऐसे अत्यन्त भोग करने वाले जो कि आशक्तिके बिना सम्भव नही गृद्धिमान हो गए। फिर तो उन योगियोंके पुण्य पापका आना बराबर सम्भव है। जैसे यहाँ राजा लोग जो अति भोगी हैं उनके कर्म लदते हैं कि नही? लदते है। इसीप्रकार उस तत्त्वज्ञानी योगीने भी तपश्चरणके बलसे सारे शरीरोके ऐब भोग डाले शरीरमे जो जो विषयसेवन करने थे वे सब विषय एक ही भवमे यहा कर डाले तो वह तो अत्यन्त भोगी हुआ। उसके कर्म न आये यह कैसे सम्भव है? और भी देखो, जैसे वह रोगी वैद्यके बताए अनुसार औषधिका सेवन कर रहा है तो इच्छा है तभी तो कर रहा है, उसे निरोग होनेकी अभिलाषा है तभी तो वह रोगी वैद्यका उपदेश मानता है और औषधिका सेवन करता है केवल ज्ञान मात्रसे औषधिसेवनमे प्रवृत्ति तो नही करता, इसी प्रकार जितने भी फल भोगे जायेंगे उस तत्त्वज्ञानीके भी इच्छा है सो उन फलोके भोगमे कर्मोंका बन्ध सम्भव है। कौन इसे मानेगा कि कोई स्त्री सेवन कर रहा, अनेक राग रागनी सुन रहा, इतने सारे फलोको भोग रहा है और उसके कर्मबन्ध न हो इसे कौन मान लेगा?

दृढ सम्यग्ज्ञानके बलसे कर्मोंका प्रक्षय व अनन्तचतुष्टयस्वरूप मोक्ष का लाभ—सम्यक् तत्त्वज्ञानमे स्वय ऐसी सामर्थ्य है कि उन कर्मोंको बदल करदे, उनकी शक्ति नष्ट करदे। तो यह कहना युक्त नही कि तत्त्वज्ञानीके भी कर्मोंके उपभोग से कर्म दूर होते हैं। तो फिर कर्म कैसे दूर होते हैं? सम्यग्ज्ञान हो जैसे कि स्याद्वाद के द्वारा निर्णीत होता है, आत्माका सही ज्ञान कोई जान ले जैसा कि अपने स्वरूपसे है ज्ञानमय, आनन्दमय और उस सहज ज्ञानानन्दकी उपासना करे तो उससे जो

स्थिरता आती है उसमें यह सामर्थ्य है कि आगे कर्म भी न आयें और पहिलेके सञ्चित कर्म भी नष्ट हो जायें। तो न यहां शङ्काकारका तत्त्वज्ञान बनता है, न कर्मों के क्षयकी विधि बनती है तो मोक्ष भी नही बनता। फिर यह कहना कि ज्ञानादिक गुणोका जहाँ अभाव होता है उसका नाम मोक्ष है यह तो गलत बात है। मोक्ष नाम है अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्तशक्तिका विलासकरनेका व इस ही पावनस्वरूपमे ठहर जानेका।

कर्मप्रक्षयके कारण बतानेमे तत्त्वज्ञान व फलोपभोगके कथनकी परस्पर विरुद्धता—शङ्काकार वैशेषिकका यहा यह मन्तव्य है कि आत्मा सत् न्यारी चीज है और ज्ञानादिक गुण सत् न्यारे हैं। आत्मापे ज्ञानादिक गुणोका सम्बन्ध जुडता है और सम्बन्ध जुड जानेपर यह जीव अपनेको समझता है कि मैं ज्ञान वाला हूँ, देह वाला हूँ, बस इस बुद्धिसे ससारमें भ्रमण होता है। जब इसे तत्वज्ञान हो जाता है तो तत्वज्ञान होनेसे यह मिथ्याज्ञान दूर हुआ। ज्ञानको आत्मा माननेका भ्रम था वह दूर हुआ। देहको भी आत्मा माननेका भ्रम दूर हुआ तो इस मिथ्याज्ञानके नष्ट हो जानेसे रागादिक नही रह सकते। रागादिक न होनेसे आगामी कालके लिए कर्मो का बन्धन नही हो पाया। अब जो कर्म बधे हुए हैं जिनकी स्थिति करोडो कल्पो तक की है वे कर्म उपभोगसे दूर होते हैं और तत्वज्ञानी पुरुष ऐसा समाधिवल लगाता है कि करोडो शरीर जो आगे धारण करना पडते थे वे सब एक ही भवमे पा लेता है और उन शरीरोसे जितने फल भोगने थे वे फल अभी भोग लेता है। इस तरह एक ही भवमे समस्त शरीरोको पा लेता है और उनके फल भोग लेता है। और उनके फलको भोग लेता है। और ऐसा कर्मक्षय होनेके बाद फिर ज्ञान भी अलग हो जाता है। ज्ञानादिक गुणोसे शून्य होनेपर ही मोक्ष अवस्था कहलाती है। शङ्काकारके अभिमत ग्रन्थमे यह भी कहा गया है कि जैसे जाज्वल्यमान अग्नि बहुतसे ईधनको क्षण भरमे भस्म कर देती है इसी प्रकार तत्वज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मोको क्षण भरमें भस्म कर देती है। तब यहाँ दो परस्पर विरोधी बातें आ गयी। एक मतव्यके अनुसार तो कर्मफल भोगे बिना नष्ट नही हो सकते और एक इस मन्तव्यमे ज्ञान अग्नि सब कर्मोंको क्षण भरमे भस्म कर देती है तो ये दोनो विरोधी अर्थ वाले मन्तव्य हैं। इन दोनोंका एक मोक्षके उपायके सम्बन्धमे प्रमाणता कैसे होगी? ये तो परस्पर विरोधी वचन हैं।

तत्त्वज्ञान और फलोपभोगको कर्मक्षयका हेतु कहनेके परस्पर विरोध के परिहारका प्रयत्न—अब यहा शङ्काकार कह रहा है कि ये दोनो वचन विरोधी नही हैं। भोगनेसे कर्मोंका क्षय होता है यह तो है मुख्य सिद्धान्त, और जो यह कहा गया है कि ज्ञान अग्निसे कर्म क्षण भरमे भस्म होते हैं यह है औपचारिक कथन। कैसे कि जिन ज्ञानी पुरुषोंने कर्मोंकी सामर्थ्य जान ली। कर्म बधे हैं तो ये यों यो

फल भोगनेसे छूटेंगे, वे ज्ञानी पुरुष आगामी मिलने वाले समस्त शरीरको उत्पन्न कर लेते हैं और उन शरीरोके द्वारसे सब कर्म फलोंको भोगकर विनष्ट कर देते हैं तो आखिर समस्त शरीरोको पा लेना और उनका फल भोग लेना यह बात करनेकी कारण इस तत्वज्ञानसे ही तो मिली है, इसलिए उस तत्वज्ञानमे तो एक बोध मिला कि इस तरहसे कर्मोंको भोग करके क्षय किया जायगा और फिर कर्मोंको भोग करके क्षय कर डाला तो आखिर मूल बात तो तत्वज्ञानमे हुई, इस कारण साक्षात् तत्वज्ञान से कर्मोंका क्षय न होनेपर भी तत्वज्ञानकी प्रेरणा पाकर फलोपभोगसे कर्मोंका क्षय किया गया। अन तत्वज्ञानसे कर्मक्षयका कथन किया जाता है। इसलिए इस आगमसे कोई विरोध नही है। यह भी नही कहा जा सकता है कि तत्वज्ञानी पुरुषोंके कर्मोंका क्षय तो तत्वज्ञानसे होता है और अन्य लोगोके कर्मोंका क्षय कर्मोंके उपभोगसे होता है क्योकि ज्ञानसे ही कर्म नष्ट हो जायें इसमे न कोई युक्ति है, न कोई उदाहरण है। हाँ फलोंके भोगसे कर्मोंका क्षय होता है इसके आगममे बहुत जगह कथन हैं।

फलोपभोगसे निर्वाणकी असभवता और प्रबल तत्वज्ञानसे निर्वाणकी सभवता—शङ्काकारके उक्त उपालम्भपरिहारके सम्बन्धमे आचार्यदेव कह रहे हैं कि एक आगमके कथनको तोड मरोड करके उपचारकी बात कहना, यह केवल हठकी ही बात है। तत्वज्ञानमे सामर्थ्य है ऐसी कि सचित कर्मोंका क्षय हो जाता है। जो तत्वज्ञान इतना निर्मल बनता है कि जिसमे स्वयकी स्थिरता आ चुकती है, जिस परम सम्वरका रूप धारण किया है ऐसी स्थितिमे जो चारित्र उत्पन्न हुआ ऐसे उस सम्यक चारित्रसे बढ़े हुए सम्यग्ज्ञानके उत्कर्षमे समस्त कर्मोंके क्षय करनेका सामर्थ्य है ही, इसमे कोई विरोध नही। हाँ, यह बात विरुद्ध है कि समस्त शरीरोको उत्पन्न करके उन शरीरोके द्वारा सारे भोगविषय करके उन कर्मोंका क्षय किया जाता है, इसमे विरोध है क्योकि उपभोग रागके बिना नही किये जा सकते और फिर उन शरीरोके द्वारा उपभोगमे ऐसे ऐसे भी तो उपभोग शामिल हैं कि स्त्रीसेवन करना, दूसरेकी हिंसा करना, जो जो कुछ भी काम आगे करना था वह इस तत्वज्ञानीने समाधिबलसे इस ही भवमे विषयसेवन आदि किया है तो वह इच्छाके बिना नही होता और इच्छा से कर्मोंका बध होगा, वह परम्परा चल गयी, उसमे मोक्ष नही हो सकता है। तो जन्मान्तर उत्पन्न न हो, नये कर्म न बँधे इसका कारण फलोका भोग नही है किन्तु प्रबल तत्वज्ञान ही है। जिसके परिपूर्ण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र उत्पन्न हो गया है उस आत्माके नवीन कर्म नही बधते और बधे कर्म नष्ट हो जाते हैं।

मोक्षका हेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यात्मक विशुद्ध भाव—मोक्षका कारण तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका एकत्व है इस त्रितयात्मक कारण से ही जीवमुक्ति होती है, तथा शरीररहित हुआ जो परमात्मतत्व प्रकट होता है वह भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे होता है अर्थात् परममुक्ति भी सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे होती है। जैसे ससारका कारण भी केवल मिथ्याज्ञान नही वैसे मोक्षका कारण भी केवल सम्यग्ज्ञान नही है। जिनमे सम्यक्चारित्र उपबृंहित हुआ है ऐसा जो रत्नत्रय भाव है वह मोक्षका कारण है। यदि सम्यग्दर्शनसे ही मोक्ष बनता है तो उसमे यह विशेषण लगाना होगा कि परम सम्वररूप चारित्रसे बढा हुआ जो सम्यग्ज्ञान है वह मोक्षका कारण है। ससारका कारण भी केवल मिथ्याज्ञान नही है, किन्तु मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र यह त्रितय ससारका कारण है। एक ही सम्यग्ज्ञान मात्रसे मुक्ति नही हो पाती है। जहाँ ऐसा कथन भी आता है अध्यात्मविषयमे कि ज्ञानसे मुक्ति होती है उसका भाव ऐसा लेना है कि परम प्रकर्ष प्राप्त सम्यग्ज्ञानसे मुक्ति होती है। वह परमप्रकर्षता क्या है ? परमसम्वररूप सम्यक् चारित्रकी साधनासे बढी हुई वृत्तिरूप है, अर्थात् भाव उसका यह निकलता है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे मुक्ति होती है और जिस साधनसे मुक्ति पायी, जिस आत्माके उपायसे मुक्ति पायी, फिर वह उपाय वह स्वरूप मुक्तिमे समाप्त हो जाय यह नही हो सकता। यह सम्यक्त्व यह सम्यग्दर्शन, यह सम्यक्चारित्र जो मोक्षके कारणभूत हैं वे उत्कृष्टरूपसे मोक्षमे भी विद्यमान रहते हैं यह कहना युक्त नही कि ज्ञानादिक गुणोका विनाश होनेसे मोक्ष होता है।

शङ्कापरिहार करते हुए वैशेषिक द्वारा फलोपभोगसे कर्मक्षय होनेका समर्थन – अब इस प्रसङ्गमें नैयायिक विशेष बीचमे कह उठते हैं कि मिथ्याज्ञानसे जो सस्कार उत्पन्न होता रहा था उस सहकारी सस्कारका अभाव होनेसे विद्यमान भी कर्म जन्मान्तरमे अन्य शरीरके उत्पन्न करने वाले नही होते, फलोपभोगसे कर्म विफल होते हैं यह बात सही नही है किन्तु मिथ्याज्ञान नही रहा, मिथ्याज्ञानजनित सस्कार नही रहा तो विद्यमान भी नही रहे आयें कर्म तो भी वे जन्मान्तर करनेमे समर्थ नही हो सकते। उनकी इस शङ्काके समाधानमे इस समय वैशेषिक ही उत्तर दे रहा है। यो समझिये कि जैसे किसीकी शङ्काका समाधान किसी दूसरे शकाकारके द्वारा करा दी जाती है तो वह अपना ही तो समाधान हुआ। जैसे जहा बहुत विवाद करने वाले लोग हैं उनमेसे एकने विवाद उठाया तो अन्य विवाद उठाने वाले कोई यदि उसके विवादका, उसके अभिप्रायका खण्डन करे तो सबकी ओरसे ही खण्डन समझना चाहिये। क्योंकि जो शका की गई है उसका निराकरण अन्य सब वादियोको इष्ट है तो वैशेषिक उत्तर दे रहे हैं कि यह कहना युक्त नही है कि विद्यमान कर्म भी रागादिक उत्पन्न नही करते, क्यो युक्त नही कि उन कर्मोंने यदि अपना कार्य उत्पन्न नही किया तो कर्मोंका क्षय हो ही नही सकता। फिर तो कर्म नित्य हो जायेंगे, फिर कभी मुक्ति हो ही नही सकती। इससे मानना चाहिये कि कर्मोंके भोगसे ही कर्मक्षय है।

नित्यनैमित्तिक अनुष्ठानके प्रयोजनका प्रश्न – वैशेषिकोंके प्रति अब नैयायिक अथवा अन्य कोई प्रश्न करते हैं कि जब यह निर्णय तुमने बनाया कि कर्मो

का क्षय कर्मोंके भोगसे ही हो सकता है तो फिर नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान किसलिए किया जाता है। याने तत्वज्ञानी बननेके बाद भी स्वाध्याय, अध्ययन आदिक करना, अन्य अन्य आत्म की युक्तिका साधन करना आदिक जो अनेक नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान हैं वे किसलिए किए जाते हैं क्योंकि भावी कर्मोंकी अनुत्पत्ति तो तत्वज्ञानसे हो गयी, सो कर्म बँधनेका डर तो रहा नही, अब जो कर्म रह गए हैं वे उपभोगसे दूर होंगे, फिर तत्वज्ञानी बननेके बाद फिर नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान किसलिए किया जाता है? गुरुके पास रहना, शिक्षा लेना, प्रायश्चित्त लेना, दोषनिवारण करना, इनसे भी ऊचे काम ये सब क्यो अनुष्ठान किये जा रहे हैं?

तत्त्वज्ञानी होनेपर भी नित्यनैमित्तिक अनुष्ठान किये जानेका शङ्काकार द्वारा उत्तर—उक्त शङ्काका वैशेषिक उत्तर देते हैं कि वे सब दुष्कर्मोंके दूर करनेके लिए किये जा रहे हैं। यहाँ यह शङ्का न करें कि "जब तत्त्वज्ञान हो गया तो दुष्कम तो मिट ही गए थे, अब कौनसे दुष्कर्म रह गए जिनके मेटनेके लिए ज्ञानी पुरुषोंको भी तपश्चरण आदिक नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान करने पडते है।" सुनिए— वे दुष्कर्म क्या हैं? वे पहिले जैसे तो नही हैं, उन दुष्कर्मोंका तो अभाव हो चुका, क्योंकि विपर्यय ज्ञान नही रहा। सो जो निषिद्ध आचरण हैं--दूसरेका हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील करना, परिग्रहोका सचय करना आदिक, उनके परिहारके लिए तत्त्वज्ञानी नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान नही करता, वे तो तत्त्वज्ञानके बलसे पहिले ही दूर हो गए लेकिन तत्त्वज्ञान होनेपर जो कार्य किए जाने चाहिए, जो अनुष्ठान किये जाने चाहिए उनमे कोई दोष लग जाय तो उसके लिए वह प्रायश्चित आदिक अनुष्ठान करता है क्योंकि यदि अनुष्ठान करे, धर्मकार्य न करे, व्यवहार धर्म न करे तो ये दोष दूर नही होते। आगममे भी लिखा है। वैशेषिक कहते जा रहे हैं कि जो स्वर्गोंकी इच्छा करता है वह इन यज्ञ आदिकको करता है, पर जिसे मोक्षकी इच्छा है वह इन यज्ञ आदिकमे प्रवृत्ति नही करता, किन्तु जो भी अनुष्ठान करता है बस मोक्षके लिए करता है। जो भी योग साधनायें मोक्ष साधनाके लिए किए जाने चाहिए, की हुई गल्तियोकी आलोचना करना, तपश्चरण करना, भक्ति करना आदिक वे सब नित्य नैमित्तिक क्रियायें किया करता है। क्योंकि निर्वाण क्या है? कैवल्यका नाम निर्वाण है। केवल रह जाए, अकेला आत्मा रह जाय, उसमे ज्ञान भी न रहे, खाली करना है ना, जैसे खाली घड़ा। उसमे पानी या अन्य कोई चीज न रहे वह खाली हो गया। इसी प्रकार वैशेषिक सिद्धान्तका निर्वाण ऐसा खाली माना गया है कि जहा समस्त गुणोका उच्छेद हो जाता है। ऐसा केवल आत्मा ही आत्मा रहे वह निर्वाण है, ऐसे निर्वाणके लिए जो तपश्चरणके विधान बताए गए हैं उनमे दोष आ जाय तो उन दोषोके दूर करनेके लिए ये अनुष्ठान किए जाते हैं।

गुणोच्छेदरूप निर्वाणकी अनित्यताकी शङ्काका परिहार करते हुए

शङ्काकार द्वारा फलोपभोगसे कर्मक्षय होनेका समर्थन—विशेषवादी कह रहे हैं कि इस प्रसङ्गमें कोई यह शङ्का न करे कि तत्त्वज्ञानसे मिथ्याज्ञानका प्रध्वस होना और मिथ्याज्ञानके प्रध्वससे होता गुणोच्छेद विशिष्ट आत्मस्वरूपका निर्वाण, तो यह तो तत्त्वज्ञानका कार्य है और जो जो कार्य होते हैं वे सब अनित्य होते है। सो यह गुणोच्छेदरूप निर्वाण अनित्य है, ऐसी शङ्का न करो क्योंकि तुम किसको अनित्य बताना चाहते हो ? उन ज्ञानादिक गुणोके अभावको अनित्य बताना चाहते हो या तद्विशिष्ट आत्माको ? गुणोच्छेदको अनित्य नही कह सकते क्योंकि वह तो अभावरूप चीज है प्रध्वसाभावमे नित्य अनित्यका प्रश्न नहीं उठा करता है वह तो तुच्छाभावरूप है। अभाव मायने कुछ नहीं। अब उनमें कहना कि नित्य है अथवा अनित्य है, यह तो प्रलाप है। यदि कहो कि जिस आत्माका निर्वाण होता है, उस आत्माके गुणोका विनाश होता है सो उस गुणोच्छेदसे विशिष्ट आत्मामें अनित्यता है, यह कहना यो युक्त नहीं है कि हम आत्मा और ज्ञानको एकमेक मानते होते तो गुणोंके अभावसे आत्माका अभाव माना जा सकता था। पर उनका तो अत्यन्त भेद है आत्मा तो केवल चिन्मात्र निराला है और ज्ञानादिक गुण ये सब प्रथक् सत् हैं इस कारण हमारे मतव्यमें यह दोष नही आता। अब प्रसङ्गकी बात सुनिए – नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान तो ये मोक्षमार्गपर चलनेपर जो दोष उत्पन्न होते हैं उनको दूर करनेके लिए किये जाते हैं, कर्मक्षयके लिए नही किए जाते, अत यह बात यहा सिद्ध होती है कि कर्मोंका क्षय होना है वह फल भोगनेसे ही होता है, फल भोगे विना कर्म दूर नहीं होते।

नयवादसे तत्त्वज्ञानमें और नित्यनैमित्तिक अनुष्ठानमे कर्मक्षयकी हेतुता—अब वैशेषिककी इस शङ्काका उत्तर आचार्यदेव देते हैं कि मोक्ष कहलाता है केवल ज्ञानस्वरूप। गुणोच्छेदका नाम तो मोक्ष है ही नही। जहाँ ज्ञानका परिपूर्ण विकास हो जाता है मोक्ष, तो उस मोक्षकी प्राप्तिका कारण, केवलज्ञानकी प्राप्तिका कारण तत्त्वज्ञान कहना वह भी उचित है। नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान कहना भी उचित है। सब नयवादोसे दृष्टियाँ उनकी लगाकर सबको सिद्ध किया जाना चाहिए। जो तत्त्वज्ञान सम्यग्ज्ञान सम्यक् चरित्रसे बढ़ा हुआ है चारित्र सहित है, जो कि चारित्र नित्यनैमित्तिक अनुष्ठानम परिपूर्ण किया गया है उस तत्त्वज्ञानसे मुक्ति हुई। इसमे नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान, व्रत सयम त्यागकी भी बात आ गयी और तत्त्वज्ञानकी भी बात आ गयी। तो इन चारित्र रूप विधियोंसे तो मोक्ष होता पर फल भोगसे मोक्ष होता है यह बात युक्त नहीं जचती। वैसे भी मोटेरूपमें यह सब कोई जान सकेगा कि कि यदि कर्म फल देकर ही नष्ट होता है तो फल दिया और फलके समयमें होगा क्या ? रागद्वेष हो, इच्छा हो, क्लेश हो। अगर ये न हों तो फल नाम किसका ? तो इसके होनेसे नवीन कर्मबन्धन होता, वे नवीन कर्म फल दिए विना नष्ट नहीं हो सकते। फिर फल मिले, फिर कर्म बघे, वहा मुक्तिका अवसर नही है इसलिए यह

मानना ही होगा कि एक विशिष्ट सम्यग्ज्ञानसे फलका भोग किए बिना ही कर्मका प्रक्षय हो जाता है। जो कर्म बांधे उनकी स्थिति यद्यपि अनेक सागरो पर्यन्त हैं, असख्य ते वर्षोंकी स्थिति है पर चारित्रसे उपवृद्धित सम्यग्ज्ञानमे ऐसी सामर्थ्य है कि जिनकी स्थिति बहुत पडी हुई है उनको भी बहुत पहिले समयमे लाकर कुछका अबुद्धि पूर्वक फल पा करके भी उदय पाकर भी, कुछका उदय पाये बिना भी बदल करके, सक्रमण करके उन कर्मोंका क्षय कर लिया जाता है। जिस समय कर्मबन्ध होता है उस समय उन कर्ममे यह बात नही पडी हुई है, ऐसी योग्यता नही है कि वह आगामी कालमे सक्रमणको प्राप्त होगा, फिर दूर होगे तो ऐसी बात अभीसे पड गई हो कर्म बन्धक समयसे ही यह बात नही है, क्योकि अचलावलीमे अन्य योग्यता आती ही नही हैं। हां बन्धावली व्यतीत होनेके बाद उस ही कर्ममे क्या, सभी कर्मोंमे योग्यता है ऐसी, एक कुछ निकाचित जैसे बन्धको छोडकर कि वह समयसे पहिले निर्जीर्ण हो सकता है। तो फलके भोगसे ही कर्मोंका क्षय होता है यह बात युक्त नही है।

आत्माकी विशुद्ध परिणतिसे मोक्षमार्गका लाभ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र अर्थात् आत्मतत्त्वका यथार्थश्रद्धान, मैं किस स्वरूप हूँ, और उस हीका उपयोग, और उस हीमे स्थिरता, इस उपायसे कर्मोंका क्षय होता है। जब ज्ञानमात्र मैं हूँ इस प्रकारके अभ्याससे जिस अभ्यासका प्रारम्भ भेदविज्ञानके प्रसादसे हुआ है, ज्ञानमात्र स्वरूपमे मग्न होता है तब कर्मक्षय होता है। जब ज्ञानी पुरुषने यह जाना कि मैं तो शरीरसे भी निराला और अपने आपमे उत्पन्न होने वाले सारे विकल्प जालोंसे भी न्यारा केवल ज्ञातृत्वमात्र स्वरूप रखने वाला आत्मा हूँ अन्य सब पर हैं और अहितरूप भी है, किसी भी बाह्यपदार्थका समागममे यह अनुभव होता है कि बहुतसे अहितमे दूर हो गए, लेकिन कुछ उपयोग बदल गया, तो हम उसमे हितरूप विचार करते हैं वस्तुत पर समागमोमे जितना लगाव है चाहे अच्छासे अच्छा समागम है किन्तु लगाव मात्र अहितरूप है। उस लगावमे अच्छे समागमोंमे लगाव रखनेसे जो पहिलेसे बहुत लगाव आने आप मिट गए उसकी अपेक्षासे तो हित है पर लगाव मात्र अहित है। तो किसी भी बाह्यपदार्थके समागममे हित नही रखा है। जब भी पर पदार्थ कारण बनेगा। निर्विकल्प स्थितिका कारण पर द्रव्य नही बन सकता। हां इतना फर्क होगा कि जो धर्मके बाह्य साधन हैं देव शास्त्र गुरु आदिक उन आयतनोका ख्याल करनेसे उनका ध्यान रखनेसे एक शुभ विकल्प बनता है, शुभोपयोग बनता है, और वह शुभोपयोग चाहे उस निर्विकल्प स्थितिके निकट पहुँचा दे, लेकिन निर्विकल्प स्थितिके समय किसी भी परद्रव्यमे दृष्टि नही रह सकती है। पर द्रव्यका आश्रय करना तब तक है जब तक निर्विकल्पता नही रह सकती है। तब जितने भी बाह्यपदार्थ हैं इनका समागम हितरूप नही है, परिजनका समागम भी हितरूप नही है, वे अपने ही भुलावापथमे ले जानेके ही कारण बनते हैं। यह शरीरका समागम भी हितरूप नही है। और, अपने अन्त उत्पन्न होने वाले विकल्प विचार रागद्वेषा-

दिक विभाव ये भी आत्माका अहित कर रहे हैं। ये सारे विकारदाह, इस चैतन्य भूमि को बजर कर रहे हैं, जहा फिर उस शान्ति आनन्दका विकास नहीं हो सकता, जहा शान्ति आनन्दके अकुर नही जम सकते, ऐसी स्थिति कर डालते हैं विभाव, सो ये रागादिक विभाव भी हितरूप नही हैं।

स्वद्रव्यके आश्रयसे ही निर्विकल्प समाधिकी सिद्धि—किसी भी पर तत्वका लगाव चाहे वह औपाधिक स्वविभाव हो अथवा एकदम परद्रव्य हो किसीका भी लगाव आत्माके हितरूप नही है। मैं ज्ञानमात्र हूँ ज्ञानमात्र हूँ इस प्रकारकी निरन्तर भावना रखनेसे ज्ञानमात्रका अनुभवन होता है। जहा केवल जाननमात्र ही अनुभवमे रहता है उस स्थितिको पानेके साथ ही सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है और फिर यही ज्ञान स्थिर रहे ऐसा ही उपयोग निरन्तर बना रहे, ज्ञानमे ज्ञान समाया रहे आत्मस्वरूपमें ज्ञान रमा रहे इस प्रकार आन्तरिक शुद्ध आचरण बने तो वहा कहलाता है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका बर्तना। ऐसे इस त्रितयात्मक उपायसे मोक्ष होता है। कर्मोंसे छुटकारा हो नहीं सकता। इससे यह बात मान कर इस प्रयत्नमें चलना चाहिए कि हम अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करें, उपयोग बनायें और इस ही प्रकारके ज्ञानमे अपनेको रमायें यही रत्नत्रय मोक्षका उपाय है।

गुणोच्छेदरूप मोक्षकी चर्चाका मुख्य प्रसङ्ग—आत्माका सर्व कल्याण मोक्षमे है। ससारके सकटोसे छुटकारा हो जानेमे ही आत्माकी भलाई है। इस मोक्ष का स्वरूप क्या है ? इसके सम्बन्धमे यहा चर्चा चल रही है। सिद्धान्त तो यह है कि आत्मा ज्ञान दर्शन सुख शक्ति आनन्दस्वभावी है। तो उसके इन गुणोका पूर्ण विकास हो जाय इसका नाम मोक्ष है। मोक्ष शब्दका अर्थ यद्यपि छुटकारा है, सब परभावोसे सर्व परद्रव्योसे, बन्धनोसे छुटकारा होनेका नाम मोक्ष है। पर मोक्ष होनेपर आत्मा की क्या अवस्था रहती है इस बातपर यहा कुछ विवाद चल रहे हैं। तो सिद्धान्त तो यह है कि अनन्त चतुष्टयस्वरूप लाभ होना इसका नाम मोक्ष है, इसके विरोधमे वैशेषिकोंने यह बताया कि आत्मामें ज्ञान आनन्द आदिक कोई कभी न रहें, खाली चैतन्य मात्र आत्मा रहे उसका नाम मोक्ष है। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें अभिमत मोक्षका स्वरूप यह है कि जहा ज्ञानमे समस्त गुण नष्ट हो जाते है। केवल आत्मा रह जाता है उसका नाम मोक्ष है। तो केवल आत्माका रह जाना यह तो ठीक है पर ज्ञानादिक गुणोको वे आत्माका स्वरूप नहीं मानते ससार अवस्थामें भी ज्ञानादिक गुण आत्माके स्वभाव नही हैं वे गुण स्वय सत् स्वतत्र हैं उनका सम्बध आत्मामे जुड़ता है तब आत्मा ज्ञानी बनता है। ससार अवस्थामे भी ज्ञानस्वरूप आत्मा नहीं है जो ज्ञान आदि गुण लग गये थे आत्माके साथ दुःख पहुचानेके लिए वे समस्त ज्ञानादिक गुण दूर हो गए इसका नाम मोक्ष है। इस सम्बन्धमें काफी प्रकाश डाला गया।

ब्रह्मस्वरूप आनन्दकी अभिव्यक्तिकी मोक्षरूपताका प्रस्ताव—अब इस ही प्रसङ्गमे एक भास्करीय वेदान्ती जो वेदान्तका ही एक प्रकार है बोलते हैं कि मोक्ष अवस्थामे चैतन्यका भी उच्छेद होनेसे बुद्धिमान लोग तो उसमे न लगेंगे इसलिए आनन्दस्वरूप मोक्ष माना जाना चाहिए। मोक्षमे आनन्द ही आनन्द रह जाता है और वही आनन्द आत्माका स्वरूप है और आनन्द रह जाना इसका नाम मोक्ष है। अथवा ज्ञानादिक गुण जैसे खतम किए वैशेषिक सिद्धान्तमे तो इसके मायने है कि अनुभवन सब समाप्त हो गया। वहाँ फिर कुछ जानना ही नही रहा। तो जब चेतना भी न रही, जानना भी न रहा तो ऐसे मोक्षको कौन बुद्धिमान चाहेगा ? और वहाँ आनन्द गुण है ही। आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। और उस आनन्दका जो चरम विकास है इसीका नाम मोक्ष है। यहा अनुमान बनाया जा रहा है भास्कर लोगोके द्वारा कि आत्मा सुखस्वभावी है, क्योकि अत्यन्त प्रियत्व बुद्धिका विषय होनेसे अर्थात् इस आत्मामे अत्यन्त प्यार है सब जीवोका, यही आत्मा प्रिय है, ऐसी बुद्धि लग रही जीवोकी। कैसी भी स्थितियाँ आयें उन सब स्थितियोकी परवाह न करेंगे और अपने आत्माकी परवाह करेंगे।

आनन्दस्वरूप आत्माकी प्रियताका एक दृष्टान्त—जरा यह निर्णय करने आप बैठें कि लोकमे सबसे प्यारा कौन है ? जिससे अधिक प्यारा और कुछ न कहलाये ? तो कल्पनानुसार लोगोके अपने मनमे जुदे-जुदे विचार बनेंगे। जब बालक साल डेढ सालका रहता है चल फिर भी नही सकता तब तक उस बच्चेसे पूछा जाय कि ऐ बच्चे ! तुझे सबसे प्यारी चीज क्या लगती है ? तो उस बच्चेका उत्तर होगा कि सबसे प्यारी चीज हमे अपनी माँकी गोद लगती है, इसके सिवाय अन्य कुछ भी प्यारी चीज नही लगती ! तो ठीक है जब कोई उस बच्चे को छेडता है तो वह झट अपनी माँकी गोदमे पहुँचकर अपनेको पूर्ण सुरक्षित अनुभव करता है। वही बच्चा जब ४-५ वर्षका बालक बन जाता है तो उसे अब माँकी गोद प्यारी नहीं रहती, उसे प्यारे हो जाते हैं खेल खिलौने। वह खेल खिलौनोमे रम जाता है। कोई पूछे—अरे बच्चे ! तू तो कहता था कि मुझे माँकी गोद सबसे प्यारी है। क्या उठता कहनेका, अब तो उसे कोई जबरदस्ती माँकी गोदमे बैठाल दे तो वह बैठना नही चाहता। वहाँ से हटकर भगकर खेलनेकी ही सोचता है। तो अब उस बच्चेको माँकी गोद प्यारी नही रही। वही बालक बढ़कर जब १०-१२ वर्षका हो जाता है तो उससे कोई पूछे कि तुझे सबसे प्यारी चीज क्या है ? तो वह कहेगा कि मुझे तो पढना लिखना सबसे प्यारा है। जब कोई नई बात भाषा, हिसाब, इतिहास आदिकी जाननेको मिलती है तो उसे वही बातें प्रिय हो जाती हैं, अब उसे खेल खिलौने प्रिय नही रहते। वही बालक जब कुछ और बडा हो जाता है तो उसे प्रिय हो जाता है किसी भी प्रकारसे परीक्षाओमे उत्तीर्ण होना। उत्तीर्ण होनेके लिए वह परीक्षा-पुस्तिकाओका पता लगाने में रहता कि कहा किसके पास गई हैं ? किसीसे कह-सुनकर नम्बर बढवाने व पास

होनेकी बात सोचता है। उसे अब परीक्षामे किसी न किसी प्रकारसे उत्तीर्ण हो जाना सर्वप्रिय हो जाता है। कुछ और बडा होनेपर उसे बी ए ऐम ए आदिकी डिग्रियाँ प्रिय हो जाती हैं। जब बडा जवान होगया तो उसके मनमे ब्याह शादीकी बात आती है, उसे अब स्त्री प्रिय हो गयी। कुछ समय व्यतीत हुआ सतान भी हो गयी, अब सतानपर दृष्टि अधिक हो गयी, स्त्रीपर अधिक दृष्टि न रही, अब तो उसे बच्चे सब मे अधिक प्रिय हो गए। अब बच्चे भी हो गए, बहुत समय गुजर गया, अब वहाँ भी अधिक दृष्टि न रही अथवा उनके पालन-पोषणके लिए धनकी आवश्यकता है अत उसे अब धन प्रिय हो गया। अब धनके अर्जन करनेमे अपना कदम रखा। मान लो अब वह ५०-६० वर्षका हो गया, अचानक घरसे फोन आ या, घरमे आग लग जानेका समाचार मिला तो झट वह घरकी ओर भगता है। पहिले तो रास्तेमे मिलने वाले लोगोसे बात भी कर लेता था, अब उसे उनसे बात करनेको भी फुरसत नही है। जब घर पहुँचा तो देखा कि आग बडी तेजीसे बढ़ रही है। बडी मुश्किलसे उसने अपने स्त्री पुत्रादिकको निकाला, धनको निकाला, बादमे एक बच्चा अम। नही निकल पाया, और आग बहुत तेजीसे बढ गयी तो वह किसी सिपाही से कहता है, भैया ! मेरे बच्चेको निकाल दो, हम तुम्हे १० हजार रुपए देंगे। लो देखो ! अब उसे अपने प्राण सबसे प्यारे हो गये बच्चा भी प्यारा न रहा। कुछ समय बाद उसके वैराग्य जगा, सब कुछ त्यागकर वह अपनी साधुवृत्तिमें रहने लगा, आत्माकी साधनामें बडा अभ्यास किया, आत्माके आनन्दका बडा अनुभव किया। ऐसी ही किसी स्थितिमें कोई शत्रु अथवा सिंह आक्रमण करे, उसकी जान ले तो अब वह पुरुष क्या करता है ? अपने आत्माकी दृष्टिमें रत रहता है, प्राणोकी भी उपेक्षा करता है एक ज्ञानभाव ही उसे प्यारा हो गया। यह ज्ञान भाव मेरा एक समयको भी मत मिटो। अगर रच भी विकल्प करके ज्ञानानुभवसे हटकर किसी बाह्यमें लग गए, उस शत्रुके अथवा सिंहके विकल्पमे लग गए अथवा यह भी विकल्प किया कि थोडा देरको चूकि बलवान तो स्वय है ही, इस शत्रुको अथवा सिंहको हटाकर फिर आनन्दसे ध्यान करू इतना ही विकल्प बुरा है। यहा अभी ही विकल्प किये जा रहे हैं तो भविष्यमे क्या आशा है कि निर्विकल्प स्थिति पायेंगे। इतना भी विकल्प ठीक नही है, प्राण जायें तो जायें, ये तो पौद्गलिक प्राण हैं, ये तो भव भवमें मिले हैं। इन प्राणोंके मोहसे इस आत्माका क्या कल्याण है ? वह ज्ञानानुभवके लिए ही सारा यत्न कर रहा है। अब उसे प्राण भी प्यारे नही रहे। अब उसे क्या प्यारा हो गया ? अपना यह ज्ञानस्वरूप, स्वयका आत्मा। अब इसके बाद कोई भी घटना ऐसी नही हो सकती जहा यह कहा जा सके कि लो अब अपना आत्मा भी प्यारा नही रहा, ज्ञानानुभव भी प्यारा नही रहा।

दो हेतुओंसे आत्माके आनन्दस्वरूपका समर्थन —भैया ! अत्यन्त प्रियत्व बुद्धिका विषय है यह आत्मा। अतएव यह आत्मा आनन्दस्वभावी है, जिसमे अत्यन्त प्रियताकी बुद्धि लगे, आनन्दरूप तो वही है, आत्माके आनन्दस्वरूपताका और भी

दूसरा हेतु सुनो ! आत्मा सुखस्वभावी है, आनन्दस्वरूप है क्योंकि अनन्यपर होकर एकचित्त होकर यह आत्मा अपने द्वारा आपमे ग्रहण किया जाने वाला है। यद्यपि अनेक लोग स्त्री आदिकमे भी रुचि परिणाम रखकर उनको ग्रहण कर रहे हैं मगर अनन्यपर होकर स्त्री आदिकको भी ग्रहण नही किया करता कोई अपने आत्माको ही एक अनन्यपर होकर एक आत्माको आत्मामे ही लगानेरूपसे अपने स्वरूपको ही ग्रहण करता है अन्यको ग्रहण नही करता। इससे सिद्ध है कि आत्मा सुखस्वभावी है। जो अत्यन्तप्रिय बुद्धिका विषय होता है जिसको अनन्यपरताके साथ ग्रहण किया जाता है वह सुखस्वभावी हुआ करता है। जैसे दृष्टान्तमें सासारिक वैषयिक सुख ले लो, इन को लोग कितना अत्यन्त प्रिय मानते हैं और कैसा अनन्यपर होकर इन सुखोका ग्रहण किया करते है तो अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय यह आत्मा है और अनन्यपर होकर इसको लो लोग ग्रहण किया करते हैं, अतएव यह आत्मा आनन्दस्वरूप है। उस आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्ति हो जानेका नाम मोक्ष है। ऐसा भास्करीय वेदान्तने अपना सिद्धान्त रखा।

आत्माकी आनन्दस्वरूपतापर प्रकाश—इस सिद्धान्तके सम्बन्धमे थोडी एक समालोचनात्मक दृष्टि दें तो यह बात ठीक है। आत्मा आनन्दस्वरूप ही तो है उसके आनन्दका चरम विकास हो जानेका नाम मोक्ष है, लेकिन आत्माका आनन्दस्वरूप मानना और फिर उस आनन्दस्वभावको नित्य अपरिणामी मानना बस इस मान्यतासे यह बात कुछ अर्थक्रियाहीन हो जाती है। वैसे इसमे गल्ती क्या है? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, किन्तु जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब पदार्थ नित्यानित्यात्मक हुआ करते हैं। सर्वथा नित्य भी कोई सत् नही होता, सर्वथा अनित्य भी कोई सत्य नही हुआ करता। तो नित्यानित्यात्मकमे यो ज्ञानकी अर्थक्रिया, आनद की अर्थक्रिया, अनुभवन ये सब बन सकते हैं, पर सर्वथा नित्यमे न ज्ञानकी अर्थक्रिया बन सकती है न आनन्दकी अर्थक्रिया बन सकती। अनुभवन किसका नाम है? पूर्व परिस्थितिका त्याग करते हुए नवीन स्थितिमे रहनेका ही नाम तो अनुभवन है। यह बात न सर्वथा नित्यमे बनती है न सर्वथा अनित्यमे बनती है।

आत्मसुखको अनित्य माननेपर अनिष्ट प्रसङ्ग—इस समय चाहे स्याद्वादकी ओरसे समाधान समझो अथवा वैशेषिक शङ्काकारके प्रति नवीन शङ्का रखनेके कारण क्वचित् स्थलोमे वैशेषिकको ही समाधानकर्ता मानो, उक्त शङ्काके समाधानमे पूछा जा रहा है कि आत्माका सुख जो मोक्षमे प्रकट होता है वह नित्य है अथवा अनित्य? अनित्य तो कह नही सकते, क्योकि आत्माका वह आनन्दस्वरूप अनित्य हो गया तो सुख है आत्माका स्वरूप। सुखका है आत्मामे तादात्म्य तो सुख जब अनित्य है तो इसका अर्थ है कि आत्मा भी अनित्य हो गया, तो सुख भी मिट जाने वाली चीज हुई, और ऐसा शङ्काकार मानता भी नही है। वह तो अपरिणामी कूटस्थ नित्य

समझता है। जो लोग ब्रह्मका स्वरूप केवल सत्व मानते हैं वे भी अपरिणामी मानते हैं और जो लोग ब्रह्मका स्वरूप आनन्द मानते हैं वे भी अपरिणामी मानते हैं। तो सर्वथा अपरिणामी अर्थात् नित्य माना जानेमे कोई कार्य नहीं हो सकता है।

नित्य सुखके सवेदनको नित्य माननेपर आपत्ति—यदि कहो कि आत्मा का वह आनन्दस्वरूप नित्य है तो उस आनन्दका अनुभवन होना है तभी तो आनन्दका उपभोग है। अनुभवन बिना आत्माका क्या उपयोग, और क्या सत्व ? और, यदि आनन्द है तो उसका सम्वेदन भी जरूर माना जाना चाहिए। तो यह बतलावो कि उस नित्य सुखका सम्वेदन जो होता है ज्ञान होता है, अनुभवन होता है वह ज्ञान भी नित्य है अथवा अनित्य है। आत्माका सुख तो नित्य मान लिया, मगर उस सुखका जो अनुभवन है, ज्ञान है वह अनुभव नित्य है अथवा अनित्य ? यदि कहो कि नित्य सुखका अनुभव भी नित्य है तो देखो ! आत्माका सुख भी नित्य हो गया और उस सुखका अनुभव करना भी नित्य हो गया। तो मुक्त और ससारी जीवमें फर्क क्या रहा ? आत्माका स्वरूप ही आनन्द माना और उस नित्य आनन्दका अनुभव भी सदा माना तो यही बात तो मुक्त जीवोमे मानी जाती है। परमात्मा नित्य सुखी है और नित्य ही सुखका अनुभव करने वाला है। उनके सुखमें और सुखानुभवमें कोई भी एक समयका अन्तर नहीं आता। तो जो बात मुक्त जीवोमें हो गयी वही बात अब इन ससारी जीवोमें हुई, क्योकि आत्मा सुख स्वभावी है और ससारी जीवोंमे हुई क्योकि आत्मा सुख स्वभावी है और उसका सम्वेदन भी, अनुभव भी सदा रहता है सो एक तो यह आपत्ति आयी कि मुक्त जीवमे और ससारी जीवमें कुछ अन्तर नहीं रहा। अब अन्य भी आपत्तियां सुनिए।

नित्यसुखका नित्य सवेदन माननेपर अन्य आपत्तियां—आत्माके स्वरूप में नित्य सुख व नित्य सवेदन माननेपर दूसरी आपत्ति यह है कि ससारी जीवोके फिर सुखका स्मरण भी नही बन सकता है, किन्तु स्मरण देखा जाता है। १०-५ वर्ष पहिले जो सुख भोगे थे या जब कभी भूतकालमे जो सुख भोगे जाते थे उनका स्मरण यहाँ देखा जा रहा है लेकिन जब सुख भी नित्य है और सुखका अनुभवन भी नित्य है, सदा है, तब तो वह प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष रहा। अनुभव तो सदाकाल रहा। स्मरण कब होता है जब अनुभव कर चुके हो और अब अनुभव नही है तभी तो स्मरण है। किसी भी सुखका स्मरण लोगोको होता कब है, जब कि वह सुख भोगनेमे तो नही है किन्तु भोग चुके थे। लेकिन अब इस सिद्धान्तमे सुख भी सदाकाल भोगा जा रहा है, जैसे सुख नित्य है इसी प्रकार सुखका अनुभवन करना भी नित्य हो गया। तब फिर स्मरण भी नही बन सकता और सस्कार भी नही बन सकता। सस्कार कहते किसे हैं ? अनुभव हो फिर हटकर दूसरा अनुभव हो फिर हटकर तीसरा अनुभव हो, ऐसा अनुभव चल जाए और कदाचित् अनुभवमें कुछ कमी आ जाय, ऐसी बात आ जाय

तो भी उसकी धारणा बनी रहे धारणा ज्ञान रहा करे उस हीका नाम तो संस्कार है किन्तु जब सुख भी नित्य मान लिया, सुखका अनुभव भी नित्य मान लिया तो अब धारणाको अवसर कहा ? सदा प्रत्यक्ष है, सदा अनुभव है तो संस्कार भी नही बन सकता। चौथी आपत्ति यह है कि आत्माका स्वरूप सुख माना और वह सुख है नित्य अपरिणामी और उस सुखका अनुभव भी नित्य माना। अपरिणामी माना, सदा वही रहता है तब फिर संसार अवस्थामे इन्द्रियजन्य सुख भी हो रहा है और वह सुख भी सदा चल रहा है तो ये दो सुख एक साथ पाये जाने चाहिए। तब तो यह संसारी जीव भगवान भी बडा हो गया। जो बात मुक्त जीवमे थी कि सुख सदा रहे, सुखका अनुभव सदा रहे वह तो यहा है ही, क्योकि आत्माका स्वरूप है, पर मुक्त जीवोमे इन्द्रियजन्य सुख नही है। इसे इन्द्रियजन्य सुख और मिल गया तब तो यह मुक्त आत्मासे भी बहुत अधिक सुखी हो गया। इससे ऐसा मानना कि आत्मा आनन्दरूप है। कैसा आनन्दरूप ? नित्य अपरिणामी। उस आनन्दरूपकी अभिव्यक्ति ही मोक्ष है, यह बात मानना एकान्तसे युक्त नही है। वैसे बात सही है आत्मा आनद स्वरूप है। न हो आनन्दरूप आत्मा तो आनन्दहीन मुक्तिके लिए कौन प्रयत्न करना चाहेगा ?

वस्तुपरिज्ञानमे त्रिभगात्मक विशद निर्णय पदार्थ जितने होते हैं वे सब अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, भावसे तन्मय हुआ करते हैं। स्वरूपसे सत् पररूपसे असत् यह पदार्थोंका स्वरूप है। देखिए ! स्याद्वाद, जिसमे ७ भग बताए गए हैं। यह स्याद्वाद यह सप्तभग कुछ भी कहा जाय, उसमे अनिवार्यरूपसे आ ही जाता है। इसके बिना किसीका गुजारा नही। कितना एक मौलिक ज्ञानोपायका उपदेश जैन शासनने बताया है, जिस स्याद्वादके बिना कोई भी पुरुष न चल सकता है न बैठ सकता है, न खा पी सकता है न बोल सकता है। कोई कुछ भी शब्द बोले तो उस बोलनेके साथ ही उसमे सप्तभग आ जाते हैं। अभी चाहे ७ को छोडकर ३ समझ लीजिए, तुरन्त स्पष्ट समझमे आ जावेंगे। जैसे कहा कि यह घडी है तो इस घडीके साथ इसमे यह ज्ञान लगा हुआ है कि नही कि यह घडी है, चौकी, दरी कपडा आदिक अन्य कुछ नहीं है। चाहे हम इस तरह न बोले पर प्रत्येक पदार्थके बोलनेके साथ ही हमें वह स्पष्ट समझमे आया है, ऐसा बोलनेकी जरूरत नही है। यहा जरूरत कुछ नहीं है, लेकिन निर्णयमे तो यह पडा हुआ है। जैसे कहा कि यह खम्भा है तो इसमे यह निर्णय पडा हुआ है कि यह यह ही है खम्भा ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। तो इसमे दो बातें अनिवार्यरूपसे आ गयीं एक यह है, दूसरी—यह अन्य नही है। ये दो बातें तो आ गयी, किंतु इन दो बातोको हम एक साथ किसी एक शब्दसे, एक ढङ्गमे बोलना चाहें, बताना चाहे तो हमारे पास कोई उपाय नही है इसलिए यह अवक्तव्य है। ये तीन स्वतन्त्र बातें तो कुछ भी बोला जाय उसमें आ जाती हैं। इन्हीं का ही प्रयोग तो हर जगह है। जीव नित्य है यह कहना है तो जीव नित्य है, जीव

अनित्य है तो फिर है क्या ? तुम एक शब्दमे बतलावो । द्रव्य दृष्टिसे नित्य है, पर्याय दृष्टिसे अनित्य है । दो बातें तो समझ ली मगर तुम एक शब्दमें सही बात ता बतला दो, तो वह अवक्तव्य है ।

दृष्टान्तपूर्वक त्रिभगात्मक वस्तु परिज्ञानका कथन भैया ! स्यादस्ति, स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्य तीन धर्म कुछ भी शब्द बोलनेपर उत्पन्न हो ही जाते हैं । कुई प्रयोग करे चाहे न प्रयोग करे मगर यह त्रितयात्मकता इसके प्रत्येक निर्णयमें पड़ी हुई है । अब इसके आगे और बढ़े तो चूंकि ये तीन भग हुए तो उनका जब मिश्रण करके जानना होगा तब चार भग उसके और निकलेंगे, क्योंकि जहा तीन वस्तुए होती हैं उनका अगर सम्बन्ध किया जाय तो चार प्रकारसे सम्बन्ध होगा । जैसे कुछ भी चीज रख लीजिए—नमक, चना और मिर्च । इनको ही दृष्टांतमें ले लो । इनका कोई सम्मिश्रण स्वाद लेना चाहे तो चार तरहसे हो सकता है । नमक चना मिलाकर खावे, नमक मिर्च मिलाकर खावे, चना मिर्च मिलाकर खावे, यो दो दोके सयोग तीन प्रकारसे हो सकते हैं और उन तीनोको मिलाकर भी स्वाद लिया जा सकता है । वह एक सर्व सयोग हुआ । तीन स्वतत्र धर्म, तीन इनके सयोगी धर्म और एक सर्वसयोगी धर्म । इस तरहसे ७ बातें आती हैं । तीन चीजें हो तो उनका परिज्ञान अनुभवन स्वाद जो कुछ भी प्रयोग करें ७ प्रकारसे होता है ।

आनन्दस्वरूपकी नित्यानित्यात्मकता—जहां यह कहा कि आत्मा आनन्दस्वरूप है उस आनन्दस्वरूपका जब विवरण करने चलेंगे तब हमें कहना होगा कि वह आनन्द द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, चूंकि स्वभाव है आनन्द । जैसे आत्माका ज्ञान स्वभाव है वैसे ही आनन्द भी स्वभाव है, नित्य है, और उस आनन्द स्वभावका परिणमन भी चलता है ना, अनुभवन चलता है तो यह परिणमन षड्गुणहानिवृद्धि बिना नहीं हो सकता । उसमे सहज अनित्यता है और किन्हीं किन्हीं परिणतियोंमें तो स्पष्ट अनित्यत्व और परिवर्तन समझमे आता है । अतएव नित्यनित्यात्मक विषयको मानने पर तो यह बात युक्त बन जाती है कि आत्माका स्वभाव आनन्द है, पर नित्य एकांतमे नही बनता । आनन्दस्वरूपकी बात तो युक्त हो जायगी, किंतु यह किसी भी प्रकार सगत नही हो सकता कि ज्ञानादिक गुणोका उच्छेद हो जाना विनाश हो जाना इसका नाम मोक्ष है, यह किसी भी प्रकार सम्भव नही है । आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, जहा ज्ञान और आनन्दका परम विकास है उस हीका नाम मोक्ष है ।

मेरे आनन्दकी मेरेसे ही अभिव्यक्ति होनेका निर्णय—इस प्रकरणमे हम आपको अपने लिए भी कुछ सोचना चाहिए कि हम तो स्वय ही ज्ञानस्वरूप हैं, मेरा आनन्द घरसे, परिजनोसे, मित्रोसे अन्य समस्त लौकिकजनोसे अथवा किन्हीं भी विषयोसे नहीं प्रकट होता । यह मैं ज्ञानस्वरूप हूँ । जानन करता रहता हूँ । यह

जानन इस अवस्थामे रागमिश्रित है, कुछ कल्पनाओ वाला है, ऐसा भी यह जानन, ऐसा भी यह परिणमन मेरा मेरेमे ही प्रकट होनेसे परवस्तु उपयोगमे आ रहे हैं और कर्मविपाक निमित्त सन्निधानमे है जिनके बिना इन वर्तमान इन्द्रियसुखोकी अभिव्यक्ति नही हो सकती। इतनेपर भी आखिर यह परिणति मेरी ही तो है, वह मेरेसे ही प्रकट नही होती है, अन्य वस्तुमे प्रकट नही होती और जब विशुद्ध जाननका परिणति होगी, होनी ही चाहिए उपयोग रखना चाहिए तो वह तो कर्मविपाक बिना और पराश्रय बिना होता है, वह तो स्पष्ट ही है। अपने आपका परमकल्याण केवल जाननमात्र रहनेमें है। यही मोक्षका स्वरूप है, इसलिए इस हीके सम्बन्धसे अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेमे लगें तो इस प्रसादसे हमारी अभिव्यक्ति हो होकर कभी हम ज्ञानमात्र स्पष्ट रह जायेंगे। इस हीका नाम मोक्ष है और इस ही अवस्थामे आत्मा का कल्याण है।

मोक्षके स्वरूपपर प्रासङ्गिक विवादका वर्णन—मोक्षके अनेक प्रकारके स्वरूप यहा रखे जा रहे है। यो समझिए कि इस ग्रन्थमे प्रासगिक विद्वानोकी सभा लगी है, उनमे हर एक कोई अपने अपने मोक्षके सम्बन्धमे जुदे जुदे मन्तव्य रख रहे हैं। उन सबमें मूल शङ्काकार तो विशेषवादी है जो आत्माको गुणोसे रहित मानता है। गुणोका अभाव होनेसे मोक्ष माननेका जिसका सिद्धान्त है उस सिद्धान्तके प्रतिपादनके बाद दूसरे और लोग भी अपने अभिमत प्रकट करने खडे होते हैं और उनका निराकरण यह मूल शङ्काकार कर रहा है। इस सम्बन्धमे मोक्षके जितने स्वरूप बताए जायेंगे उन सभी शङ्काकारोके स्वरूप किसी दृष्टिसे यथार्थ हैं पर ज्ञानादिक गुणोका उच्छेद हो जानेका नाम मोक्ष है यह किसी प्रकार ठीक न बैठेगा। हा यदि लौकिकज्ञानोको ही गुण मान लिया जाय जो इन्द्रियजन्य ज्ञान होता है, और फिर उस ज्ञानके उच्छेदका नाम मोक्ष माना जाय तब यह बात युक्त हो सकती है। यहा भास्करीय वेदान्तियोने सिद्धात रखा था कि ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है और उस आनद की अभिव्यक्ति होनेका नाम मोक्ष है। इसपर प्रतिप्रश्न किया गया था कि वह सुख नित्य है अथवा अनित्य ? जो सुख ब्रह्मका स्वरूप है वह सुख यदि नित्य है तो उसमे चार आपत्तिया दी गई थी कि सुख नित्य हो गया तो फिर मुक्तिमे और ससारीमे कोई फर्क नही रहा। क्योकि आत्माका स्वरूप तो सुख है और वह सुख नित्य है। तो ससारी जीवोमे भी सुख रहा मुक्तमें भी रहा। नित्य होनेसे उसका स्मरण भी नही बन सकता। स्मरण तो व्यतीतका होता है। सस्कार भी नही बन सकता, क्योकि एकदम वही चल रहा है तो सस्कार धारणाकी क्या आवश्यता ? और, एक साथ फिर ससारी जीवोंमे इन्द्रियजन्य सुख और नित्यसुख ये दोनो हो बैठेंगे।

नित्य सुखस्वरूप होनेपर भी मुक्त और ससारी जीवोमे अन्तर बताने का प्रयास—उक्त विवादपर भास्करीय वेदान्ती कहते हैं कि ससार अवस्थामे बात

यह है कि चूँकि जीवोके शरीर और इन्द्रिय लगे हैं ना, और पुण्य-पापके फलमें सुख दुख आदिक होते रहते हैं ना, तो इन सुख दुःख आदिकके द्वारा और शरीर इन्द्रियके द्वारा नित्य सुखके सम्वेदनका रुकाव हाजाता है, इस कारणसे ससारी जीवोंका नित्य सुखका अनुभव नही होता। जहाँ शरीर इन्द्रिय लगी हैं वहां नित्य सुखका अनुभव नही होता। जहाँ शरीर इन्द्रिय लगी हैं वहा नित्य सुख रुक गया है। जहां ये सुख दुःख हो रहे हैं इन्द्रियजन्य उनका यह भी सुख निरुद्ध हो गया है। तव तो ससारी जीवोको नित्य सुखका अनुभव नही होता और मुक्त जीवोको होता रहता है, क्योकि उनके शरीर नही, इन्द्रियां नही, वैषयिक सुख दुःख नही, फिर फर्क हो गया मुक्त जीवोमे और ससारी जीवोमे। और इस ही कारण यह भी आपत्ति नहीं रही कि ससारी जीवोमे दोनो सुख एक साथ पाये जाने चाहियें क्योंकि जब इन्द्रियजन्य सुख हो रहा है तो उस सुखके द्वारा नित्य सुखका निरोध हो गया। इन्द्रियजन्य सुख नही रहे, शरीर इन्द्रिय नहीं रहे, तो वह नित्य सुख फिर मानते हैं। तो दोनो सुख एक साथ आ पड़ें यह भी आपत्ति नही रही।

शरीरादिके द्वारा नित्यसुखका प्रतिवन्ध होनेकी अशक्यताका विशेषवादविवेचन—उक्त मन्तव्यका वैशेषिक उत्तर दे रहे हैं कि यह कहना यो युक्त नही कि शरीर आदिक तो सुखके लिए हुआ करते हैं। शरीर तो सुखका साधन है। शरीरका प्रयोजन क्या है? 'सुख' सुखके लिए शरीर मिला है तो जो चीज सुखके लिए मिली है वही चीज नित्य सुखका बाधक हो जाय यह कैसे सम्भव है? क्योकि जो पदार्थ जिसके लिए हुआ करता है वह पदार्थ उस हीका प्रतिबन्धक नही होता। चूकि शरीर सुखके लिए है तो शरीर सुखका विरोधी नही हो सकता। शरीरके कारण नित्य सुख रुक गया यह बात न बनना चाहिए। और, फिर वैषयिक सुख आदिककी अनुभूतिसे नित्यसुखको प्रतिबन्ध होता है निरोध होता है, यह कहना भी युक्त नही है क्योकि यह बतलाओ कि इन्द्रियसे उत्पन्न होने वाले सुखके द्वारा जो आत्माके नित्य सुखका निरोध हुआ, प्रतिवध हुआ उस प्रतिवधका अर्थ क्या है? क्या नित्य सुखकी अनुत्पत्ति हो गई, नित्य सुख उत्पन्न नहीं हो सक रहा यह अर्थ है या नित्य सुखका विनाश हो गया यह अर्थ है प्रतिबन्धकका? अर्थात् इन्द्रियजन्य वैषयिक सुखने नित्य सुखकी उत्पत्ति बन्द कर दी या नित्य सुखका विनाश कर दिया, दोनो ही बातें सम्भव नही हैं, क्योकि नित्य सुख तो नित्य माना गया। जो नित्य है उसकी अनुत्पत्ति कैसे रहे और विनाश भी कैसे हो? इस प्रकार वैषयिक सुख दुःख आदिकके द्वारा उस नित्य सुखका प्रतिबन्ध नही माना जा सकता। तब तो यह बिल्कुल सही रहा कि नित्य सुखस्वरूप होनेके कारण सब जीवोंमे नित्य सुख है तो मुक्तमे और ससारीमे अन्तर नही रहा और ससारी जीवोंमें फिर दो सुख एक साथ पाये गये।

नयवादसे सुखस्वभाव और उसके विकासका ससारीमे प्रतिबधका कथन इस प्रकार वेदान्ती और वैशेषिकके प्रश्नोत्तरके पश्चात् स्याद्वादवादी कहते हैं के वेदान्तियोने यह माना कि आत्मा सुख स्वरूप है और उस सुखस्वरूपका प्रतिबध वैषयिक सुख और शरीर इन्द्रियके द्वारा हो गया है, यह नयवादसे उचित बैठता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, लेकिन वह आनन्दस्वरूप द्रव्यदृष्टिसे नित्य है स्वभावदृष्टिसे नित्य है। उसे सर्वथा अपरिणामी नित्य माननेपर तो ये सब विवाद उत्पन्न हो जाते हैं, पर स्वभावदृष्टिसे नित्य माना जानेपर वहा इस कारण दोष न आयगा कि आनन्दका स्वभाव है जीवोमे, पर उस स्वभावके परिणमनमें, उस स्वभावकी व्यञ्जना दो प्रकार की हुआ करती है। ससार अवस्थामे विकार रूप और मुक्त अवस्थामे अविकार रूप। तो जो उस आनन्द गुणके विकार हैं वे ही पुण्य पापके फलरूप सुख और दुख हैं। तो उन सुख दुखकी परिणतियोंके कारण आनन्दस्वरूपकी व्यञ्जना नही हो सकी इस कारसे नित्य सुख नित्य आनन्द स्वभाव होनेपर भी मुक्त जीवोंमे और ससारी जीवोमे अन्तर आ जाता है। पर वे सर्वथा ही नित्य हैं, अपरिणामी नित्य हैं। हैं प्रकट तो प्रकट ही हैं ऐसा माननेपर भी दोष है। स्याद्वाद दृष्टिसे देखलो कि ससारी जीवोमे मोक्षसम्बन्धी आनन्दकी अनुभूति नहीं हो सकती। अर्थात् इन ससारी जीवोमें भी आनन्द शक्ति तो है ही, सब आत्मा आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप होनेपर भी चूकि व्यक्त रूपमे वह आनन्दस्वरूप इस समय विकृत है अतएव आनन्दस्वरूपके अविकार परिणमनका अनुभव ससारी जीवोंमें नही है। हां विकार परिणमन सासारिक सुख दुख का परिणमन इन जीवोमें है, अत नित्यसुखका और वैषयिक सुखका एक साथ उपभोग नहीं हो सकता।

विशेषवादीका सुखार्थ शरीर सम्बन्धी लौकिक उत्तर—वैशेषिकका उत्तर लौकिक दृष्टिसे सही बैठता है। ससारके जीव शरीरको सुखके लिए मानते हैं। तो जो चीज सुखके लिए है वह नित्य सुखका प्रतिबध कैसे करे, किन्तु वस्तुत्व दृष्टिसे देखा जाय तो शरीर सुखके प्रयोजनके लिए होता ही नही है, शरीर न दुखके लिए है न सुखके लिए है, पर कारणकार्य विधानमे आश्रय और आश्रितकार्यके विधानमे निमित्त नैमित्तिकके प्रसङ्गमें शरीरको सुखका साधक या बाधक माना जा सकता है, पर यहा तो अविकारी सुखकी बात कह रहे हैं। इस शरीरकी दृष्टि रखकर जीव अविकारी सुखको प्राप्त नहो कर सकता है। शरीरके प्रतिबधपे रहकर यह जीव जब तक शरीरका व्यामोह रख रहा है तब तक वह दुखका ही कारण है। शरीर स्वय अपनी ओरसे आत्माको न सुखका कारण बनता है न दुखका कारण बनता है। यह तो व्यामोहवश उसे दुखका साधन बनाये जा रहा है और जब भी मोहवश शरीर को सुखका साधन बनाते हैं तो वह सुख वास्तविक सुख नही है किन्तु अनित्य पराधीन असार कल्पनामात्रका सुख है। वैषयिक सुखके द्वारा फिर उस स्वभावका प्रतिबन्ध हो ही रहा है। वह आनन्द स्वभाव परिणमनके रूपमें अविकार रूपसे प्रकट

हो और उसे वैषयिक सुख बाँध दे यह बात जरूर युक्त नहीं है और यह भी युक्त नही है कि एक साथ दो सुखोंकी उपलब्धि हो जाय। अविकार आनन्दका अनुभव भी किया जा रहा हो और वैषयिक सुखका भी अनुभव किया जा रहा हो ये दो बातें एक साथ सम्भव नही है, लेकिन उस आनन्द स्वभावमें जो अविकार आनन्दरूपसे प्रकट होनेकी योग्यता है उस व्यञ्जक आनन्दका तो वैषयिक सुखने घात ही किया है अतएव इस आत्माका स्वभाव आनन्द मानना और उस आनन्द स्वभावका, आनन्द गुणका विकृत और अविकृत परिणमन मानना और जब तक विकृत परिणमन है संसार है और जब अविकारी अनन्त विशुद्ध परिणमन होता है तब मोक्ष है ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नही है। और ऐसे आनन्द स्वभावका जो वैषयिक सुखके द्वारा प्रतिबन्ध हुआ है उस प्रतिबन्धका अर्थ यह है कि आनन्द स्वभावका आवकारी परिणमन नही हो सक रहा है। अविकारी परिणमन और सविकारी परिणमन परस्पर विरोधी हैं। तो विकार परिणमनके कालमें अविकारी आनन्द परिणमन नहीं होता, इसीके मायने हैं प्रतिबन्ध।

विषय व्यासंगसे नित्यसुखके प्रतिबन्धकी सिद्धिका प्रयास – आनन्दस्वरूप आत्माके नित्यानित्यस्वरूपको न मानकर भास्करीय सिद्धान्ती पुनः कह रहा है कि नही, संसार अवस्थामें बाह्यविषयोंका व्यासंग बना हुआ है अर्थात् विषयोंकी प्रवृत्ति बन हुई है, उन विषयकी प्रवृत्तिके कारण वह नित्य सुख विद्यमान भी है तो भी उसके अनुभवका ज्ञान नहीं हो सक रहा, उस नित्य सुखका सम्वेदन नहीं हो रहा है और जब बाह्य विषयोकी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है तब मोक्ष अवस्थामें उस नित्य सुखका सम्वेदन हुआ करता है। यहाँ आत्माके सुख स्वभावको नित्य अपरिणामी एक स्वरूप जिस ढङ्गसे है उसी ढङ्गका निरन्तर रहने वाला मानकर यह सिद्ध किया जा रहा है कि वह नित्य सुख सदा ही विद्यमान है। उसमें योग्यता और व्यक्तिका कोई प्रश्न नही है। पर नित्य सुख विद्यमान होकर भी मुक्त जीवोंके वह सुख इस कारण प्रकट है, उस नित्य सुखका इस कारण सम्वेदन हो रहा है कि अब उनके शरीर नहीं है, इन्द्रिय नही है तो वे बाह्य विषयोमें क्या लगें? कैसे प्रवृत्ति हो? तो, बाह्य विषयोमें प्रवृत्ति न होनेसे मुक्त जीवोमे तो उस नित्य सुखका सवेदन हो रहा है, किंतु ससारी जीवोंमें बाह्य विषयोका व्यासग होनेसे, सम्पर्क होनेसे, लगाव होनेसे उनको विद्यमान भी नित्य सुखका सम्वेदन नहीं होता।

विशेषवादी द्वारा विषयव्यासंगसे नित्यसुखका प्रतिबन्ध न होनेका कथन – विषय व्यासंगसे नित्य सुखके घातकी बातका वैशेषिक उत्तर देते हैं कि भाई नित्यसुख तो सदा है और नित्यसुखका अनुभव भी सदा है क्योंकि वह सुख क्या जो सुख अनुभवमें न आए? सुख नाम तो तभी पड़ता है जब उसका परिज्ञान चल रहा हो, अनुभव चल रहा हो, भोगना हो रहा हो, अन्यथा सुखका अर्थ क्या? अर्थात्

ऐसे नित्य सुखका सम्वेदन भी जब नित्य है तो व्यासंग बन ही नहीं सकता, अर्थात् ये इन्द्रियां बाधा डाल दें, विषयोमें लग बैठें और नित्य सुखका प्रतिबन्ध कर दें ऐसा प्रतिरोध बन नही सकता क्योंकि व्यासंग नाम है किसका व्यासंग क्या कहलाता है ? जैसे रूप विषयमें ज्ञानकी उत्पत्ति चल रही है, तो उस कालमे रस आदिकका ज्ञान नही हो रहा है इस हीका नाम व्यासंग है। जब रूप जान रहे, तब रसका अनुभव नही, अब रसका अनुभव हो रहा तब रूपका ज्ञान नहीं। भले ही मोटे रूपमें ऐसा लगे कि जब कभी कोई बडी चीज जैसे मान लो तेलकी पकी हुई पपडियाँ पूरी ही मुहमे देकर खा रहे हैं तो उस समय रूपका ज्ञान भी हो रहा है कि ये पीली पीली हैं रसका भी ज्ञान हो रहा है और तेलकी गंधका भी ज्ञान हो रहा है, उसके चर्र-२ होनेकी आवाज भी सुनाई दे रही है, और वह जितनी कडी है उसका कडापन भी ज्ञात हो रहा है, लेकिन वे सब ज्ञान एक साथमे नही हो रहे हैं। उपयोग अति वेगवान चक्रकी तरह ऐसा चलता है कि इन सब इन्द्रिय ज्ञानोमे फिरता रहता है कि पता नही पडता कि इसमे कुछ समयका भेद हो गया है। जैसे ५० पान रखे हुए एकके ऊपर एक और उनको एक सुईसे बडी तेजीसे मारकर छेद दिया जाय तो वे पान एक साथ छिद जाते हैं, ऐसा मालूम पडता है ना, लेकिन वे एक साथ नही छिदते हैं। वह सूईकी नोक जब एक पानपर छेदने पहुचती है उस समय दूसरे पान पर वह नही है। यो ही पचासो पान छिदते हैं बारी बारीसे किंतु उनका पता नहीं पडता है। ऐसे ही भले ही रूप, रस आदिकके ज्ञानके बदलेमे हमे पता न पडे लेकिन वे सब क्रमसे होते हैं। तो व्यासंगका अर्थ यह है कि जिस समय हम रूपका ज्ञान कर रहे हैं उस समय रसके ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो रही, यही व्यासंग है, पर ऐसा व्यासंग यहां नहीं बता सकता कि आत्म मे नित्य सुख तो है पर जब वैषयिक सुखका ज्ञान हो रहा है उस समय नित्य सुखका अनुभव नही आ सकता क्योंकि नित्य तो नित्य ही कहलाता है, उसे कौन व्यासंग करे, कौन उसका निरोध करे ? ऐसी ही बात इन्द्रिय की है। जब इन्द्रिय एक विषयमे ज्ञानजनक होकर प्रवृत्ति कर रही है अर्थात् जैसे चक्षु इन्द्रिय जिस समय रूपके ज्ञानके जनकरूपसे प्रवृत्ति नहीं कर रही, यही तो व्यासंग हुआ इन्द्रियका। यह भी नही बन सकता क्योंकि सुख भी आत्मामें सदा है तो उसकी तरह ज्ञान भी आत्मामे सदा है। ऐसा सुख बताओ कि सुख तो हो रहा पर न हर्ष है न अनुभव है, न ज्ञानमे है, न उसका कोई फल हो रहा. ऐसा सुख क्या होता होगा ? सुख तो वही है जिसका प्रयोग हो रहा हो, उपयोग हो रहा हो, अनुभव होता हो। तो आत्मामे नित्यसुख भी रहे और अनुभव न हो ऐसा कहा सम्भव है ?

नित्यसुखके विरोधक शरीरका घात करनेमें उपकारकताका विशेषवादी द्वारा उपालम्भ— अभी वैशेषिक ही कहे जा रहे हैं वेदान्तीके प्रति कि आनद स्वरूप आत्माको नही मान सकते। आत्मा तो आनन्दज्ञान आदि सब गुणोंसे रहित है। यहां कह रहे हैं कि तुम्हारा यह कहना कि आत्मामें नित्यसुख तो सदा है पर

शरीरके कारण नित्यसुखका प्रतिबन्ध हो गया है वह प्रकट नहीं हो पा रहा तो फिर ऐसा शरीर मार डालना चाहिए। ऐसा शरीर तो शत्रु है जो आनन्दको नष्ट करे आनन्दको नष्ट करने वाले शरीरको यदि कोई घात कर दे तब तो उसे हिंसाका फल नहीं लगना चाहिए, किन्तु एक पुण्य होना चाहिए कि देखो इसने नित्यसुखका घात करने वाले इस शत्रु शरीरको बरबाद कर दिया। इसे हिंसाका दोष क्यों कहा जाता है ? जो प्रतिबन्धक चीज है, हमारा बिगाड करने वाली है उसे यदि कोई बिगाड दे तो हमे उसमे राजी होना चाहिए। यह ससारी जावोंकी बात कही जा रही है। तो आत्मामे जो नित्यसुख भरा हुआ है उस सुखका प्रतिबन्ध किया है शरीरने तो शरीर के घातसे फिर हिंसा न लगना चाहिए बल्कि शरीरका घात करने वाला पुरुष तो उपकारक ही कहा जाना चाहिए।

नयवादसे आनन्दस्वरूप व उसके विकास तथा प्रतिबन्ध होनेका प्रतिपादन—अब वेदान्ती और वैशेषिकके शङ्का समाधानके बाद स्याद्वादवादी कह रहे हैं कि वेदान्तवादियोका कहना भी यह उचित है कि आनन्दस्वरूप है आत्माका, परन्तु यह इन्द्रियका व्यासग लगनसे प्रकट नहीं हो रहा लेकिन वह आनन्दस्वरूप है, स्वभाव दृष्टिसे नित्य है, पर वह एकरूप ही है जैसा भी प्रकट हो, ऐसा अपरिणामी नहीं है। उस आनन्द स्वभावका घात हो रहा इसका अर्थ यह है कि वह आनन्दस्वरूप अविकार आनन्दके रूपमे प्रकट नहीं हो रहा है इसका कारण यह है कि इन्द्रियजन्य सुखका व्यासग लगा है लगाव लगा है। जब जब इन्द्रिय सुखका सम्वेदन चल रहा है तो उस विशुद्ध आनन्दका अनुभव कहांसे हो ? तो आनन्दस्वभाव स्वभावरूपसे है, पर्याय रूपसे, अविकार रूपसे नहीं है। पर्याय दृष्टिसे तो उस आनन्दस्वभावका इन्द्रिय सुख रूपमे विकारी परिणमन है और विकार परिणमनके द्वारा अविकारी परिणमन का प्रतिबन्ध होता ही है क्योंकि एक साथ विकार और अविकार दो परिणमन नहीं हो सकते। अब रही शरीरकी बात कि शरीरसे नित्यसुख प्रतिबन्धित होता है। तो भिन्न शरीर आनन्दके विशुद्ध परिणमनका न तो साधक है न बाधक है जीवनमुक्त अवस्थाका शरीर देख लो। अरहन्त प्रभुका सकल परमात्माका शरीर होनेपर भी क्या उनके अनन्त आनन्दमे बाधा पड रही है। शरीरका तो आत्मगुणोमें कुछ भी दखल नहीं है। यह आत्मा ही शरीरमें दृष्टि रखकर उसमें कल्पना करके अपने विकल्प बनाकर कभी सासारिक सुखका अनुभव करता है कभी दुःखका अनुभव करता है। तो शरीर कभी दुःखका कारण बन जाता है और कभी सुखका कारण बन जाता है, लेकिन वास्तविक सहज विशुद्ध आनन्दका न तो शरीर कारण ही बनता है और न कभी सुख दुःख आदिकका ही कारण बनता है।

शरीरघातमे हिंसा न होनेके उपालम्भके सम्बन्धमे निर्णय—अब रही यह बात कि जो यह कहा गया है कि नित्य सुखका घात करने वाले शरीरका नाश

करनेपर उसे उपकारी माना जाना चाहिये। यह बात यों युक्त नहीं है कि यह उपालम्भ तो उस प्रश्नकी तरह है जैसे कोई पूछे कि बताओ ये प्राण आत्मासे भिन्न हैं या अभिन्न ? कोई कहे कि प्राण आत्मासे जुदी चीज है तो फिर प्राणोको मिटा देने पर उसमें हिंसा न लगनी चाहिए, क्योंकि आत्मा जुदा है प्राण जुदा है। प्राणोको मिटा दिया, घात कर दिया तो आत्माका क्या बिगडा ? और, कहोगे कि प्राण आत्मासे अभिन्न हैं तो चाहे कुछ भी चेष्टा कर डालें, मार डालें, आत्मा तो अमर है, प्राण अमर हैं, वे कभी नष्ट हो ही नहीं सकते। आत्माका कभी विगाड ही नही हो सकता, चाहे भले ही कुछ दीखे। यह उपालम्भ ठीक यों नहीं बैठता कि प्राण आत्मासे कथंचित् भिन्न हैं कथंचित् अभिन्न हैं। इस समय चूकि यह जीव अपनी साधनामें अधूरा है, साधनासे बिल्कुल विमुख है, और मिली है इस जीवको यह पर्याय उत्तम कि यह साधना कर सकता है और यह उस मोक्षमार्गके सिलसिलेमे, ससारसे छुटकारा पानेके सिलसिलेमे कुछ बढा चढा हुआ है। एक दृष्टिसे देखा जाय तो निगोदिया जीवोसे पृथ्वी, काय आदिक स्थावर बढे चढे हैं, कुछ तो कठिन दुःखोसे निकले हैं, एकेन्द्रियसे दोइन्द्रिय कुछ आगे बढ गया है। वह अन्य तीन चार आदिक इन्द्रियोके विकाससे अभी छोटा है; और यह सज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनुष्य उन सब जीवोमेसे बढा हुआ है। यह अधूरी साधना वाला मनुष्य इस जीवनमे साधना कर रहा था, उसका घात कर दिया तो इसके मायने है कि उसको साधनासे बहिर्भूत कर दिया, तो अकल्याण कर दिया। दूसरे सक्लेश परिणाम सहित मर जानेके कारण वह कोई निम्नगति पायगा। तो शरीरका घात हिंसा है ही, और उग हिंसाका फल भोगना पडता ही है। बात यहाँ सिद्धान्तकी यह हुई कि आत्माका स्वभाव तो आनन्द है, पर उसकी व्यक्ति ससार अवस्थामें विकारी है, और जब विषय-व्यासङ्ग हट जायगा तो इस ही आनन्दका अविकार परिणमन हो जायगा। बस आनन्दस्वरूपकी अविकार अनन्त असीम अभिव्यक्ति हो जानेका नाम ही मोक्ष है।

नित्यसुखके सवेदनके कारणोका प्रश्न - आत्माका नित्य सुखस्वभाव माननेपर जो वैशेषिक द्वारा उपालम्भ दिया गया है कि फिर तो मुक्त जीव और ससारी जीवमे अन्तर न रहेगा। ससारी जीवोको फिर स्मरण न हुआ करेगा, सस्कार न बनेगा। इन्द्रियजन्य सुख और नित्य सुख दोनोकी एक साथ उपलब्धि होने लगेगी, उन शङ्काओको दूर करनेके लिए यदि उस नित्य सुखके सम्वेदनको अनित्य स्वीकार किया जाय कि भाई! सुख तो है नित्य, मगर उसका हर समय सम्वेदन नही चलता, सम्वेदन मायने ज्ञानानुभव। उसका अनुभव कभी चलता कभी नहीं। वह सम्वेदन अनित्य है, तो इसपर सम्वदनकी उत्पत्तिका कारण बताना चाहिये। जो चीज अनित्य होती है वह किसी कारणसे उत्पन्न होती है तभी तो अनित्य है। जो किसी कारण बिना है वह अनित्य कैसे कहला सके ? जितने भी कार्य होते हैं घटपटादिक, सबके कारण होते हैं तब उनकी उत्पत्ति है। जैसे घडा बना तो घडेरूप कार्यका

समवायि कारण तो मिट्टी है। जो कारणकार्य रूप बने उसे समवायि कारण कहते हैं, कोई लोग उपादान कारण भी कहते हैं। और, साथ जो पानीका सम्बन्ध है वह है असमवायि कारण। फिर जो कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिक अनेक कारण पड़े हैं, जो उस घड़ेसे भिन्न ही रहेंगे वे हैं सहकारी कारण। तो समवायिकारण, असमवायि कारण, सहकारी कारण, इन तीन कारणोंका सन्निधान होनेपर कार्य बनता है। यदि आत्माके नित्य सुखका परिज्ञान अनित्य माना जाय तो अनित्य चीज कारणसे ही उत्पन्न होती है तो उस नित्य सुखके ज्ञानोत्पत्ति होनेका कारण क्या है? नित्यसुख का ज्ञान ससारी जीवोंमें तो माना नहीं, मुक्त जीवोंमें माना है। सो उनसे पूछा जा रहा है कि मुक्त जीवोंको जो नित्य सुखका सम्वेदन हो रहा है उसका कारण क्या है?

नित्यसुखके सवेदनकी उत्पत्तिके कारणोंका कथन—अब यहां वेदान्ती उक्त प्रश्नका उत्तर दे रहे हैं कि मुक्त जीवोंको जो सुखका अनुभव हो रहा है उसमें समवायि कारण तो उनका आत्मा है और असमवायि कारण आत्मा और मनका सयोग है। सहकारी तपश्चरण आदिक और कर्मोंका क्षय आदिक ये सहकारी कारण हैं। इस प्रसङ्गमें प्रसिद्ध उपादान निमित्त कारणसे एक अतिरिक्त असमवायि कारण उसे समझिये जिसमें कार्य उत्पन्न होता है वह तो है समवायि कारण, जिसे उपादान कारण कहते हैं और जितने निमित्तकारण हैं जो उस उपादानमें न थे न रहेंगे, जो कार्यसे पहिले भी उपादानमें न थे न रहेंगे। कार्य होनेके बाद भी उपादानमें न रहेंगे वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं। ये दो बातें तो स्पष्ट हैं, सभी लोग मानते हैं, पर एक तीसरी चीज है असमवायि कारण। असमवायि कारणमें एक ऐसी दूसरी चीजका सम्बन्ध बताया गया है जो उस उपादानके साथ जुटाये रहे अथवा ऐसा भाव कि जो कहनेको तो पररूपसा है मगर है एक भावात्मक, वह असमवायि कारण होता है। जैसे कपड़ा बुना गया तो कपड़ेका समवायि कारण तो सूत है और असमवायि कारण उन अनेक तन्तुवोंका सयोग है और निमित्तकारण जुलाहा आदिक हैं। तो यहाँ वेदान्ती उत्तर दे रहे हैं कि योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर जो आत्मा और मन का सयोग है वह असमवायि कारण मौजूद है अतएव निरन्तर मुक्त जीवोंके नित्य सुखका अनुभव होता रहता है।

नित्यसुखके अनित्यसवेदनके कारणोका निराकरण—इसके उत्तरके सम्बन्धमे वैशेषिक कहते हैं कि अब मुक्त अवस्थामें योगज धर्म कहा जाता है, योगसे उत्पन्न हुआ धर्म। योग मायने समाधि, तपश्चरण, साधना। जो साधुजन आंतरिक कार्य करते हैं उसका नाम है योग और उस योगसे जो एक प्रभाव उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा रखकर आत्मा और मनका सयोग होता है मुक्त अवस्थामें, उसे कहते हैं असमवायिय कारण, लेकिन वहाँ योगज धर्मका सम्बन्ध नहीं। वे तो मुक्त हो गए। अब कहां समाधि, कहाँ तपश्चरण? इससे तो वे परे हो गए। फिर सयोग योगज

धर्मकी अपेक्षा क्या रखेगा ? इसलिए यह असमवायि कारण नहीं बन सकता है और न नित्य सुखकी उत्पत्ति हो सकती है। यहा चर्चा यह चल रही है कि नित्यसुख अगर जीवमें है तो फिर ससारियोको क्यों अनुभव नही होता। मुक्त जीवोंको ही क्यो उस अनन्त सुखका अनुभव होता है ? उसके उत्तरमें यह कहा जा रहा है कि सुख तो नित्य है, उसमें दो राय नहीं हैं, पर सुखका सम्वेदन अनित्य है जब उस सुखका अनुभव हो तो सुखानुभव हो। जब सुखका ज्ञान नहीं कर रहे तो नही है सुख। तो अनित्य सम्वेदन माननेपर प्रश्न यह किया गया कि उत्पन्न कैसे हुआ ? योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर आत्मा और मनका सम्बन्ध तो बन नही सकता।

मुक्तिमे नित्यसुखके अनित्य सवेदनके उत्पत्ति कारणोके सिद्ध करनेका प्रयास—अब भास्करीय वेदान्ती कह रहे हैं कि ऐसा है कि मुक्त अवस्थामे तो योगज धर्म सम्भव नही है, अर्थात् तपश्चरण निर्विकल्प समाधि ये तो सम्भव अब मुक्तिमे नहीं रहे, लेकिन पहिले जो नित्य सुख सम्वेदन हुआ वह योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर मनके सयोगसे उत्पन्न हुआ और फिर उसके बाद जो उत्तरोत्तर सुखका सम्वेदन है वह योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर मनके सयोगसे उत्पन्न हुआ और फिर उसके बाद जो उत्तरोत्तर सुखका सम्वेदन है वह योगज धर्मको अपेक्षा रखे ही बिना केवल आत्मा और मनके सयोगसे होता रहता है। इसे थोडा कुछ एक स्याद्वादके दृष्टातसे समझ लो। जैसे कहा गया है कि केवलज्ञान एकत्व वितर्क अवीचार शुक्ल ध्यानके प्रतापसे होता है या कर्मोंके क्षयसे होता है। ज्ञानावरणका क्षय होनेसे केवलज्ञान होता है, यह तो निमित्त दृष्टिसे कथन है और भीतरमें देखनेसे यह कहा जायगा कि एकत्व वितर्क अवीचार नामक शुक्ल ध्यानके बलसे उन्हे केवलज्ञान होता है तो कोई यो पूछ बैठे कि अब भगवानसिद्धके एकत्ववितर्क अवीचार कहा रखा है फिर वहा केवलज्ञान कैसे हो रहा है। अथवा अब कर्मोंका क्षय कहा हो रहा है, केवलज्ञान कैसे हो। तो जैसे उस सम्बधमे उत्तर हो सकता है कि प्रथम समयका जो केवलज्ञान है वह द्वितीय शुक्ल ध्यानके प्रतापसे हुआ, ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे हुआ लेकिन अब जितने केवल ज्ञान चल रहे हैं, अनन्तकाल तक केवलज्ञानकी वर्तना चलती रहती है, प्रतिसमय नवीन-नवीन ज्ञानोपयोग शुद्ध जो चलता रहेगा अब वह अपने ही पूर्ण सामर्थ्यसे चलता रहेगा। वहा कुछ योगज धर्मकी द्वितीय शुक्ल ध्यानकी आवश्यकता नहीं रहती है, इसी तरहसे हम (भास्करीय) कह रहे हैं कि प्रथम जो नित्यसुखका सम्वेदन है वह तो योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर आत्मा और मनके सयोगसे हुआ लेकिन बादका जो सुख सम्वेदन है वह पूर्व विज्ञानकी अपेक्षा रखकर जो पूर्व ज्ञानका सम्वेदन हो रहा है वह उत्तरोत्तर अगले अगले सुख सम्वेदनको उत्पन्न करता है।

शरीरसम्बन्ध विना आत्मामें मनके सयोगकी असिद्धि—वैशेषिक कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि जब शरीरका सम्बध नहीं रहा तब फिर मनका

सयोग कैसे होगा ? शरीरके सम्बन्धके बिना मनका सयोग तो शरीरके सम्बन्धके बिना मनके सयागमे ज्ञानकी उत्पत्तिकी सहकारिता नहीं हो सकती। देखो भैया ! ऐसा भी यहा मन्तव्य किया जा रहा है कि मुक्त अवस्थामें भी मनका सम्बन्ध बना है तब सुखका सम्वेदन हो रहा है और शरीर नहीं रहा। कुछ सिद्धान्तवादी मनको अलग द्रव्य मानते हैं आत्माका अलग द्रव्य मानते हैं और शरीरको भौतिक पदार्थ मानते हैं, ये तीन स्वतत्र स्वतत्र चीजें हैं, अगर किसीका शरीर न रहा तो अब मनका और आत्माका सम्बध तो बन ही रहा, लेकिन यहाँ एक प्रतिज्ञामें कहा जा रहा है कि शरीरके सम्बन्धके बिना अगर मन और आत्माका सयोग भी रहा आये तो वह विज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता। जैसे कि यहा हम आप योगोंके शरीरका सम्बन्ध है तभी मन और आत्माके सयोगसे ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। देखी हुई बातसे उल्टी बात कल्पनामें नहीं आ सकती है अन्यथा बहुतसे दोष हो जायेंगे। और देखिये—आकस्मिककार्य कभी होता नहीं तो नित्य सुखका सम्वेदन यदि कार्य है तो उसका कारण बताना चाहिये। कारण कुछ बन नहीं रहा इसलिए यह कहना भी अयुक्त है कि आत्मामे नित्य सुख तो है किन्तु उसका सवेदन अनित्य है, इस कारण ससारी जीवोंमे सदा नित्यसुख सम्भव नहीं है।

'आनन्दस्वरूप'और उसके विकासका प्रतिपादन - अब वेदान्ती और वैशेषिकोके प्रश्नोत्तरके बाद इस सम्बन्धमें स्याद्वादके सिद्धान्तसे भी विचार सुनो। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है। तो वस्तुत जैसे आकाशद्रव्यसे अपना परिणमन करने के लिए किसीकी अपेक्षाकी जरूरत नहीं रहती, एक कालद्रव्य मात्र कारण रहता है इसी प्रकार आत्माको भी अपना ज्ञानानन्दरूप परिणमन करनेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा न रहना चाहिए। केवल एक ज्ञान द्रव्य निमित्त मात्र रहता और आत्मा अपने विशुद्ध परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दसे परिणत रहा करता लेकिन अनादिसे यह आत्मा विभावबद्ध है, कर्मबद्ध है, शरीरबद्ध है, ऐसी स्थितिमें इस आत्माने अपनी योग्यतासे अपनी शक्तिसे अपने आप अपने ज्ञानानन्दका घात किया है। और, इस हालतमें इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके ही ज्ञानका और आनन्दका विकास हो रहा है। हम जितना आनन्द पाते हैं आजकल, वह किसी इन्द्रियके विषयके साधनसे सेवनसे या मनकी कल्पनामे, यश कीर्ति आदिककी बात सोचनेसे हम सुखका अनुभव करते हैं तो वहाँ इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा हो गई। उसका निमित्त पाकर ये सुखके विकास हो रहे हैं इसी प्रकार यह ज्ञान भी है। हम जितने ये ज्ञान कर पाते हैं तो किसी इन्द्रियसे ज्ञान करते हैं, मनसे ज्ञान करते हैं तो यहा इन्द्रिय मन सापेक्ष यह ज्ञानोत्पत्ति है। ऐसे ही इन्द्रियमन सापेक्ष सुखोत्पत्ति है। लेकिन उस स्वभावको न भूलें, उस सहजकला को न भूलें कि जैसे आकाशद्रव्य अपना परिणमन करनेमें किसी भी परद्रव्यकी अपेक्षा नहीं रखता, इसी प्रकार यह आत्मा भी अपने ज्ञान और आनन्दके परिपूर्ण विकास परिणमन करनेमें किसीकी अपेक्षा नहीं रखता। तथापि ससार अवस्थामें तो वह परिस्थिति नहीं सम्भव है इसी कारण यहा उस अनन्त आनन्दका अनुभव नहीं हो

रहा और अनन्त ज्ञानका अनुभव नहीं हो रहा। जहाँ यह व्यासग मिट जाता है कि ये इन्द्रिय मनकी उपेक्षा करना ये समस्त विरुद्धतायें समाप्त हो जाती हैं। तब वह आत्मा अपने आपके उस निरपेक्ष ज्ञानानन्द स्वभावका आश्रय करके उसकी उपासना करके ज्ञानानन्दमात्र मैं हूँ, ऐसा विकल्प न करके केवल ज्ञानानन्दरूप अनुभवन करता है सो उस ध्यानकी विशुद्धि बढ़नेपर ये कर्म क्षयको प्राप्त होते हैं। ये आशा, तृष्णा, आधीनतायें, कल्पनायें, प्रतीक्षायें ये सब समाप्त होता हैं उस समय इसको जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान विकसित रहता है, आनन्द विकसित होता है वह निरपेक्ष है, ऐसा है मुक्त जीवका ज्ञान और आनन्द। इस मुक्त अवस्था होनेपर भी वहा सदृश परिणमन तो चल रहा है पर यह नही है कि वहा भी यह ज्ञान और आनन्दगुण कूटस्थ नित्य हो गया हो। कूटस्थ नित्यका कुछ सत्व हो नही है। मुक्त अवस्थामें अवक्तव्य निर्विकल्प अपरिवर्तनीय जिसमे विसदृशताका कुछ अ श भी जाहिर नही हो सकता ऐसा परिणमन चल रहा है, इस प्रकार आत्मा आनन्दस्वरूप है और उस आनन्दकी परम अभिव्यक्ति होनेका नाम मोक्ष है, ऐसा जो कथन है वह युक्त है पर उस आनन्दस्वरूपको भी कूटस्थ अपरिणामी मान लेनेपर कुछ बात नही बन पाती है। वहाँ मुक्त अवस्थामे उस सुखकी उत्पत्ति होनेका असमवायि कारण बताना यह अब यहाँ युक्त नही है। आत्माको कैवल्य प्राप्त होता है कैवल्यका अर्थ है जहाँ केवल आत्मा ही आत्मा रहे, वहा मनका सम्बन्ध नही रहता, तो नित्य आनन्द स्वभाव है आत्माका, पर उस स्वभावका ससार अवस्थामे विकृत परिणमन हो रहा है, अविकार परिणमन तो वस्तुके स्वरूपकी निजी बात है। उसके ही सत्वके कारण उसके अविकार परिणमन होते ही रहना चाहिए।

आत्मस्वरूपके वर्णनका अर्थससिद्धिसे सम्बन्ध इस ग्रन्थमें जो यह प्रसङ्ग चल रहा है इस प्रसङ्गको बतानेका मुख्य ध्येय इस ग्रन्थराजका नही है लेकिन सम्बन्धित है। इस ग्रन्थमे यह सकल्प किया गया कि चूंकि अर्थकी सिद्धि वस्तु स्वरूप का ज्ञान आत्माके प्रयोजनकी सिद्धि प्रमाणसे हो सकती है। प्रमाण मायने सम्यग्ज्ञान यथार्थ ज्ञान हो तो आत्माके प्रयोजनकी सिद्धि होगी वस्तुके स्वरूपका सही निर्णय होगा। प्रयोजन क्या है ? जब वस्तुका सही निर्णय हो गया कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र तब परमें स्वामित्वबुद्धि नही रहती। देखिये पदार्थ है क्या कितना ? एक पदार्थ उतने का नाम है कि एक परिणमन जितने पूरेमे रहे और जिसके बाहर न रहे। जैसे आत्मा के जो ज्ञान परिणमन चल रहे सो कहीं ऐसा नहीं है कि एक दिमाग और मस्तिष्ककी जगह ज्ञान परिणमन चल रहा और शेष जो आत्म प्रदेश हैं असख्याते, वहाँ ज्ञान परिणमन नहीं है। ऐसे ही जब कुछ सुखका अनुभव होता है तो ऐसा नहीं होता कि सुख का अनुभव यहाँ दिलमे इस ही जगह चल रहा है और बाकी जो आत्मप्रदेश हैं उनमे सुख परिणमन नही चल रहा है। जब जो कुछ भी ज्ञान होता है समूचे आत्मामें होता है। जब जो भी सुख होता है समूचे आत्मामे होता है। आत्मा यहाँ बडा लम्बा चौडा

नही है, वह तो एक है । व्यवहारसे बडे चौडे की दृष्टि करनी पडती है वहाँ तो इस ज्ञानपुञ्ज आत्माको देखो तो समूचा ही जितना कि विस्तार बताया है, सारेमें एक अखण्डता है । कपडेकी तरह लम्बा चौडा नही है आत्मा, किन्तु एक आकाशकी भांति लम्बा चौडा है । फर्क इतना है कि आकाश असीम है । इसका अर्थ यह है कि कपडा लम्बा चौडा है उसका तो अश करके अलग बताया जा सकता है फाड करके एक एक तन्तु न्यारा करके बताया जा सकता है कि लो यह है इतना बडा कपडा और उसके कई टुकडे किए जा सकते हैं, पर जैसे आकाशके टुकडे नहीं किए जा सकते, अलग अलग करके नही बताए जा सकते इसी प्रकार यह आत्मा है, इसके अ श नही किए जा सकते हैं । असख्यात प्रदेश क्या है ? यह तो एक अखण्ड है, उसमे खण्ड नही हैं, असख्यात अ श नही हैं, लेकिन जैसे एक आकाश अखण्ड होकर भी हम उसको एक एक प्रदेशकी मापसे अनन्त प्रदेशी मानते हैं इसी प्रकार अखण्ड आत्मामें एक एक प्रदेशकी मापसे हम उसमें असख्यात प्रदेश मानते हैं लेकिन वस्तुत वह अखण्ड है ।

निमित्त कारणके लगावमे ज्ञान और सुखके स्थानकी दृष्टि यहां पूछ सकते हैं कि अनुभव तो ऐसा ही होता है कि जब कोई चीज भूल जाते हैं उसका हम स्मरण करने बैठते हैं तो दिमागपर जोर लगाते हैं और जब उसका ख्याल होता है तो ऐसा लगता है कि इस दिमागसे ख्याल आया और इस दिमाग जाना, इतनी जगहमे जाना । इसी प्रकार जब किसी अच्छे प्रसङ्गमें या वैषयिक प्रसं मे सुखका अनुभव होता है या किसी भावनिमे दु खका अनुभव होता है । यह अनुभ करते हैं यहाँ छातीके सीधपर भीतर जो दिल है उस दिलमे सुख हुआ है, उस दिल दु ख हुआ है और तब सुख होनेपर दिलको राजी करके दिलको स्वतन्त्र और ए खुला हुआ सा अनुभव करते हैं, और जब दु ख होता है तो दिलको दबाते हैं । दु ह ता है तो दु खका अनुभव दिल हीमे तो होता । इसका उत्तर है कि वस्तुत अनु तो होता है समूचे आत्मामे, पर इस बन्धनबद्ध अवस्था मे चू कि उस ज्ञानकी उत्पत्ति कारण ये इन्द्रियां हैं और इन्द्रियज जमघट ये सिरभागमे हैं और इसी ही जगह पौ गालिक कुछ रचना विशिष्ट है जिससे मनका सम्बन्ध जुडा हुआ है । तो उत्पत्ति का की अपेक्षासे यह परिज्ञान होता है कि हमारे दिमागने जाना यहा ज्ञान हुआ । हुआ सर्वत्र मगर उत्पत्ति कारणकी प्रधानतासे लोग ऐसा निश्चय करते हैं क्य ज्ञानको उत्पन्न करनेके लिए कारण जुटाना चाहिए ना, तो कारणपर दृष्टि पहुँची और कारणपर लक्ष्य और दृष्टि पहुचनेके कारण फिर जीवोका ऐसा सस्कार जाता, उपयोग वहा लग बैठना, क्योकि कारणपर उपयोग लगनेकी बात तो है, तो ऐसा अनुभव हुआ करता है वस्तुत ज्ञानका अनुभव सर्वत्र आत्मामे है । प्रकार सुख दु खकी बात है ।

उदाहरणपूर्वक अखण्ड आत्मामे सर्वत्र सवेदनकी सिद्धि—जब कभ

हाथमे फुंसी हो गई बडी हो गई, तो उस समय यह मनुष्य दु खका अनुभव करता है तो वह दु ख उस हाथकी उतनी जगहमे नही हुआ किंतु दु ख हुआ करता है समूचे आत्मामे । लेकिन समूचे आत्मामे मुझे दु ख है, ऐसा यह दु खी पुरुष ख्याल क्यो नही बनाता ? उसका ख्याल यो नही बन सकता कि प्रथम तो उसे आत्माका ही बोध नही है, वह अपने चैतन्यस्वरूपकी बात क्या सोचे ? दूसरी बात यह है कि जो दु ख हुआ है उस दु खकी उत्पत्तिका निमित्त कारण तो वह हाथकी फुंसी है जिसके कारण वह दु ख चल उठा, जिसके निमित्तको पाकर ऐसा दु ख उत्पन्न हुआ है तो लोगोकी दृष्टि उस दु खके कारणपर विशेष रहती है । जैसे किसी आदमीकी वजहसे दु ख हुआ । मान लीजिए कोई विरोधी है और उसके बर्तावसे दु ख हुआ तो इस दु खीकी दृष्टि उस विरोधीपर बनी रहती है और वह यह अनुभव नही करता है कि यह दु ख तो कल्पना भावके कारण मेरेमे हुआ है, तो विरोधीसे मुझे दु ख नही हुआ है, एकदम विरोधी ही उसकी दृष्टिमे रहनेके कारण यही ख्याल बना रहता है कि इस विरोधीने मुझे कितनी विपत्ति पहुँचाई । तो यह बतलावो कि जहाँ बिल्कुल पृथक क्षेत्रमे वह विरोधी रहता है वह अपने गावका भी चाहे न हो, किसी अन्य गाँवमे चाहे वह रहता हो, उसके द्वारा आपको दु ख पहुँचे यह कहा सम्भव हो सकता है, पर उसीपर ध्यान रहता है कि इसके द्वारा मुझे दु ख हुआ, यह मेरा विरोधी है। इसी प्रकारसे समझ लो इस शरीरमें यह जीव रह रहा है और फोडा फुन्सी आदिक रूप ऐसा परिणमन हुआ है जहा एक क्षेत्रावगाह आत्मा है और निमित्त नैमित्तिक केवल सबध है तब इस फोडा फुंसीपर ही उसका ध्यान बना रहता है । और ऐसा ख्याल करता कि मुझे दु ख यहासे हुआ है, ऐसी एक कुटेब ससारी जीवोकी रहती है, पर वस्तुत जो भी इस जीवको सुख दु खका अनुभवन होता है वह इस आत्मामे सर्वत्र होता है ।

प्रमाणस्वरूपनिरूपणके प्रकरणमे प्रासङ्गिक चर्चायें —आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वभावसे परिपूर्ण है उसमे किसी भी प्रकारकी आपत्तियाँ नही हैं । इस प्रकार अपनी समृद्धिका परिचय इन जीवोको नही है सो ये बाह्य प्रसङ्गोको ही निरखकर बेचैन रहा करते हैं । वस्तुत तो इस आत्मामे अपने ज्ञान और आनन्दके विशुद्ध परिपूर्ण अनुभवन करनेके लिए किसी भी अन्यकी अपेक्षा नही है । अब भी जब कभी अपने इस विशुद्ध स्वरूपपर ख्याल बनाकर अपने आपको निरखा जाता है तो वहाँ दु खकी कुछ भी बात नही है । ऐसी हितकी प्राप्तिकी बात सम्यग्ज्ञानसे मिलती है । इसलिए सम्यग्ज्ञानके वर्णनकी यहाँ प्रतिज्ञा की है, ज्ञानका स्वरूप यहाँ बताया जा रहा है । ज्ञान दो प्रकारका है—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष । प्रत्यक्ष ज्ञान निरावरण होता है । निरावरणकी बात सुनकर ईश्वरवादियोंने कहा कि ज्ञान निरावरण होकर प्रत्यक्ष हो सो नही, किन्तु अनादिमुक्त ईश्वरका ज्ञान अनादिनिरावरण स्वयम् प्रत्यक्ष है, इसकी सिद्धिके लिये कर्तापन बताया तो प्रकृतिवादीने कहा कि नही, ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्ष नही, प्रकृतिपर आवरण है । प्रकृति सर्वज्ञ होती है । इसपर कुछ बात

चलनेपर जब प्रत्यक्ष ज्ञानके सही स्वरूपपर सहमत होते हैं उस गोष्ठीके विद्वान् लोग, तो उनमें एक कह उठा कि यह ठीक है निरावरण ज्ञान है और योगी सर्वज्ञ होजाता है पर सर्वज्ञ होनेके बाद वह मोक्ष किया करता है, उनसे निपटनेके बाद फिर अन्तमें मोक्षके कारण पर विवाद चल गया कि मोक्षका स्वरूप अनन्त चतुष्टय नहीं है, किन्तु गुणोच्छेद है। इधर सांख्य और वेदान्ती मोक्षका स्वरूप यह रख रहे हैं कि आनन्द है ब्रह्मका स्वरूप और आनन्दकी जो अभिव्यक्ति है उसका नाम है मोक्ष। इस प्रकार उस प्रमाणके स्वरूपका कथन चलते रहनेके बीच यह प्रसङ्ग चल गया है जिसमें मोक्षके स्वरूपका इस समय विवाद उठ रहा हुआ है।

मोक्षके स्वरूपका परिज्ञान और मोक्षकी प्रतीक्षा—आत्माका सचाव हित मोक्षमें ही है। जन्म-मरण राग द्वेष इसके आवरक हैं इन सबका वियोग होने पर जो आत्मामें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्दका विकास होता है बस उस स्थितिमें हम आपकी भलाई है, उससे पहिलेकी जितनी ये संसारकी स्थितियाँ हैं इन स्थितियोंमें भलाईका नाम नहीं है। मोहमें विकल्प कर करके अनेक ख्याल ही ख्याल बनाये जा रहे हैं पर उनसे इस आत्माको कुछ भी मिलनेका नहीं है, हैरानी ही भोग रहे हैं। तो हित तो मोक्ष अवस्थामें है। तो हमें मोक्षके स्वरूपका निर्णय करना चाहिए और मोक्षका स्वरूप जानकर उसकी बाट जोहना चाहिए। जैसे जिस पुरुषसे अनुराग होता है तो उसकी बाट जोहते हैं ना, कब आयगा? कब मिलेगा? ऐसे ही मोक्षसे यदि हित समझा है तो उसकी भी बाट जोहना चाहिये। हमने उस मोक्षको पानेका कितना उपाय बना लिया है अभी कितने उपायोंकी कमी है, यह बात ध्यानमें हो तो मोक्षकी बाट जोहना सम्भव है। विकल्प मोह जालमें ही लगे हैं और कल्पनासे मान लिया कि हमने धर्म कर लिया स्वाध्याय, पूजापाठ, धर्म चर्चादि सब कर लिए तो उससे बड़े आप धार्मिक बन गए ऐसी बात नहीं है। लोगों में कुछ अपनी पोजीशन बनाये रखनेके लिए, दूसरोंपर ऐहसान लादनेके लिए यदि धार्मिक क्रियाकाण्ड किए जा रहे हैं तो उससे इस आत्माका कुछ भी भला नहीं होने का। अपने आत्माका भला तो तब होगा जबकि अपने आपके स्वरूपमें ही अन्तःप्रवेश करते हुए, वहाँकी ही समस्त गुणसमृद्धियोंको देखता हुआ तृप्त रहे। उस ही स्थितिमें समझिये कि हम मोक्षके उपायमें चल रहे हैं नहीं तो जैसे अनन्त भव व्यर्थमें बिता दिए वैसे ही एक यह भी भव व्यर्थमें व्यतीत हो जायगा, लाभ कुछ न हो सकेगा।

अनन्तचतुष्टयलाभस्वरूप मोक्षके विरुद्ध दो दार्शनिकोंके मन्तव्य—भैया! हित है मोक्षमें, अब मोक्षके स्वरूपका निर्णय करना चाहिए। यों तो थोड़े समयमें मोक्षका स्वरूप जो चाहे कह दे, किन्तु दार्शनिक क्षेत्रमें जब बड़ी युक्तियां की जाती हैं तो उस समय उन सबके मर्मोंको जानकर जो स्वरूपका निर्णय होना है वह एक विशिष्ट निर्णय होता है। सिद्धान्तमें तो मोक्षका स्वरूप यह है कि अनन्त ज्ञान

दर्शन शक्ति आनन्द आदिक अनन्त चतुष्टयोका लाभ होना। पर इसके विरुद्ध अनेक दार्शनिक अपने अपने मतव्य रखते हैं। पहिले तो वैशेषिकोने यह कहा जिनको कि कुछ भी स्वरूपमे फर्क मालूम पडे, कहनेसे, सज्ञासे भी, तो भी भेद करनेकी रुचि होती है, ऐसे वैशेषिक लोगोने मोक्षका स्वरूप यह बताया था कि आत्मामेसे ज्ञानादिक गुण सब खतम हो जायें तो उसका नाम मोक्ष है। जब तक आत्मामे गुणोका सम्बन्ध है तब तक यह जीव ससारी है। प्रसिद्धि भी ऐसी कर रखी है कि निर्गुण परमात्मा होता है उसी सम्बन्धमे बहुत कुछ कहा गया है। इतनेमे भास्करीय वेदाती अपना दर्शन रखने लगे कि नही गुणोच्छेदका नाम मुक्ति नही है किंतु आत्माका नित्यसुख स्वभाव है आनन्दरूप है, ब्रह्मका आनन्दस्वरूप है, उस आनन्दस्वरूपका प्रकाश हो जाना, उसकी अभिव्यक्ति हो जाना इसका नाम मोक्ष है। अब सुननेमे तो अच्छा लग रहा है, कोई खिलाफ बात तो नही कही जा रही है, ठीक ही वह भास्करीय वेदान्ती कह रहा है। लेकिन मतव्यमे यदि यह पडा हुआ हो कि आत्माका वह आनन्दस्वरूप नित्य है, अपरिणामी है, उसकी कुछ अवस्था नही, कोई रूप ढङ्ग नही, वह तो एक आनन्द आनन्दस्वरूप है, सो ऐसे इस वेदान्तीके प्रति इस समय वैशेषिक हा कह रहे हैं।

नित्यसुखके सम्बन्धमे वैशेषिकोका कथन – अनेक दोषापत्ति बतानेके बाद भी यह टेक रखी जा रही है कि मुक्त अवस्थामे तो नित्यसुख ही है। यहाँ अनित्य सुखका उल्लघन करके नित्यसुखकी जो कल्पना की है तो जब कल्पनाओसे ही सब मत बन जाता है तो नित्यात्वधर्मका अधिकरण शरीरादिक भी मान लिया जाय अर्थात् शरीर भी मुक्तिमे है, जो कि नित्य है जैसे कि तुम्हारा सुख नित्य है अन्यथा यह कहो कि वहा सुख भी नही है। यहाँ आनन्दस्वरूपवादी कह रहे हैं कि शरीर तो कार्य है, उसे नित्य कैसे मान लिया जायगा क्योकि जो जो कार्य होते हैं वे नित्य नही होते हैं। शरीर तो कार्य है किसी दिन उत्पन्न हुआ और फिर इसका वियोग होता है। तो जो कार्य होता है वह नित्य नही हुआ करता है। अनेक बातें उदाहरणमे देख लो। तो शरीर चूकि कार्य है इसलिए न तो शरीर मोक्षमे है और न शरीरकी नित्यता ही है। तो इसपर वैशेषिक कहते कि यही बात नित्यसुखके बारेमे समझ लो कि सुख वह कभी नित्य नही हुआ करता। जैसे शरीर नित्य नही होता वैसे ही सुख नित्य नहीं होता। जैसे शरीर कार्य है वैसे ही सुख भी कार्य है। नित्यसुखको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नही है, हमारी इन्द्रियाँ तो उस नित्य सुखको समझ नहीं रही हैं। यदि कहो कि योगियोका प्रत्यक्ष समझता है तो उसमे विवाद पडा हुआ है कि नित्य सुखका ग्रहण कर रहा है या अनित्य सुखका।

द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टिसे आनन्दरूपताका निर्णय—अब वेदान्ती और वैशेषिकके प्रश्नोत्तरोपर स्याद्वादी कहता है कि यह सब विवाद एकातमे उठ

खडा हुआ है। आत्माका आनन्दस्वरूप है, इसे कोई मना नही कर सकता, अन्यथा आत्माका प्रयोजन क्या ? आत्माका आनन्दस्वरूप है और ज्ञानस्वरूप है वह ज्ञान आकुलतासे रहित है। ज्ञानकी विशेषता ही यह है जो जाननहार रहता है, जिसके साथ किसी प्रकारकी विह्वलता नही होती है ऐसा ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है, जो कि आनन्दका अविनाभावी है। अब उस स्वरूपका उपाधिके समर्गमे, सम्बन्धमे तो विकार परिणमन होता हैं और उपाधि रहित परिणमनमें अविकार परिणमन होता है यह बात तो अनेक दृष्टांतोसे जान सकते हैं। एक बिल्कुल स्वच्छ दर्पण है, वह स्वच्छ ही है, उसका स्वरूप स्वच्छ है, पर कोई वस्तु सामने आती है, उपाधिका सन्निधान होता है तो वह दर्पण चित्रविचित्र प्रतिबिम्बरूप हो जाता है। तो दर्पण स्वच्छ है उसका विकाररूप प्रतिबिम्बरूप परिणमन होता है, ईंट पत्थर आदिकमें क्यो नही दूसरी चीजोका प्रतिबिम्ब पडता ? क्योंकि उसमे स्वच्छन्दता नहीं है। तो जब कोई उपाधि है तो प्रतिबिम्बरूप है और जब उपाधि नहीं, तो ज्योका त्यो रहता है। इसी प्रकार आत्माका स्वरूप ज्ञानानन्द है। जब उपाधिका सम्पर्क है तब यह विकृत रूप चल रहा है, वैषयिक सुख दु ख यो नाना विभावरूप परिणम रहा है और जब उपाधिका ससर्ग नहीं रहता है तो यह अपने उपयोग रूपमें अविकाररूप परिणमता रहता है।

निरुपाधि होनेका मूल उपाय—उपाधिका सम्पर्क न रहे, शरीर कर्म आदिकका सम्बन्ध न रहे इसका उपाय क्या हैं ? इसका उपाय है शरीर और कर्म की उपाधिका सम्बन्ध नही है यह अभीसे निरुपाधि विविक्त ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिका अभ्यास करें। मैं जानता हूँ मैं सुनता हूँ, मैं देखता हू इस प्रकारका भी मनमें विकल्प न उठे। यहा लोकमे जो कहा जाता है मैं मकान कर रहा हूँ, मैं दुकान कर रहा हूँ सो सोचो मैं ये कोई काम नही किया करता हू। ये सब पुद्गलके कार्य हैं। जैसे कोई चीज हाथमें लेकर भी जिस चाहे तरहसे बनायी जाती है। जैसे मानलो एक रोटी बनानेका ही काम है, उस रोटीपर बहुत प्रयोग किए जाते हैं। अब लोई रूपमे कर लिया, फिर पपार दिया जैसी चाहे कितनी ही अवस्थायें की जाती हैं उस रोटीमें, इतने प्रयोग होनेपर भी रोटी बनाने वाला पुरुष सिर्फ ज्ञानको कर रहा है या किसी पर द्रव्यका कोई कार्य भी कर रहा है ? वह आत्मा तो उस जगह केवल अपने विकल्प बना रहा है। आत्मा कोई रूपरसगंधात्मक पिण्ड वस्तु नहीं है, ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माके कार्य ज्ञानानन्दरूप ही हो सकेंगे। आत्मा जब विकारी बनता है तो आकुलताओरूप परिणमता है और जब यह आत्मा अपने स्वरूपकी सावधानी रखे तो ज्ञाता दृष्टा जाननहार रूपमें परिणमता है। और आनन्द विशुद्ध निराकुलता रूपमे परिणमता है। इस विशुद्धपरिणमनके लाभके अर्थीको अभीसे ही विविक्त अन्त स्वरूपको निरखना चाहिए।

परिणामिनित्य आत्मामे आनन्दरूपताकी ससिद्धि—स्वरूप है आत्मा

का आनन्द, किन्तु आत्मा नित्य नित्यात्मक है, सो मेरा जितना स्वरूप है उतना सब भी नित्यानित्यात्मक है। वह आनन्दस्वभावसे नित्य है परन्तु पर्यायदृष्टिसे उसमें जो भी कार्य होता है, उसका परिणमन होता है अतः यह आपत्ति देना कि मुक्त जीव में और संसारी जीवमे दोनोमे नित्यसुख हो बैठेगा, यह आपत्ति स्याद्वादमे नही आती। हां अपरिणामी नित्य आत्माके किसी स्वरूपमे वह बात बन नही सकती। जो आत्मा को सुख स्वभावी कहा गया है वह सुख स्वभाव मात्रकी सिद्धि करता है। नित्यसुख स्वभाव है अर्थात् अपरिणामी है जिसमे कुछ परिणमन नही है। ऐसा कोई नित्य सुख स्वभाव हो उसकी सिद्धि नही होती है। अतः मानना चाहिए कि यह स्वभाव दृष्टिसे नित्य है परिणमन दृष्टिसे अनित्य है। स्याद्वाद निर्णयका कितना सुन्दर उपाय है पर इस उपायमे निर्णय करके बादमे भी उस भेद दृष्टिका विकल्प रखे तो वह योगसाधना नही कर सक रहा। सब कुछ जानकर भी फिर कुछ जाननेका श्रम न करे मात्र जाननहार रहे आत्मामे परम विश्राम रहे। जान लिया सब, सारभूत बात कही कुछ नही है इसलिए मैं अन्यत्र कही पडना नही चाहता बस इतनी ही बात मुझे चाहिए। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नही सोचना है।

स्वमे स्वकी अवस्थारूपसे स्वका भवन—देखो भैया! जानना भी क्या, जानता कौन है? जानना होता है, पदार्थमे उत्पादव्यय चलता है। पदार्थकी उत्पत्ति का कर्ता कौन है, पर तो उत्पन्न करता नही और खुद, खुदको उत्पन्न क्या करे, वह स्वतन्त्र सत् है। तो पदार्थ पर्यायका उत्पन्न करता कौन है? पर्याय होती है। कैसे होता है? विभाव पर्याय तो एक निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमें होती है, स्वभाव पर्याय उपाधिसन्निधान बिना मात्र स्वके भवन स्वभावमे होती है। करनेकी कौनसी बात है? जो यह समझा जाता है कि आत्मा मात्र ज्ञानको करता है तो वह तो उस भाषामे कहा गया है जो जहाँ परको करता हूँ, करता हूं इन विकल्पोंमें जहा करने करनेका ही एक दिमाग बने, उनको बताया पडता है कि आत्मा परको नही करता। किन्तु, आत्मा तो ज्ञानमात्र भावको ही कर्ता है। जिनके करने करनेकी श्रद्धा बनी है उनको करनेका नाम लेकर समझाया जाता है। वस्तु है और द्रव्यत्वस्वभावके कारण प्रति-समय अवस्थारूप होता रहता है। और वहां उपाधिका सम्बन्ध हो तो यों होता है, निरुपाधिसहित हो तो यों होता है।

समाधिभावका उपकार—अब निर्णय करनेके बाद एक समाधि भाव लेनेकी आवश्यकता होती है समाधि अर्थात् परम उपेक्षा और थोडा विश्राम। इन दो बातों का ही मिश्रण तो समाधि है। समाधिमे और हो क्या रहा है, प्रत्येक बात विधि निषेधात्मक है सो समाधिका स्वरूपविधिसे प्रवृत्तिसे तो परम विश्राम है और निवृत्ति से परम उपेक्षा है। तो ऐसा परिणाम हमारा बन सके और मोक्ष तत्त्वकी प्रतीक्षा करनेकी हमारी वृत्ति बने तो हम इन झमेलेसे दूर हो सकते हैं अन्यथा कितनी ही

व्यवस्था करले चाहे मकान सजाले चाहे दुकान सजाले और वैभवपर वैभव भी बढाते जा रहे हैं, सब कुछ कर लिया पर करना बाकी रहता है और करने-करनेमें मरण हो जाता है, आखिर यह जीव आगे कहीं तो जायगा ? कुछ इस बातपर भी तो दृष्टि ले जायें। यह सारा झमेला जो एक ४०-५० वर्षके लिए किया जा रहा है तो इतना सा समय इस अनन्तकालके सामने कुछ गिनती भी रखता है क्या ? इस छोटेसे जीवनकालमे प्रतत्त्वकी बात तो रुचती ही नहीं है, सब कुछ धन वैभव इज्जत पोजीशन ही रुच रहा है। एक इस शरीरको यह मैं हूँ, ऐसा भाव करके केवल अपनी ऐंठ ही रही। तत्त्व कुछ न निकला। और, ऐसे थोडे समयकी ऐंठ ये प्रत्येक जीवमें चलती आयी। चलो, इससे भी सन्तोष होता कि ५० वर्ष ऐठ बगरा लें कुछ विकल्प करलें, बरबादी करलें फिर ५० वर्षके बादमें मरेंगे तब तो झंझट छूट जायगा। नही छूटेगा मरण करके जिस नई जगहमें जायेंगे वहा फिरसे अ, आ, इ, ई शुरू करेंगे। फिर विकल्प करेंगे, मोह करके और थोडे ही समय बाद मरण करके चले जायेंगे। यो जन्म मरणकी परम्परा ही चलती रहेगी और इस जीवको कभी हितका मार्ग नही मिल पायगा।

आत्मार्थकी सिद्धिके प्रयत्नका अनुरोध—भैया ! आनन्दस्वरूप भगवान आत्माको देखो, जो देहसे भिन्न स्वय विराजमान है, सब अपने अपने अन्दर सोचें और अपने हितके ही भावसे सभी धर्मकी बातें एक इसी प्रयोजनके लिए सुनें। क्या कहा जा रहा है, हम भी इस सम्बन्धमे कुछ कहें, बोलें बतायें, या कुछ ज्ञानका अर्जन करें तो कहीं यह ज्ञान बतावेंगे तो लोग भी समझेंगे आदिक ये कोई भी प्रयोजन नहीं है धर्मकी बात सुननेका। धर्मकी बात सुननेका प्रयोजन तो यह है कि सुननेके ही साथ सुननेके ही समयमे बाह्यसे दृष्टि हटाकर जिस आत्माकी बात कही जा रही है उस आत्माको लखनेमे अपना उपयोग लगाया जाय, निरखा जाय और कैसे मेरा हित हो बस इस भावनासे अपने आपपर ही उसे घटित किया जाय यह धर्मश्रवणका प्रयोजन है। तो अपने आपमें निरखें कि इतने वर्ष तक विकल्प कर चुकनेके बाद, करते रहने के बाद भी आज मेरे आत्मामे उन्नति कितनी हुई है, हममे कौनसा विकास हुआ है, बडप्पन हुआ है ? विकास और बडप्पनकी बात तो दूर जाने दो, हैरानी, परेशानी, अवनति हुई है। आत्माके सहज, विशुद्ध, निरपेक्ष स्वरूपको जानकर उसकी आराधना के बलसे अपने आपमें शुद्ध ज्ञानको अनुभव बनाए रहना, बस यही एकमात्र सारभूत सत्य पुरुषार्थ है। इसके अलावा जितने भी काम हैं वे सब कोयलेकी 'दलालीमें काले हाथ जैसी कहावत है, इसी प्रकार इन पर पदार्थोंकी दलालीमें ,सांसारिक प्रयोजनो की दलालीमे केवल व्यर्थ विकल्प ही हाथ लगते हैं, मिलता कुछ नही है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, और रत्नत्रयके उपायसे आनन्दस्वरूपसे अविकार विकासके रूपमें अभिव्यक्ति होनेका नाम मोक्ष है।

आत्माके सुखस्वभावकी असिद्धिके लिए वैशेषिको द्वारा वितर्क - अब यहाँ वैशेषिक वेदान्तीसे पूछ रहे हैं कि आत्माका जो सुख स्वभाव कहा है तो सुख स्वभावपनेका अर्थ क्या है ? क्या सुखत्व जातिसे सम्बन्धी रहनेका नाम सुखस्वभावपना है ? तो सुखत्व जातिका सम्बन्ध किससे रहा ? सुखसे, तो सुखत्वका आधार कौन रहा ? सुख न कि आत्मा। आत्मद्रव्य है सुख गुण है और सुखत्व रहा सुखमे अर्थात् सुखपना गुणमे रहा, आत्मामे न रहा। गुण और द्रव्य जाति साधारणतया नहीं पाई जाती है अर्थात् एक ही जातिका सम्बन्ध द्रव्य और गुणादोपोंमे नही होता। वैशेषिक यह सिद्धान्त है कि द्रव्य, गुण पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये ६ पूरे जुदे-जुदे सत् हैं, जबकि स्याद्वद दर्शनमें कहा है —जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ स्वतन्त्र पूर्ण सत् हैं। भेदभावमे विशेषता करनेकी भेद करने की ही धुन है सो एक ही द्रव्यमे ये ६ भेद कर दिए हैं —यो समझिये जैसे एक जीव द्रव्य, एक जीव ले लीजिए। उस जीवमें गुण है ना, ज्ञानदर्शन आनन्द आदिक जीव इस समय भी गुणात्मक हैं, लेकिन विशेषवादमे जीव अलग सत् है गुण अलग सत् है। जीवकी परिणति होती है ना, अच्छा जाना, बुरा जाना, सुखरूप परिणमा, आनन्दरूप परिणमन किया हुई तो प्रत्येक कार्य कार्यके कालमें उस जीवमे तन्मय है और अगले समयमे वह क्रिया न रही तो और क्रिया हुई यो पूर्व क्रियाकी लीनता हो जाती है। किन्तु, वैशेषिक सिद्धान्तमे क्रिया (पर्याय) भी स्वतन्त्र सत् है। अब देखो सब जीवोंमें जीवत्व सामान्य है। समझमे आता है कि जीव जीव सब एक स्वरूप हैं, तो इन जीवोमे एक जीवत्वस्वरूप सामान्य है। तो लो विशेषवादने जीवमें रहने वाला जो यह सामान्य तत्त्व है इसको भी स्वतन्त्र सत् कह दिया। यह भी स्वतन्त्र एक अलग पदार्थ है। अच्छा, जीव कहनेपर सब जीव आए, मगर यह जीव, यह जीव इस तरहका रहने वाला जीव यह विशेष पाया कि नही ? तो लो विशेषवादमे एक विशेष भी कोई पदार्थ स्वतन्त्र सत् है। लेकिन जीव पुद्गलकी भाँति अब ये सब जुदे जुदे पदार्थ तो हो गए, अब मुश्किल यह पड रही कि ये जीवमे मिल कैसे जायें ? जीवमें तन्मय गुण रहते हैं। तन्मयतामे जीवकी परिणति भी रहती है इसी ढङ्गसे जीवमे सामान्य नजर आया, जीवमे विशेष नजर आया, ये सब बातें कैसे बनें सो सो समस्या अगर कोई आती है तो समाधान तो उसकी बुद्धिमे ही पडा हुआ है। लो एक समवाय नामक पदार्थ है जो यहाँ दुनियामें एक सम्बन्ध नामकी चीज है। यह सम्बन्ध इन सबके सम्बन्ध जुटा देता है। अच्छा – इतनेपर भी विशेषवादियोंको सबमे भेद करनेकी हठमे तृप्ति न हुई तो वे कहते हैं कि इनके अतिरिक्त अभी अभाव नामक कोई पदार्थ है। यही नही है तो न' यह भी एक भी एक पदार्थ है, यो ६ प्रकारके पदार्थ माने गए विशेषवादमे। तो कोई सी भी जाति अगर द्रव्यमें है, गुणमे नही है। यदि जाति गुणकी है तो वह जाति गुणमे रहेगी, द्रव्यमे न रहेगी। इस प्रकार सुखत्व जातिसे सुखमे सुखत्व आ गया सो आत्मामें तो नही आया। तो सुख-

स्वस्वभावी गुण रहा, आत्मा सुखस्वभाव नहीं रहा।

आत्माके गुणाधिकरणत्वके विरुद्ध वैशेषिकोका वितर्क - यदि कहो कि आत्मा सुखत्व जातिसे सम्बन्धित नहीं रहा, न सही किन्तु सुखत्व रहा सुखमें और वह सुखका आधार हुआ आत्मा यो सुखका अधिकरण तो है आत्मा। तो कहते हैं कि यह भी बात नहीं बनती क्योंकि सुख आत्माका नित्य है या अनित्य ? यदि कहोगे कि नित्य है तो जैसे आत्मा नित्य रहता ही है ऐसे ही सुख भी नित्य रहा, फिर वहा सम्बन्धकी क्या जरूरत ? तथा नित्य सुख माननेपर मुक्त और ससारी सब एक समान हो जायेंगे। अनित्य है तो कार्य हुआ उसका कारण बताओ। तो दोनों विकल्प युक्तियोंसे आत्मा सुखस्वभावी सिद्ध नहीं होता, ऐसा वेदान्तीके प्रति वैशेषिकवादीका मन्तव्य होनेपर स्याद्वादी कहते हैं।

आत्माके सुखस्वभावका और उसकी सिद्धिके उपायका प्रतिपादन — सुखके भावका नाम सुखत्व है ? और यह सुख कोई आत्मासे अलग नहीं है, किन्तु द्रव्य अखण्ड स्वतन्त्र सत् होता है और उसे जब समझाना है तो भेद करके समझना पडता है। उस भेदपूर्वक पद्धतिमे गुणके रूपसे प्रतिपादन हुआ करता है। पदार्थ तो जो है सो ही है अवक्तव्य है। अत उस आत्मामें ज्ञान गुण है सुख गुण है इसका स्वभाव पडा है यो भेद दृष्टिसे प्रतिपादन है। वह आत्मा तो अखण्ड है, उसे बतानेका एक यह उपाय है कि उसको गुणोका भेद करके समझाया जाय। यह सब एक दर्शन शास्त्रके ढङ्गपर मोक्षके स्वरूपकी चर्चा चल रही है, और वैसे तो कोई अगर जानना चाहे और सूक्ष्मविवेचनाके झगडेमे न पडे क्या है क्या नहीं, इसमे दिमाग न लगाना चाहे, न लगाये, कोई जरूरत नहीं है, पर इतना तो करना होगा कि समग्र परवस्तुओंको पर अहित भिन्न जान करके उनमे पर वस्तुओको पर अहित भिन्न जान करके उनमे परम उपेक्षा हो। जब परम उपेक्षा हो। जब परम उपेक्षा हो गयी तो उसमें करनेका भाव न रहा, करनेका श्रम न रहा। तो एक सहज जो मैं हूँ उसका अनुभव हो जाएगा। परम उपेक्षा और अन्त विश्राम इन दो बातोके द्वारा, जो बात बडे बडे दर्शनशास्त्री बडी युक्तियोके द्वारा जानना चाहते हैं, कोई भी जीव इन दो उपायोके द्वारा अपने आत्माको स्पष्ट जान सकता है। जैसे कोई आदमी परस्परमे मिश्रीके स्वादके विषयमे लड रहे हो, एक कहे कि मिश्री मीठी होती है, कोई कहे कि मिश्री कडवी होती है, कोई कुछ कहे कोई कुछ और कोई विवेकी पुरुष उस झगडेमें ही न पडना चाहे तो एक मिश्री की डली लेकर मुखमे डाल ले, वह समझ जायगा कि मिश्री ऐसी होती है इसी प्रकार आत्माके स्वरूपके विषयमे चाहे बहुतसे वादविवादोमे न पड़ें, अथवा दूसरोंके वादविवाद समझमें भी न आये किन्तु समस्तपरसे परम उपेक्षा करके और अपने आपमें अन्त विश्राम करके समस्त शास्त्रोकी वह सारभूत चीज हम आपको सुगमतासे प्राप्त हो सकती है जिसको बडे बडे आचार्योंने बहुत कुछ श्रम करके

प्राप्त किया। इस बातको तो तिर्यञ्च भी पा लेते हैं। तो आवश्यकता है गम्भीरताम आत्मतत्त्वकी बात सोचनेकी। इस मोहममतासे आत्माका कुछ भी भला नहीं है।

ब्रह्मकी आनन्दरूपताकी सिद्धिमे दिये गये हेतु —भास्करीय वेदान्तियोंने आत्माको सुखस्वभावी सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिए। यह आत्मा अथवा यह ब्रह्म सुखस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है क्योंकि यह अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय है अर्थात् सब को अत्यन्त प्यारा अपना आत्मा ही है। कैसी भी स्थितियाँ हो दूसरोंकी अपेक्षा कर दी जायगी पर अपने आत्माकी उपेक्षा नही की जा सकती है। जैसे कोई बदरी अपने बच्चेको लिए हुए किसी नदीके बीच अवस्थित छोटे टीलेपर बैठी है और नदीमे बाढ़ ऐसी आ जाय कि वह टीला भी डूबने लगे, तो वह बदरी अब अपने आपको डूबते हुए देखती है तो अपने बच्चेके ऊपर खडी होकर भी अपने प्राणोकी रक्षा करती है, गृहस्थीके अनुभवोसे भी देख लो कोई आपत्ति कभी घरपर आती है तो पहिले तो आप अपने घर वालोकी रक्षा करते हैं पर जब अपने प्राणोपर सङ्कट आ जाता है तब आप उन समस्त परिजनोकी उपेक्षा करके अपने प्राणोकी रक्षा करते हैं। तो आखिर अपना आत्मा सभीको प्रिय है इससे यह सिद्ध है कि आत्मा आनन्दस्वरूप है तभी तो यह बात घटित होती है कि यह जीव अपने आपको सुरक्षित रखनेका यत्न करता है। दूसरी बात यह है कि अपने आपको अङ्गीकार अनन्यपर होकर किया जाता है अर्थात् हम अपने आपका बचाव, अपने आपके आनन्दका भोगना अपने आपमे मौज मानने की बात ये सब अनन्यपर होकर होते हैं। उतना कोई जीव पर वस्तुमे लीन नही हो पाता जितना कि अपनेमे लीन होता है। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है।

वेदान्ती द्वारा कहे गए आत्माकी अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्व हेतुके निराकरणका वैशेषिक द्वारा प्रयास ब्रह्मकी आनन्दरूपताकी सिद्धिके लिये उक्त दो हेतु वेदान्तियोने दिए थे, उनका उत्तर यहा वैशेषिक यो दे रहे हैं कि ये दोनो हेतु सदोष हैं, अनेकान्तिक हैं, क्योंकि यह कहना कि आत्मा अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय है इसलिए आत्मा आनन्दस्वरूप है यो ठीक नही कि अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय आत्मा मे दु खका अभाव ही है न कि मात्र सुख और आत्मा। वैशेषिक सिद्धान्त वाले यहाँ आत्माके अभावको अथवा दु खके अभावको प्रिय मान रहे हैं और कहते हैं कि कभी कभी तो आत्माके अभावमे भी प्रियबुद्धि देखी जाती है इससे यह हेतु तक भी सिद्ध नहीं कर सकते कि सुख ही प्रिय है। दु खका अभाव भी प्रिय है और दु खका अभाव एक तुच्छाभावरूप माना है। वैशेषिक सिद्धान्तने अभावको तुच्छाभाव माना है। जैसे किसीने कहा कि उस बेन्चपर थाली रखी है उसे उठा लावो। थाली उसपर थी नही तो उस जगह देखकर वह कहता है कि थाली यहाँ नही है। तो क्या तुमने वहा खूब देखा? · हाँ खूब देखा। तो क्या थालीका अभाव, थालीका असत्व भी दिखा करता है? क्या देखा? · खाली बेन्च। तो थालीके अभावके मायने थालीके सन्निधानसे

रहित मनोनीत आधारभूत कोई चीज। तो अभाव किसीके सद्भावरूप पडता है। लेकिन वैशेषिक सिद्धान्तने अभावको अन्य प्रतियोगीके सद्भावरूप नहीं माना, किंतु अभाव खुद एक पदार्थ है और वह अभावरूप है, तुच्छाभावरूप है, किसी अन्यकी सत्तारूप नही है, अभाव खुद सत् पदार्थ है ऐसा वैशेषिक सिद्धान्तमें माना गया है। तो अत्यन्त प्रियबुद्धिका विषय आत्मा ही होता है इसलिए वह आनन्दरूप है यह युक्ति ठीक नहीं, और अत्यन्तप्रिय बुद्धि बना है। क्या सबको अपने आपका आत्मा अत्यन्त प्यारा लग रहा है? तो जरा उनकी दशा तो देखो ज आत्महत्या कर डालते हैं। उनको अपना आत्मा बुरा लगा तभी तो हत्या की। यहा वैशेषिक अपनी युक्तिसे यह सिद्ध कर रहा है कि आत्मा आनन्दस्वरूप नही है। आनन्द तो एक परतत्त्व है, आत्मामें सुखका लगाव लग बैठा इसी कारण आत्मा दु खी हो रहा है। जिस दिन आत्माका आनन्द जडसे निकल जायगा उस दिन मोक्ष होगा। यह वैशेषिक सिद्धातमे मोक्षका स्वरूप है। तो दु खी होनेकी अवस्थामे जीवको अपने आपका आत्मा भी प्यारा नहीं लगता। तो इससे सिद्ध है कि अत्यन्त प्रियबुद्धिका विषय है आत्मा, यह सही बात नही है।

वेदान्ती द्वारा कहे गए आत्माके अनन्यपरतयोपादीयमानत्व हेतुके निराकरणका वैशेषिकका प्रयास—आत्माको आनन्दस्वरूप सिद्ध करनेके लिये दूसरा जो हेतु दिया था कि आत्मा आनन्दस्वरूप है, क्योंकि अनन्य लीन होकर यह खुदको ही ग्रहण करता है। जब कभी घरमें, मित्रोमें, गोष्ठीमें झगडा हो जाय तो कैसा अकेला, एकातमे बैठकर अपने विकल्पोसे प्यार किया जाता है। सोचते जावो मनमे यो न करना यो न करना। कितना विकल्प करके अनन्य लीन होकर यह अनन्य लीन होकर यह सोचा करता है। इससे सिद्ध है कि आत्मा आनन्दस्वरूप है यह बात भी सही नही है। यह कहना कि आत्मा आत्माके लिए सब कुछ करता है। जैसे लोग कहते हैं ना कि सभी लोग अपने लिए करते हैं जो कुछ भी करते हैं। तो आत्मा भी अपने लिए अपना ग्रहण करता है ऐसा कहना ठीक नही है, आत्मा अन्यके लिए ग्रहण नही किया जाता यह बात अयुक्त है, क्योंकि सुखके लिए अपने आत्माका ग्रहण हुआ करता है तो दोनो हेतु असिद्ध हैं और सदोष हैं।

आत्माकी आनन्दमयता व अपने लिए अपने परिणमनका समर्थन—उक्त प्रकारसे वेदातियोके सुखस्वभाव आत्माकी सिद्धिमें दिए गए हेतुमे वैशेषिक द्वारा दोष देनेके बाद अब स्याद्वादी कहते हैं—दु खका जो अभाव है वह तुच्छाभावरूप नही है किंतु प्रतियोगीके सद्भावरूप है। जैसे जिस पुरुषको दु ख नही रहता वह यह महसूस नही करता कि मुझे दु ख नही है, किंतु वह तो सुख रूपसे अपने आपका अनुभव करता है, उसमे आह्लाद होता है। सुख आत्माका गुण है, स्वभाव है और उस गुणका वह अपनेमे परिणमन करता है। सुखके लिए अपने आपका ग्रहण करता

इसका अर्थ है अपने लिए अपना ग्रहण करना है, क्योंकि वह सुख आत्मासे भिन्न वस्तु नही है। तो कोई यह कहता है कि यह पुरुष तो अपने आपका साथी है। जो कुछ करता है वह अपने लिए करता है। तो एक भी पुरुष ऐसा बताओ कि जो कोई परके लिए भी कुछ करता हो। तो वस्तुका स्वरूप है कि जो कोई जो कुछ करता हैं सो अपने लिए करता है। बडे बडे उपकारी मनुष्य भी जो कुछ चेष्टा करते हैं परका उपकार करते हैं वे परके लिए नही करते स्वयमे जो क्रिया उत्पन्न हुई है शुभ कषाय कह लो, भला विकल्प कह लो उससे जो वेदना उत्पन्न हुई है उस वेदनाको शान्त करनेके लिए ही तो परोपकार किया। बन्त ही करुणावान पुरुष हो, जिसे दुनियामे अपना नाम फैलानेकी भी रच मनमे कल्पना नही है ऐसा सज्जन पुरुष बडी करुणासे जीवोकी सेवा करे, उपकार करे तो उस पुरुषने वस्तुत किया क्या ? अपने आपमे जो दयाका भाव बना हुआ था जिससे कि यह रह नही सकता था प्रवृत्ति किए बिना उस मद कषायमें उत्पन्न हुई प्रेरणाका उसने अपना इलाज किया है तो अपने लिए ही उसने सब कुछ किया।

करुणामूर्ति आचार्यदेवोकी वस्तुत. आत्मशान्त्यर्थ ग्रन्थरचनामे प्रवृत्ति

यदि कोई यह भी कहे कि इन आचार्यदेवोने जो ये बडे ग्रन्थ रचे हैं जिनसे हम आप सब जीवोका भला हो रहा है इन्होने बडा उपकार किया। कृतज्ञ पुरुषको ऐसा कहना ही चाहिये। कृतघ्न होनेपर तो वह धर्मका पात्र नही रह सकता, फिर भी वास्तविकतापर दृष्टि देकर तत्त्वनिर्णय करें तो वास्तविकता यह है कि इन आचार्य महाराजका ससारके अज्ञानी जीवोपर बहुत बडी करुणा उत्पन्न हुई और वह करुणा इस लिए उत्पन्न हुई कि उन्होंने देखा कि ये सभी लोग हैं तो सुखस्वरूप आनन्दस्वरूप, किसीको स्वभावसे कोई कष्ट नही है, सब प्रभु है। लेकिन इस अपने आपकी प्रभुताका परिचय न होनेसे ये दीन होकर ससारमे व्यर्थ ही जन्म मरण कर रहे हैं। भैया ! उस वक्त बडे घनिष्ठरूपसे करुणा उत्पन्न होती है कि साधन तो खुदके पास हैं और बेवकूफ बनकर उसका उपयोग न करे कोई। जैसे मान लो कोई मुसाफिर अपना बिस्तर लिए रेलमे चल रहा है। रेलमे डिब्बा पूरा खाली है, थोडेसे आदमी उस डिब्बेमे बैठे हैं। ठडके दिन भी हैं सारी रातका सफर है, अपने निर्दिष्ट स्थानपर सुबह दिनमे पहुँचना है, फिर भी यदि वह यह सोचकर कि सुबह फिर बिस्तर बाधना पडेगा, बिस्तर न खोले और रातभर जाडा सहता रहे, तो देखने वाले लोग उसे बेवकूफ कहेंगे और उसके ऊपर एक करुणाभरी दृष्टि करेंगे। अथवा यो समझो कि जैसे गरमीके तो दिन हैं और कोई प्यासा साधारण पुरुष प्रमादवश पडा रहे, प्यासके मारे उसका गला सूख रहा है, फिर भी पासमें रखे हुए घडेसे जल निकालकर पीनेमे प्रमाद करता है तो उसे कितना बेवकूफ कहा जायगा ? उसके ऊपर तो उसे देखने वाले लोगोका करुणा विशेष होगी। तो इन आचार्योंने जब यह देखा कि यह जीव स्वय ज्ञानानन्दमय है, प्रभु है, एक केवल दृष्टि देने भरकी बात है और दृष्टि भर देनेके लिए

कोई विशेष यत्न नही करना है। जैसे मान लो कोई पुरुष पश्चिमको मुख किए बैठा है और पूव दिशाकी ओर बैठे हुए किसी व्यक्तिको देखना है तो उसे जरासा मुख घुमाने भर की बात है कि वह पुरुष उसे दिख जायगा। तो इस प्रसङ्गमें तो मुखको कुछ घुमाना भी पड़ा, मगर अपने उस शुद्धस्वरूपकी ओर दृष्टि करनेमें इतना भी श्रम नही करना है। केवल अपने आपमे ही अपने उस स्वरूपको निरखने अनुभवनेका प्रयत्न करना है। पर इन ससारी जीवोंसे इतना भी नही किया जाता, ऐसा देखकर उन ऋषिजनोके करुणाबुद्धि उत्पन्न हुई और उस करुणाकी वेदना न सह सकनेसे उन्होने ये ग्रन्थ रचे, तो क्या किया उन्होंने ? केवल अपनी शान्तिके लिए अपने आपमें अपना काम किया।

आत्माकी आनन्दरूपताकी सिद्धिमे वेदान्तियों द्वारा कहे गये हेतुओका स्याद्वादसे समर्थन—देखो भैया ! अपने लिए ही तो सब काम किया जाता। फिर अपने आपमें तत्पर होकर अपने आपको ग्रहण करनेकी बात कौन सी अनुचित है। यह जीवोंका स्वरूप है। इसमे नयवादमे दृष्टि दें तो उनके हेतुमे दोष नहीं है। हाँ अगर एकान्तवादसे हठ करके कि आत्मा तो ऐसा सुखस्वभावी है कि उस सुखका कोई परिणमन नही, वर्तना नही, वह तो सुख स्वरूप है ऐसी एकान्तकी बात कहनेमें तो विरोध है, पर यह सही बात है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्द स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द, ये गुण बताए गए, इसका अर्थ यह नही है कि ज्ञान और आनन्द अलग सत् है और आत्मा अलग सत् है। दोनो स्वतन्त्र सत् हैं यह अर्थ नही है किन्तु एक सद्भूत अखण्ड आत्माको समझानेके लिए जो आत्माकी विशेषतायें आत्माके स्वरूपकी बातें बतायी जाती हैं उसका नाम गुण कहलाता है। कुछ गुण अलग रखे हों आत्मामें और उन गुणोंका फिर प्रतिपादन है ऐसी बात नही है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है जब ही यह आत्मा अपने इस स्वरूपपर दृष्टि देता है, अपने आपको पहचानता है तो इसका ज्ञान भी और आनन्द भी परिपूर्ण विकसित होता है।

'आनन्दम् ब्रह्मणो रूप' के कथनपर वैशेषिकोंका विरोध—अब वैशेषिक वेदान्तीके द्वारा दिए गए आगमके कथनका विरोध कर रहा है। उनका कहना था कि हमारे आगममे भी लिखा है आनन्दम् ब्रह्मणोरूप। ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है, उससे सिद्ध है कि ब्रह्म अथवा आत्मा सुखस्वभावी है। सदाकाल इसमें सुख विराजमान रहता है। अपरिणामी सुख। यह कहना अयुक्त है ऐसा वैशेषिक कह रहे हैं आत्माका प्रयोजन सुख ही हो यह बात सिद्ध नही होती। आत्माका प्रयोजन दुःख दूर करनेका भी है, दुःखका अभाव भी है। आत्मा आत्माके लिए ही उपादीयमान है यह बात सिद्ध नहीं होती है। आनन्दका कुछ अर्थ नही। दुःख सदाके लिए न रहे, बस यही है आनन्दका अर्थ। तो आत्यतिक दुःखके अभावके अर्थमे आनन्द शब्दका प्रयोग है इसलिए आनन्द शब्द गौण है, और देख लीजिए, यहाँ पर भी जब दुःख

नही रहता है तो लोग उसे सुख शब्दसे बोला करते हैं। जैसे किसीको १०४ डिग्री बुखार है और उतरकर अब १०२ डिग्री रह गया है तो वह कुछ होशमे आता है, कुछ थोडी सी उसे चैन मिलती है। यदि कोई उसके पास आकर पूछता है कि भाई अब तुम्हारी तबियत कैसी है ? तो वह कहता है कि अब तो अच्छी तबियत है। अरे कहा अच्छी तबियत है ? अभी तो ३-४ डिग्री बुखार चढा है, लेकिन बात वहाँ क्या हुई कि दो डिग्री बुखार कम हुआ, उसकी कमीमे वह सुख शब्दका प्रयोग करता है। अथवा कोई सिरपर लकडोका गट्ठा लादे जा रहा है, बडा वजनदार गट्ठा है। सिर दुखने लगा तो वह उस गट्ठेको एक पेडसे टिकाकर नीचे उतारकर रख देता है और उस बोझके उतर जानेपर सुखका अनुभव करता है। अरे उसे किस बातका सुख मिला ? किसीने उसे कुछ फल खिला दिए क्या या किसीने उसके लिए सुख साधन जुटा दिए क्या ? अरे बात वहाँ यह है कि उसके सिरमे जो बोझ लदा था, जिसमे उसको बडा दु ख प्रतीत हो रहा था वह दुःख कुछ कम हो गया। उसमे वह सुख शब्दका प्रयोग करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि दु खके अभावको लोग आनन्द कहा करते हैं। आनन्द कोई चीज हो, आत्माका स्वरूप हो सो बात नहीं है दु खके अभावका नाम आनन्द है।

आत्माके सद्भावात्मक आनन्दरूपका स्याद्वाद द्वारा समर्थन—उक्त प्रकार वैशेषिक द्वारा उत्तर होनेपर स्याद्वादवादी लोग कहते हैं कि दु खके अभावमे सुख शब्दका प्रयोग करना और उसे गौण मानना यह बात युक्त नही है। जितने अशमे दु खका अभाव है उसके अनुकूल उसने सुखका भी अनुभव किया। दु ख नही है, सो वहाँ आनन्दका क्या अनुभव ? अनुभव होता है किसी विधिका। दु ख न रहा, यह अनुभव किया जा रहा है, इसका अर्थ है कि सुखका अनुभव किया जा रहा है। जैसे किसी पुरुषने कहा कि आज अजैनोको खूब भोजन कराओ अब यहा कोई अजैन का यह अर्थ माने कि जैनका अभाव तो जैनके अभावको भोजन क्या कराया जायगा। वहा तो कुछ भी खर्च नही होनेका। ऐसा तुच्छाभाव मान लिया तब तो सारा पैसा बच गया। जैनका तुच्छ अभाव सर्वत्र है, ले अभाव ! तू खा ले तो वह कैसे खा ले ? खानेकी चीजें तो ज्योकी त्यो धरी रहेंगी। अरे अभावके कहाँ पेट है ? कहाँ मुख है, वह कहाँसे खा लेगा ? तो इसी प्रकार कहा कि दु खके अभावका अनुभव करता है तो दु खका अभाव, दु ख नही, ऐसा 'न' ऐसा असद्भाव, उसका अनुभव क्या कर लिया जायगा? अजैनका अर्थ है जो जैन नही हैं अन्य हैं ऐसे पुरुषोको खिलावो तो उसमे खिलानेकी भी बात आ गई, खर्च भी हो गया, बात भी चल गई क्रिया भी हो गई। अगर किसी अभावका अर्थ केवल 'न' लिया जाय, मात्र अभाव, तो उसमे अर्थक्रिया क्या, परिणमन क्या ? बात ही कुछ नही निभ सकती है। तो आत्माका अभावमात्र अभाव नही, वह सुखके सद्भावरूप है। जितने भी अभाव होते है वे प्रतियोगीके सद्भावरूप हुआ करते हैं। नित्य नही, इसका अर्थ क्या ? अनित्य।

अनित्य नही इसका अर्थ क्या ? सदा रहने वाला। जितने भी अभाव हैं उनका अर्थ उनके प्रतियोगियोंके सद्भावरूप हुआ करता है। अभाव तुच्छाभाव नही।

आनन्दस्वरूपकी उपयोगिताका प्रतिपादन—आत्माका स्वरूप आनन्द है और आनन्दका परम विकासका नाम मोक्ष है। इसमें कोई गल्ती नही लेकिन एक मात्र आनन्द ही है आत्मामें। और वह अपरिणामी है, उसका न ज्ञान है, न अनुभव है, न प्रवर्तन है, उस आनन्दका कुछ उपयोग नही है और है आनन्दस्वरूप, तो वह आनन्दस्वरूप और क्या है ? सो बताओ ! यह कथनमात्र है। कोई आदमी प्रसन्न हो कर यह कहे कि साहब, आप जीमिये ! यह थालीभर भोजन रखा है पर इसमें हाथ मुख आदि कुछ न लगावो ! अच्छा आपको जिमाया। यदि वह हाथ लगानेकी ही सिर्फ मनाही करता तब तो पशुवोकी भाति बिना हाथ लगाये सिर्फ मुखसे ही खाया जा सकता था, पर मुख भी लगानेके लिए मनाही है, तब फिर आप उस भोजनको कैसे खा सकेंगे ? वह भोजन तो जैसाका तैसा ही रखा रहेगा ! तो ऐसे ही आप समझिये कि जहाँ आनन्दका कुछ भी अनुभव नही हो सकता, कुछ उपयोग नही हो सकता और है वह आनन्द, तो वह आनन्द क्या है ? तो ऐसा अपरिणामी कूटस्थ आनन्दका स्वभाव नही है, पर हाँ आत्मा आनन्दस्वरूप है और चूकि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है तो आत्मा भी अगले क्षणमे नवीन पर्यायरूपसे उत्पन्न होता है और पूर्वपर्यायरूपका विलय करता है तो ऐसा होनेपर सभी गुणोंकी बात आगयी। सभी विशेषताओकी भी यही बात है आनन्द भी अब नवीन क्षणमे नवीन अनुभूत हो रहा है, पुराना आनन्द अब विलीनरूप हो गया है। तो इस अनुभव और परिणमन की दृष्टिसे आनन्दका उपयोग चलता रहता है।

आत्मामे आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्तिका कारण—आनन्दस्वरूप प्रत्येक आत्मामें है, किन्तु ससारावस्थामें आवरणोंके कारण इस आनन्दस्वरूपका घात होगया हैं। अविकाररूपसे प्रकट नही हो पा रहा है, बस यही तो ससार है, यही सङ्कट है, और जब उन आवरणोका अभाव हो जाता है और यह स्वरूप व्यक्त हो जाता है तो बस इसीका नाम मोक्ष है। उस आनन्दके आवरण करने वाली अनेक बातें हैं। जैसे विषयोंका व्यासङ्ग होना, विषयोमें लग जाना, कषायोंमें उपयोगी होना, शरीरका बन्धन रहना इन्द्रियसे ज्ञान करना, कर्मका उदय होना ये सभी कोई किसी दृष्टिसे कारण है कोई किसी दृष्टिसे। जब इस कारणभूत उपाधिका अभाव होता उस समय यह आनन्दस्वभाव विशुद्ध रूपमे प्रकट होता है उस समय आनन्द ही क्या। वहाँ अनन्त ज्ञान भी प्रकट होता है अनन्त दर्शन और अनन्त शक्ति भी प्रकट होती है। यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्द इस चतुष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है, ऐसा कोई मोक्षका स्वरूप समझले तो उसकी प्रतीक्षा की जा सकती है और उस स्व भावकी उपासनामे यहाँ भी आनन्द पाया जा सकता है। इस आनन्द संवेदनके प्रतापसे

कर्मोंका क्षय करके शीघ्र ही ऐसे अनन्त चतुष्टयस्वरूप हो सकेंगे।

अपनी ही प्रासंगिक चर्चा - इस प्रसंगमे अपने आपकी ही बात कही जा रही है यह आत्मा क्या है ? यह स्वरूप किस रूप है इसमें क्या प्रभाव है और उसके बारे में बडे-बडे दार्शनिक लोग क्या क्या मतव्य रख रहे हैं, यह बात तो एक बहुत पसद की होना चाहिये। इसका वर्णन चर्चण एक बहुत हर्षोत्पादनकी बात होना चाहिये तो अपनी बात जिसपर कि हमारा सब कुछ भवितव्य निर्भर है उसकी बात सुननेमे रुचि न लो और ये फाल्तू बाहरी बाते धन वैभव नाते रिश्ते कुटुम्ब परिजन आदि इनके सुननेमे बहुत रुचि लगे, ये बातें बहुत पसद आयें तो आखिर बतलावो कि यह किस गतिकी निशानी है ? कुछ विशेष उम्र गुजर जानेके बाद मनुष्य भवके ये सब अनुभव कर चुकनेके बाद भी अब भी चित्तको इस प्रकार न बनाया जाय कि आत्माकी बात सुननेमे रुचि हो धमके धारणमे रुचि हो, बाह्य पदार्थोंकी उपेक्षा हो तो अपने आप बतलावो कि इसी रफ्तारमे करूँगा करूँगा करूँगा, होगा क्या ? क्या यह बात भूल गए कि मरूँगा, मरूँगा, मरूँगा ? तो इस ओर दृष्टिपात करनेके दिन हैं अब। वैसे तो मनुष्यभवमें बाल्यावस्थासे ही कल्याणकी साधना करे तो वह विशेष सौभाग्यवान है लेकिन सब खेल देखनेके बाद भी, सबसे धोखा खानेके बाद भी फिर उसी तृष्णामें चित्त जाय और अपनी बातकी रुचि न जगे तो यह योग्य बात नहीं है। यह मोक्षके स्वरूपकी चर्चा चल रही है। मोक्षके मायने क्या कि बाहरी चीजें छूट जायें और खालिस यह रहे जैसा है। तो खालिस रहता है तो यह क्या रहता है ? इसका कैवल्य स्वरूप क्या है ? उसके सम्बन्धमें यहाँ दार्शनिक लोग अपनी बात रख रहे हैं।

आत्माके नित्यसुखके सम्बन्धमे वैशेषिक द्वारा किये गये दो विकल्प– भास्करीय वेदान्तियोंने मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें तो यह बात रखी कि आत्माका गुण आनन्द है और उस आनन्दगुणकी परम अभिव्यक्तिका नाम है मोक्ष। और, वैशेषिको ने यह बात रखी कि आत्मामे जो ज्ञानादिक गुण बसे हुए हैं इन गुणोंका सर्वथा विनाश हो जाय, अलग हो जाय, यह आत्मा गुण रहित हो जाय इसका नाम मोक्ष है। यहाँ वैशेषिक वेदान्तियोसे पूछ रहे हैं कि यदि सुख आत्माका स्वरूप है तो वह नित्यसुख आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है ? अर्थात् आत्माका स्वरूप जो सुख माना जा रहा है वह सुख आत्मासे अभिन्न है अर्थात् सुखमय ही आत्मा है या आत्मा और सुख ये दो भिन्न भिन्न चीजें हैं। फिर यह सुख आत्मामे आ गया। ये दो विकल्प किए।

नित्यसुखको आत्मासे अभिन्न माननेपर वैशेषिको द्वारा आपत्तिदर्शन – यदि कहो कि आत्माका सुख आत्मासे अभिन्न है, अलग कहाँ है, तन्मय ही आत्मा है तो वैशेषिक यह आपत्ति दे रहे हैं कि यदि आत्माका स्वरूप सुख है और वह सुख

आत्मासे अभिन्न है तो जैसे आत्माका नित्यस्वरूप चैतन्य वह आत्मामें सदा रहता है इसी प्रकार आत्मामे सदा ही सुखका सम्वेदन होना चाहिए। यदि सुख आत्मासे अभिन्न गुण है, अभिन्न स्वरूप है तो जैसे आत्मा चैतन्यका निरन्तर अनुभव करता है इसी प्रकार इस नित्यसुखका, इस महासुखका भी सदा अनुभव करता रहे आत्मा। और यदि ऐसा मान लिया जायगा तो फिर मुक्तजीवोंमें और जीवोंमें कुछ भी फर्क न रहेगा। जीव तो सब एकसे हैं, मुक्त जीव हो या ससारी। और मान लिया आत्माका स्वरूप सुख और उसे भी माना अभिन्न तो मुक्त भी उस सुखको भोग रहे और ससारी भी उस सुखको भोगें, फिर ससारी जीवोमे और मुक्त जीवोंमें अन्तर क्या रहेगा?

स्वप्रकाशानन्दसंवेदनका अविद्या द्वारा आच्छादनका वेदान्तियोंका कथन—वैशेषिक द्वारा उक्त आपत्तिके देनेपर वेदान्ती कह रहे हैं कि भाई अनादि कालीन अविद्यासे ये ससारी जीव आच्छादित हैं इस कारणसे स्वप्रकाशरूप भी आनन्दका सम्वेदन नहीं हो रहा है। स्वरूप तो सुखका है प्रत्येक आत्माका। ससार अवस्थामें रहने वाले आत्माका सुख स्वरूप है किन्तु उस सुखपर अविद्याका आवरण छाया है। तो जिस चीजपर आवरण छाया हुआ होता है वह चीज प्रकट तो नहीं हो पाती है। जैसे सूर्यपर मेघोका आवरण जब पड जाता है तो सूर्यका प्रकाश प्रकट नहीं हो पाता है इसी प्रकार किसी भी वस्तुपर जब कोई आवरण पडा हुआ होता है तो वह चीज प्रकट नहीं हो पाती है। जैसे किसी घरमें किसी त्यागीका आहार होना है, कमरा बहुत ही छोटा है, उसी कमरेके अन्दर सारा सामान रखा है और चौका भी लगाया गया है तो श्रावक लोग उस त्यागीके आते समय उन सारी सामग्रियोंको किसी कपडेसे ढक दिया करते हैं। तो जब तक वह कपडा हटाया नहीं जाता तब तक वे चीजें प्रकट नहीं हो पाती हैं। कपडेको जरासा उघाड दिया गया अर्थात् उन वस्तुवोपर पडे हुए आवरणको दूर कर दिया गया तो वे सारी वस्तुएँ जो कि उस आवरणसे ढकी हुई थीं वे प्रकट हो जाती हैं। इसी तरह आत्मामे वह सुख सदा रहता है लेकिन उसपर अविद्याका आवरण छाया है तो सुख स्वभाव होनेपर भी आत्माका सुख प्रकट नहीं हो पा रहा है।

स्वप्रकाशानन्दसवेदनके अविद्या द्वारा आच्छादनकी अशक्यताका वैशेषिकों द्वारा कथन—अविद्या द्वारा नित्य सुख सवेदनके आच्छादनके कथनपर वैशेषिक जवाब देते हैं कि उस स्वप्रकाशात्मक आनन्दसम्वेदनपर अनादि अविद्याका आच्छादन नही बन सकता क्योकि आवरण उस वस्तुपर हुआ करता है जो अप्रकाश रूप हो। प्रकाशरूप आनन्दको कौन ढाँक सकेगा? यदि यह कहो कि सूर्य तो प्रकाश रूप है, उसे तो मेघोंने ढक दिया, तो भाई सूर्य और मेघका दृष्टान्त तो इससे बिल्कुल भिन्न है, सूर्य भी मूर्तिक है और मेघ भी मूर्तिक है तो अकशमय होनेपर आखिर सूर्य

पिण्ड ही तो है उसका आच्छादन मेघोसे बन सकता है मगर यह सम्वेदन सुख दुःख का ज्ञान जो कि स्वय अमूर्त प्रकाशमय है उसके कहाँ आवरण होता ? जब कभी आप अपना ज्ञान घरमें कई कोठरियोके भीतर रखी हुई चीजका ध्यान करते होगे कि अमुक गहना, तो आपके ज्ञानपर इतने तो आवरण पड गए घरके किवाड बन्द हैं, भीतरकी कोठरीके किवाड़ बन्द हैं, तिजोरीमे भी ताला लगा है। उसके भीतर रखे हुए बक्समें भी ताला लगा है, पर उन सबको पार करके आपका ज्ञान झट वहा पहुँच जाता है जहाँ आपका वह गहना रखा है, साफ दिखता है। किसीसे भी तो वह ज्ञान नहीं रुका। तो जो प्रकाशमय है, ज्ञानरूप है, अमूर्त है उसे कौन रोक सकता है ? तो आनन्द सम्वेदन है, ज्ञान है, आनन्दको रोक सकने वाली अविद्या भी नही हो सकती, और फिर अविद्या चीज क्या है। अविद्याकी सत्ता कैसी है न तो इसे कोई बता सकता और न कोई यह बता सकता कि अविद्या अभी तो पडी थी और अब मिट गई। कोई चीज हो तब ना। अविद्या तो तुच्छस्वभावरूप है। जहाँ 'अ' लग गया अर्थात् न' लग गया वह तुच्छ स्वभाव है। विद्याका न होना इसका नाम अविद्या है। विद्या कुछ चीज नही है, कोई परिणमने वाली चीज नही है अविद्या। किन्तु विद्याके अभावका नाम अविद्या है। अब तुम कहो कि विद्याका आवरण विद्याके अभावने कर रखा तो इसका कुछ अर्थ भी लगता है क्या ? तो अविद्या तो तुच्छ स्वभावरूप है, वह आत्माके प्रकाशमय आनन्दका आवरण करने वाला नही हो सकता। तब आनन्द सम्वेदनका आत्माके स्वरूपका, आत्माके ज्ञानका सुखका कोई आवरण कर सकने वाला न हो सका और सुखको माना तुमने आत्मासे अभिन्न। तो जैसे मुक्त जीवोको सुखका सम्वेदन होता है इसी प्रकार ससारी जीवोको भी सुखका सम्वेदन होना चाहिए। इस कारण यह पक्ष तो तुम्हारा न बन सका कि आत्माका सुख आत्मासे अभिन्न है।

सुखको आत्मासे भिन्न माननेपर आपत्ति—अभी वैशेषिक ही वेदान्तियो के प्रति कहे जा रहे हैं कि सुखको आत्माका स्वभाव माननेपर यह बतावो कि वह सुख आत्मासे अभिन्न है भिन्न ? अभिन्न माननेकी बात तो बनी नही। यदि कहो कि आत्माका सुख आत्मासे भिन्न है तो भला यह नित्य सुख आत्मासे जुदा है, ऐसा किसीने प्रत्यक्षसे देखा क्या ? अथवा अनुमान आदिक किसी प्रमाणसे सिद्ध हो सकता है क्या ? नित्य सुख तो अलग पडा हुआ है, वह अपनी सत्ता जुदी रख रहा है और आत्मा अलग पड़ा है वह अपनी सत्ता जुदी रख रहा है फिर आत्माका नित्य सुख क्या ? क्या यह चौकी खभाकी है ? अरे खभा खंभा है, चौकी चौकी है। फिर चौकी को खभाकी कैसे कहते ? हाँ मोही पुरुष जरूर कहते हैं कि खभा हमारा है, चौकी हमारी है। अरे तुम भी एक पदार्थ हो और खंभा चौकी आदिक भी एक पदार्थ हैं। फिर कोई पदार्थ किसी दूसरेका कैसे बन सकता है ?

ममकारकी भूल ये मोही जीव इस धन वैभवको अपना मानते हैं, पर यह इनकी बडी भूल है। यह तो अपने पाये हुए ज्ञानका दुरुपयोग किया जा रहा है। समस्त पदार्थ स्वय सत्तावान हैं। पर पदार्थोंमे यह मेरा है इस प्रकारकी जो अपनायत की जाती है यह तो अपने ज्ञानका दुरुपयोग है। जो दिखने वाले, ये ज्ञानरहित पदार्थ हैं ये सब जैसे न्यारे न्यारे पडे हुए हैं, ये कुछ भी मेरा तेरा नही कर पाते इसी तरह मेरा तेरा इस आत्माको भी न करना चाहिए, किन्तु जैसे ये सद्भूत पुद्गल इसी तरह सद्भूत यह आत्मा है, तो ज्ञान पाया है तो उस ज्ञानसे पदार्थोंका सही स्वरूप जानना और यथार्थ जानकर अपना हित कर लेना बस यही कर्तव्य है, और जितना जल्दी बने सो करलो। जैसे यहा लूटमार चल रही हो और किसीको कोई चीज हाथ लगते देखे तो उस चीजको लेनेके लिए लोग कितनी जल्दी करते हैं इस चीजको झट ले लो, इस चीजको झट ले लो, यों उतावल मचाते हैं। इसी तरह लूटमारका सचार है जन्म मरण सयोग वियोग आदिकके लूटमार चल रहे हैं। इस लूटमारके बीचमे यदि आपको ऐसे विशिष्ट ज्ञान वाला मनुष्य भव मिला है तो इसका उपयोग झट करलो। इसकी उतावल करना चाहिये। यदि यहाँ प्रमाद रखा तो इस लूटमार में यह मनुष्य भव भी लुट जायगा, हाथ कुछ न रहेगा।

दार्शनिकोंके तत्त्वनिर्णयप्रयासकी प्रशस्यता - आत्माका किसमे हित है? क्या धर्म है और किस प्रकार है? उसके सम्बन्धमे जो अनेक दार्शनिकोंने अनेक प्रकारकी धारणायें की हैं कुछ तो उनकी बुद्धिकी प्रशसा करनी चाहिए। उन्होंने दिमाग लगाकर बडी ईमानदारीसे ही कुछ निरखना चाहा, यह बात और है कि वे समझमे कितना बढ सके, नही बढ सके, मगर सभी दार्शनिकोंकी प्रशसा की जानी चाहिए। उन सबने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार ईमानदारी रखकर आनन्द, मोक्ष निराकुलता अथवा शान्ति चाहा। इन सब बातोंका ध्यान रखकर उन्होंने खोज की है और वस्तुके स्वरूपको जानना चाहा है पर कोई सफल हुए या नही। यह बात एक निर्णय की है। जैसे विशेषिकोंने यह माना कि सारे गुण निकल जायें तो आत्माका मोक्ष होता है। तो मोटी दृष्टिसे यह तो समझमें आ रहा है ना, कि हममें यह ज्ञान लगा हुआ है इससे सारे दुःख हो रहे हैं। इन खभा चौकी आदिमें ज्ञान नही है तो इनको कोई दुःख नही होता है। तो उन्होंने निष्कर्ष यह निकाला कि जब आत्मा ज्ञानरहित हो जायगा तो फिर इसे दुःख कैसे होगा? भले ही यह न पहिचाना कि ज्ञानका स्वरूपमात्र जानन है, जहा विकल्प ही नही उठते। जिन विकल्पोंसे अशान्ति पायी जा रही है और जिन विकल्पोंरूप ही ज्ञानका स्वरूप मानकर उस ज्ञानको दूर करके मोक्षका स्वरूप बनाया जा रहा है वह ज्ञानका स्वरूप नही है। ज्ञानका स्वरूप प्रतिभासमात्र है। उसको हटानेकी जरूरत न थी। वेदान्ती जनोंने आत्माका आनन्द स्वरूप माना है। कोई बिगाडकी बात तो नही है। यह ज्ञानानन्दरूप है ही और जो आनन्दस्वरूप है जो भी स्वरूप होना है वह वस्तुमें सदा रहता है। तो इस आनन्द

स्वरूपको नित्य मानना इसमें भी कोई बिगाड नही है, पर ऐसा नित्य मान लेना, ऐसी उनकी भक्ति बढा लेना कि उसे अपरिणामी नित्य मान लिया जाय बस यहां गाडी रुक जाती है। परिणामी नित्य माननेपर तो सर्वसङ्गत है। यहां वैशेषिकोने आत्मसुखके बारेमे नित्य अनित्यका विकल्प रखकर निराकरण किया है कि आत्मा का स्वरूप सुख नही है और इस कारण परम आनन्दकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है नही, किन्तु आत्माके सुखदुखज्ञानादिक समस्त गुणोके उच्छेद होनेका नाम मोक्ष है।

मोक्षके आनन्दरूपताकी उपादेयता—यहां तक वेदात और विशेषवाद इन दोनोके परस्पर प्रश्नोत्तर होते रहे अब इन दोनो मतव्योके बीच हम यथार्थतापर कैसे पहुचे और इन दोनोसे सम्बन्धित हम क्या स्वरूप मानें इस विषयमें कुछ कहा जा रहा है। मोक्षके स्वरूपमे ये मुख्य दो विवाद उठे हैं—एकका कथन है कि मोक्ष आनन्दस्वरूप है, और एक कहना है कि आत्माका मोक्ष गुणरहितपना है। सभी गुण अलग हट जायें उसका नाम मोक्ष है। इन दोनोके बीच कुछ भी विचार, करनेपर थोडा भी विचार करने वाला व्यक्ति इस बातको पसन्द करेगा कि मोक्ष आनन्दस्वरूप है और यहां सीधी सी बात है कि यदि आनन्द ही नही है तो ऐसे मोक्षके लिए यत्न ही कौन करेगा ? तो मोक्षकी आनन्दरूपता तो अभीष्ट है, सही बात है, मगर आनन्दरूपता अपरिणामी नित्य है, उसमे कुछ परिणमन नही होता, बस यह बात प्रतिषेधके योग्य है।

चैतन्यस्वरूप और आनन्दस्वरूपकी नित्यानित्यात्मकता—यहा नित्यवादी प्रश्न कर रहा है कि जैसे आत्माका चैतन्यस्वरूप नित्य है ना, तो इसीप्रकार आनन्दस्वरूपका भी एकात नित्य मानलो तो क्या आपत्ति है ? स्याद्वादी उत्तर देता है कि कौन कहता है कि आत्माकी चिद्रूपता भी एकांत नित्य है ? जैसे आनदरूपता एकात नित्य नही, इसी प्रकार चैतन्यस्वरूपता भी एकान्त नित्य नही इसी प्रकार जितनी भी वस्तुए हैं, जितनी भी वस्तुयें हैं, जितने भी वस्तुवोके स्वभाव हैं वे सब परिणामी नित्य हुआ करते हैं। उत्पन्न हो होकर भी नित्य हैं, परिणमन करते हैं। और, इसको थोडे शब्दोंमे समझना है तो एक सूत्रसे समझ सकते हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें कहा है—तद्भावाव्ययनित्य। इसमे ३ शब्द हैं—तत्, भाव और अव्यय। भावका अर्थ है होना, तत् मायने उसका। उसके होते रहनेका नाश न हो सके उसका नाम मोक्ष है, अर्थात् पदार्थ सदा होता रहे, परिणमता रहे, नई-नई अवस्थायें पाता रहे, उन अवस्थाओके पाते रहनेका विनाश न हो इसका नाम नित्य है। नित्यका यह अर्थ नहीं कि अपरिणामी है, है सो है, उसमे कुछ वर्तना नही, कुछ परिणमन नही। तो क्या सिद्ध हुआ कि आत्मामें नित्यस्वरूप है और उसकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है, पर वह आनन्दस्वरूप नित्यानित्यात्मक है।

आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्तिका कारण—यहां शङ्काकार पूछता है कि

यदि आनन्दस्वरूप अनित्य है तो आनन्दरूपताका परिज्ञान होनेका सम्वेदन होनेका, अनुभव होनेका कारण बतलावो कि उसकी अभिव्यक्ति, उसका सम्वेदन किस कारण से उत्पन्न होता है ? क्योंकि जो भी चीज अनित्य होती है उसकी उत्पत्तिका कोई कारण है। अब आपने मान लिया आत्माका सुख नित्य है तो उस सुखका जो अनुभव होता है उसकी उत्पत्तिका क्या कारण है ? समाधानमें कहते हैं कि उस सुखका प्रतिबन्धक जो आवरण है, धर्म है, अथवा बाह्य समर्ग है, उस सबका विनाश हो जाना सुखकी अभिव्यक्तिका कारण है, सुखके सम्वेदनका कारण है। संसार अवस्थामें यह ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा प्रतिबन्धसे सहित है, इसपर आवरण आये हैं, ज्ञानावरण आदिक अष्ट कर्मोंका आवरण है, और अन्त: आवरण विषय कषायोंके परिणामका है। मोक्ष अवस्थामें प्रतिबन्धक नहीं रहता, समस्त प्रतिबन्धक कर्मोंका क्षय हो जाता है तब वहाँ अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है तो अतीन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय सुखके उत्पन्न होनेका कारण है आवरणका विनाश।

चिदानन्दस्वरूपकी विशुद्ध व्यञ्जनाका विवरण—जैसे घरमें दीपक जल रहा है और उसपर कोई घट आदिकका आवरण कर दिया जाय अथवा जैसे लालटेन जल रही है और उसपर एक खुला कनस्तर औंधा रख दिया जाय तो उस लालटेनका प्रकाश होने लगा और अब एक बार आवरण हटनेके बाद अब प्रकाश ही प्रकाश लगातार चल रहे हैं। अब वहां कोई आवरण हटानेकी जरूरत नहीं है। आवरण रहा ही नहीं है, उन प्रकाशोंमें उत्तर प्रकाश उत्पन्न करनेका स्वभाव पड़ा है। यहाँ यह स्थूलरूपसे बात कही जा रही है कि जैसे मानो लालटेनके ऊपर खुला हुआ औंधा कनस्तर रख देनेसे कनस्तरका आवरण होनेसे प्रकाश बिल्कुल बन्द है और आवरण हटा दिया, कनस्तर दूर कर दिया तो अब प्रकाश ही प्रकाश हो गया ना कमरेमे ? हो गया। अब इसके बाद जो कमरेमें लगातार प्रकाश ही प्रकाश जल रहा है तो इस सारे प्रकाशके चलनेके के लिए अब आवरण हटानेकी जरूरत नहीं है। यह तो नहीं है कि प्रति सेकेण्ड कनस्तर हटाया जाय तब प्रकाश होगा ? पहिला जो प्रकाश है वह आवरणके दूर होनेपर हुआ है, अब तो उस प्रकाशमें स्वभाव ही ऐसा पड़ा है कि वह अपनेमे उत्तरोत्तर प्रकाशको उत्पन्न करता रहे। इसी तरह केवल ज्ञानके उत्पन्न होनेमें प्रथम आवरण केहटाने की आवश्यकता है जिसे कहते हैं क्षायिक भाव। कर्मोंके क्षयसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है तो केवलज्ञान क्षायिक है। तो क्षायक तो है मगर पहिले समयमें जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह है क्षायिक। वह कर्मोंके क्षयसे दूर होता है। अब इसकी जरूरत नहीं है कि प्रतिसमय कर्मोंका क्षय हो तो केवलज्ञान बने। फिर तो केवलज्ञानमें स्वभाव ही ऐसा पड़ा है कि वह ज्ञान पूर्वज्ञान उपादान बनकर उत्तर वैसे ही ज्ञानको उत्पन्न करता रहे। जब कुछ आवरण लगा नहीं तो आवरण हटानेकी जरूरत क्या है ? जो जिसको उत्पन्न करनेका स्वभाव रखता है वह उसको उत्पन्न करनेमे अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता। जैसे एक बीजसे

अंकुर उत्पन्न होता है। कब ? सारे कारण कूट मिल चुकनेपर। खाद पड़ी, खेत जोता, समयपर बीज डाल दिया, और कुछ सर्दी गर्मी लगनेपर उस बीजमें कुछ अन्य ही विशेषता आयी, समझ लीजिये कि अन्तिम कारण सामग्री सब कारण पूर्ण जुड़नेपर जो अन्तिम स्थिति है वह अंकुरको उत्पन्न करनेमें समर्थ है अब उसे कौन रोकेगा ? इसी प्रकार जो भी पदार्थ जिस स्थितिमे पूर्ण समर्थ है, उत्पन्न करनेमे वह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता। आवरणके क्षय होनेपर उत्पन्न हुए केवलज्ञानमे अब उत्तरोत्तर उन ज्ञान ध्यानोको उत्पन्न करनेका स्वभाव है अब इस आवरणरहित आत्मामे, स्व कारणसे निरन्तर अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय सुखका अनुभवन चल रहा है।

सहजानन्दानुभवकी सेन्द्रियशरीर व्यापारजन्यताकी सभावनापर प्रकाश —भैया ! यहाँ संसार अवस्थामें भी देखो ऐसे साधुपुरुष जिनको बसूला और चन्दन दोनोमें समभाव है। कोई हथियारसे उनके शरीरका अङ्ग छील रहा हो या कोई दूसरा उनके ही शरीरपर चन्दनका लेप कर रहा हो अर्थात् एक व्यक्ति तो दुःखका साधन कर रहा है और एक व्यक्ति आरामका साधन कर रहा है लेकिन वे साधु पुरुष उन दोनों ही प्रकारके पुरुषोके प्रति समताका व्यवहार करते हैं। ऐसे सर्व पदार्थोंमें समान वृत्ति रखने वाले साधुवोंको जब वे विशिष्ट ध्यानमें आते हैं उस समय उनको परम आह्लाद का अनुभव होता है उत्कृष्ट आनन्दका अनुभव होता है। वह अनुभव न इन्द्रियजन्य है, न शरीरकी चेष्टासे उत्पन्न होता है। इन्द्रिय और शरीर दोनोकी चेष्टासे न होकर आत्मासे जब अन्य विशिष्ट आनन्द होता है उससे जब उनकी भावना अधिकाधिक बढ जाती है तो उत्तरोत्तर अवस्था, उत्कृष्टतासे वह ज्ञान और आनन्द प्राप्त होता जाता है और इस ही भावनाके अभ्यासके बलसे उस ज्ञान और आनन्दकी अन्तिम काष्ठा प्राप्त हो जाती है अर्थात् ये साधुजन आत्माका ध्यान करके जिस विशुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दका अनुभव किया करते हैं उस हीका अनुभव, उस हीका अभ्यास, उस हीकी भावना जब बहुत बहुत बढ जाती है तो अन्त में उस ज्ञान और आनन्दकी हद भी पूर्ण प्राप्त हो जाती है। बस उस अनन्तज्ञान, उस अनन्त आनन्दका जहा विकास है उस हीका नाम मोक्ष है। अत यह बात युक्त है कि मोक्ष आनन्द स्वरूप है और अतीन्द्रिय आनन्दके अनुभवन रूप है।

अविद्या और उसके निमित्तसे ज्ञानानन्दस्वरूपका आच्छादन वेदान्त सिद्धान्तने यह कहा था कि आत्माका स्वरूप आनन्द है प्रत्येक आत्मामें आनन्दस्वरूप निरन्तर नित्य रहता है पर उसकी अभिव्यक्ति मोक्षमे होती है। ससारकी अवस्थामे नहीं होती है। इसका कारण यह है कि ससारी जीवोपर अनादि अनन्त अविद्या छायी होती है। जब इस अविद्या का विलय होता है तो अविद्या नष्ट होनेपर फिर ब्रह्मके आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्ति होती है उस पर वैशेषिकोने यह एतराज किया था कि ब्रह्म

स्वरूप तो प्रकाशमय है स्वप्रकाशमय आनन्द सम्वेदनका तिरोभाव, अनादि अविद्याके द्वारा नहीं हो सकता और फिर अविद्याका कुछ वास्तविक स्वरूप ही नहीं है। वह तो अभाव ही है। विद्या न हो सो अविद्या इसपर स्याद्वादी कहता है कि यह बात युक्त है कि अनादि कालसे अविद्या लगी चली आ रही है उस अविद्या उपाधिके कारण ब्रह्म स्वरूपके आनन्द तत्त्वकी अभिव्यक्ति नहीं होती है, लेकिन वह अविद्या क्या है इसका सही निर्णय रखना चाहिये। अविद्या नाम है अज्ञानका। जहाँ ज्ञान न पाया जाय उसे अविद्या कहते हैं। तो ऐसा कौन सा अज्ञान जीवोंके ज्ञानानन्दस्वरूपको रोकनेमें निमित्त होता है? वह अज्ञान है ८ प्रकारका कर्म प्रवाह जो पौद्गलिक कार्माणवर्गणाओंका कर्मस्वरूप परिणमन हुआ है ऐसा ८ प्रकारका कर्म प्रवाह जो है उसे अनादि अविद्या कहते हैं। जिसके उदयके निमित्तसे जीवके ज्ञानानन्दस्वरूपकी अभिव्यक्ति नहीं होती। यद्यपि अन्तरङ्ग दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता कि विषय कषायके विकल्प अविद्या हैं और यह अविद्या ब्रह्मके आनन्दरूपको ज्ञानरूपको प्रकट नहीं होने देती, लेकिन वह अविद्या निमित्तरूप नहीं है, वह तो विरोधी परिणमन है अर्थात् ज्ञानानन्दके प्रकाशमें और विषय कषायोंके विकल्पमें परस्पर विरोधरूप नाता है, निमित्तरूप नहीं है निमित्त दृष्टिसे तो ८ प्रकारका पारमार्थिक कर्मोंका जो प्रवाहरूप है वही अनादि अविद्या है। जब उसका विलय होता है तो अनन्त सुख, अनन्तज्ञान आदिककी प्राप्ति होती है। यों अनन्त चतुष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है, यह बात युक्त होती है। मोक्ष स्वरूपके सम्बन्धमें अब तक मुख्यतया गुणोच्छेद रूप मोक्ष और आनन्दाभिव्यक्तिरूप मोक्षके सम्बन्धमें मीमांसा की गई है।

卐

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[चतुर्दश भाग]

प्रवक्ता —

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

विशुद्ध ज्ञानोत्पत्तिरूप मोक्षका प्रसङ्ग — अब इस प्रसङ्गमे ज्ञानाद्वैतवादी जो क्षणिक सिद्धान्तका मानते हैं, बौद्धोका एक भेद है ऐसे ज्ञानाद्वैतवादी यहा अपना मतव्य रख रहे हैं कि मोक्ष नाम है विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका। देखिए ! सुनने मे तो भला लग रहा है कि सही बात है। जहां विशुद्ध केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है उस का नाम मोक्ष है, लेकिन शङ्काकारके सिद्धान्तका विशुद्ध ज्ञान है कैसा ? विशुद्ध ज्ञान का यहाँ अर्थ है सततिका भ्रम छोड करके एक क्षणमे वर्तने वाला जो ज्ञान है और वही पूरा द्रव्य है ऐसे उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूप पदार्थकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है इस विशुद्ध ज्ञानके जगनेपर सतानका भ्रम नही रहता है। इस सिद्धान्तके अनुसार ज्ञान-ज्ञान पदार्थ अनन्त उत्पन्न होते रहते हैं क्रमसे। अब उनमे जो भ्रम बन गया हो कि मैं वही हूँ जो कल था व इसी भ्रमके कारण इस पूर्व ज्ञानमे ऐसा अतिशय हो गया है कि पूर्व ज्ञान उत्पन्न होते ही नष्ट हो होकर अपना सारा चार्ज अगले ज्ञानको दे देता है और इसी कारण अगला ज्ञान पूर्वकी घटनाओका स्मरण कर लेता है और इसी रूप मानता है कि मैं ही तो हूँ, वह जो कल था, लेकिन क्षणिकवादमें क्षण-क्षणमे नवीन-नवीन पदार्थकी उत्पत्ति होती है। यहा पदार्थ स्थायी है ही नही। तो ऐसे अस्थायी विशुद्ध ज्ञान पदार्थमे सतानका भ्रम करनेका नाम ससार है। और, जब सततिका भ्रम न करे, एक विशुद्ध केवल क्षणमात्र होने वाले ज्ञानको उस ही रूप बस जान ले तो उस ज्ञानक्षणके बाद चूकि आगे ज्ञान उत्पन्न नही होता सो उस विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है।

रागादिमान विज्ञानसे रागादिरहित (विशुद्ध) ज्ञानकी उत्पत्तिकी असभवताका वैशेषिको द्वारा कथन — उक्त प्रकारसे विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति मोक्ष

बताने वालेके प्रति वैशेषिक कह रहे हैं कि यह मोक्षका स्वरूप नही बन सकता। क्यो नही बन सकता ? रागादिकसहित ज्ञानसे रागादिकरहित ज्ञानकी उत्पत्ति संभव नही है। यहा ससार अवस्थामे ज्ञान रागादिसहित है ना, सब जीवोका ज्ञान देख लो, सबके साथ राग जुडा हुआ है। तो रागसहित ज्ञानसे रागरहित ज्ञानकी उत्पत्ति नही हो सकती। एक दोष तो यह आता है। दूसरा दोष यह है कि जिस पूर्व बोधसे अगले ज्ञानमे जो बोधरूपता आई, ज्ञानपना आया तो जिस तरह एक बोधसे, एक ज्ञानसे अगले ज्ञानमे ज्ञानरूपता आ जाती है उसी प्रकार पूर्वज्ञानके साथ रहे हुए रागकी रूपता आनेमे उत्तर ज्ञानमें रागादिकका भी तादात्म्य हो जायगा। जैसे अगले बोधम अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपताका तादात्म्य हो गया क्योंकि उससे पहिले ज्ञानमें ज्ञानरूपता थी तो उससे पहिले ज्ञानमे सरागता भी थी तो ज्ञानमें रागका तादात्म्य हो जाना चाहिए। यदि रागादिक न हो तो फिर सरागताका भी अभाव मानना चाहिए।

बोधसे बोधरूपता होनेकी अशक्यताका वैशेषिको द्वारा विवरण— विशुद्ध ज्ञानोत्पत्तिको मोक्ष माननेमे तीसरी आपत्ति यह है कि ज्ञानसे ही ज्ञानरूपता उत्पन्न होती है, इसमें कोई प्रमाण नही है, क्योकि जो भी कार्य अब तक उत्पन्न हुए देखे गए हैं वे विलक्षण कारणसे उत्पन्न हुए देखे गए हैं। ज्ञानसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई इसमे तो कारण भी वही हुआ और कार्य भी वही हुआ, लेकिन लोकमें कार्य विलक्षण कारणसे उत्पन्न हुए देखे जाते हैं। देखो ना, धुवा अग्निसे उत्पन्न होता है तो धुवाँ, और अग्निमे कितना फर्क है ? धुवेंमें गर्मी नही, धुवेंमें कालापन है, पिण्डरूपता है, भापकी तरह उडता है और अग्निमें देखो धुवेंसे बिल्कुल विरुद्ध बातें पायी जाती हैं। धुवामे गर्मी नही, अग्निमे गर्मी है, धुवाँ अन्धकाररूप है तो अग्नि प्रकाशरूप है। धुवाँ भाप जैसा है, अपिण्ड है तो अग्नि पिण्डरूप है। तो विलक्षण कारणसे ही तो कार्य देखा गया। और भी देख लो -बीजसे अकुर उत्पन्न होता है तो गेहूँका दाना, उसकी क्या शक्ल है और अकुरकी क्या शक्ल है। विलक्षण हुए ना दोनो। तो कार्य विलक्षण कारणसे उत्पन्न होते हैं तो यह कहना कि बोधसे बोधरूपता होती है, ज्ञानसे ही ज्ञानरूपता होती है इसमे कोई प्रमाण नही रहा।

विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिमे स्याद्वादका अभिमत— उक्त प्रकार वैशेषिकोंने विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिरूप मोक्षके खण्डनमे जो उत्तर दिया है उसके बाद अब स्याद्वाद से उसका निर्णय सुनो। क्षणिकवादके माने गए विशुद्ध ज्ञानके स्वरूपसे तो स्याद्वाद सहमत नही है, वहां एक-एक समयका एक एक ज्ञान चलता, पूरा पूरा पदार्थ है, और उसकी कोई सतति ही मानी जाती है, वास्तविक आधारभूत कोई पदार्थ नहीं माना जाता है। ऐसे विशुद्ध ज्ञानकी तो कोई सत्ता नही है लेकिन विशुद्ध ज्ञानका यह अर्थ किया जाय कि जो ज्ञान विशुद्ध हुआ है, जिसमें रागादिक मलिनता नही है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानके उत्पन्न होनेका नाम मोक्ष है, तो यह तो युक्त ही है, इसमे स्याद्वादको

विरोध नही है और तब यह प्रश्न उठाना कि रागादिमान ज्ञानसे रागादिरहित ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है तो यह बात तो वैशेषिकोके उत्तरसे ही विरुद्ध बैठती है। अभी अभी तो वैशेषिकोने यह कहा कि विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य होता है तो रागादि वाला विज्ञान विलक्षण रहा ना, रागादिरहित विज्ञानके मुकाबलेमें तो सराग ज्ञानसे विरागज्ञानकी उत्पत्तिमे क्या विरोध है और फिर अनुभव और युक्तियो से सोच लो, ज्ञानका स्वरूप राग तो नही है। रागमे जो बात दिखती है वह ज्ञानम नही है। रागमें जो बात दिखती है वह ज्ञानमे कहा है। ज्ञानमें मात्र जाननहारपना है। तो जो जिसका स्वरूप नहीं है वह कदाचित् साथ लगा हुआ हो तो उपायोसे वह दूर किया जा सकता है। जिसका तादात्म्य हो वह तो दूर नही किया जा सकता। जैसे अग्निमे उष्णता तादात्म्यरूपसे रहती है तो अग्निमेसे उष्णताका विनाश नही किया जा सकता। उष्णतारहित अग्नि नही बन सकती, किंतु जलमे जो गर्मी है वह तो औपाधिक है, जलके स्वरूपवाली नही है। जलकी गर्मी उपायोसे दूर की जा सकती है। तो जलकी गर्मीकी ही भाँति ज्ञानमे रागादिक सद्भाव है, वह औपाधिक है, स्वरूपसे निराला है इस कारण उपायसे ज्ञानके साथ रहने वाला राग दूर किया जा सकता है। रागादिमान विज्ञानसे रागरहित विज्ञान बन सकता है।

विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्यकी हठ करनेमे अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति होनेका प्रसङ्ग—अब देखिये जब अद्वैतवादियोकी ओरसे कथन आया कि बोधसे बोधरूपता उत्पन्न होती है। और, उनकी यह गति यथार्थ भी है कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता उत्पन्न होती है। ज्ञानसे ज्ञान होगा कि अज्ञान होगा? ज्ञानसे ज्ञानरूपता ही बनेगी। तो इस सम्बन्धमे फिर यह कहना पडा वैशेषिकोको कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता नही हो सकती, क्योकि विलक्षण कारणसे कार्य होता है। तो लो इस सम्बन्धमे सुनिए—यदि यह एकात मान लोगे कि विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य होते हैं, तो अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति भी माननी पडेगी। तब आत्माका उच्छेद हो जाएगा चारुवाकमतका प्रसङ्ग आ जायगा। बात तो यह कि कार्योत्पादके सम्बन्धमे सही दोनो ही बातें हैं। विलक्षण कारणसे भी विलक्षण कार्य होते हैं और समान कारणसे भी समान कार्य होते हैं। मिट्टीसे घडा बना तो लो, समान कारणसे समान कार्य बना ना। अग्निसे धुवाँ हो चला यह विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य हो गया, पर एकात तो कुछ नही रहा। जहाँ जो बात सगत हो वहाँ वह बात लगानी चाहिए। तो विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्यकी उत्पत्तिका हठ करनेपर यह दोष आया कि फिर अचेतन शरीरसे चेतन भी उत्पन्न होने लगें।

अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति माननेमे विडम्बना—अब यहां चारुवाक खुश होकर कहता है कि वाह-वाह अच्छी बात कही। बात तो यही है कि अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति होती है। चेतन कोई शाश्वत वस्तुभूत पदार्थ नही है।

जहाँ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतोंका समागम हो वहाँ चैतन्यकी उत्पत्ति होती है। तो इस प्रसंगमें अधिक न कहकर केवल उन चार्वाकोंसे इतना ही कहना है कि यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके सम्बन्धसे जीव उत्पन्न होने लगें तो रसोईघरमें प्राय रोज भोजन बनता है। किसीने मिट्टीकी हांडीमें कढ़ी पकाई हो तो वहाँसे पशु-पक्षी मनुष्यादिक खूब निकल बैठें क्योंकि यहाँ पृथ्वी तो है ही, मिट्टीकी हांडी है ना, और पानी उसके भीतर है ही, तेज अग्नि भी मिल रहा है और हवा भी उसके अदर भरी है। हण्डीपर कोई ढक्कन रख दिया जाय तो हवाके ही कारण वह ढक्कन फिक जाता है। जब ये चारो चीजें वहाँ मिल गईं तब तो हाथी, शेर चीता आदिक जानवर धड़ाधड़ निकल पड़ना चाहिए, क्योंकि तुमने चारभूतोंसे चेतनकी उत्पत्ति मानी है। तो तुम्हारा यह मानना योग्य नहीं है। और, फिर जब परलोक है परलोकमें जाने वाला कोई है, उसकी सिद्धि होती है तो परलोकी तो स्वतन्त्र रहा। परलोक है यह भली प्रकार सिद्ध है। परलोक न होता तो बच्चा उत्पन्न होनेके बाद एकदम माँका दूध कैसे पीने लगता उसे खूब समझ या जाता, बड़ा अभ्यास कराया जाता तब वह बड़ी मुश्किलसे दूध पीनेकी बात जान पाता लेकिन पूर्व लोकमें उसके आहारसंज्ञाका संस्कार था, तो वहाँ झट प्रवृत्ति हुई। अनेक पुरुषोंको बचपनमें पूर्व-भवके स्मरण और स्मरण जैसे कार्य भी उनके देखनेमें आये हैं। परलोक है, परलोकमें रहने वाला चेतन है तो अचेतन शरीरमें चेतनकी उत्पत्ति नहीं है। विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य भी हो सकता है और समान कारणसे समान कार्य भी हो सकता है। जहाँ जैसा उचित है, युक्तिसंगत है वहाँ वैसा मानना चाहिये।

बोधसे ज्ञानान्तरमें बोधरूपता होनेके हेतुके विकल्प – अब वैशेषिक विज्ञानवादीसे पूछ रहे हैं कि ज्ञान अन्य ज्ञानका कारण बनता है ऐसा जो इनका कथन है तो पूर्वज्ञानको ज्ञानान्तरका कारण बननेमें हेतु क्या है? किस कारणसे एक ज्ञान अगले नवीन ज्ञानमें ज्ञानरूपताका कारण बन जाता है? क्या इस कारणसे कि वह पूर्वकाल भावी ज्ञान है? पहिले समयमें होने वाला जो ज्ञान है वह ज्ञान उत्तर समयके होने वाले ज्ञान पदार्थमें ज्ञानरूपता करदे याने अगले ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण बने इसका कारण क्या यह है कि चूँकि वह पूर्व समयमें है, अथवा यह कारण है कि समान जातीय है, अगला ज्ञान भी ज्ञान है, पहिला ज्ञान भी ज्ञान है। तो जाति समान होनेके कारण एक ज्ञानने अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर दी। या एक संतानपना हेतु है अर्थात् ज्ञान ज्ञान लगातार बारम्बार प्रतिसमय नये-नये ज्ञान पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं तो उनमें एक संतान बनी हुई है। जैसे हारमें एक एक दाने करके १०० दाने हैं पर हारके १०० दाने इस तरह एकके ऊपर एक अवस्थित हैं और शोभा दे रहे हैं। वे सब एक सूतमें फसे हुए हैं। इसी तरह एक ज्ञान अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर दे इसका कारण क्या है? एक ज्ञानसे दूसरे ज्ञानमें बोधरूपता कैसे आई ये तीन विकल्प किए गए।

बोधसें ज्ञानांतरमे बोधरूपता होनेकी सिद्धिमे पूर्वकालभावित्व और समानजातीयत्व हेतुकी अनैकान्तिकता - उक्त विकल्पोमे यदि पहिला विकल्प कहोगे कि भाई अगले ज्ञानसे पूवमे वह ज्ञान है ना तो पूर्वकाल मे होवेके कारण अगले ज्ञानमे वह ज्ञानरूपता उत्पन्न कर देता है तो भाई इसमे तो समान क्षणोके साथ व्यभिचार आ गया। जैसे मान लीजिए--देवदत्त व यज्ञदत्त ये दो आदमी बैठे है और उन दोनो पुरुषोके शरीरमे अलग-अलग ज्ञानोकी परम्परा चल रही है। अब ८ बज कर १ मिनटपर देवदत्त नामक पुरुषमे जो ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान ८ बजकर २ मिनटमे यज्ञदत्तके ज्ञानमे ज्ञानरूपता क्यो नहीं पैदा करता, क्योंकि पूर्वकालमे तो हो गया। देवदत्तके ज्ञानोमें तो वहा ८ बजकर पहिले मिनटमे उत्पन्न हुए ज्ञानने उसी देवदत्तके ८ बजकर दो मिनटमे होने वाले ज्ञानमे ज्ञानरूपता तो लादी और वह यज्ञदत्तमे ८ बजकर दो मिनटपर जो ज्ञान हुआ उसमे ज्ञानरूपता न डाले, इसका क्या कारण है ? बोधरूपता न डाल देगा तो पूर्वकालभावित्वका व्यभिचार हो जायगा, अर्थात् पूर्वकाल भावी होनेसे पूर्व ज्ञान उत्तर ज्ञानमे ज्ञानरूपता पैदा कर देता यहा हेतु सदोष हो गया। और, यदि दूसरा विकल्प कहोगे कि समान जातीयपना है अर्थात् यह भी ज्ञान है वह भी ज्ञान है इसलिए ज्ञान अगले ज्ञानमे ज्ञानरूपताको डाल देता है तो भी दूसरे पुरुषमे उत्पन्न होने वाले ज्ञानसे फिर भी व्यभिचार आ गया। अर्थात् समान जातीय ही ज्ञान तो देवदत्तका है और समान जातीय ही ज्ञान यज्ञदत्तका है। तो देवदत्तका ज्ञान यज्ञदत्तके ज्ञानमे ज्ञानरूपता क्यो नहो पैदा कर देता है ? और, साथ ही पूवकाल भावीका भी अब विकल्प न रहा। तुमने केवल समान जातीयताके नातेस एक ज्ञान दूसरे ज्ञानमे ज्ञानरूपता उत्पन्न कर देना यह मान लिया तो दूसरेको सन्तानमें होने वाल सारे ज्ञानोमें ज्ञानरूपता बना दे देवदत्तका ज्ञान। तो अन्य सतान में होने वाले ज्ञानके साथ यह समान जातीयत्व हेतु अनेकांतिक होता है।

बोधसे बोधरूपताके सम्बन्धमे विचार—स्याद्वाद सिद्धान्तसे इस समस्या पर कुछ दृष्टि डालें तो पहिले नित्य नियात्मक एक आधार मानना पडेगा। ज्ञान तो उत्पन्न होते रहते हैं। वे प्रतिसमयके एक-एक ज्ञान परिपूर्ण पदार्थ नही हैं किंतु एक जीवके प्रतिसमयमें जो ज्ञानस्वरूपका परिणमन चलता है वह परिणमन है प्रत्येक समयके ज्ञान ज्ञान, तो ऐसा माना जानेपर पहिला ग्यान ग्यानरूप ही तो है ना सो अगला ग्यान ग्यानरूप ही बने इसमे कोई आपत्ति नहीं आती। न यह दोष आता है कि देवदत्तका ग्यान यग्यदत्तके ग्यानमे ग्यानरूपता क्यो नही पैदा करता ? नही करता क्योंकि उपादान भिन्न है। कोई एक ग्यान अगले सारे ग्यानोमें ग्यानरूपता क्यो नहीं पैदा करता ? यों नही पैदा करता कि कार्य उपादानसे होता है और उपादान माना गया है पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य। तो कोई किसी भी पर्यायमें रहने वाला द्रव्य अगली पर्यायकी पर्यायकी उत्पत्तिका कारण बनेगा, न कि अगले समयकी पर्यायो का उल्लघन न करके भविष्यकी सारी पर्यायोका कारण बनेगा। तो स्याद्वाद दृष्टिसे

अवस्थामे होने वाले ज्ञानका कारण है और जगती हुई अवस्थाका ज्ञान सोई हुई अवस्थाके ज्ञानका कारण है। अ न्तम ज्ञान कुछ नही हुआ करता। इसका भाव यह है कि सोई हुई अवस्थामे लोगोको यह मालूम मा होता है कि इसके कुछ ज्ञान नही है। ग्यान बिना यह देखो मुर्दा सा बेहोश पडा है और लगता भी बेहोश सा है पर सोई हुई अवस्थामें भी ग्यान बराबार चल रहा है। किन्तु, वैशेषिक सुपुप्तावस्थामे ग्यान नही मानते सो जो विग्यानवादी हैं ग्यानसे ग्यानकी उत्पत्ति मानते हैं उनसे पूछा जा रहा है कि सोई हुई अवस्थामे ग्यान कहासे आ गया ? इस ग्यानको किसने पैदा किया ? तो उनका उत्तर है कि पहिले जाग रहे थे तब तो ग्यान था, तो जागृत अवस्थामे होने वाला ग्यान सोई हुई अवस्थाके ग्यानका कारण होता है। इसी प्रकार मरण शरीरमे रहने वाला ग्यान नये शरीरके गर्भमे हानेवाले ग्यानका कारण बना है।

ज्ञानमे ज्ञानान्तरकी उत्पत्ति माननेपर भी सन्तानान्तरके ज्ञानसे व्यभिचारित्वके अनिवारणका वैशेषिको द्वारा कथन—मरणग्यानसे व जाग्रत ग्यानसे गर्भग्यान व सुषुप्तग्यानकी उत्पत्ति माननेपर वैशेषिक कहते हैं कि ऐसा कहने पर भी तो एक सन्तान हेतु निर्दोष नही रह सकता क्योकि मरण शरीरमे जो ग्यान होता है उसे मान लिया तुमने कि बीचमे होनेवाले शरीरके ग्यानका कारण अथवा गर्भ वाले शरीरके ग्यानका कारण तो इससे यह व्यभिचार दोष दूर नही हो सकता कि वह अन्य सन्तानमे भी ग्यानका जनक क्यो नही हो जाता ? यह माना जानेपर भी मरण समयमें जो शरीरमे ग्यान था वह रास्तेमे विग्रह गतिमें जो कार्माण शरीर चलता है उस शरीरमे ग्यानका कारण है अथवा यह मरण समयका शरीरग्यान गर्भ शरीरमें ग्यानका कारण बन जायगा। इतना कहनेपर भी यह नियम तो न बना कि वह इस ही शरीरके ग्यानका कारण बने। उस समय अनेक जीव पैदा हो रहे हैं तो किसी भी शरीरका ग्यान किसी भी पैदा होने वाले जीव शरीरके ग्यानमे कारण क्यो नही हो बैठता ? क्योकि अब निश्चित् हेतु तो कुछ नही रहा।

सान्वयज्ञानसे उत्तरज्ञानके होनेका प्रतिपादन—इसका स्पष्टीकरण स्याद्वादविधिसे इस प्रकार है कि मरणसमयका ज्ञान अगले जन्मके समयके ज्ञानका कारण होता है लेकिन वह ज्ञान परिणमन है। उन ज्ञानोंका आधारभूत आत्मा है। कोई एक आत्मा मान लिया जाय और फिर उस आत्माका एक क्षणका ज्ञान उत्तर क्षणके ज्ञानका कारण माना जाय तो तो सही बैठता है, पर जहां आत्मा नामक कोई पदार्थ ही नही है, एक एक समयके होने वाले ज्ञानका ही नाम आत्मा है अर्थात् जैसे एक मिनटमें हजार समय हैं तो वहां हजारो ज्ञान हुए और एक एक ज्ञानका ही नाम एक एक पूरा आत्मा है अर्थात् हजारो आत्मा हुए। तो जब वह ज्ञान पदार्थ स्वतन्त्र पूरा सत्तावान है तो एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ कार्य कारण क्या ? नियम क्या ? तो पदार्थ न्यारे-न्यारे सत् हैं उन पदार्थोंका कारणपना क्या ? जैसे एक

शरीरमे रहने वाला ज्ञान दूसरे शरीरमे रहनेवाले ज्ञानका अनुभव तो नही कर सकता क्योंकि वे जुदा हैं दोनों । तो इसी तरह एक ही शरीरमे उत्पन्न होते रहने वाल ज्ञान चूकि परिपूर्ण पदार्थ हैं, स्वतन्त्र सत्तावान हैं तो इनका एक दूसरसे क्या सम्बन्ध ? और फिर एक ज्ञान दूसरे ज्ञानमे बोधरूपता कैसे आ सकती है ? तो एक सतानमे वे ज्ञान चल रहे हैं इस कारण पूर्वज्ञान अर्थात् ज्ञानमें बोधरूपता ला देवे यह माना जाय तो यह माननेपर इस अन्तिम ज्ञानमे व्यभिचार आया और यदि माना जाय कि अन्तिम ज्ञान कोई है ही नही प्रत्येक ज्ञान नये ज्ञानमे बोधरूपता उत्पन्न करता है। तो एक शरीरका ज्ञान दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण क्यो नहीं बन जाता ?

अन्यके ज्ञानसे अन्यके ज्ञानके होनेके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर—अब विज्ञानवादी कहते हैं कि हम एक शरीरके ज्ञानको दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण मानते हैं। जैसे पढाने वाले अध्यापकका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण है। कौन कहता है कि एक शरीरका ज्ञान दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण नहीं बनता। शिक्षक पढाता है, शिष्य ज्ञान हासिल करता है तो इस प्रकार शिक्षकका ज्ञान उस शिष्यके ज्ञानका कारण बना कि नही ? तो एक शरीरका ज्ञान भी दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण बनता है, ऐसा क्षणिकवादियोके कहनेपर वैशेषिक पूछते हैं कि उपाध्यायका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण बन गया, पर दुनियामें जो इतने आदमी भरे हुए हैं उनके ज्ञानका कारण क्यो नही बनता ? यदि कहो कि कर्मवासना इसकी नियामक है, जैसी जिसके साथ वासना लगी है, जो वासना भी ज्ञानरूप ही है, अथवा कहो कि अदृष्ट लगा है, क्रिया लगी है, वह नियन्त्रण करती है कि उपाध्यायका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण बनेगा, ढोर चराने वालके ज्ञानका कारण न बनेगा, तो वैशेषिक उत्तर देते हैं कि वासना भी तो ज्ञानको छोडकर अन्य कुछ नहीं क्योंकि विज्ञानवादमें सर्व कुछ तत्त्व ज्ञान ही माना गया है तो वासना भी ज्ञान है और वासनाका है ज्ञानसे तादात्म्य सम्बन्ध फिर वह ज्ञान सामान्य रह गया। तब फिर ज्ञानसे ज्ञानरूपता बनती है यह बात सर्वसाधारण बन चुकी, फिर किसीका ज्ञान किसी दूसरेके ज्ञानका कारण क्यों नही बन जात ?

क्षणिकवादीका और विशेषवादीका ज्ञानके सम्बन्धमे मन्तव्य— दोनो दार्शनिकोके प्रश्नोत्तरका भाव यह है कि विज्ञानवादी तो यह मानते हैं कि एक ज्ञान अगले ज्ञानका कारण बनता है और विशेषवादी मानते हैं यह कि ज्ञानगुण है, आत्मा से जुदी चीज है, उसका आत्मामे सम्बन्ध होता है। और ज्ञान निकल गया आत्मासे उसका नाम है मोक्ष। ज्ञानकी शुद्धि करनेकी कोई आवश्यकता नही है। ज्ञान क्या शुद्ध होगा ? ज्ञानसे ही तो सारे झगडे लग गए। इन खम्भा, ईंट, पत्थर आदिकमें ज्ञान नही है तो देखिये, ये कैसे आरामसे पडे हैं, इन्हें कोई विकल्प ही नही है। इस ज्ञानसे ही तो सारा कष्ट हो बैठा। उसकी क्या शुद्धि करना ? यह ज्ञान दूर हो जाय

आत्मासें और इन जड पदार्थोंकी भांति केवल रह जाय आत्मा, बस शान्ति तो उ
है, निर्वाण उसमे है ऐसे ये दो सिद्धान्त सामने चल रहे हैं जो परस्पर एक दूस
अपने मन्तव्य रख रहे हैं। इस प्रसङ्गमे विज्ञानवादियोका यह कथन चल रहा है
सोई हुई अवस्थाका जो ज्ञान है। जगते समयका ज्ञान सोते समयके ज्ञानका कारण
उस ज्ञानके कारण सोई हुई अवस्थामे भी ज्ञान बना रहता है वैशेषिक कहते है कि
बात तो असम्भव है, ठीक नही है क्योकि सोई हुई अवस्थामे अगर ज्ञान मान लो
जगे और सोयेमे कुछ फर्क ही न रहा। जगेमे भी ज्ञान था और सोये हुएमे भी इ
मान रहे हो, तब तो जगे और सोयेमे फर्क न होना चाहिये। लोग फिर क्यो पहिच
जाते हैं कि यह सोया है यह जग रहा है? इसी कारण तो पहिचानते हैं कि उस स
हुएमे ज्ञान नही है और उस जगे हुएमे ज्ञान है। तभी तो झट बता देते हैं कि
आदमी सोया हुआ है और यह आदमी जग रहा है। अब तुम ज्ञान मान रहेहो दो
मे। जगे हुएमे भी ज्ञान है और सोये हुए में भी ज्ञान है। तब फिर उसका कोई प
न रहना चाहिये। क्योकि जागने वाला पुरुष जिस तरह स्वसवेदित ज्ञानका उपय
कर रहा है उसी प्रकार सोया हुआ मनुष्य भी स्वसवेदित ज्ञानका उपयोग कर रहा
फिर उनमे फर्क क्या रह जायगा?

जागृवदस्थाके ज्ञान और सुषुप्तावस्थाके ज्ञानके सम्बन्धमें सक्षिप्त वि
रण—इस प्रसगपर स्याद्वादी थोडा सा स्पष्टीकरण कर रहे हैं कि सोई हुई अवस्था
ज्ञान नही है यह तो कहा ही नही जा सकता क्या उस समय जीव ज्ञानरहित होगय
सोई हुई अवस्थामे ज्ञान अवश्य है, तब यह भी नही कह सकते कि जागी हुई अवस्था
सोई हुई अवस्थामे कुछ भेद न रहना चाहिए, कोई विशेषता न रहना चाहिए, क्योंकि
सोई और जागी हुई अवस्थामे कुछ भेद न रहा क्योकि सोई हुई अवस्थामें विज्ञानका
सद्भाव होनेपर भी जो अति तेज निद्रा आ रही है उसके कारण वह ज्ञान तिरोभू
हो गया है, ज्ञान दब गया है, ढक गया है। उस ज्ञानका अभिभव हो गया इससे प्रक
विशेषता जाहिर होती है जागी हुई अवस्थासे सुषुप्तावस्थामे। सोई हुई अवस्थामें त
ज्ञानका तिरोभाव है और जागी हुई अवस्थामे ज्ञानका आविर्भाव है। जैसे कोई पुरु
पागल हो गया तो पागल और गैरपागलमें लोग अन्तर जानते कि नही? नहीं तं
गैरपागलको ही पागल कह दें और पागलसे भी अपना सम्बन्ध बना लें। लोगोंक
समझमे है ना यह कि यह पागल है, और यह पागल नही है यह समझ कैसे बनी
यो ही तो बनी कि पागलके ज्ञानमें कुछ अभिभव है, तिरोभाव है, कुछ बिगाड है
विशुद्धि प्रकट नही है। और जो पागल नही हैं उनका ज्ञान शुद्ध प्रकट है। तो अन्त
जैसे यहां समझा गया है ऐसे ही अन्तर जागे हुए और सोये हुए पुरुषमें भी समझन
चाहिए। जागे हुए और पुरुषका ज्ञान आविर्भूत है और सोये हुए पुरुषका ज्ञा
तिरोभूत है। अथवा जैसे कोई दवा सु घानेसे मूर्छित हो गया तो ऐसे मूर्छित पुरुषमें
और गैर मूर्छित पुरुषमे लोगोको फर्क मालूम होता है कि नही। फर्क मालूम होता है

वह क्या फर्क दिखाई देता है कि यह मूर्छित पुरुपका तो मदिरादि पीनेसे जो इसमें मद वेदना उत्पन्न हुई है उससे इसका ज्ञान अभिभूत हो गया है और जो मूर्छित नही है उसका ज्ञान मद वेदनासे अभिभूत नही है।

सुषुप्तावस्थामे ज्ञानका अतीनिद्रासे अभिभव- देखिए मूर्छित होनेका अर्थ क्या है? मदकी वेदनासे पीडित होनेका नाम-मूर्छित होना है। तो क्या मूर्छित हुआ पुरुष मजेमे है? लोगोंको ऐसा दिखता है कि यह बहुत आनन्दमे है। यह पहिले बहुत विह्वल था, इष्ट वियोगमे रोता था, इसको तेज मदिरा पिला दिया तो यह मूर्छित पड गया, अब इसको कोई वेदना नही। अरे इष्ट वियोगमे जो उससे वेदना हुई थी उससे भी तीव्र वेदना है इस मूर्छितको जो कि मद वेदनासे पीडित हो रहा है। अन्यथा फिर यह कह लो कि पुरुषमे तो अच्छे निगोदिया जीव हैं। इन जानवरोंसे अच्छे तो ये पेड वनस्पति हैं, क्योंकि ये खडे हैं, ये न रोते हैं न हिलते डुलते हैं, न चिल्लाते हैं। अरे इनको तो जानवरोंसे भी अधिक वेदना है। जैसे मद अवस्थामे मद वेदनामे पीडित होता है और उसका ज्ञान तिरोभूत हो गया है और जो मूर्छित नही है उसका ज्ञान सावधान है, स्पष्ट है, तब तो इनमे अन्तर नजर आ रहा है ना। तो इस प्रकार जागृत अवस्थामे और सोई हुई अवस्थामे भी अन्तर है। वह अन्तर यह है कि अतिनिद्रासे अभिभूत ज्ञान है, सोये हुएका और अतिनिद्राके अभावसे जगने वाले का ज्ञान अभिभूत हुआ नही है। देखिये—यहाँ अतीनिद्रासे तिरोभाव बताया गया है, क्योंकि नींद तो इस समय हम आप भी ले रहे हैं। ले रहे हैं ऐसी कि हम चाहे जग रहे हैं हम बात सुन रहे हैं, पर बहुत हल्की नींद इस समय भी आ रही है जिससे कि कोई ज्ञानका तिरोभाव नही हो पा रहा है। तो छोटी नींदका काम तिरोभाव नही है जहाँ अतिनिद्रा आ रही है वहा ज्ञानका तिरोभाव है और जरा और भी नीद आ जाय तो भी श्रोता महोदयका ज्ञान फिर भी पूरा दबा नही है, उनसे अगर सोये हुएमे वक्ता पूछ बैठ कि कहो लालाजी सो रहे हो क्या? तो कहेंगे नही साब, सुन रहा हू। तो छोटी-मोटी निद्रासे ज्ञान अभिभूत नही होता। निद्रा तो प्राय हर समय आ रही। खाने वाले बच्चोंमें किसीमे तो यह बात स्पष्ट देखनेको मिल जाती है, कहो कौर भी नीचे गिर जाय। तो यहा अतीनिद्राकी बात कह रहे हैं।

विज्ञानवादियों द्वारा मिद्धत्वसे सुषुप्तज्ञानका अभिभव कहे जाने पर मिद्धत्वके स्वरूपका विशेषवादियो द्वारा प्रश्न वैशेषिकोने यहा यही तो उपालम्भ दिया ना, कि ज्ञान यदि ज्ञानकी धारा बनाये रहता है तो सोये हुएमे और जगे हुए पुरुषमें कोई विशेषता न होना चाहिए। तो इसी बातपर विज्ञानवादी अब पुन कह रहे हैं क्योंकि उन्हें थोडा इस समयमे स्याद्वादके कथनसे बल मिला, तो पुन कहते हैं कि हाँ यही बात है। सोई हुई अवस्थामे अतिनिद्राके कारण ज्ञान अभिभूत

हो गया है। अथवा अब अति जडताके कारण सोई हुई अवस्थामे ज्ञानका तिरोभाव हो गया है इसलिए जगे पुरुषमें सोये पुरुषमे विशेषता नजर आती है। वैशेषिक कहते हैं कि वह अति जडता अथवा अतिनिद्रा भी तो ज्ञानका धर्म माना हुआ, तुम्हारे यहा तो ज्ञानके सिवाय और कुछ तत्त्व माना ही नही गया। एक विज्ञानाद्वैत है, तो निद्रा भी ग्यानस्वरूप है, वह बेहोशी भी ग्यानस्वरूप है वह जडता भी ग्यानस्वरूप है। तो उसका तो गयानसे तादात्म्य हो गया और जिसका गयानसे तादात्म्य है वह ग्यान का तिरोभाव कर सके यह बात नही बन सकती। यदि कहो कि वह अतिनिद्रा अथवा अतिजडता ज्ञानसे भिन्न चीज है तब फिर यह बतलावो कि वह मिद्धता, मिद्धता नाम है इन दोनो अवस्थाओंका चाहे अति जडता आ जाय और चाहे अतिनिद्रा आ जाय, दोनो पुरुषोको मिद्ध कहा करते है। तो भी मिद्धपना यदि विज्ञानसे निराला है तो उसका स्वरूप बतलावो। पदार्थ तो ५ प्रकारके माने गए :—रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा और सस्कार। क्षणिकवादियोने पदार्थ इस तरहके ५ माने हैं। अब देखिए! जिनको जो स्पष्ट समझमे आया उसने उस ही प्रकार पदार्थोंकी सख्याका निर्माण किया। वैशेषिकोकी दृष्टि, उनका मूड कुछ इस तरहका एक ही पदार्थमे भेद कर करके बोध करनेका था। तो उन्होने इस तरह पदार्थ ७ माने हैं—द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। यहाँ माने गए हैं—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और सस्कार। तो तुम्हारे इन ५ पदार्थोंके स्वरूपमेसे उस मिद्धपनेका स्वरूप क्या है सो तो बताओ?

मिद्धत्वका स्वरूप—इस प्रश्नको सुनकर यद्यपि स्याद्वादी लोग ज्ञानको स्वतन्त्र सत् पदार्थ नही मानते और उनके प्रति यह प्रश्न भी नही हो सकता, लेकिन थोडीसी स्पष्टता कर रहे है उस वैशेषिकके प्रश्नके विरोधमे कि हाँ उस मिद्धताका स्वरूप है। मिद्धादि सामग्रीके कारण निद्रा होनेके कारण मदिरापान होनेके कारण जो एक ज्ञान अनध्यवसाय हो गया है और आध्यात्मिक अर्थके विचारमे अब नही लग रहा है। चलते हुए पुरुषके पैरमे जैसे तृण छू जाय तो तृणस्पर्शसे ज्ञान जैसे एक अनध्यवसायरूप रहता है, उसके समान सोई हुई अवस्थामे ज्ञान रहता है, यह है मिद्धत्व का स्वरूप। देखिये! यहा उत्तर तो देना चाहिए था बौद्धोको, पर गुणोच्छेदका नाम मोक्ष है, यह बात विशेषवादकी नही समझमे आई, इस कारण हा जिन जिनसे विशेषवादियोको विवाद है उन उनके पक्षको थोडा स्याद्वाद भी स्पष्ट कर रहा है और देखिये कितना अच्छा स्पष्टीकरण है, इसमे अच्छा स्पष्टीकरण और क्या हो सकता है मिद्धत्वके बारेमें? सोई हुई अवस्थामे कुछ अभिभूत विकृत ज्ञान है तो उस ज्ञानका स्वरूप क्या है? सो बतलावो! अब जरा कुछ युक्तियोको खोजें तो यह प्रश्न उठ सकता है कि बतलाओ सोई हुई अवस्था वाले पुरुषका ज्ञान कौनसा ज्ञान है? सम्यग ज्ञान है कि सशयज्ञान है या विपर्ययज्ञान है कि अनध्यवसाय ज्ञान है? तो यहा स्पष्ट किया गया कि अनध्यवसाय ज्ञान है। इतना साफ बताया कि सोए हुए पुरुषका जो

ज्ञान है वह अनध्यवसायका भेद है चलती हुई, जगती हुई हालतमे जो तृणस्पर्श आदिकका सामान्य ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय जरा कुछ सा छाया हो गया और सोई हुई अवस्थामे वह भीतरी ज्ञान चल रहा है जिसको उस कालमे वह अनुभव नहीं करता पर जागनेपर अनुभव करता है कि हा कुछ था। तो वह अनध्यवसायका एक प्रकार है। कैसे नही है उस सिद्धतासे अविभूत ज्ञानका स्वरूप ?

विशेषवादियो द्वारा अभिभवके स्वरूपपर दो विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण अब वैशेषिक उस अभिभवके स्वरूपपर प्रश्न कर रहे हैं कि सोई अवस्थामें ज्ञानका तिरोभाव हो गया, ढक गया, तो इस अभिभवका अर्थ क्या है ? क्या इस अभिभवका अर्थ विनाश है कि ज्ञानका विनाश हो गया ? यदि ज्ञानका विनाश हो गया अभिभवका यह अर्थ माना जायगा तो ज्ञानकी सत्ता ही न रही, फिर झगडा ही किस बातका रहा कि पूर्वज्ञान उत्तर ज्ञानका कारण है ऐसा सिद्ध करनेमें मेहनत ही क्यो की जा रही है ? वहाँ उत्तर ज्ञान रहा ही नही अभिभव हो गया, अर्थात् विनाश हो गया। अथवा मानलो थोडी देरको विनाश हो गया तो विनाश किसी कारणसे ही तो हुआ। अभिभवके कारण विनाश हो गया तो फिर विनाश निर्हेतुक न रहा, सकारण हो गया। विज्ञानवादमे पदार्थकी उत्पत्ति भी किसी कारणसे नही होती है और पदार्थका विनाश भी किसी कारणसे नही होता। क्षणिकवादमें पदार्थ स्वय ही अपने स्वरूपका लाभ लेता है और स्वरूप लाभके समय ही वे पदार्थ उसी पदार्थके कारण नष्ट हो जाते हैं। एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कारण बने यह बात क्षणिक सिद्धान्तमें सम्भव नही है। यह तो पदार्थका स्वरूप बताया है कि पदार्थ हुआ, उसी समय आया, उसी समय गया दूसरे समय भी तो नही ठहरता, कोई पदार्थ ऐसा क्षणिक है। तो ऐसे सिद्धान्तमे न तो सोई हुई अवस्थाके ज्ञानकी सत्ता बताई जा सकती है और न सोई हुई अवस्था वाले पुरुषके ज्ञानका विनाश भी बताया जा सकता है इसलिए अभिभवका अर्थ विनाश तो कह नही सकते।

विशेषवादियो द्वारा अभिभवस्वरूपके द्वितीय विकल्पका निराकरण– यदि कहो कि अभिभवका अर्थ है तिरोभाव, तो कहते हैं कि यह बात भी युक्त नही, क्योकि विज्ञानकी सत्ताका ही नाम सम्वेदन है ऐसा जब माना गया है तो विज्ञानका तिरोभाव नहीं हो सकता है। ज्ञान है और दबा है, यह कहना युक्त नहीं है, क्योंकि ज्ञान तो सम्वेदनात्मक हुआ करता है। उसके दबनेका क्या अर्थ है ? कोई पत्थर लकडी जैसी चीज नही है ज्ञान, जैसे कि कहीं कोई वस्तु रख दिया लो दब गया। अरे ज्ञानका नाम ही सम्वेदन है। सम्वेदन क्या किसीसे दबाया जा सकता है ? किसी भी प्रकार सोई हुई अवस्थामे तुम ज्ञानका सद्भाव सिद्ध नही कर सकते। तब फिर अन्तिम ज्ञान बन गया ना कुछ ? तो एक सतानपना होनेसे यदि बोधसे बोधरूपता मानोगे तो अन्तिम ज्ञानसे यो व्यभिचार दोष होता है इस कारण यह कहना युक्त

नही है कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता उत्पन्न होती चली जाती है।

संसार और मोक्षका वस्तुगत स्वरूप —इस प्रकरणमे मोक्षका स्वरूप बताया जा रहा है। मोक्षका स्वरूप जानना कल्याण चाहने वाले भाईयोका मुख्य कर्तव्य है। सुख है मोक्षमे और दुःख है ससारमे। ससार नाम है अशुद्ध प्रकारके आत्माके भावोका। और मोक्ष नाम है आत्माके ही शुद्ध भावोका। यह जो दुनिया है यह जो स्थान दिख रहा है यह जो कुछ नजर आ रहा है इसका नाम ससार नही है। ससार नाम है आत्माके रागद्वेष मोह भावोका। इसी जगह अरहत भगवान भी रहते हैं उनके तो अब ससार नही रहा है। यद्यपि ससारकी शेष अवस्था है, शरीर-सहित हैं मगर उनको जीवन्मुक्त कहा गया है। तो इस जगह रहनेसे जीवको दुःख नही है। जगह बनी रहे, किन्तु जीवोमे जो रागद्वेषमोहका परिणाम चलता है, अज्ञानभाव बर्तता है उससे क्लेश है और उस ही भावका नाम ससार है। इसी प्रकार मुक्त हो जाते हैं तो वहा होता क्या है कि इस तरहके विभाव नही रहते। ज्ञानकी परिपूर्णता रहती है। आत्मामें जो स्वभाव है स्वरूप है उसका शुद्ध विकास हो जाय, अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति अनन्त आनन्द प्रकट हो इसका नाम मोक्ष है।

मोक्षके स्वरूपमे विशेषवाद और क्षणिकवादका मन्तव्य - मोक्षका स्वरूप तो यह है कि जहा ज्ञान और आनन्द गुणका परम विकास हो गया है, किन्तु इस प्रसङ्गमे दो दार्शनिक अपनी बात रख रहे हैं। वैशेषिकने तो यह अपना प्रस्ताव रखा कि आत्मामे जो ज्ञान गुण आदिक गुण हैं, इच्छा द्वेष आदिक अवगुण हैं उन समस्त गुणोका वियोग हो जाना विनाश हो जाना इसका नाम मोक्ष है और क्षणिकवादियो ने अपना यह प्रस्ताव रखा कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होना अर्थात् ऐसा ज्ञान होना कि जिस ज्ञान पदार्थके बाद फिर सिलसिला न रहे, जन्म मरण न रहे, एक ऐसा ज्ञान पदार्थ प्रकट होना इसका नाम मोक्ष है। इन दो पक्षोमेसे आपको कौनसा पक्ष अच्छा लग रहा है? क्या आत्मामेसे ज्ञानानन्द आदिक गुण खतम हो जायें इसका नाम मोक्ष है यह भला लग रहा है अथवा विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होना इसका नाम मोक्ष है, यह भला लग रहा है? विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है, यह भला लग रहा होगा। देखिये! विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है, यह कुछ अच्छा जच रहा होगा, लेकिन क्षणिकवादमे विशुद्ध ज्ञानको आत्माका गुण नही माना है क्षणिकवादियोने ज्ञानका एक अलग पदार्थ माना है और ज्ञान ही ज्ञान है दुनियामे। पदार्थ ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ नही है। यह ज्ञानाद्वैतवादी क्षणिक सिद्धान्तका पक्ष है। आत्मा नही माना गया इस सिद्धान्तमे किन्तु हर समय जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे एक एक समयके ज्ञान ही पूरे-पूरे पदार्थ हैं इस तरहसे उन ज्ञान पदार्थको मानते हैं और उन ज्ञान पदार्थोमे एक सन्तान मानता है। जैसे कि एक तेलका दीपक जल रहा है तो जितनी जितनी तेलकी बूँदे एक एक पहुँच पाती हैं, उतने ही दीपक हैं अर्थात् एक

क्या कि दोनोके प्रति आगका प्रतिबन्ध हो गया है न कि अग्नि दालको पका दे इसका प्रतिबन्ध हुआ ! तब न तो उस समय अग्निका नाश कह सकते और न अग्निका तिरोभाव कह सकते। यही बात उस सोई हुई अवस्थाके ज्ञानकी भी है। उस समय प्रतिनिद्राके द्वारा जो सोए हुए ज्ञानका अभिभव हो गया है जिससे वहा अनुभव नहीं चलता, तो वहां न तो ज्ञानका नाश हुआ है, न ज्ञानका तिरोभाव हुआ है किन्तु ज्ञान का अविभव ही हुआ है। प्रतिबन्ध जरूर हो गया है। दूसरा भी दृष्टान्त देखो ! एक दीपक जल रहा है, उस दीपकके ऊपर यदि कोई खुला कनस्तर औंधा रख दिया है या कोई मटका वगैरह औंधाकर रख दिया है तो बतलावो उस जलते हुए दीपकका अवि-भव हो गया कि नहीं ? अब उस प्रतिबन्धका क्या यह अर्थ है कि दीपकका नाश हुआ ? नाश तो नही हुआ। क्या यह अर्थ है कि दीपकका तिरोभाव हो गया। तिरोभाव स्व पर प्रकाश वाले दीपकका क्या सम्भव है ? तो यदि यह कहोगे कि समझानेमे, बोलने मे तो नही आ रहा कि मणिमन्त्रके समय उस अग्निका प्रतिबन्ध किस प्रकार होता है, मगर विश्वासमें है स्वरूप सामर्थ्यका प्रतिबन्ध है जैसे कि स्वपरप्रकाशक स्वरूप प्रति-रोहित हो जाता है तो चैतन्यता अतिरोहित रहता है। बस, यही बात तो उस सोये हुएके ज्ञानमें है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जगती हुई हालतमें भी ज्ञान था और सोई हुई हालतमें भी ज्ञान है। जगते हुएकी हालतमें प्रतिनिद्रा न होनेके कारण बोध रूपता है, वहा अनुभव है। समझ चल रही है और सोये हुए पुरुषके ज्ञानमें प्रतिनिद्रा से अभिभव होनेके कारण वहाँ समझ नही चल रही है।

रागादि विनाशके कारणके सम्बन्धमे क्षणिकवादीका मन्तव्य—इस प्रकरणमें मुख्य बात तो यह चल रही है ना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है विशुद्ध ज्ञानके मायने क्या है। रागादिमान ज्ञान न रहकर रागादिरहित के ज्ञान होना। अथवा रागादिरहित ज्ञान क्या ? रागादि न रहना। यहाँ यह पूछा जाने पर कि ऐसा कौनसा उपाय है जिस उपायसे राग नहीं रहता ? तो क्षणिकवादीने कहा कि विशिष्ट भावनाका अभ्यास करनेसे रागादिका विनाश होता है। कोई एक विशिष्ट उत्कृष्ट भावना है ऐसी जिसके बार बार करनेसे रागादिकका विनाश होता है। इसके अनेक अर्थ हैं बारह भावनाये भी ऐसी हैं अनित्य, अशरण, ससार आदिक समस्त बारह भावनायें ऐसी ही हैं कि जिनका बार बार अभ्यास करते रहनेसे रागा-दिक कम हो जाते हैं अथवा रागादिकका कुछ नाश भी हो जाता है। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि ऐसी भावना बनाये कोई कि मैं तो केवल ज्ञानरूप हूँ। ज्ञानके अतिरिक्त मेरे आत्माका और कुछ स्वरूप ही नही है, ऐसा अपने आपके बारेमे ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानमात्र हूँ। ऐसी निरन्तर भावना लगाये कोई तो उस अभ्याससे भी रागका विनाश होता है। लेकिन ये क्षणिकवादी लोग क्या मानते हैं ? इन भावनाओंकी बात वे नही करते हैं। किन्तु यह भावना बताते हैं कि मैं कुछ नहीं हूँ। यह तो केवल एक ज्ञानक्षण है। जिस कालमें जो ज्ञान होता है वही पूरा पदार्थ है, लगातार मैं नहीं रहता

मैं कल था। आज हूँ। कल रहूँगा। ऐसा मे हूँही नहीं मैं तो क्षणवर्ती हूँ। एक समय को उत्पन्न हो जाता हूँ फिर नष्ट हो जाता हू। मैं नित्य नही हूँ। इस प्रकारकी भावना कोई बनाये तो राग नष्ट होता है ऐसा ये लोग कहते हैं। और ऐसा माननेमे उन्होने हित क्या समझा? हितकी बात क्या ढूँढी ? यह हित ढूँढा कि जब हम यह समझते हैं अपने बारेमे कि मे पहिले भी था अब भी हूँ, आगे भी रहूगा तो अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं और अनेक उलझने आ जाती है। मैंने किया यह काम' मे करूँगा यह काम आदिक। इससे यह मानना श्रेयस्कर है कि मैं तो क्षणिक हूँ। सदा नही रहता हूँ मेरा पहिलेसे कोई लगाव नही है, आगे भी कुछ लगाव न रहेगा इस प्रकार क्षणमात्र अपने को माननेमे हित समझा है, यदि ऐसा क्षणिक अपनेको मानें, आत्मा न समझे। सदा रहने वाला न समझें, ऐसी भावना बने तो उससे रागादिकका विनाश होता है।

क्षणिकवादमे, विशिष्टभावनाभ्यासकी रागादिविनाशमे कारणरूपता की असिद्धि—रागादिविनाशके उक्त उपायपर विशेषवादी कह रहे हैं कि विशिष्ट भावनाके अभ्याससे रागादिका विनाश कहना अयुक्त है। क्योकि विनाश तो आपने निर्हेतुक माना है तब अभ्यास कारण बन ही नही सकता। विनाश निर्हेतुक है, बिना कारणके होता है, ऐसा क्षणिक वादियोने कहा है। पदार्थ जब एक ही समय रहता है, अगले दूसरे समयमे रहता ही नही है, तो पदार्थ इस ही स्वभावके कारण हुआ और आगे उसका विनाश कोई कर ही नही सकता। तो दूसरा कौन विनाश करे। जिस समय कोई आत्मा उत्पन्न हुआ है उस समय पहला आत्मा तो रहा नही। उसका तो अभाव हो गया तो जिसका अभाव हो गया, जो है नही वह तो इसका नाश क्या करे-गा ? इससे आत्मा उत्पन्न होता है और अपने आप उसी समय नष्ट होनेमे हेतु कुछ नही रहा। कारण कुछ नही रहा। यह माना है क्षणिक वादियोने, लेकिन यहाँ तो कारण आ गया रागका विनाश विशिष्ट भावनाके अभ्याससे हुआ। तो इसका सिद्धान्त से विरोध है। दूसरी बात यह है कि क्षणिकवादमे अभ्यास बन ही नही सकता, क्योकि अभ्यास वहाँ होता है जहाँ ध्याता (ध्यान करने वाला) अवस्थित है। पर जहाँ ध्यान करने वाला कुछ है ही नही, तो क्षणिक होनेपर अभ्यास क्या बनायें ? क्योकि कि आत्मा क्षण क्षणमे नया-नया बनता है ? जब नया-नया आत्मा बने तो अभ्यास फिर किसका किया जाय ? एक आदमी हो, जिसपर बहुत सी बातें गुजरती हैं, बहुतसे धक्के लगते हैं, धोखे आते हैं, ज्ञान जगता है, समझ बनती है, ऐसा ही पुरुष तो अन्त प्रकाश पानेपर ध्यान कर सकेगा। जो क्षण-क्षणमे उत्पन्न हुआ और नाश हुआ वह अभ्यास किसका करेगा। यह भी कहना युक्त नही है कि सतानकी अपेक्षासे उसमे एक अतिशय ऐसा बन गया कि अभ्यास कर रहे हैं वे सब क्षण-क्षणमे उत्पन्न होने वाले आत्मा। अतिशय न बननेका कारण यह अन्वयके अभावमे सतान भी कोई चीज नही बनती। अत रागादिक सहित ज्ञानसे साधारण ज्ञानसे रागादिरहित ज्ञानकी याने असाधारण ज्ञानकी उत्पत्ति सम्भव नही है, क्योकि अविशिष्ट (साधारण) ज्ञानसे उत्तरोत्तर

सातिशय ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकेगे ? इस कारण योगियोका ऐसा ज्ञान बनना कि जिसमे समस्त पदार्थ दूर हो जायें ऐसे विज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है, यह क्षणिक वादमे नही बनता।

मोक्षोपायकी जिज्ञासा और विवेचन देखिये जितने भी दार्शनिक हुए हैं सबने मार्ग निकाला है कि ससारके दु खोंसे हटनेका उपाय क्या है। सबने अपनेको दुःखी अनुभव किया। जो क्षणिकवादी लोग हैं वे भी अपनेको दु खी अनुभव कर रहे हैं तब तो यह उन्होंने विचार ढूँढा कि आत्मा क्षण क्षणमे नया नया होता है। पहिलेसे किसी आत्माका सम्बन्ध ही नही है। तो ऐसा ही मानने तो विकल्प दूर हो जायेंगे। जब सारी कल्पनायें समाप्त हो जायेंगी और एक क्षणमात्रका जिसे ज्ञान है, उस रूप ही अनुभव बनेगा तो राग नष्ट होगा, कल्पनायें दूर होंगी मोह मिटेगा। तब शान्ति मिलेगी तो लो इन विशेषवादियोंने यह उपाय ढूँढा है कि आत्मामें जो ज्ञान लगा हुआ है इससे ही तो दु ख है। जब खबर आती है कि अमुक मिलमें इतने लाख रुपयोंका टोटा पड गया है, यह बात ज्ञानमे आयी तभी तो दु ख हुआ। तो सारे दु खोंकी जड यह ज्ञान है। इससे ज्ञान ही न रहे आत्मामें उसका नाम मोक्ष है। यह उन्होंने उपाय ढूँढा कोई दार्शनिक पूछता है कि आत्माका स्वरूप तो एक सहज ज्ञान है, केवल ज्ञान स्वभाव, प्रतिभासमात्र ज्ञानमात्र, लेकिन अनादि कालसे उपाधिका सम्बन्ध है शरीरका बन्धन है कर्मोंका सम्बन्ध है। जिस कारणसे यह ज्ञान अपनी विशुद्ध हालतमें प्रकट नही होता और इसकी कल्पनाका रूप बन गया है ज्ञान तो करते हैं वे ससारी जीव मगर विकल्परूपसे ज्ञान करते हैं, कल्पनाये उठाकर ज्ञान करते हैं, यह अमुक है, यह मेरा अमुक है, ये मेरे घरके लोग हैं, ये दूसरे लोग हैं। यह अमुक इष्ट चीज है, ऐसा विकल्प कर करके यह ज्ञान बना करता है। जब आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका परिचय हो जायगा यह मैं आत्मा एक विशुद्ध जाननमात्र हू, इसमे जो कल्पनायें उठा करती हैं यह मेरे स्वरूपका काम नही है। यहा राग भावका ससर्ग हो गया है जिससे ज्ञानका कल्पनारूप बन गया है। यदि राग स्नेहभाव इनका सम्पर्क न रहे तो इस तरहकी कल्पनायें नही बन सकतीं। इस रागको दूर किया जाय तो यह कल्पनाओंका विकृत रूप भी मिटे। और फिर ज्ञानका वह विशुद्ध स्वच्छ जाननमात्र स्वरूप प्रकट हो तब शान्ति मिलेगी। यह उपाय बहुत कम दार्शनिकोंने जाना पाया है।

सान्वय विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोक्षस्वरूपताका प्रतिपादन--यहा कुछ समय तक विशेषवादी और क्षणिकवादीका परस्पर विरोध था, अब उस सम्बन्धमे स्याद्वादी लोग कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे और उस बीचमें कुछ शङ्कायें आयेंगी, उन्हें चाहे विशेषवादीकी तरफसे समझो, चाहे क्षणिकवादीकी तरफसे समझो। स्याद्वादी कहता है कि जो विशुद्ध ज्ञानके उत्पन्न होनेका नाम मोक्ष कहा है उसमे इतना सशोधन और कर दो कि विशुद्ध ज्ञानके सतानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष

है तो यह सही बैठ जाता है। विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिमे आगे न रहा ज्ञान और विशुद्धज्ञानकी संतानकी उत्पत्ति कहनेपर यह सिद्ध होता है कि यह ज्ञान आगे भी प्रतिविशुद्ध रहेगा। जैसे मुक्ति अवस्थामे केवल ज्ञान हुआ तो अब केवल ज्ञान, केवल ज्ञान, इसकी ही संतान चलती रहेगी। अभाव न होगा, पर क्षणिकवादमे ज्ञानके संतानका अभाव हो जाता है ऐसा विशुद्ध ज्ञानको माना है। संतान होना, ज्ञानकी संतति होना यह मानना पडेगा। और, मानते भी हो कुछ सीमा तक। किन्तु वह चित्तकी संतति अन्वयसहित है अर्थात् उसके आधारभूत आत्मा है। ज्ञान स्वतन्त्र एक एक पदार्थ नही है, एक पदार्थ तो आत्मा है और उस आत्मामे उत्तरोत्तर ज्ञान चलता रहता है। जब वह ज्ञान रागादिरहित विशुद्ध होता है तब उसका नाम मोक्ष है। जब यह ज्ञान विकृत चलता है, कल्पनाओं सहित चलता है तब इन ज्ञानोका नाम है संसार। तो एक आत्मा मानना पडेगा, क्योकि जो बँधा है वही तो छूटेगा। जब बन्धन मानोगे तो मोक्ष मानना पडेगा। अब एक समयमे ज्ञानपदार्थ उत्पन्न हुआ तो उसका बन्धन क्या रहा ? और भी क्या रहा ? एक आत्मा है, वह आत्मा अपने विभावोसे बधा है, और वही आत्मा अपने आत्माके सहजस्वरूपके ज्ञानसे छूट जाता है, तो जो बँधा हुआ होता है वही तो छूटा करता है पर निरन्वय चित्त संतान माननेपर बन्धन भी सिद्ध नही होता है और जब बन्धन सिद्ध नही होता तो मोक्ष भी सिद्ध नहीं होता। क्या यह युक्त है कि दूसरा तो बँधे और तीसरा मुक्तिका उपाय करे तथा कोई चौथा छूटे। जब आत्मा नये-नये पैदा होने व ले कहते हैं तो बँधा तो कोई आत्मा था और मोक्षका उपाय किसी दूसरे आत्माने किया और मोक्ष हुआ किसी अन्य आत्माका तो यह तो विडम्बनाकी बात है। एक सदा रहने वाला आत्मा पहिले मानो तब बन्धन और मोक्षकी बात सिद्ध हो सकती है।

क्षणिकवादमे बन्ध और मोक्षका अनियम - क्षणिकवाद बौद्धोका सिद्धान्त है अर्थात् बौद्धबन्धु क्षण-क्षणमे नया-नया पदार्थ उत्पन्न होता है, कोई पदार्थ सदाकाल नही रहता, ऐसा मानते हैं। जैसे एक शरीरमे दिन भरमे अनेको लाखो करोडो आत्मा उत्पन्न होते हैं। एक आत्मा नही है और स्याद्वाद है जैनोका सिद्धान्त। जैन लोग ऐसा मानते हैं कि आत्मा एक है, सदा रहता है, अजर अमर है, लेकिन यह आत्मा प्रतिसमय परिणमनशील है सो यह आत्मा उपाधिके सम्बन्धसे, कर्मोके सम्बन्धसे नाना गतियोमे भ्रमण करता है और क्रोध, मान, माया, लोभादिक अनेक परिणाम किया करता है तथा निरुपाधि अवस्थामे विशुद्ध ज्ञातृत्व परिणमन करता है। ऐसे यहाँ दो सिद्धान्त हैं ना, क्षणिकवाद और स्याद्वाद। तो क्षणिकवादियोके प्रति कह रहे हैं स्याद्वादी कि एक आत्मा यदि नही मानते और मानते हो कि जुदे-जुदे समयोमे जुदे-जुदे ज्ञानपदार्थ पैदा होते रहते हैं तो फिर मोक्षका उपाय क्यो करते ? क्योकि एक आत्मा एक समय रहा, दूसरे समय दूसरा रहा। जब अलग-अलग समयोमें अलग पृथक आत्मा रहता है तब मोक्ष किसको कराते हो ? बँधा भी

कोई नही, मुक्त भी कोई नही, एक समयमे पैदा हुआ उसी समयमें नष्ट हुआ, अब किसको मोक्षकी जरूरत है ? कोई बँधा हो तब तो उसे मोक्षका उपाय करना चाहिए और करता है मोक्षका उपाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरा तो कोई बँधा था और दूसरा ही कोई मुक्त हुआ है।

ज्ञानक्षणोमे सतानकी एकताका सुझाव—इस प्रसङ्गमे क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि यद्यपि वे ज्ञान क्षण-क्षणमे नये-नये बनते हैं लेकिन उनमें सतानकी तो एकता है। जैसे एक लालटेनके दीपककी लौ नई नई निरन्तर बन रही है। जहाँ एक बूंद जली वह पहिला दीपक है वहाँ तेलका दूसरा बूंद पहुंचा तो दूसरा दिया जल रहा है, फिर तीसरा बूंद पहुंचा तो तीसरा दिया जल रहा है, तो जितने बूंद पहुँचते हैं उतने दिया जल रहे हैं लेकिन एक मालूम पडता है। सतान बराबर चल रही है। कुछ बीचमे अन्तर नही आया, इसी तरह ये आत्मा नये नये एकदम लगातार उत्पन्न होते रहते हैं। एक दिनमें अरबो खरबों आत्मा उत्पन्न हो गए। तो उन सब आत्माओकी सतान एक है। सतानके मायने बाल-बच्चे नही, सतानके मायने सिलसिला। एक शरीरमे वे नये-नये आत्मा उत्पन्न हो रहे हैं। इस कारण ही बद्धकी मुक्ति सम्भव हो गई। अर्थात् सतान एक हैं ना, तो अब बँधा आत्मा लगने लगा, और जब बँधा लगने लगा तो उनका मोक्ष मान लिया जायगा। यहाँ क्षणिकवादीका अभिप्राय यह है कि आत्मा तो नये-नये उत्पन्न होते रहते हैं पर उनमे सतान एक रहती है। जैसे एक हारमें दाने तो न्यारे-न्यारे रहते हैं पर उन सब दानोंमे एक सूतकी सतान रहती है। उस एक सूतमे पिरोये हुए होनेसे हारके उन दानोमें प्रभाव बन जाता है। इसी तरहसे उन दानोकी भाति आत्मा तो न्यारे-न्यारे हैं एक ही शरीरमे पर उनमे सतान एक लग रही है।

सतानकी एकताके कथनमे आत्मद्रव्यका आयातत्व—सतानकी मान्यता पर क्षणिकवादियोसे पूछा जा रहा है कि उप सतान शब्दका अर्थ क्या है ? अथवा सतान शब्दसे जो तुमने समझा, दूसरेको समझाते हो वह बात वास्तविक सत् है या नहीं ? यदि वास्तविक सत् कहने लगोगे कि हाँ सतान वास्तवमें है, कोई पदार्थ है सतान, तो उसीका नाम हम आत्मा कहते हैं। कहते हो कि सतानमें अनेक ज्ञान उत्पन्न हो रहे हैं और स्याद्वाद कहता है कि एक आत्मामे क्रमसे नये-नये अनेक ज्ञान उत्पन्न होते हैं, तो सतान कहो या आत्मा कहो जो उन सब पर्यायोमे रहता है ऐसे एक पदार्थके माने पदार्थकी सत्ता नहीं रह सकती। यदि कहो कि सतान तो कल्पनामात्रसे सत् है वास्तवमें सतान कोई वस्तु नहीं तो एक तो कोई रहा ही नहीं। सतान वास्तविक रहा नहीं। जिस किसी भी शरीरमें जितने ज्ञानक्षण आत्मा उत्पन्न हो रहे हैं अरबो खरबों उन सब आत्माओमें, उन ज्ञानोमें जब कोई एक वस्तु न रही तो यही तो अर्थ

हुआ कि कोई तो बधा है और कोई छूटता है। फिर मुक्तिके लिए प्रवृत्ति नही हो सकती है।

उदाहरणपूर्वक ज्ञानक्षणोमे उपादान भूतसत्‌की सिद्धि -जैसे एक नाटक मे दिखाते कि एक क्षणिकवादी सेठ था, था वह कजूस। उसकी गाय एक ग्वाला चराने ले जाता था। एक माह तक चरानेके बाद ग्वालाने जब चराईके दाम मांगे तो वह सेठ क्या कहता कि जिसनेतुम्हें गाय चरानेको दी थी वह तो अब रहा नही क्योकि आत्मा क्षण-क्षणमे नये-नये उत्पन्न होते हैं। जिस आत्माने तुम्हें गाय चरानेको दी थी उसके मिट जानेके बाद तो करोडो आत्मा और उत्पन्न हो चुके। अब तुम किससे मांगते हो? कौन तुम्हे चराई देगा? तो ग्वाला बडा दुःखी हुआ कि यह पैसा भी नहीं देता है और बहाना भी बडा दार्शनिक ढूढ़ रहा है। तो दूसरे दिन ग्वालाने गाय को अपने घर बांध लिया। सेठके घर न भेजी। अब सेठ उस ग्वालाके घर पहुँचा कहा भाई तुम गायको घर क्यो नहीं लाये? तो ग्वाला कहता है कि सेठ जी, जिसको तुमने गाय दी थी वह तो आत्मा रहा नही वह तो नष्ट हो चुका। उसके बाद करोडो नये आत्मा बन गए और जिसकी गाय थी वह भी आत्मा नही रहा तो अब तुम घर बैठो गाय तुम्हें न मिलेगी। तो सेठने उस ग्वालेको दाम दिया, क्षमा मागा तब गाय मिली तो यो ही समझिये क्षणिकवादमे क्षण-क्षणमे जब नये-नये आत्मा पैदा होते रहते हैं। तो अब देखिये बधनमे तो इस समयमैं हूँ। कषायोका दुःख भोग रहा हू अब अगले ज्ञानक्षणने अगले समयमे कुछ कुछ सम्यग्ज्ञान किया तो दूसरे आत्माने किया फिर तपश्चरण किया तो किसी अन्यने किया, और मोक्ष हुआ तो किसी अन्यको हुआ। तो ऐसे मोक्षमे कौन प्रवृत्त करेगा कि मरें तो हम मोक्षका उपाय करके और मोक्ष हो किसी दूसरेका। तो वहाँ बन्धन मोक्षकी कोई व्यवस्था नही बनती।

एकत्व व्यवसायसे एकको बद्ध और मुक्त माननेपर प्रश्नोत्तर-अब यहाँ क्षणिकवादी कह रहे हैं कि यद्यपि वे आत्मा अत्यन्त न्यारे न्यारे और अनेक हैं। एक शरीरमे जितने आत्मा उत्पन्न होते हैं वे सब भिन्न-भिन्न हैं अनेक हैं लेकिन उनमें एकत्वका अभिप्राय मजबूत लग रहा है। मैं वही आत्मा हूँ जो कल था। यद्यपि जो कल था वह मैं नहीं हूँ तबसे तो अब तक करोडो आत्मा उत्पन्न हो गए, लेकिन एकपनेका अभिप्राय रहता है इसलिए उसका यह सकल्प बनता है कि मैं बँधेहुए आत्माको मुक्त करूँगा। तो आत्मा न्यारे-न्यारे है, पर उनमें एक कल्पना बन गयी है कि मैं वही हूँ जो कल था इसलिए अबन्धमे प्रवृत्ति करने मे कोई दोष नही। तो उत्तर देते हैं कि यदि भिन्न-भिन्न अनेक आत्माओंमे एकत्वका अभिप्राय बन गया कि मैं वही एक हूँ जो कल था और इस एकत्वके अभिप्राय बन जानेसे फिर यह बात बन जायगी कि मैं बद्ध आत्माको मुक्त करूँगा। सो मोक्षका प्रयत्न करने लगता है। तब तो इसमें निर्विकल्प की भावना तो नही बनी। नैरात्मदर्शन तो नही हुआ अर्थात् आत्मा नही है कुछ वह

सब ज्ञान ही ज्ञान है और वह एक ही समय रहता है यह बुद्धि तो अब नही रही और इसी बुद्धिसे तुम मोक्ष मानते हो और बुद्धि करली मैंने एकताकी कि मैं बँधा हूँ उस बँधे ही आत्माको मुक्त करूँगा, तब नैरात्मदर्शन कहा रहा ? यदि कहो कि शास्त्र पढ़ लेनेसे उस निर्विकल्प क्षणिकका अनुभव हो जाता है तो फिर एकत्वका सिद्धान्त झूठा होगा फिर भी बताओ बद्धकी मुक्तिके लिए प्रवृत्ति कैसे हो ? फिर यह कहना व्यर्थ है कि मोक्ता तो कोई है नही, कौन छूटे ? सब न्यारे-न्यारे आत्मा हैं । तो यद्यपि मोक्ता कोई नही हैं फिर भी जो एकपनेका भाव बन रहा था, मैं वही हूँ जो पहिले था, ऐसा जो मिथ्याभाव बन रहा था उसको दूर करनेके लिए प्रयत्न होता है।

आत्मद्रव्य माननेपर बन्ध मोक्षकी व्यवस्था भैया ! प्रतीतिसिद्ध सही सीधी बात मानना चाहिये कि जो ज्ञान ज्ञानकी सनति चल रही है, ज्ञानके बाद ज्ञान, ज्ञानके बाद ज्ञान, ये लगातार ज्ञान पैदा हो रहे हैं, इनका उपादानभूत कोई एक आत्मद्रव्य है । उस आत्माके ये ज्ञानगुण हैं और उस ज्ञानका प्रतिसमय नया-नया परिणमन चलता है । आत्मा अविनाशी एक द्रव्य है । यह मानना ही पडेगा और जब आत्मा मान लेते हो तो बध मोक्ष सब बन गया, आत्मा है आज यह मलिन है इसका ज्ञान दूषित है रागादिक सहित है और यह अपने सस्कार अच्छे बनाये, सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करे तो इसका यह मलिन भाव दूर हो जायगा और वह मुक्त हो सकता है । तो एक आत्मतत्त्व मानकर फिर यह कहना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है सो तो बात घटित होती है पर आत्मा न माननेपर फिर कहना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है उसकी सिद्धि ही नही हो सकती, क्योकि सारे ज्ञान मान लो, तिसपर भी अगर उनमें आधारभूत कोई एक जीव द्रव्य नही है तो बध मोक्षके लिए कौन प्रवृत्ति करे ? किसको जरूरत है कि मैं छूट जाऊँ ? वे सब न्यारे न्यारे हैं ही । इससे आत्मा माना, और आत्मा है ज्ञानका पुञ्ज । ज्ञान उसका स्वभाव है और उस ज्ञानका परिणमन होता है । जब शुद्ध परिणमन होता है तो मोक्ष है ।

ज्ञानक्षणोमे अनुयायी जीवद्रव्यकी प्रसिद्धि — अब यहा क्षणिकपना पुन कह रहे कि भाई ! एक आत्मा ज्ञानक्षणोमे अनुयायी कैसे मानलें ? अर्थात् जितने ज्ञान पैदा हो रहे हैं एक शरीरमे, उन ज्ञानोंका आधारभूत आत्मा कोई नही है क्योकि वे सब ज्ञान न्यारे-न्यारे हैं । एक दूसरेसे विलक्षण हैं । उनकी सत्ता अत्यन्त जुदी-जुदी है । यदि अत्यन्त जुदी-जुदी सत्ता वाले ज्ञानोमें एक अनुयायी जीवद्रव्य मान लिया जायगा तो फिर साकर्य और अन्वय हो जायगी । अत ज्ञानक्षणोमें कोई एक रहने वाला जीव कैसे माना जा सकता है ? आचार्य उत्तर देते हैं कि यह तो स्वसवेदनसे सबको प्रतीति हो रही है कि मैं वही आत्मा हूँ । सब जीव मान रहे हैं कि मैं जीव हू । सबको ध्यान है । अह प्रत्ययसे सबको जीवकी प्रतीति चल रही है । मैं हू और सुबह भी मैं था, कल भी मैं था, इस जन्मसे पहले भी मैं था । जो नही होता

वह कभी उत्पन्न नही हो सकता । यह वेदान्तियोका सिद्धान्त है कि जो पदार्थ है ही नही, असत् है, वह असत् कभी उत्पन्न नही होता और जो पदार्थ है सत् है उसका कभी विनाश नही होता, चाहे शकलें बदल जायें पर सत्पदार्थका कभी नाश नही हो सकता । जैसे एक मिट्टी है, तो उसका कोई नाश कर सकता है क्या ? घडा बन गया तो भी मिट्टी रही, खपरियाँ कर दी तो भी मिट्टी रही, उसे पीस दिया और फैला दिया तो भी पुद्गल स्कध रहा और कभी वह मिट्टी पेडरूप भी बन जाय, उसका परमाणु वृक्षरूप हो जाय तो भी पुद्गल तो रहा । जो सत् है, उसका कभी विनाश नही हो सकता । एक भी उदाहरण ऐसा न मिलेगा कि जो परमाणु है या कोई चीज है उस चीजका कभी बिल्कुल नाश हो जाय । तो सब अनुभव कर रहे हैं कि मैं हूँ तो जो मैं हूँ जो यह सत् है, इसका कभी नाश नही हो सकता है और न यह कोई नया कुछ है । इससे सिद्ध है कि मैं एक चैतन्यस्वभाव वाला जीव द्रव्य हूँ और अनादिसे हूँ, अनन्त काल तक रहूँगा ।

अलौकिक कार्य करनेमे भलाई -भैया ! जब मुझे अनन्त काल तक रहना है तो किस तरहसे रहना है सो तो निर्णय रखो ! क्या इसी तरह जन्म मरण करते हुए, विषय कषायोके परिणाम करते भोगते हुए दुखी रहकर रहना है ? इससे तो लाभ है नही तब ऐसा उपाय बनावें कि जिससे जन्म-मरणकी परम्परा मिटे । लोग चाहते हैं कि मैं जीवनमे ऐसा काम कर जाऊँ जो बहुत महत्वपूर्ण हो, किसीने नही किया हो कोई खास काम कर जाऊँ । अरे ! जीवनमे खास काम क्या हो सकता है ? सो तो निर्णय रखो । भारी सम्पदा जोड लेना यह जीवनका खास काम नही । देशमे अपनी नामवरी फैला देना यह भी कोई खास काम नही अथवा परिजनोसे स्नेह बढ़ाकर उनकी रागभरी बातोको सुनकर अपने आपमे बडप्पन महसूस करना यह कोई खासा काम नहीं । ये सब तो अनादि कालसे इस जीवने अनेक भवोमे किये । खास काम तो यह है कि मैं अपने स्वरूपको जान जाऊँ कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञानप्रकाशमात्र आत्मतत्त्व हूँ और उसका ऐसा ज्ञान बनाऊँ उसका निरन्तर अनुभव करूँ कि फिर वही सत्यप्रकाश मेरेमे बराबर बना रहे ताकि सर्व प्रकारके रागद्वेष मोह सकल्प विकल्प दूर हो जायें । इससे तत्काल भी लाभ होता है और भविष्यमे भी इसका बडा भारी लाभ है । यही है मोक्षका उपाय । यह बात तो तब बन सकती है जब कोई एक आत्मद्रव्य माना जाय । देखो, सबको अपने विश्वासमे बना हुआ है कि मैं कोई आत्मा सत् हु, जो विश्वासमे है, जो प्रतीतिमे आ रहा है उसका विरोध कैसे? विरोध तो उसका होता है कि जो बात पाई न जाय ।

प्रत्यभिज्ञान प्रत्ययसे शाश्वत आत्मद्रव्यकी प्रसिद्धि -और भी सुनो यदि आत्मा न हो तो व्यवहारमे, व्यापारमे, प्रत्यभिज्ञान ज्ञान नही बन सकता । प्रत्यभिज्ञान अनेकविध होते हैं जिनमे एकत्व प्रत्यभिज्ञान भी है । एकत्व प्रत्यभिज्ञान कहते हैं

उस ज्ञानको जिस ज्ञानमे यह प्रतीति रहती है कि मैं वही हूँ जो कल था। इसका नाम है एकत्व प्रत्यभिज्ञान यह मनुष्य उस वर्ष भी था और वही मनुष्य अब भी है। तो इस प्रत्यभिज्ञानमे एकत्व विषय है। तो अपने आपमे एकत्वका ज्ञान है कि नही ? किसीको हजार रूपया उधार दिया तो ज्ञान तो बना है ना कि उसे दिया था, मैंने दिया था। तभी तो उसका रोजगार चल रहा है। यदि क्षणिक क्षणिक आत्मा हो तो रोजगार कौन करे ? व्यवहार कैसे बने ? ? क्षणिकवादी यहाँ कह रहे हैं कि वास्तवमें कोई एक आत्मा नहीं है, लेकिन आत्माके बारेमें कल्पना बन गयी है कि मैं वही एक हूँ। तो जब एकत्वकी कल्पना बनगई जैसे कि बाहरके पदार्थमें भी एकत्वकी कल्पना बन गयी। तो यह प्रत्यभिज्ञान बनने लगा। इस जीवने अपने आपके शरीरमें होने वाले नाना ज्ञानक्षणोमे एकताकी कल्पान बनायी। मैं वही हूँ जो वर्षोमें चला आया हू। और दूसरे जीवो शरीरोमे भी नाना जीव उत्पन्न हो रहे हैं उनमे भी केवल कल्पना बन गयी कि यह वही है जो वर्षोंसे चला आ रहा। तो ऐसी एकपनेको कल्पना बन जानेसे व्यवहार चलने लगता है। समाधान देते हैं कि यदि यह एकपना केवल कल्पना मात्रका है, प्रत्यभिज्ञान यदि एकत्वका विषय कर रहा है तो जिस समय यह अनुमान किया कि जगतमें जितने पदार्थ हैं वे सब क्षणिक हैं, सत् होनेसे। तो जिस समय पदार्थोंके क्षणिकपनेका निश्चय किया जा रहा है उस समय तो एकत्वका ज्ञान नही रहा क्योंकि कल्पनामें एकत्वके अभिप्राय बनानेमें और क्षणिकपनेका ज्ञान करनेमें परस्पर विरोध है। वहाँ प्रत्यभिज्ञान नहीं ठहर सकता। जब क्षणिक है एसा निश्चय किया जाय तो वहाँ वही मैं हूँ जो पहिले था यह कैसे बन सकता है ? कहते हैं किनद बने एकत्वका ज्ञान तो यह भी बात ठीक नही है क्योकि सभी देहातीसे लेकर बडे-बडे विद्वानो तक सबको यह एकत्वका प्रत्यभिज्ञान हो रहा है। यदि नहीं मानते जीव, नही मालूम पडता कि वह एक है तो उसी समय निर्विकल्प दर्शन हो जानेसे फिर सभी राग सबके छूट जायेंगे और सबका मोक्ष हो जायगा।

अहप्रत्ययतवेद्य आत्मद्रव्यमे बन्ध मोक्षकी व्यवस्था—निष्कर्ष है कि सभी जीवोका अपने बारेमें यही निर्णय है और प्रतीति है कि मैं वह हूँ जो पहिले था। अब मेरा जो वास्तविक स्वरूप है उस स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो ये रागद्वेष छूटे और मुक्ति हो जाय। जब झूठा ज्ञान लग रहा है। बाह्य पदार्थोंको हम अपना मान रहे हैं तो ससारमे रुलते रहते हैं। गल्ती तो है हमारी, परमें हूँ कोई एक और गल्ती कर रहा हू और वही अपनी गल्ती छोड देगा वही स्वय ज्ञानमे आ जायगा, वही समाधिभाव उत्पन्न करेगा तो इसीको मोक्ष हो जायगा। तो एक जीव मानना ही पडेगा अपने आपको कि मैं वही एक आत्मा हू। अब मैं बन्धनमें हूँ और आगे मैं मुक्त हो जाऊँगा। यदि इस अभिप्रायको जैसा कि सब लोग जान रहे हैं कि मैं वही एक हूँ इसे भ्रमकी बात मानने लगे तो फिर जो प्रत्यक्ष दिख रहा है सब सिद्धान्त भ्रान्त हो जायेंगे। जितने भी प्रत्यक्ष हो रहे हो, बाहरमें हो रहे हों, अन्तरमे हो रहे हों सब

भावोंमे एकत्वके ढङ्गसे प्रतीति होती है । जैसे यह चौकी वही है जो पहिलेसे देखते आये है, या इसमे नाना चौकिया और पैदा हो रही हैं । हर समयमे एक नई चौकी वन रही है ऐसी क्या बात है ? अरे ! विल्कुल स्पष्ट निर्णय है कि चौकी वही है । ऐसे ही अपने वारेमे सबको स्पष्ट निर्णय है कि मैं वह आत्मा हूँ जो पहिले था और आगे भी रहूगा । बाह्य पदार्थोंमे और अपने आध्यात्मिक भावोमे एकत्वके ग्राहकरूप ही सारे प्रत्यक्ष चल रहे हैं । तो यह प्रत्यक्ष भ्रान्ति नही है । ये सब सत्य हैं, लेकिन ये सब पर्यायरूपमे स्थितिया हैं । द्रव्यदृष्टिसे तो इस चौकीमे जो केवल एक एक परमाणु हैं वे सत्य हैं । परमाणुओके समूहसे एक पिण्ड बन गयी चौकी और यह चौकी चूँकि बिखर जायगी और चौजीरूप न रहेगी तव तो यह चौकी गलत है, पर इसमे रहनेवाले जो परमाणु हैं वे बरावर सत् हैं । इसी प्रकार आत्मा जो चार गतियोमे भ्रमण कर रहा है तिर्यञ्च, नारकी, मनुष्य, देव बन रहा है यह तो उसका मायारूप है, पर इन सबमे चलने वाला जो एक आत्मा है वह आत्मा मायारूप नही है । प्रत्यभिज्ञानसे वस्तुकी एकता बरावर जानी जा रही है । तो जो अनुभवमे आ रहा उसका भी विरोध किया जाय तव तो जगतमे कोई व्यवहार ही नही बन सकता है । इससे मानना होगा कि मैं आत्मा एक हूँ और इस समय अपने विपरीत भावोके कारण बद्ध हूँ और सम्यग्ज्ञान करके अपने स्वरूपकी सावधानी करके जब अपने आपको सम्हाल लूँगा तो मुक्त हो जाऊँगा ।

आत्मामे विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोहरूपता – मुक्त होनेका मतलब यही तो है कि जो मैं रागमे, स्नेहसे जकडा हुआ हूँ वे रागके बन्धन टूट जाये । मैं अपने ही भावोसे बँधा हुँ, मैं अपने ही स्वभावको जान लूँ और उन रागादिक भावोको तोड दू तो मुक्त हो गया । कोई स्त्रीसे बँधा है क्या ? हम तो यहा सब भाइयोको अकेले ही देख रहे हैं । स्त्रीसे बँधे हुए कोई नजर नही आ रहे हैं । सभी स्वतन्त्र बैठे हैं । लेकिन स्त्रीके बारेमे जो आपके विकल्प चल रहे होगे – कि अमुक मेरी स्त्री है, वह बडी विनयशील है आदिक । तो आप अपने इन भावोसे ही बँधे हैं न कि स्त्रीसे । क्या कोई सस्थासे बँधा है ? सस्थासे कोई नही बँधा है, पर उस सस्था सम्बन्धी जो विकल्प बना लिए हैं कि मैं इस सस्थाका अधिकारी हूँ इसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है आदिक इन भावोसे आप बँधे हैं न कि सस्थासे । तो इस राग भावका बन्धन मिटाना है, इसीका नाम मुक्ति है । यह बात तव सम्भव है जब एक आत्माको माना जाय कि यह मैं एक हू, अभी बँधा हूँ, ज्ञान करूँगा तो मैं मुक्त हो जाऊँगा । तो एक आत्मा मानकर फिर कहो कि निर्मल ज्ञान हो जानेका नाम मोक्ष है, तो ठीक बन जायगा ।

अनेक भाव होनेपर भी अनुभूयमान आत्मैकत्वकी प्रसिद्धि—देखिये ! आत्माका एकत्व अर्थात् सबको अपना अपना आत्मा एकत्वरूपसे अनुभवमे आ रहा है, इसमे सुख दुख विकल्प आदि अनेक भाव हो रहे हैं, इस अनेकताके कारण यदि अनु-

भवमे आये हुए एकत्वका विरोध करोगे तो इस भेदक्षणिकवादमे न तो ज्ञानक्षणोंका स्वरूप बन सकेगा और न नीलादिक अर्थोंका स्वरूप बन सकेगा। ज्ञानमे तीन रूप होते हैं (१) ग्राह्यरूप (२) ग्राहकरूप और (३) सवेदनरूप । अर्थात् पूर्वज्ञानमे बोधरूपता ग्रहणमे आती है पदार्थोंके आकार ग्रहणमे आता है यह तो ग्राह्यरूप और ज्ञान ज्ञाननान्तरको बोधरूपत्व सौंप देता है ग्रहण कराता है, ज्ञानसे बोधरूपताको ग्रहण करता है ज्ञान पदार्थोंका आकार ग्रहण कराता है यह है ग्राहकरूप तथा ज्ञान स्वरूपत जाननरूप है, सो सवेदन करना स्वरूप हो है यह है सवित्तिरूप। तो इन तीनो विकल्परूपोंसे अध्यासित (प्रकम्पित) ज्ञानमे अनेकता आ गई सो अनेकत्वके साथ निरंश ज्ञानकी इकाईके साथ विरोध हो जानेसे ज्ञानका स्वरूप ही न रहा। इसी प्रकार अनुभूयमान एकत्वका अनेकत्वसे विरोध माननेपर पदार्थका भी स्वरूप न बनेगा क्षणिकवादमे पदार्थ है नील, कृष्ण, कटु मधुर आदि निरन्वय भावक्षण। तो उनमे। उदाहरणार्थ एक नीलक्षणको ले लीजिये। नीलक्षणमे स्वकार्यकर्तृत्व और परकार्याकर्तृत्व ये दो विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं अर्थात् नीलक्षण उत्तरनीलक्षणको तो उत्पन्न करता है और पीतादिक्षणोको उत्पन्न नही करता। तो इस तरह कर्तृत्व और अकर्तृत्व परस्पर दो विरुद्ध धर्मोंसे अध्यासित नील स्वलक्षणमे निजी एकत्वका, निरंश एकास्तित्वका विरोध हो जायगा, तो नीलक्षणका स्वरूप ही क्या रहा ? फिर तो तुम्हारे सब सिद्धान्तका लोप हो जायगा। अत आत्म मे अनेक भाव होनेपर भी स्वय के अनुभूयमान एकत्वकी सिद्धि मानना ही पडेगी।

सुषुप्तावस्थामे ज्ञानके सद्भाव व अभावकी चर्चा—इस प्रकरणमे तीन सिद्धान्तोंकी बात चल रही है – एक तो वैशेषिक जिनका विशेषवादका सिद्धान्त है और एक क्षणिकवादी जो क्षण-क्षणमे आत्माको सभी पदार्थोंको उत्पन्न होना मानते हैं, और एक स्याद्वादी जो कि द्रव्योंको नित्यानित्यात्मक मानते हैं। विशेषवादमे ७ प्रकारके पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं द्रव्य गुण, पर्याय सामान्य, विशेष, समवाय और ७वा पदार्थ है अभाव। इस सिद्धान्तके अनुसार आत्मामे ज्ञानस्वरूप नही है। आत्मा ज्ञानरहित होता है, उसका स्वरूप चैतन्य है केवल। ज्ञान न हो और चैतन्य हो मात्र ऐसा क्या स्वरूप हो सकता है ? इस सम्बन्धमे उन्होने यह कल्पना की कि ज्ञानका काम तो जानना है, जिसमे ये सब पदार्थ समझमे आते हैं। यह अमुक चीज है, यह इस आकार प्रकारकी है और चैतन्यके मायने है कि यह ज्ञान तो न रहे किन्तु साधारण चेतना रहे। कुछ ऐसी योग्यता है कि जिसमे ज्ञान जुडे तो ज्ञान जुडकर फिर सब पदार्थ जानते रहें। कुछ और थोडा सीधा समझना हो तो कुछ कुछ अदाजा किया जा सकता है दर्शनसे। जैसे कि स्याद्वादियोने, जैनोने दर्शनगुण माना है तो दर्शनगुणमे क्या होता है कि ज्ञान नही होता किन्तु सामान्यतया चेतना बनी रहती है, तो उससे कुछ समानताका स्वरूप रखने वाला वैशेषिकोंका चैतन्य है। ये वैशेषिक सोये हुएकी अवस्थामे ज्ञान नही मानते या तब ज्ञानका तिरोभाव मानते। हा चैतन्य

तो आत्माका स्वरूप है सो वह रहता ही है। इस दृष्टिसे सोये हुयेकी हालत जो ऊपर से जो दुनिया देखती है कि यह पुरुष कुछ ज्ञान नही कर रहा है सो ज्ञान नहीं है पर हां इसके अन्दर चेतना जरूर है। जग जानेपर वह फिर जानने लगता है। मरे हुए और सोये हुए इन दोनो प्रकारके पुरुषोमे फर्क तो है। तो सोये हुयेमे चेतना है, ज्ञान नही है और मरे हुएमे ज्ञान भी नही है और चेतना भी नही है ऐसी दो बातोका ये वैशेषिक भेद डालते हैं।

सर्वथा अभिभूत ज्ञानमे स्वकार्यकारिताका अभाव – इस प्रसङ्गमे यह बात चर्चामे आयी थी कि सोये हुएमे यदि ज्ञान न हो तो फिर जग जानेपर वह शयन का अनुभव कैसे बता देता है ? इस सम्बन्धमे वैशेषिकका कथन है कि सोये हुएमे ज्ञान तो नही रहा पर चैतन्य तो रहा, स्वपरप्रकाशक स्वभाव तो रहा, तो उस स्वभावके ही कारण उसमे सोई दशाकी बातका निरूपण करनेकी सामर्थ्य आ जाती है, इसका समाधान करते हैं कि यह बात ठीक नही, क्योकि अनुभव करना, जानना सोये हुएमे भी तो चलता रहता है। सोया हुआ मनुष्य भी तो अन्दर ही अन्दर अपने उन विकल्पोसे-जैसा कि भीतरी सस्कार है कुछ न कुछ चिन्तन करता रहता है, उसीका ही तो रूप यह स्वप्न आता है। सोये हुएमे जो स्वप्न आता है, बडी बडी बाते देख ली जाती हैं तो वह क्या चीज है ? मनकी ही तो कल्पनायें हैं। ज्ञानका ही तो काम है। और चूंकि सर्वत्र अभिभूत अर्थ ही अपना कार्य करता है सो स्वापदशायें भी अपनी सीमामें अनभिभूत ज्ञान है। वही ज्ञान ज्ञान कर सकता है जो अनभिभूत हो, उस ही ज्ञानमे यह सामर्थ्य है कि जाननका कार्य कर सके। यदि अनभिभूत ही पदार्थ जाननका कार्य करे यह न मानोगे तो फिर जब किसी आगके पास कोई प्रतिबन्धक मणि रख दी जाय तो भी आगको जलानेका काम करना चाहिये। प्रति-बन्धक मणि मत्रके आगे आग क्यों अपना काम नही करती ? यद्यपि मणिसे आग अभिभूत हो गयी, उसकी शक्ति रुक गई यह तो अविरुद्ध है फिर भी अभिभूत होनेपर भी कार्य करने वाला मान लिया तो आग भी वहाँ जलानेका काम करे। चाहे कोई मत्रवादी हो या कोई विरुद्ध दवा लगा दी गई हो फिर भी जला दे, पर वहा वह आग जलाती तो नही ? अथवा जब कोई अनध्यवसाय ज्ञान होता है जैसे कोई मनुष्य चले जाते हुएमे किसी दूसरी तरफ ख्याल किए हुए बडी जल्दी गमन कर रहा है तो रास्ते मे पैरके नीचे कोई तिनका छू गया तो थोडासा उसे ऐसा ख्याल आता है कि छू गया पर उस तरफ कोई ध्यान नही तो उसका निर्णय नही रहता कि क्या छू गया। तो अब हुआ क्या कि उस समय उसका ज्ञान अभिभूत था अर्थात् दूसरी जगह जो चित्त लगा हुआ है, उस दूसरी जगह चित्त लगा रहनेसे उसे अब अन्य चीजका ज्ञान रुका हुआ है, पर रुका हुआ भी ज्ञान कार्य करने वाला तो वहा भी स्पष्ट सम्वेदन होना चाहिये, ज्ञान होना चाहिये कि क्या चीज थी जो पैरमे लग गयी ? पर ज्ञान तो नही होता। यदि यह कहो कि उस समय मन और जगह लगा है इसलिए स्मरण नही

होता कि पैरमें क्या छू गया है ? तो कहते हैं कि यही बात तो सोई हुई अवस्थामें है, सोई हुई अवस्थामें शिथिलत्व आ गया अर्थात् तेज निद्राके कारण वह मूर्छितसा हो गया है इस कारण सोई हुई अवस्थामें उसे स्मरण नहीं रहता है ।

स्वाप (शयन) अर्थका निरूपण और भी देखिये ! अनध्यवसायके विषयका निरूपण नहीं होता, किन्तु सोनेके अर्थका निरूपण भी हो सकता है क्योंकि जगनेपर सबको यह ख्याल आ जाता कि मैं इतने समय तक निरन्तर सोया हूं । देखा मैं अद्धरात्रिमें खूब निरंतर सोया फिर कुछ जगा, फिर सोया, फिर जगा, लगातार सो नहीं सका, और इतनी देर मैं लगातार सोता रहा । ऐसा ख्याल है ना जगनेपर तो इससे सिद्ध है कि सोनेका भी उसे अनुभव है । जो मनुष्य सोता रहता है उसे सोने का भी अनुभव रहता है कि मैं सोया हुआ हूं । उस समय यद्यपि सोया हुआ हूं यह विकल्प नहीं करता, लेकिन जगनेपर जानता है कि मैं खूब सोया हुआ था । तो जिस चीजका अनुभव नहीं होता उसका स्मरण नहीं हुआ करता । यदि सोनेका अनुभव नहीं होता उसे सोई हुई हालतमें तो सोनेसे उठनेके बाद मैं खूब सोया, ऐसा स्मरण नहीं बन सकता था । जब जगनेपर यह स्मरण होता कि मैंने खूब सोया तो इससे सिद्ध है कि सोये हुएमें उसे सोनेका अनुभव था । हां, सोनेका जिस तरहका अनुभव होता है वही अनुभव था । कोई पुरुष आज ख्याल करता है कि कल मैंने यह खाया था तो कल खानेका उसे अनुभव था ना, तभी तो आज ख्याल करता है । पहिले जिस चीजका अनुभव किया हो उसका ही तो ख्याल आता है । बिना अनुभव की हुई चीज का ख्याल नहीं आया करता । तो सोनेसे उठकर जगे हुए पुरुषको जो यह ख्याल आता है कि मैं आज खूब सोया, तो सोनेका अनुभव भी चलता रहता था तब उसे ख्याल आया । यह बात नहीं है कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नहीं रहता है यह नियम है कि अनुभव की हुई बातका ही ख्याल आया करता है । यदि बिना अनुभव किए हुए भी सोनेका ख्याल आ जाय अर्थात् यह माना जाय कि सोई हुई हालतमें सोनेका अनुभव तो न था पर जग जानेका ख्याल आ गया कि मैं खूब सोया था । तो बिना अनुभव किए यदि ख्याल आने लगे तो सभी पदार्थोंका अटपट बिढङ्गा खूब ख्याल आये, क्योंकि तुमने यह मान लिया कि अनुभव किए बिना भी स्मरण हो जाया करता है, तो घट, पट, घर आदिक पदार्थोंका अनुभव तो बिलकुल न हो और स्मरण आने लगे, पर ऐसा होता तो नहीं, इससे सिद्ध है कि सोई हुई हालतमें भी ज्ञान बराबर रहता है । अब बड़ा तेज निद्राके कारण इन्द्रिय अभिभूत हो गई हैं, इन्द्रिय काम नहीं कर रही हैं, मत करें इन्द्रिय काम, लेकिन जो मन दबा हुआ होनेपर भी भीतर ही भीतर कुछ न कुछ अनुभव करता है । सोनेका भी एक अनुभव है ।

सुषुप्तकी तरह मत्त व मूर्च्छित दशामें ज्ञानके अभावका निराकरण — अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सोये हुएमें भी ज्ञान रहता है यह सिद्ध करनेके लिए

नही किया तो सब दशाओमे ज्ञान बरोबर अपना काम कर रहा है।

सुषुप्तमे ज्ञानके अभावकी सुप्तके अभावान्वित ज्ञानसे व ज्ञानाभावसे सिद्धिका अभाव यहाँ इस प्रसगमे दो बातें चल रही हैं परम्परमे। शकाकार तो मानता है कि सोई हुई अवस्थामे ज्ञान नहीं रहता है और स्याद्वाद कहता है कि सोई हुई अवस्थामें भी ज्ञान रहता है। अच्छा बताओ तो सही कि सोई हुई अवस्थामे ज्ञानका अभाव है इस बातको क्या सोया हुआ आदमी जान रहा है या पासमे बैठा हुआ कोई दूसरा जान रहा है? ये दो प्रश्न किये। कोई मनुष्य सो रहा है और उसमें बतलाते हो कि ज्ञान नही है अब ज्ञानका अभाव हो गया है तो उसमें ज्ञानका अभाव है इस बातको कौन समझ रहा है सो तो बताओ ? यदि कहो कि सोया हुआ पुरुष है वही जान रहा है कि ज्ञानका अभाव है तो वह सोया हुआ आदमी क्या जिस ज्ञानका अभाव है उस ही ज्ञानसे जान रहा है कि मेरे ज्ञानका अभाव है ? किस ज्ञानसे ? जिस ज्ञानका अभाव है, क्या उसी ज्ञानसे समझ रहा कि मेरे ज्ञानका अभाव है या ज्ञानका अभाव होनेसे समझ रहा वह सोया हुआ आदमी कि मेरे ज्ञानका अभाव है या उनसे अलग किसी अन्य ज्ञानसे समझ रहा है कि मेरे ज्ञानका अभाव है? यदि सोया हुआ आदमी जिस ज्ञानका अभाव है उसी ज्ञानसे समझ रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो यह तो बड़ी विरुद्ध बात कर रहे हो। उस ही ज्ञानका तो अभाव है और उस ही ज्ञानसे वह समझ रहा कि मेरे ज्ञान नही है इसे कौन मान लेगा ? यदि कहो कि ज्ञानका अभाव है इस कारण समझ रहा है कि मेरे ज्ञान नही है तो यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि ज्ञानका काम जानना। और जाननेमे आता है कोई सत पदार्थ। तो ज्ञानके अभावसे जानना नहीं बनता। ज्ञानसे जानना बनता। ज्ञानका अभाव होनेसे मेरे ज्ञान नहीं है ऐसा नही जाना जा सकता। ज्ञानसे ही जाना जा सकता कि मेरे ज्ञान नही है अथवा मेरे ज्ञान है। न समझनेसे यह नही परखा जा सकता कि मेरे समझमे ही नही आता। अरे कोई समझ है उस समझके द्वारा ही आप समझते हैं कि मेरी कुछ समझमे ही नही आ रहा है। ज्ञानके अभावसे ज्ञानाभाव निश्चित नही किया जा सकता। अगर ज्ञानाभावसे ज्ञानका असद्भाव जान लिया तो ज्ञानाभावका ही नाम ज्ञान बनागया तो नाममें ही वहाँ फर्क रहा। बात यह है कि ज्ञानसे ही तो जाना जा सकता कि मेरे अच्छा ज्ञान है, मेरे कम ज्ञान है, और ज्ञानसे ही यह जाना जा सकता कि मेरे कुछ ज्ञान ही नहीं हो रहा।

सुषुप्तमे ज्ञानके अभावकी सुप्तके ज्ञानान्तरसे सिद्धिका अभाव—सोये हुएमे सोया हुआ ही मनुष्य यदि अपने ही ज्ञानके अभावको जानता है तो किस साधनसे जानता है यह पूछा जा रहा है ? यदि कहो कि अन्य ज्ञानसे वह सोया हुआ मनुष्य ज्ञानके अभावको जान रहा कि मेरे ज्ञान नहीं है, इस प्रकारसे सोया हुआ जान रहा है किसी अन्य ज्ञानसे तो वह अन्य ज्ञान क्या उस सोई हुयी अवस्थामे हो रहा है या जगने पर प्रबोध हुएके ज्ञानसे या पहिले जगे हुएके ज्ञानसे हो रहा है ? यदि कहो कि सोये

हुएमे ही उसका ज्ञान ऐसा चल रहा है कि मेरे ज्ञान नही है तो ठीक है। अब ज्ञान बिल्कुल न रहा यह बात तो न रही। एक ज्ञानसे यह भी जान रहा सोया हुआ पुरुष कि मेरे ज्ञानका अभाव है। यदि कहो कि पहिले जग रहा था और सोनेके बाद कुछ चेत गया तो पूर्व जगनेके और सुप्तोत्थ चेतनेके कालमे होने वाले जो दो ज्ञान हैं-पहिले जगे हुएका ज्ञान और अब सो कर उठे हुएका ज्ञान, इन दोनो ज्ञानोसे वह जान रहा है बीच उसके ज्ञान न था। तो समाधान देते हैं कि जब जग रहे थे तबका ज्ञान तो तब ही था और जब सोकर उठा हैं तबका ज्ञान तब ही है। तो दोनो दशाओमे होने वाले ज्ञानोके समय सोये हुएके समयकी बात तो आयी नही, फिर जान कैसे गया। जब ज्ञान मे न आयें और तब भी जान जाय, याने जगनेके ज्ञानमे भी सोये हुएकी दशा नही आयी जगकर उठे हुएके ज्ञानमे भी सोये हुएकी दशा नही आयी और तिसपर भी, न आनेपर भी, अनुपलब्धलक्षण प्राप्त होने पर भी यदि सोये हुएके ज्ञानभावका ज्ञान हो जाय तो प्रत्यक्षसे ही परलोकका अभाव भी सिद्ध करलो, फिर अनुमान आदिककी क्या जरूरत है ? यो तो अन्य सभी प्रमाणोका उच्छेद हो जायगा। अत प्रतीति सिद्ध बातका अपलाप नहीं करना चाहिये।

आत्माकी अविनाशिता और ज्ञानमयता —आत्मा है वह एक भवमें एक शरीरमे कई वर्षों तक भी रहता है जैसे मनुष्यकी जिन्दगी ८० वर्षकी है, तो वह ८० वर्ष एक ही आत्मा है, न तो वहाँ नये-नये आत्मा पैदा हुए और न यही है कि आत्मामे ज्ञान नही है जब ज्ञानका सयोग होता है तब आत्मा जानता है, सोई हुई अवस्थामे ज्ञानका सयोग ढीला हो जाता है, इसलिए सोई हुई हालतमे आत्मामे चैतन्य तो है पर ज्ञानका काम नही है। ये दोनो बातें सही नहीं हैं। सारे भवमे एक ही आत्मा है और इस एक ही भवमें क्या यह भव भवमे एक यही आत्मा है। जितने आत्मा हैं वे सब सदा रहते हैं और अपने अपने कर्मानुसार ससारमे जन्म मरण किया करते हैं। वे सब आत्मा ज्ञानमय हैं। आत्मामेसे एक ज्ञानस्वरूप न माने तो आत्मा का सद्भाव नही रह सकता। ज्ञानसे ही रचा हुआ यह आत्मा है जिसे वैशेषिक चेतन कहते हैं वह चेतन क्या है ? जब ज्ञान विकल्पमे नही रहता, रागद्वेष कल्पनाओमे नही रहता उस समय ज्ञानकी ऐसी विशुद्ध दशा रहती है कि जहां एक केवल ज्ञातृत्व रहता है, केवल जाननहारपना रहता है। उस केवल जाननहारपनेकी स्थितिमे विकल्प नही है, सङ्कल्प नही है रागविरोध नहो है, इससे वे यह नही पकड पाते कि यहा ज्ञान भी हो रहा है क्योंकि लौकिक जन ज्ञान इस हीको माना करते कि जहाँ विकल्प उठे, विचार चले उसे ज्ञान समझते हैं, पर यह तो ज्ञान है ही नही। यह तो ज्ञानपे उपाधिकृत दोष आया है।

उदाहरणपूर्वक आत्मामे सर्वदा ज्ञानके सद्भावका प्रतिपादन—जैसे दो चीजें मिलकर कोई एक रूप बदल लें, उस बदली हुई हालतमे भी सूक्ष्म दृष्टिसे दो

चीजें हैं। अगर वे रूप बदल लें तो न उसका शुद्ध रूप रहा न दूसरेका शुद्ध रूप रहा, उसने अपनी बदल कर ली। इसी तरह ज्ञानमे रागका सम्पर्क जुड गया। चूंकि आत्मा एक ही है और तन्मय दोनो ही हैं तो ज्ञान और राग इनके सम्पर्कसे एक कल्पना बन बैठी। उस कल्पनामें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें तो वहां भी बडा भेदज्ञान कर सकते हैं कि इसमें इतना मालिन्य अश तो रागका है और यह जो जाननका शुद्ध अश है वह ज्ञानका है लेकिन सूक्ष्म दृष्टिपर कौन ध्यान देता है। लोग सीधा ही यह जान जाते हैं कि ये कल्पनायें, ये विकल्प, ये घुडदौड, यह सब ज्ञानका ही काम है पर ज्ञानका शुद्ध काम केवल जानन है। जैसे आखका काम देखना है और आंखोंपर यदि लाल चश्मा लगा दिया जाय तो वे वस्तुयें लाल दिखती है। तो लाल निरखना यह आंखोका शुद्ध काम नही है। उसमें भी केवल निरखना आंखका काम है। जो ललामी रूप निरखा गया उसका कारण चश्माका सम्पर्क है। अथवा कोई हरा रङ्गीन वस्त्र लगा दिया तो कमरेमे हरा हरा प्रकाश छा गया। अब उस प्रकाशके बीच यह निर्णय करें कि प्रकाश किसका नाम है। जो यह हरा-हरा दिखता है यह तो रङ्ग है प्रकाश नही है। तो प्रकाश कोई ऐसी अनिर्वचनीय चीज है कि हरे रङ्गके होनेपर भी वहां जो कुछ उद्योत है बस उद्योतमात्र प्रकाशका काम है, हरा होना प्रकाशका काम नही है। इसी तरह जानन अश होना यह तो ज्ञानका काम है अब उसमें राग स्नेह विकल्प आदिक जो स्थूल रूप हो रहे हैं, ये ज्ञानके काम नही हैं। तो जब ज्ञान अपने स्थूलरूप को छोड देता है और एक विशुद्ध जानन अशमे रहता है उस स्थितिमे चूंकि विकल्प नही रहे सो यह ही मान लिया वैशेषियोंने कि आत्मामे ज्ञान है ही नहीं। आत्मामे तो मात्र चैतन्य है। लेकिन ज्ञान दर्शनके अतिरिक्त चैतन्यस्वरूप क्या ?

दर्शनज्ञानरूपताके बिना चैतन्यस्वरूपकी असिद्धी– चैतन्यसे आत्मा चेतता है तो चेतता है यह सामान्य विशेषात्मक है। कुछ भी बात हो, कोई भी पदार्थ हो वह सामान्य विशेषात्मक होता है। तो चेतना भी सामान्य विशेषात्मक हुई तो उसमें जो सामान्य चेतना है उसका नाम दर्शन है, जो विशेष चेतना है उसका नाम ज्ञान है। ज्ञानको छोड कर आत्मा अपनी सत्ता नही रख सकता है, अतएव आत्मा किसी भी परिस्थितिमे हो, चाहे मूर्छित दशामे हो चाहे सोई हुई अवथामें हो अथवा पागल अवस्थामे हो, सभी अवस्थामे आत्मा ज्ञानसहित ही रहता है आत्मा ज्ञानारहित नही होता। इससे यह मानो कि विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होनेका नाम है आत्माका मोक्ष। न कि ज्ञानके विनाशका नाम है आत्माका मोक्ष। तथा यह भी मानो कि विशुद्ध ज्ञान होनेपर आगे विशुद्धज्ञान विशुद्धज्ञान ही चलता रहता है और उन समस्त विशुद्ध ज्ञानो का आधारभूत एक आत्मा है। मोक्ष किसका हो ? एक आत्माका। किससे मोक्ष हो ? अशुद्ध ज्ञानसे। जो ज्ञान सराग चलरहा था तो उन रागोंसे मोक्ष होना है। ज्ञान तो अब वह शुद्ध हो गया है तो ज्ञानके शुद्ध होते ही आनन्द भी शुद्ध होता है, शक्ति भी शुद्ध रहती है और दर्शन भी शुद्ध रहता है तो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और

अनन्त आनन्द, इस चतुष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है इसमे रच भी सन्देह की गुञ्जाइश नहीं है ।

पार्श्वस्थ पुरुषद्वारा सुप्तपुरुषके ज्ञानाभावकी असाधना — प्रकरण यह है कि शङ्काकार मान रहा है कि सोये हुए मनुष्यमे ज्ञान नहीं रह । और यथार्थता यह है कि आत्मा तो अविनाशी है, वह तो सदाकाल है। सोये हुए मनुष्यमे भी ज्ञान है और यह मनुष्य मरण कर जाय, अगले भवमे जाय तब भी ज्ञान रहेगा, इसके पहिले भवमे भी ज्ञान था। आत्माका अविनाभावी धर्म है ज्ञान। ज्ञान न हो तब आत्मका कुछ स्वरूप ही नही है। जो लोग मानते हैं कि सोई हुई अवस्थामे ज्ञान नही रहता उनसे तीन विकल्प किये गए थे, जिनमें दो विकल्पोका तो खण्डन कर दिया। अब पूछत हैं कि जो सोया हुआ है उसमे ज्ञान नही है इस बातको जानने वाले क्या पासमे बैठे हुए कोई मनुष्य होते हैं ? सोये हुए मनुष्यमे ज्ञानका अभाव है, इसे सोया हुआ तो जान न सकेगा। उसके दोनो विकल्प तो निराकृत कर दिये। अब पूछ रहे हैं कि क्या पासमे बैठा हुआ कोई मनुष्य सोये हुएके उस ज्ञानके अभावको जानते हैं, यह भी बात युक्त नही है। क्योकि सोये हुएमें ज्ञान नही है, इस बातको सिद्ध करने वाला तुम्हारे पास कोई हेतु नही है। हेतुप्रसिद्धकारणानुपलब्धि, स्वभावानुपलब्धि, व्यापकानुलब्धि या विरुद्धविधि ये चार होते हैं अर्थात् ज्ञानभावका कारण न दीखे, स्वभाव नजर न आये तो कह सकते कि ज्ञान नही है। अथवा ज्ञानके विरुद्ध कोई बात समझमें आये तो कह सकते कि ज्ञान नही है, पर ये कोई साधन ध्यान मे नही आ रहे इस कारण पासमे बैठे हुए मनुष्य भी सोये हुएके ज्ञानके अभावको जान ले यह सम्भव नही है।

सुप्त पुरुषके ज्ञानके सद्भावकी सिद्धि — शङ्काकार कहता है—तो यो तो सोये हुएमे ज्ञान है, इसको सिद्ध करने वाला भी हेतु नही है। कैसे सिद्ध करोगे कि सोये हुए पुरुषमे ज्ञान है ? उत्तर देते हैं कि देखो उस पुरुषमे श्वासोच्छ्वास विदित हो ही रहा है। बल्कि जगे हुए मनुष्यसे भी अधिक उसका श्वास निकलता है। सोये हुए मनुष्यके नाकसे बहुत तेज श्वास निकलती है और कितने ही लोग तो घुर्राहटके साथ श्वास लिया करते हैं। एक लक्षण तो यह जाना गया। दूसरा लक्षण यह जाना गया कि शरीर गरम हैं। तीसरेमे आकार विशेष समझा गया। ऐसे और भी अनेक लक्षण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि इसमें ज्ञान है, क्योकि ज्ञान न हो तो ये बाते नही आ सकती हैं। और ज्ञान होता है स्वसंविदित। ज्ञान अपने आपको जानता रहता है। तो स्वसम्वेदी ज्ञानके अविनाभावी रूपसे निश्चय किया गया, यह लक्षण दिख रहा है इससे जाना जाता है कि सोये हुए पुरुषमे भी ज्ञान है। देखिये ! जगने वाले जो और लोग हैं इनमे ज्ञान है यह तुम कैसे जानते हो ? इसी तरह तो जानते हैं ना कि इन जानने वाले पुरुषोमे भी श्वासोच्छ्वास निकल रहा है। इनके

शरीरमें गर्मी है यह चलता फिरता भी है। इसमें आकार विशेष भी है। इसमें ही तो समझते हैं कि जगने वाले इन दूसरे लोगोंमें ज्ञान है। तो जो लक्षण दूसरे जगने वालोंमें पाये जाते हैं ज्ञानको सिद्ध करनेके लिये वे ही लक्षण सोये हुएमें भी हैं।

सुप्त और मृतके अन्तरसे सुप्तमे ज्ञानकी सिद्धि—कोई मुर्दा है जिसमेंसे जीव निकल गया जिसे लोग निश्चय होकर जला देते हैं, सभी लोग समझते हैं कि इसमें ज्ञान नहीं रहा, क्योंकि श्वासोच्छ्वास नहीं है, पर सोये हुएमें तो श्वासोच्छ्वास चल रहा है, मुर्देके शरीरकी गर्मी बन्द है अब उष्णता नहीं रही, पर सोये हुए मनुष्यके शरीरमें उष्णता है ना, और मुर्दाका आकार कान्तिहीन होता है, मगर सोये हुए मनुष्यका चेहरा कान्तिहीना नहीं नजर आता। तो इन सब बातोंसे जान जाते हैं कि सोये हुए मनुष्यमें भी ज्ञान है। जान कहो, ज्ञान कहो एक ही बात है। ज्ञानका बिगड़कर जान रूप बन गया, जैसे कोई कहता है कि अभी तो इसमें जान है उसका अर्थ यह है कि अभी तो इसमें ज्ञान है। ज्ञान बिना आत्मा नहीं रहता। तो सोये हुए मनुष्यमें चूँकि सभी लोग कहते हैं कि जान है, उसीका अर्थ है कि ज्ञान है। यहाँ लोग कुछ जीवोंको जानवर कहते हैं। जानवरका अर्थ असली क्या है? ज्ञानवर! जो ज्ञानमें ऊँचा हो, ज्ञानमें श्रेष्ठ हो उसका नाम है ज्ञानवर। और ज्ञानवरका बिगड़ कर रूप बन गया जानवर। अगर किसीको कहा जाय कि आपकी विद्वत्ताका क्या कहना! आप तो जानवर हैं तो उसका अर्थ हुआ कि ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं। लेकिन कोई पुरुष ज्ञानमें तो श्रेष्ठ हो नहीं, मूर्ख हो और उसे कहा जाय ज्ञानवर तो वह तो गाली मानेगा। तो इसी तरह जानवर शब्द गालीके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। जान कहो ज्ञान कहो एक ही बात है। तो जैसे जागृत दशामें दूसरे पुरुषकी ज्ञान वृत्तिका अंदाज हम श्वास, उष्णता, आकारविशेषसे जाना करते हैं उसी प्रकार सोये हुएका भी ज्ञान जान लिया जाता है।

शङ्काकारद्वारा प्राणद्वैविध्यका प्रस्ताव—अब यहाँ शङ्काकार क्षणिकवादी कहता है कि भाई! प्राण आदिक दो प्रकारके होते हैं—एक तो चेतनाप्रभव प्राण और एक प्राणादिप्रभव प्राण अर्थात् जागृत अवस्थामें जो प्राण है वह तो चैतन्यसे पैदा होता है और सोये हुएमें जो प्राण है वह प्राणोंसे पैदा होता है। शङ्काकार इस तरह दो भेद डाल रहा है। इसमें कुछ अंदाजा उसने यों लगाया कि चूँकि सोये हुए मनुष्यमें ज्ञानकी सावधानी नहीं है तो पहिले तो जागृत अवस्थामें प्राण थे, चैतन्यसे उत्पन्न हुए उन्हीं प्राणोंसे प्राण प्राण होते जा रहे हैं। चैतन्यसे तो प्राण उत्पन्न नहीं हो रहे हैं, ऐसा अंदाज करके शङ्काकार कह रहा है कि—जागृत अवस्थामें चैतन्यका अनुमान किया जा सकता है क्योंकि वहाँ जो ये प्राण उत्पन्न होते हैं—श्वासोच्छ्वास आदिक उत्पन्न होते हैं ये चेतनसे उत्पन्न होते हैं। वहाँ प्राणप्रभव प्राण नहीं है। प्राणोंसे प्राण उत्पन्न नहीं हो रहे हैं जगती अवस्थामें। सोई हुई अवस्थामें जो प्राण

हैं वे प्राणोसे पैदा हुए, चैतन्यसे पैदा नहीं हुए। शङ्काकार कह रहा है—जैसे एक मायाघट होता है जिसे गोपालघट भी बोलते हैं, जिससे धुवा तो निकलता है पर आग नही रहती। ऐसा जादूगरीका घट गोपालघट कि जहाँ धुवा निकल रहा है, पर आग नही है, तो उस गोपालघटमे धुवासे धुवा उत्पन्न होता है और रसोईघरमे जो धुवा होता है वह अग्निसे उत्पन्न होता है। तो जैसे दो तरहके धुवा हुए—धूमसे उत्पन्न हुआ धुवाँ और अग्निसे उत्पन्न हुआ धुवा। अथवा मान लो किसी मटकेमे खूब गहरा धुवाँ भरदें, भरकर उसका मुँह बन्द करदें कि निकल न सके उसे ले जावें कही बाहरी जगह। वहा ढक्कन निकालकर देखा तो धुवा निकल रहा है, पर अग्नि नही है। क्योंकि वे धूम धूमप्रभव हैं। तो धूमप्रभव धुवासे अग्निका अनुमान नही किया जा सकता। हाँ अग्निप्रभव धुवासे अग्निका अनुमान किया जा सकता है। तो इसी तरह सोई हुई अवस्थामे प्राणादिप्रभव प्राण हैं। प्राणोसे प्राण होते नजर आ रहे हैं और जागृत अवस्थामे चैतन्यप्रभव प्राण हैं। चैतन्यसे प्राणोकी उत्पत्ति है, तो जागृत अवस्थामे जो प्राण है उससे तो चैतन्यका अनुमान होता है पर सोई हुई अवस्थाका जो प्राण है उससे चैतन्यका अनुमान नही होता।

समस्त प्राणोमे चैतन्यप्रभवताकी सिद्धि—शङ्काकार यह बात इस चर्चा पर कह रहे हैं जो यह कहा था कि जैसे श्वासोच्छ्वास शरीरकी उष्णता, आकार विशेष जागृत अवस्थामे नजर आता है और उस अवस्थासे हम जगते पुरुषमे ज्ञान है, यह अनुमान करते हैं इसी तरह श्वास देखकर शरीरकी गर्मी जानकर उसमे ज्ञान है, यह अनुमान करते हैं इसमे दोष देनेके लिए यह कह रहे हैं कि जगते पुरुषके प्राण और किस्मके हैं सोये हुए पुरुषके प्राण और किस्मके हैं। प्राणोसे उत्पन्न हुए प्राणोसे चैतन्यका अनुमान नही होता है। समाधानमे कहते हैं कि यह कहना तुम्हारा अयुक्त है क्योंकि सुपुप्त पुरुषके और जागृत पुरुषके प्राण आदिकमे अन्तर कुछ नजर नही आता, जैसे सोया हुआ पुरुष श्वास ले रहा है जी रहा है इसी तरह जगता हुआ पुरुष भी श्वास ले रहा है। यदि दोनोकी श्वासोमें फर्क होता तो फिर यह सन्देह किसी किसीमे क्यो होता कि यह सोया हुआ है या जगता हुआ है? अथवा कोई पुरुष दूसरेको ठगने के लिए जान-बूझकर सोया हुआसा पड जाय तो उसके प्रति भी लोग सन्देह करते हैं ना, देखें तो सही, यह बहुत बहाना बनाया करता है, यह सो रहा है कि जग रहा है? यह सन्देह क्यो होता है? इसी कारण कि जैसे श्वासोच्छ्वास जगतेमे चलता है ऐसे ही सोयेमे भी चलता है। उन प्राणोमे कोई अन्तर समझमे नही आता। सोये हुएके भी प्राण चैतन्यसे उत्पन्न होते हैं, प्राणोसे प्राण उत्पन्न नही होते। चाहे जगता हो या सोता हो, जहाँ श्वासोच्छ्वास उत्पन्न हो रहा है चेतनके सम्बन्धसे हो रहा है। यदि सोये हुएका वह प्राण चेतनसे उत्पन्न न हो तो दूसरेको ठगनेके अभिप्रायसें जगता हुआ पुरुष सोयेका कपट करे तो उसमें फिर सोये हुए पुरुष जैसी मुद्रामे न नजर आना चाहिए। क्योंकि जैसे अग्निसे जो धुवा उत्पन्न होता है उस प्रकारका धुवा सैंकडो

प्रयत्न कोई करले पर अन्य चीजमे उत्पन्न नही किया जा सकता. और उस मायामयी घटसे जैसे धुवा उत्पन्न होता है, उस धुवासे अग्निसे उत्पन्न होने वाले धुवाका साम्य नही किया जा सकता। बहुत ठढके दिनोंमें तालावोमेसे बडी तेज भाप निकलती है, और दूरसे देखने वाले पुरुष जानते हैं कि यह बडा धुवा उठ रहा है। पर उस धूममे और अग्निसे उत्पन्न होने वाली धूममे फिर भी कुछ फर्क नजर आता है या जाडेके दिनोमे खुदके ही मुखसे भाप निकलती है, तो क्या कोई यह सन्देह करने लगेगा कि अरे इसके दिलमे तो आग लग गयी ! देखो ना धुवां निकल रहा है। तो वह धूम जो अग्निसे निकलता है ऐसा धूम अन्य बातोसे सैंकडो उपाय करें तो भी निकल नहीं सकता। और यहाँ तो जैसे सोये हुए पुरुषमे प्राण नजर आ रहे वैसे ही जगते हुएमे नजर आ रहे इस कारण श्वासोच्छ्वासमें यह भेद नही डाल सकते कि यह श्वास तो निकली है चैतन्यसे और यह श्वास निकली है प्राणोसे। समस्त श्वास चेतनके सम्पर्कसे ही निकलती है।

प्राणोमे और भावोमे समानता असमानताकी प्रतीतिसिद्धता शंकाकार जो इन दो प्राणोमे अन्तर डाल रहा है जगते हुएके प्राणोको बताता है कि चेतनसे उत्पन्न हुआ और सोये हुएके प्राणोको बताता है कि प्राणोसे उत्पन्न हुआ, तो जो चेतन और अचेतनसे उत्पन्न हुए प्राणोका भेदकर रहा है वह सराग चेष्टा और वीतराग चेष्टाका भेद क्यो नही मान लेता ? फिर यह कहना युक्त नही है कि 'सराग पुरुष भी वीतरागकी तरह अपनी चेष्टा कर सकता है और वीतराग भी सरागवत् चेष्टा कर सकते हैं सो यह निश्चय अशक्य है कि यह सराग है और यह वीतराग है" जब यह वीतराग है या सराग है यह भेद नही किया जा सकता तब इन प्राणोमें भी भेद न करना चाहिये। भले ही जैसे विहार मुनिजन करते हैं तो विहार अरहन्त भगवान भी करते हैं। सकल परमात्मा भी करते हैं। कोई चारणऋद्धिधारी मुनि हो वह भी आकाशमें कदम उठाकर विहार करता है। तो वह मुनि आकाशमें कदम उठाकर विहार भले ही करे फिर भी यह समझमे आता ही है कि यह वीतराग देव हैं और यह अभी मुनि है। उनका निश्चय कैसे नही होता ? उपदेश की बात सुनलो। ध्वनि तो सराग मुनिके भी निकलती है और सकल परमात्मा अरहन्त देवकी भी निकलती है पर ध्वनि में अन्तर तो नजर आता है। सरागी मुनियोकी ध्वनि अरहत प्रभुकी ध्वनिकी तरह नहीं होती है। अरहत प्रभुकी ध्वनि दिव्यध्वनि है। यहाँ मनुष्य ध्वनि कहते हैं, वहाँ तो भेद भी है, यहाँ प्राणोमें भेद नही है यह निश्चय करना कि सोये हुएमे सब अवस्थाओमे आत्मा है तो सदा ज्ञानमय रहता है। यह नही है कि सोये हुएमे आत्मा ज्ञान रहित हो गया और जगते हुएमें आत्मा ज्ञानसहित हो गया। जो ज्ञानी है वह सदा ज्ञानी है। जिस वस्तुमे ज्ञान नहीं है उसमे कभी भी ज्ञान नहीं आ सकता।

जीवके कार्योंकी जीवमे प्रसिद्धि—लोकमें दो प्रकराके पदार्थ हैं—एक जीव,

एक अजीव । अब निर्णय कर लीजिये । सभी लोग जानते हैं—कुत्तेको यदि कोई लाठी मारता हो तो दूसरे लोग उसे डाटते हैं क्यों बेरहम बनता है, पर भीटमें कोई लाठी मार रहा हो तो कोई पुरुष उसे नहीं डाटता कि अरे क्यों भीटको पीट रहा है ? क्यों बेरहम बन रहा है ? सबके ज्ञानमें यह बात है कि भीटके ज्ञान नहीं है और इस कुत्ता बिल्ली आदिकके ज्ञान है । तो दो प्रकारके पदार्थ हैं जीव और अजीव । जो जीवमें गुण हैं वे कभी अजीवमें नहीं आ सकते, जो अजीवमें गुण हैं वे कभी जीवमें नहीं आ सकते । ये संसारी जीव अनादिकालसे अजीवके साथ ऐसी घनिष्ठतामें जकड़े हुए हैं, बद्ध बने हैं एक क्षेत्रावगाही हो रहे हैं, देखो ना शरीर चलेगा तो आत्माको चलना पड़ेगा और आत्मा चलेगा तो शरीरको भी चलना पड़ेगा । इन दोनोंका परस्परमें कैसा घनिष्ट सम्बन्ध है । बँधा हुआ है । कर्मोंमें जकड़ा हुआ है, इतना तीव्र जकड़ा हुआ होनेपर भी जीवके गुण कभी अजीवमें नहीं आ सकते और अजीवके गुण कभी जीवमें नहीं आ सकते । अब जरा दो जीवोंका भी मुकाबला करो । पिता पुत्र हैं, पति पत्नि हैं, बड़े घनिष्ट दो मित्र हैं, भाई-भाई हैं कितना भी प्रेम हो, पर एक जीवके गुण, एक जीवके परिणमन दूसरे जीवमें कभी नहीं पहुंचते । दूसरेके परिणमन किसी अन्य दूसरेमें कभी नहीं पहुंचते । ये संसारके सभी प्राणी अपनी-अपनी कषायोंके अनुसार अपनी-अपनी चेष्टा करते हैं जो चेष्टा अनुकूल लग जाती है तो हम उससे प्रेम करते हैं, यह मेरा बड़ा प्रेमी है जिसकी चेष्टा प्रतिकूल हो जाती है उससे हम द्वेष करते हैं यह मेरा बड़ा विरोधी है । लेकिन जगतमें अनन्त जीव हैं, सबकी सत्ता न्यारी न्यारी हैं । कोई भी जीव अपने प्रदेशसे बाहर अपनी कुछ भी चेष्टा कर नहीं सकता । फिर किसको हम मित्र कहें, किसको हम विरोधी कहें । अरे कोई मुझसे प्रेम नहीं करता ।

विकल्पों द्वारा परको आत्मीय बनानेकी अशक्यता —सभी प्राणी अपने अपने विकल्पोंके अनुसार अपने आपकी चेष्टा करते हैं, भाव बनाते हैं । तो एक जीव का गुण, एक जीवका परिणमन दूसरे जीवमें भी नहीं पहुंचता । प्रत्येक पदार्थ अपने सत्त्वके कारण स्वतन्त्र है और देखिये जिस निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमें यह शीघ्रतासे समझ लिया जाता है कि अग्निने पानीको गरम किया । शरीरने आत्माको चला दिया इस मनुष्यने अमुक कापी किताब बना दिया । वहाँ पर भी कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य में क्रिया नहीं कर रहा है । एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें अपना परिणमन डाल दे यह त्रिकालमें भी नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है । वह स्वरूप क्या है ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । तो जब सब पदार्थ अपने ही गुणों के स्वामी हैं, अपने ही परिणमनके स्वामी हैं तो जरा अपने आपमें भी तो अनुभव करना चाहिये । जगतमें कोई किसीका सहाय नहीं होता । क्या आपके दादा बाबा पिता जो जिनके नहीं रहे उनके प्यार पर तो कुछ ध्यान दीजिये । कितना आपपर घनिष्ट प्यार था । आपके बाबा आपको गोदमें लिए रहा करते थे । लड़कोंसे भी विशेष प्यार पोतोंसे होता है और तभी सरकारी भी नियम है कि पिताकी जायदादका अधि-

कारी लड़का तो नहीं है, मगर उस जायदादका अधिकारी पोता है। उसे कानूनन हक है। और पहिले जमानेमे जो बाबाका नाम होता था करीब करीब वही नाम पोतेका रखा जाता था। आप पुराणोंमें पढ़ेंगे तो कुछ जगह ऐसे ही नाम रखे पायेंगे। तो इतना घनिष्ट स्नेह करते हैं तो करें, लेकिन सम्बन्ध रचमात्र नहीं है। अपने आपके आत्मापर दृष्टि डालें वही एक मात्र सहाय है। तो जिन दादा, बाबा, आदिका मुझपर बड़ा प्यार था वे क्या अपना प्यार निभा सके ? वे अब हैं क्या ? उनसे कुछ मिल जुल रहा है क्या ? उन्होंने भी क्या किया ? अपना बिगाड़ किया। मेरेको लक्ष्यमे लेकर अपना मोह बढाया और जीवन खोया। और मरण करके जिस गतिमें पहुंचे हो वहां वे अपने कर्मानुसार दु ख भोग रहे हैं। उन्होंने मेरा क्या किया ? उनको मुझसे क्या लाभ मिला ? उनसे मुझे क्या लाभ मिला ? सभी जीवोकी चेष्टा अपने-अपने कषाय भावोंसे होती है।

प्रभुके कर्तव्योके आदरमे ही प्रभुभक्तिकी यथार्थता – हम यहां प्रभु पूजा करने आते हैं, दर्शन करने आते हैं, तो दर्शन हम जिनके करते हैं, जिनके आगे शीश झुकाते हैं, नमस्कार करते हैं, आदर देते है उन्होंने जो काम किया उस काममें भी आपका आदर है कि नही ? यदि उनके काममे आदर नही है तो आपका यह नमस्कार सब झूठा है, थोथा है। खूब गम्भीरतासे सोचो प्रभुने क्या कार्य किया था ? वस्तु स्वरूपका ज्ञान किया था। भेदविज्ञान किया था। भेद विज्ञान करके पर पदार्थोंसे उपेक्षा करके, मोह तोड़कर निर्मोह अविकार ज्ञानस्वभावमे अपना उपयोग लगाया था और सबसे फिर हटकर इस ही ज्ञानस्वभावमें लीन होकर उन्होने यह परमपद पाया। उन्होंने जो काम किया उसमे आदर नही है तो फिर दर्शन क्या ? चाहे हम वह काम न कर सकें, गृहस्थ हैं। दस जगह चित्त उलझना है। अनेक चिन्ता शल्य रहा करती हैं, हम चाहे उस काममे सफल नही हो पायें, लेकिन यदि आदर भी नहीं है जो प्रभुने कार्य किया, जो मोक्ष विधिकी उसमे यदि आदर नही है, हम उसे आदेय नहीं मानते। मुझे भी यह काम करना चाहिए, जब मैं कर सकूंगा तभीसे संकटोंसे छुटकारा पाऊँगा यदि ऐसा परिणाम ऐसी श्रद्धा नहीं होती है तो हमने क्या सिर झुकाया ? क्या माना ? तब अपनी जिम्मेदारी अपने आपपर जानकर अपना विचार तो चलना ही चाहिये कि जिससे हमारा ज्ञान विशुद्ध बने और दुर्लभ यह मानव जीवन हमारा सफल हो। देखिये तो सही संसारमे कीडा मकोडा वृक्ष पौधे और पशु पक्षी ये सारे जानवर कितनी एक तुच्छ गतिमे हैं इनकी दयनीय अवस्था है, उन सबको पार करके हम आप ऐसे मनुष्य हुए हैं जहां सत्धर्मका समागम मिला है। ऐसे दुर्लभ समागमको पाकर हम यदि अपने जीवनको सफल करने का परिणमन बनायें, धर्मपालन न करें तो जीवन तो गुजर जायगा, समझिये कि अमूल्य अवसरको पाकर हमने यो ही विषयोमे गवा दिया। इससे जन्म मरणकी परम्परा हमारी लम्बी होती जायगी। अत चेतें, मोहमे कुछ नही रखा है, निर्मोह ज्ञानकी बात सीखें और आत्म धर्ममें रहकर अपने जीवनको सफल बनायें।

प्राणद्वैविध्यकी चर्चाका प्रकरण—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि सोये हुए पुरुषमे ज्ञान रहता है या नही ? शङ्काकारने कहा है कि सोये हुए पुरुषमे ज्ञान नही रहता है। तब उनस पूछा गया कि ज्ञान नही रहता है तो सोये हुए पुरुष की श्वास निकलना, शरीरकी गर्मी रहना यह किस बलपर है ? ज्ञानरहित होजाना इसका अर्थ है कि ज्ञान नही रहा। जब तक ज्ञान है तब तक ज्ञान है। तो जब ज्ञान नही माना सोये हुए आदमीमे तो श्वासोच्छ्वास कैसे निकल रहा है ? इसके उत्तरमे शङ्काकारने यह कहा कि भाई! प्राण दो तरहके होते हैं—एक तो चैतन्यसे उत्पन्न होने वाले प्राण और एक प्राणोसे उत्पन्न होने वाले प्राण। तो सोये हुएमे चैतन्य प्रभव प्राण नही है किन्तु प्राणप्रभव प्राण है। इस सम्बन्धमे चर्चा चलनेपर यह सिद्ध हुआ कि सोये हुए पुरुषमे भी चैतन्यप्रभव प्राण है। जैसे प्राण जगते हुए पुरुषके हैं वैसे ही प्राण सोते हुए पुरुषके हैं। उस श्वासोच्छ्वासमे कुछ अन्तर नही आता। इसके विरोधमे शङ्काकारने यह कहा था कि जैसे एक मायाघट होता है, मायामयी घडा, जिसे गोपालघट कहते हैं उसमेसे धुवाँ निकलता दिखाई देता है, पर अग्नि नही होती। तो इसका दृष्टान्त देकर शङ्काकारने यह कहा कि जैसे धुवा अग्निसे भी उत्पन्न होता है और धुवाँसे भी उत्पन्न होता है तो ऐसे ही श्वासोच्छ्वास चैतन्यसे भी उत्पन्न होता है और प्राणोसे भी उत्पन्न होता है। तो इसके निराकरणमें बात कही गई कि जैसा धुवा मायाघटसे होता और जैसा धुवाँ अग्निसे होता, इसमें अन्तर है ? और परख कर ली जाती है कि यह अग्निसे उत्पन्न हुआ है या मायाघटसे। तो जिस तरह यह निर्णय कर लिया जाता है कि यह धुवा आगका है या धुवाँ का है। इस तरहका निर्णय कोई भी पुरुष जगते और सोतेके प्राणमें नही कर सकता। क्योंकि चैतन्य तो किसीको दिखाई नही देता। जगते पुरुषका भी श्वासोच्छ्वास चल रहा है उससे यह अनुमान करते कि इसमे चैतन्य है, ज्ञान है। तो ऐसे ही सोये पुरुषमें जो श्वासोच्छ्वास निकल रहा है उसमें भी अनुमान किया जाना चाहिये कि इसमें चैतन्य है और ज्ञान है।

प्राणोमे चैतन्यप्रभवता और प्राणप्रभवताके भेदका अनिर्णय—देखिये! धूममे जब सन्देह हो जाय कि यह धुवा अग्निका है या मायाघटका है तो उसका संदेह आखोसे देखकर दूर कर लिया जाता है। मायाघटमे देखा आग थी नहीं सो जाना गया कि यह धुवाँ आगका नही। या तालाबमें तेज धूमसा निकलता है शीत ऋतुमें, उस समय सदेह हो जाय कि यह जो धुवाँसा निकल रहा है या आगके बिना, तो उस सन्देहको देखकर दूर किया जा सकता है। लेकिन यहाँ यह सन्देह डालना कि, जगते पुरुषमे जो श्वास निकल रहा है वह तो चैतन्यसे निकल रहा है और सोते में जो श्वास निकल रहा है वह चैतन्यसे नही किन्तु प्राणसे निकल रहा है। तो उसमें सदेह होना कि चैतन्यसे निकला या प्राणसे, इसको दूर करनेका कोई साधन नही। प्राणोमे यह सदेह कहासे आप दूर करेंगे कि यह बादके चैतन्यसे उत्पन्न हुआ

प्राण है या पूर्व भवसे आया हुआ प्राण है। जब दूसरा चैतन्य दिखता ही नहीं है तो फिर किसीने शास्त्र ही क्यों बनाया ? फिर इन क्षणिकवादियोंने गुरुसे चैतन्यका ज्ञान अभाव मानने वाले लोगोंने, पर चैतन्य जब ज्ञात ही नहीं हो सकता तो फिर शास्त्र क्यों बनाया ? किसीको समझानेके लिए उपदेश भी क्यों किया जाता है ? यदि इसे शास्त्र बनाया तो फिर चार्वाक या नास्तिक लोगोंके मतमें क्या विरोध रहा ? इससे यह मानना चाहिये कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यह आत्मा जिस भवमें रहता है उस भवमें उस भवके प्रारम्भसे लेकर मरण पर्यन्त निरन्तर ज्ञान बना रहता है। चाहे वह सो रहा हो, मूर्छित हो, पागल हो सब स्थितियोंमें आत्मामें ज्ञान रहता है और उस ही भवकी बात क्या, उस भवको छोड़कर अगले भवमें जायगा तो वहाँ पर भी इसमें ज्ञान बना रहेगा। ज्ञानसे शून्य आत्मा कभी भी नहीं होता।

जाग्रत अथवा प्रबुद्ध चैतन्यसे सुप्तप्राणोंकी उत्पत्ति असिद्धि और चैतन्यप्रभवताकी सिद्धि— शंकाकार यहाँ यह मान रहे हैं कि सोये हुए प्राणमें ज्ञान नही है, और जो श्वासोच्छ्वास निकल रहा है वह चैतन्यसे नहीं किन्तु प्राणोंसे निकल रहा है। तो सोये हुए पुरुषके प्रारम्भमें जो पहिले प्राण उत्पन्न हुआ है बता सकते हो कि यह किससे उत्पन्न हुआ है। क्या पहिले जो जग रहा था उस समय जो जो ज्ञान हो रहा था उस प्राणसे यह सोये हुएका प्राण उत्पन्न हुआ है ? यह बात तो गलत है क्योंकि एक विज्ञानसे अनन्तरका प्राण आदिक उत्पन्न हो जाय या जब सोकर जग गया उस जगे हुयेके ज्ञानका कारण बन जाय सो असम्भव बात है। शंकाकार यहाँ मानता है कि जब यह जीव जग रहा था तब तो इसमे ज्ञान था और अब जो सो गया है तो इसके ज्ञान नहीं रहा। अब सोकरके जो जगेगा तो वहाँ ज्ञान पैदा हो जायगा। तो सो करके जगे वहा जो ज्ञान पैदा हुआ है वह पहिले जग रहा था तबके ज्ञानसे पैदा हुआ था, तो यह बात कैसे मानी जा सकती है ? एक सामग्रीसे क्रमसे होने वाले दो कार्य उत्पन्न नही हो सकते। अगर एक पदार्थसे दो कार्य उत्पन्न होने लगे तो फिर ये क्षणिकवादी लोग क्यों नित्य सिद्धान्तका विरोध करते ? नित्य पदार्थ जो एकरूप हैं उनसे यह मानना चाहिए कि सोये हुएमें जो प्राण उत्पन्न हो रहे हैं तो सोये हुए समयमें भी ज्ञान बराबर है और उस ज्ञानके कारण ये प्राण प्रकट हो रहे हैं, श्वासोच्छ्वास प्रकट होरहा है। सोये हुएमे ज्ञानके अभावकी सिद्धि नही करते।

स्वापसुखसंवेदन होनेसे सुप्त प्राणोंके चैतन्यप्रभवत्वकी सिद्धि— और भी देखो ! सोये हुएके समयमें जो सुख होता है उसका सम्वेदन उस सोये हुए का बना होता है। कदाचित् कोई स्वप्न दुःखभरा आ जाय सोये हुए मनुष्यको कहीं जङ्गलमें फँस गए, किसी सिंहने आक्रमण कर दिया, या साप निकल आया, कुछ ऐसी आपत्तिकी बात दीखनेमे आ जाय तो वह घबराकर जग जाता है ना ? तो उसे सोये हुएकी स्थितिमे दुःख हुआ है ना ? उस दुःखके कारण ही तो घबडाया है। तो

दुःख वहा होता है जहाँ ज्ञान है। सो करके कोई मनुष्य उठे तो उठनेके बाद वह यह स्मरण करता है ना कि मैं आज बडे सुखसे सोया। सभी लोगोकी बात है। तो सोयेमें सुखका अनुभव हुआ था तभी तो जगनेपर ख्याल कर रहा है। जिस चीजका अनुभव नही हुआ उस चीजका स्मरण तो हुआ ही नही करता। यह भी बात नहीं कह सकते कि सोये हुएमे अगर सुखका अनुभव कर रहा है तो वह सोया हुआ मनुष्य उस सुखका निरूपण क्यो नही करता? सोये हुएसे कोई पूछे कि तुम कैसे सो रहे हो? तुम्हें सुख है ना? अच्छी तरह सो रहे ना? तो वह कोई जवाब नही देता। तो सोया हुआ मनुष्य अपने सुखका निरूपण नही कर सकता। इसलिए कहना कि इसमे ज्ञान नही है, यह बात गलत है। किसी दो एक दिनका पैदा हुए बच्चा माके स्तनमे लगकर तो वह दूध पीता है ना? हा पीता है। अच्छा, वह बच्चा दूध पीता है तो उसे उस दूध पीनेसे सुख होता है कि नही? सभी लोग इस बातको मानते हैं कि उस बच्चेको दूध पीते हुएमे सुख होता है। उस दो एक दिनके बच्चेसे यदि कोई पूछे कि बतावो तुम्हे कैसा सुख हुआ है? तो क्या वह बच्चा कुछ बता सकेगा? अरे वह तो बोलता ही नहीं है। तो जो सुखको न बता सके उसमे तुम कहते कि सुख होता ही नही, तो तुम्हारी यह बात युक्ति सगत तो नही है। सोया हुआ मनुष्य यदि सुखकी बात न बता सके तो इसका अर्थ यह न होगा कि उसको सुखका सम्वेदन ही नही है।

दुःखाभावकी सुखभावरूपता - यह भी नही कह सकते कि सोये हुएमे सुख नही हैं, किन्तु दुःखका अभाव है। सो गया, दुःख न रहा, सुख वहा कुछ है नही, तो कोई अभाव तुच्छ नही होता है। अभाव किसीके सद्भावरूप होता है। आकुलता न रही, वहा परम आह्लाद है उसका नाम आनन्द है। कोई कहे कि भगवानमे आनन्द है ही नही, न अरहतमे, न सिद्धमे, न बडे योगीश्वरोमे। उनमें आनन्द होता ही नही, केवल दुःखका अभाव है। दुःख नही है आकुलता नही है। अरे तो कोई तुच्छाभाव तो नही है। दुःख तो इन खम्भोमे भी नही है। इनको कितना ही पीटो तो दुःख नही होता। तो क्या इन्हें सुखी कह दोगे? नही इनमे न चेतना है न दुख सुख है। दुःख न होनेका अर्थ है सुख, आनन्द। तो उस सोई हुई अवस्थामें दुःख नही है इसका अर्थ है सुख है। तो जो सुख, दुःखका सम्वेदन करता है ऐसा सोया हुआ भी प्राणी ज्ञान वाला है, ज्ञानरहित नही है।

आत्माकी सर्वत्र ज्ञानरूपता आत्मा ज्ञानस्वरूप है, सदा ज्ञानमय है। यह जीव मिथ्याभावमे आया है। मोहबुद्धिमे आया तब इसका भवितव्य खोटा है। इस बाह्य पदार्थ ही रुच रहे हैं। उन बाह्य पदार्थोंके सम्पर्कमे ही यह राजी हो रहा है। उस समय इसका ज्ञान दूषित है, मिथ्या हो रहा है। जब इस आत्मामें सद्बुद्धि जगती है अपने आपके स्वरूपकी पहिचान होती है—अरे यह मैं आत्मा तो सबसे

मोक्ष मानते हैं। देखिये ! इनकी शब्दयोजना तो यह है लेकिन अनेकान्तका अर्थ क्या करेंगे और अक्षयशरीरका अर्थ क्या करेंगे सो यही खुद बतावेंगे। शङ्काकार कह रहा है कि अनेकान्त भावनासे मोक्षशिलाके ऊपर अक्षय शरीर स्वरूप देहकी प्राप्ति होनेका नाम, ज्ञानकी प्राप्ति होनेका नाम मोक्ष है, ऐसा स्याद्वादी मानते हैं और इस माननेमे यह दलील देते हैं स्याद्वादी कि अगर हम पदार्थोंको नित्य मान लेंगे तो उस पदार्थमे हमारा स्नेह जगने लगेगा और अनित्य मान लेंगे तो उस पदार्थमें हमे घृणा जगने लगेगी। इससे रागद्वेष न जगें इसके अर्थ अनेकान्तकी भावना की जाती है कि पदार्थ नित्य भी है अनित्य भी है ताकि रागद्वेष न रहे और इस अनेकान्तकी भावनासे मोक्ष का लाभ हो जाय ऐसा स्याद्वादी मानते हैं। वह कथन बिना परीक्षा किए हुए है। इसके निराकरणमे वैशेषिक कह रहे हैं कि मिथ्याज्ञान कहीं मोक्षका कारण होता है, किसी पदार्थको कह दिया कि यह नित्य भी है अनित्य भी है तो यह तो मिथ्या ज्ञान है। वैशेषिक कह रहे हैं जैनोंके प्रति कि यह तो झूठा ज्ञान है। अभी कह दिया नित्य फिर कह दिया अनित्य। अरे ! जो विरुद्ध दो चीजें हैं, नित्यका स्वरूप न्यारा है, अनित्यका स्वरूप न्यारा है, तो वे न्यारे-न्यारे स्वरूप वाले पदार्थ एक पदार्थमे ठहर कैसे सकते हैं ? कोई एक पदार्थ ठढा भी रहे और गरम भी रहे ऐसा हो सकता है क्या ? अगर ठढा है तो गरम नही है, गरम है तो ठढा नही है। इसी तरह जीव यदि नित्य है तो अनित्य नही है और यदि अनित्य है तो नित्य नही है। उसे नित्य भी माने अनित्य भी माने यह एक पदार्थमें कैसे सम्भव है ? पदार्थ या तो नित्य ही मानो या अनित्य ही मानो। यह ढुलमुल नीति क्यो ? यह सन्देह क्यो ? नित्य भी है और अनित्य भी हैं ?

वस्तुमे स्वरूपसत्त्व और पररूपासत्त्वकी इतरेतराभाव द्वारा सिद्धि करनेका विशेषवादीका प्रस्ताव--यदि यह कहो कि अनेकान्त तो पदार्थमे है ही क्योंकि पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है यह बात तो माननी ही पडेगी, यह चौकी अपने स्वरूपसे है, खम्भा आदिक परके स्वरूपसे नही है, यह बात क्या गलत है ? वैशेषिक उत्तरमें कहते हैं कि यह बात अनेकातके कारण नही है किन्तु इतरेतराभावके कारण है। इतरेतराभावका क्या अर्थ है ? एक पदार्थमे दूसरे पदार्थ का अभाव रहना ! तो एक पदार्थमे दूसरे पदार्थका अभाव है इस कारण यह व्यवस्था बनी हुई है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है। विषय बहुत कामका है, जो मुक्तिके उपायोंमे भी काम देगा। यहा सिद्धान्तका निराकरण कर रहे हैं वैशेषिक। जैसे स्याद्वादी मानते हैं कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है यह है स्याद्वाद, यह है अनेकान्त। देखो ना ! इस पदार्थमे दो पदार्थ एक साथ रह गए—अस्तित्व भी और नास्तित्व भी, तो इसके विरुद्ध धर्म एक पदार्थ मे रहा, इसमें विरोध कहांसे आया ? उसके उत्तरमे कह रहे है वैशेषिक कि यह बात तो इतरेतराभावके कारण है, न कि अनेकान्तके कारण।

विशेषवादके इतरेतराभावका विवरण—वैशेषिक अभावनामक पदार्थ स्वतन्त्र मानते हैं। जैसे जीव है ना कुछ ? समझमे तो आता ही है। है अच्छा और पुद्गल है ना कुछ ? है। तो इस तरह वे कहते हैं कि गुण भी है ना कुछ ? समझमे आता ना ? है। तो गुण भी पदार्थ है और पर्याय भी है ना कुछ ? इसकी तो बहुत ज्यादह जरूरत पड रही है। हम आप जिनसे व्यवहार करते हैं, जितना बोलचाल करते हैं वह सब पर्याय ही तो है ? है। और इसी तरह सामान्य विशेष समवाय भी हैं। और, एक अभाव नामक भी अलग पदार्थ है। जैसे पुद्गलके बारेमे तुम कहते हो यह है पदार्थ, इसी तरह अभाव नामका भी एक पदार्थ हुआ करता है। नही,है, यह भी पदार्थ है। तो उस अभावके चार भेद किए गए—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभावका अर्थ है कि कार्यसे पहिले कार्यका अभाव होना। जैसे मिट्टीके लौंधेसे घडा बनाया जाता है तो जिस समय मिट्टीका लौंधा है उस समय घडेका प्रागभाव है उस समय घडा तो नही है। जब लौंधा है तो लौंधेके समयमे घडेका प्रागभाव है। और जब उस लौंधेसे घडा बन गया तो घडा बननेके समयमे उस मिट्टीके लौंधेका प्रध्वंसाभाव है और घडेमे कपडा नही है कपडेमें घडा नही है कपडा अपने स्वरूपसे है घडा अपने स्वरूपसे है, इसका नाम है इतरेतराभाव इतर मायने दूसरा दूसरेमे दूसरेका अभाव होना। घडेमे कपडा नही पाया जाता, कपडेमें घडा नही पाया जाता। यह बात इतरेतराभावसे बन रही है न कि अनेकांत से। इसी तरह अत्यन्ताभाव भी एक अभाव है। जो तीन कालमे भी कभी एक दूसरे रूप न बन सके उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। तो यह भी पदार्थमे पाया जाता है। अनेकान्तके कारण पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है यह बात ठीक नही बैठती। ऐसा ये वैशेषिक सिद्धान्त वाले स्याद्वादका और स्याद्वाद सम्मत मोक्षके बारे मे कह रहे है कि यह अनेकान्त मिथ्या ज्ञान है।

स्वकार्यकर्तृत्व परकार्याकर्तृत्वको वस्तुस्वभाव माननेकी अनावश्यकताका विशेषवादीका प्रस्ताव यदि कहा कि अनेकान्तसे तो यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने कार्यका तो कर्ता है और दूसरेके कार्यका कर्ता नही है यह बात भी तो अनेकान्तसे सिद्ध होती है। जीव अजीवकी पर्यायको न करेगा तो यह बात अनेकान्तमे ही तो बनेगी। वैशेषिक निराकरण करते हैं कि इसमें भी अनेकान्त की कोई जरूरत नही है। पदार्थ अपने कार्योंका करने वाला होता है अन्य कार्योंके करने वाला नही होता है, यह तो अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध है। इसमे अनेकान्तकी क्या आवश्यकता है ? अर्थात् जो पदार्थ जिसके अन्वयव्यतिरेकसे उत्पन्न करनेमें व्यापार किया करता है वह उसका कारण है। जैसे-घडेसे मिट्टी वाला ही कार्य उत्पन्न होगा, जलसे जल वाला ही कार्य उत्पन्न होगा। तो इसमें अन्वयव्यतिरेक का प्रभाव है। मिट्टीमे अन्वयरूपसे रहकर, तन्मयरूपसे रहकर जो उत्पन्न हो वह उसका कार्य है अथवा एकका दूसरे पदार्थमें निमित्तनैमित्तिक भावमें भी यह लगा

सकते कि जो जिसके होनेपर हो, वह उसका कार्य है। जो जिसके न होनेपर न हो वह उसका कार्य है। तो कोई पदार्थ अपने कार्यको ही करता है परके कार्यको नही करता है यह बात अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध होती है अनेकांतसे नही। इसलिये अनेकात की भावना करना और उससे मोक्षकी आशा रखना यह असङ्गत बात है। अनेकान्त का ज्ञान ही झूठा ज्ञान है।

मुक्त जीवमे मुक्त और संसारीपनेका अनेकान्त लगानेका विशेषवादी का उपालम्भ—अच्छा, फिर और भी बताओ कि जब अनेकात ही अनेकांत लगाया जायेगा तब फिर मुक्त होनेपर भी अनेकात लगाना पडेगा कि यह मुक्त होनेपर मुक्त भी है और संसारी भी। क्योकि तुम्हे तो कई बातें कहनेकी आदत पड गयी है। वैशेषिक स्याद्वादीसे कह रहे हैं। ये पदार्थ नित्य भी है, अनित्य भी है हर जगह दो बातें लगाते हो। यदि दो जगह लगावोगे तो गडबड हो जायगा। इससे मानना चाहिए कि अनेकात ज्ञान झूठा है। उससे मुक्ति नही होती। और फिर अनेकातमें भी अनेकात लगाना चाहिए ना, अनेकात भी अनेकान्तरूप है। एक सत्वधर्म है, उसमें सत्व भी है और असत्व भी है। इस तरह किसी भी तरह किसी धर्मकी सिद्धि नही कर सकते। नित्य सिद्ध कर रहे हो तो वहा भी यह लगा बैठे कि नित्यत्वमें नित्य भी है अनित्य भी है। इस तरह तो किसी भी बातकी सिद्धि नही हो सकती। जो भी बात कहोगे उसीमे ही उसके विरुद्धकी बात लगा दी जायगी तब फिर अनेकांत का कोई तरीका सच्चा नही है। यह तो सन्देहमें डालने वाली बात है इससे कोई तुम्हारा ठीक निर्णय नहीं हो पा रहा कि जीव नित्य है कि अनित्य। जब जो समझ मे आता उसे कह रहे हो। फिर ये मनुष्य किस ज्ञानका सहारा लें जिससे ये निःसदेह रहें और अपने मोक्षमे चल सके। तुम्हारे अनेकान्तकी भावनासे मोक्षका लाभ लेना सही नही है ऐसा वैशेषिकवादियोने कहा। अब इसका निराकरण किया जायगा।

विशेषवादी द्वारा स्याद्वादके प्रतिपक्षमें अनेकात और मोक्षस्वरूपका असत प्रतिपादन —मोक्षके स्वरूपके वर्णनमे वैशेषिकोने यह कहा था कि जैन लोग मोक्षका स्वरूप मानते हैं कि अनेकांतकी भावनासे मोक्ष शिलाके ऊपर अक्षय शरीरका लाभ होना सो मोक्ष है। प्रथम तो वे मोक्षके स्वरूपको ही ठीक नही बता सके हैं। मोक्ष नाम मोक्षके शिलाके ऊपर बैठ जानेका नाम नही है। जहाँ सिद्ध भगवान विराज रहे हैं वहाँ संसारी जीव भी मौजूद हैं वे ज्योके त्यों दुःखी हैं और वहा सिद्ध प्रभु अनन्त आनन्दमे लीन हैं तो कही लोकके अन्तपर पहुच जानेसे भगवान नही बन जाते हैं। दूसरे उनका अक्षय शरीर क्या है? शरीरका तो अभाव ही हो गया है अब तो आत्माका शुद्ध विकास है। सो यह शुद्ध विकास अनेकातकी भावनासे ही सीधा प्रकट होनेकी बात नही है। अनेकातसे तो पदार्थका निर्णय होता है। जीव नित्य है अथवा अनित्य है आदिक जो विचार हैं उनका निर्णय स्याद्वादसे होता है।

अब निर्णय करनेके बाद उनमेंसे हमें कौनसा तत्व ग्रहण करना चाहिए और कौनसे तत्वकी उपेक्षा करना चाहिए ? जैसे कोई कहे कि पुण्य भला है और पाप बुरा है। तो व्याख्यान देनेका यह अर्थ तो नही है कि पुण्यको भी लो और पापको भी लो। केवल निर्णय बताया है। अब उसमेंसे क्या लेना है और क्या छोडना है यह तो स्वय समझ जायगा। तो अनेकातसे होता है पदार्थका निर्णय और निर्णय होनेपर फिर जो आत्माका सहज स्वरूप है शाश्वत, उसका ग्रहण होता है और पररूपोंका अनित्यरूपों का त्याग होता है, यही है अन्त साधना।

मोक्षप्रकरणमे निकटतम कारण और अनेकांत दर्शनका सहयोग—निर्विकल्प समाधिसे मोक्ष होता है। स्याद्वादसे तो पदार्थके स्वरूपका निर्णय होता है निर्णय करनेके बाद जो निर्विकल्प समाधि बनती है, जहां किसी प्रकारका विकल्प न जगे, केवल ज्ञाता मात्र रहे, ऐसे समतापरिणामकी अनुभूतिसे मुक्ति होती है। फिर यह कहना कि पदार्थको नित्य माना जायगा तो उसमें स्नेह जगेगा, अनित्य माना जायगा तो उसमे द्वेष जगेगा इसलिए नित्यानित्यात्मक मानते हैं स्याद्वादी तो इस प्रयोजनके लिए नित्यानित्यात्मक नहीं माना जाता। पदार्थकी जानकारीकी जाती है। जीवको नित्यानित्यात्मक जाननेसे कि यह जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्यायदृष्टिसे अनित्य है तो नित्यका आश्रय करेगा जिसे अनित्य जाना है। जैसे कि उसकी पर्याय अनित्य है, कोई विषय इच्छा आदिक होते हैं विनाशीक हैं तो स्वत ही उनका आदर न करेगा यह जीव। जब ये नष्ट हो जाने वाले हैं और उनका शाश्वत स्वरूप नहीं है तो फिर उनमें न फसेगा। और नित्य जाननेपर कि यह ज्ञानस्वभाव सहज शाश्वत है और यही मैं हू ऐसा समझनेपर इसपर दृष्टि देगा तो यह तो भला है ज्ञानका कहीं इस भावसे नहीं किया गया कि अनित्य को जाननेसे द्वेष उत्पन्न होता है इसलिए अनित्य मत मानो और नित्यको जाननेसे स्नेह जगता है इसलिए नित्य न मानो। यह प्रयोजन नहीं है। अनेकांत ज्ञानमे कोई बाधा नहीं है, वह मिथ्याज्ञान नही है, अनेकांत ज्ञानसे तो होता है वस्तुके स्वरूपका ज्ञान और उससे होता है सहजस्वरूपका परिचय, फिर बनती है निर्विकल्प समाधि, और समाधिके बलसे होता है मोक्ष।

वस्तुस्वरूपके निर्णयकी पद्धति-- अब निर्णयकी बात सुनिये। अनेकातसे जो निर्णय किया जाता है वह सही निर्णय होता है। एक दृष्टात लो —जैसे चार अधे पुरुष हाथीके स्वरूपको जानने चले तो एक अधेके हाथमे आया हाथीका पैर तो वह तो इस बातपर अड गया कि हाथी तो खम्भेकी तरहका होता है। एकके हाथमे लगा पेट, तो वह कहता है कि हाथी ढोलकी तरह है। एकके हाथमे लगी सूड तो वह कहता है कि हाथी तो मूसलकी तरहका होता है। एकके हाथमे लगे कान तो वह कहता है कि हाथी सूपकी तरहका होता है। चारों परस्परमे झगडने लगे, तो कोई एक सूझता पुरुष आया। उनके झगडनेका कारण मालूम किया और उन्हे समझाया

कि भाई ! तुम चारोकी बात सही है। पैरोकी दृष्टिसे हाथी खम्भे जैसा होता है, पेट की दृष्टिसे हाथी ढोल जैसा होता है, सूडकी दृष्टिसे हाथी मूसल जैसा होता है और कानोकी दृष्टिसे हाथी सूप जैसा है। तो अब निर्णय तो सभी दृष्टियोसे सब बातोके जानेसे हुआ करता है। तो अनेकान्त तो वस्तुस्वरूपका निर्णय देता और निर्णय पाने के बाद हमे क्या करना चाहिए ? किस मार्गसे शाति लाभ हो, यह फिर अपनी बात है। जो हेय चीज हो उससे उपेक्षा करे और जो स्वय स्वरूप है उसमे रुचि बढायें। वस्तु तो नित्यानित्यात्मक है। कोई भी पदार्थ हो, वह कूटस्थ अपरिणामी नही है। उसमे कुछ अवस्था ही न हो, फेरफार ही न हो वह वस्तु नही होती और कोई वस्तु क्षण-क्षणमे अपनी सत्ता खोये ऐसा भी नही है।

दृष्टिविशेषसे विरुद्धाविरुद्ध धर्मोंके एकधर्मी रहनेका निःसदेह निर्णय यह उपालम्भ देना ठीक नही कि कोई वस्तु नित्य है तो अनित्य कैसे होगी ? अनित्य है तो नित्य कैसे होगी ? अरे, ये दोनो बातें वस्तुमे प्रतीत हो रही हैं। फिर विरोधकी क्या बात ? जिस दृष्टिमें नित्यपन बताया जाय उस ही दृष्टिमें अनित्यपना कहा जाय तो विरोध आयगा। जैसे एक युवकको कहे कि यह पिता भी है, पुत्र भी है तो जिसका पिता बताते हैं उसीका ही पुत्र बतावें, तब तो विरोध है। अब अमुकका तो पिता है और अन्य अमुकका पुत्र है तो इसमें विरोधकी क्या बात आयी ? इसी तरह जीवको द्रव्यदृष्टिसे ही अनित्य है ऐसा कहा जाय तो विरोध है। जैसे इस चौकी की लम्बाई चार फिट और चौडाई सवा फिट है। और कोई कहे कि लम्बाईकी अपेक्षा भी ४ फिट है और लम्बाईकी ही अपेक्षा सवा फिट है तो इसका विरोध है। जब दृष्टिया अलग अलग हैं और उन दृष्टियोसे अलग अलग बातें है तो उनका विरोध नही है। नित्य तो उसे कहते हैं जो निरन्तर रहे प्रत्येक पर्यायोमे रहे और अनित्य उसे कहते कि जो था वह अब नही रहा, ऐसा जहाँ व्यतिरेक हो,- व्यावृत्ति हो उसे अनित्य कहते हैं। जैसे अगुली सीधी है फिर टेढ़ी है और फिर गोल ली। तो इन सब अवस्थाओमे अगुली तो वही है ना ! तो जब अगुली मात्रकी दृष्टिसे देखते तो कहेंगे कि अगुली सदा रहती है और जब अवस्थाओकी दृष्टिसे देखते हैं जब सीधी है तब टेढी नही, जब टेढी है तब सीधी नही। तो यह अनित्य बन गया। तो दृष्टि न्यारी न्यारी है उससे न्यारे धर्म एक पदार्थमें कहे गए हैं। एक ही दृष्टिसे विरुद्ध धर्म नही बताये जाते हैं। भिन्न-भिन्न धर्मोंका भिन्न अथवा अभिन्न धर्मोंके निमित्तोके विधिप्रतिषेधोका एक पदार्थमे निषेध नही किया जाता है अन्यथा तो कुछ भी नही बोल सकते। मैं अमुक को करता हूँ तो इसका अर्थ है कि और कुछ नही कर रहा हूँ, जो लोग मानते हैं कि ईश्वर कर्ता है तो और प्राणी, ससारके और जीव ? ये कर्ता नही हैं तो बताओ दो धर्म तुम्हारे भी सिद्धान्तमें आये कि नही ?

निर्णय और व्यवहारमे स्याद्वादका स्थान —स्याद्वाद बिना तो कोई जिह्वा

भी नहीं हिला सकता। स्याद्वादके बिना तो व्यवहार भी नही चल सकता। द्रव्य-दृष्टिसे देखा तो पदार्थ नित्य है, पर्याय दृष्टिमे देखा तो अनित्य मिला। देखिये यह तत्त्वज्ञानकी बात जैन शासनकी मूल बात है। जो इस बातको नही जान सकता वह तो मोक्ष मार्गमें रच भी कदम नही रख सकता। लोग कहते हैं ना—राजा, राणा, छत्रपति, हाथिनके असवार, इन सबको मरना है, ये विनाशीक हैं। तो विनाशिक तो हैं लेकिन इनका क्या समूल नाश हो जायगा? अरे जो जीव आज राजाकी पर्यायमे है उस जीवकी राजाकी पर्याय नष्ट होगी, जीव नष्ट न होगा। कोई पदार्थ मूलमे नष्ट नही होता। हमें जानना होगा उसका विरोधी धर्म भी। मैं हू तो मैं मैं हू मैं और कुछ नही हूँ। यह बात तो उसके पेटेमे पडी है ना। कुछ भी बात आप बोलेंगे वह स्याद्वादको लिए हुए बात होगी। देखो एक मनुष्य ५० वर्ष तक जीवित रहता है तो वह पहिले बालक था, फिर जवान हुआ अन्तमे थोडा बूढ़ा भी हुआ। तो उसमे जो ये तीन अवस्थायें एक दूसरेसे विरुद्ध हैं ना। बचपनमें जवानी कहाँ, जवानीमे बचपन कहा? तो इन अवस्थाओंका तो विरोध है पर एक मनुष्यमें ये अवस्थायें रहा करती हैं। क्या विरोध है? मनुष्य वह है जो इन सब अवस्थाओंमें वहीका वही रहे। तो जो पूर्वकालमें रहने वाली पर्याय और आगे होने वाली पर्यायमें अनुवृत्तरूपसे रहे ऐसा हमे सब कुछ नजर आ रहा है और पर्याय भी दृष्टिमे आ रही हैं और उनमें रहने रहने वाला एक पदार्थ है यह भी समझमे आ रहा। तो जो बात प्रतीतिसिद्ध है उस का अपलाप करना व्यर्थ है। स्याद्वादसे ही तत्त्वनिर्णय होता है और यही सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न कर सकता है। तो यह कहना कि अनेकातका ज्ञान मिथ्या है इसलिए उसकी भावनासे मोक्ष नहीं हो सकता, यह गलत है।

वास्तवमें ज्ञानका प्रयोजन अज्ञाननिवृत्ति - विशेषवादीका यह भी कहना गलत ही है कि "अनित्य मानोगे तो द्वेष हो जायगा और नित्य मानोगे तो स्नेह जग जायगा, इस कारणसे नित्यानित्यात्मक मान लो।" पदार्थ ही नित्यानित्यात्मक है। जो जैसा है उसको उस रूप मानना ही चाहिये। आप देख लीजिये! समस्त पदार्थ बनते हैं बिगडते हैं फिर भी बने रहते हैं। ये तीन बातें हर एक पदार्थमें हैं कि नही? जैसे दूध, दही, घी। जिस पदार्थका दूध होता है दही होता है उसका नाम गोरस मान लीजिए! तो गोरसकी दृष्टिमें वह वे तीनो अवस्थायें रही और अवस्थाओकी दृष्टिसे वे अलग-अलग रहे। किसी पुरुषने यदि गोरसका त्याग कर दिया है तो वह ये तीन चीजें नही खा सकता। और किसीने दूधका ही त्याग किया है वह तो दही ले सके, घी ले सके। तो यद्यपि दही, घी भी गोरस है, पर उसने उसकी एक पर्यायका त्याग किया। तो एक ही चीज है उसमें पर्यायें होती रहती हैं बनती हैं बिगडती हैं फिर भी बनी रहती हैं। यह बात प्रत्येक जीवमे है और ऐसा माने बिना व्यवहार भी नही चल सकता। कोई पुरुष यह सोचकर कि मेरी दुकानमें यह सोनेकी कलसिया बहुत दिनोंसे पडी है और इसे कोई खरीद ही नही रहा है तो इसका मुकुट बनवालें,

आजकल पर्वके दिन हैं, लोग खरीद लेंगे। तो उस कलसियाको तोड करके मुकुट बनाया जा रहा था इतनेमे वहा तीन प्रकारके मनुष्य आये। एकको तो चाहिये थी अभिषेक करनेके लिए कलसिया, एकको चाहिए था मुकुट और एकको चाहिए था सोना। जब वे तीनो दुकानपर आए तो जो कलस चाहता था उसको तो खेद हुआ, मैं आध घटा पहिले आता तो बना बनाया कलस मिलता और कुछ सस्ता भी मिलता। और, जो मुकुट लेने वाला था उसको हर्ष हुआ, वाह कैसा बना बनाया मुकुट जल्दी ही मिल जायगा अधिक समय तक मुकुट ढूढना न पडेगा। और, जिसे सोना चाहिए था उसे न हर्ष था न विषाद। वह तो गिलसिया रहती तो लेता, मुकुट बनेगा तो लेगा। तो ये जो तीन भाव हुए हैं उनका कारण जो उत्पादव्यय ध्रौव्य है वह भी तो तत्व सही निकला। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। तो स्याद्वादसे तत्वका निर्णय होता है, वह मिथ्याज्ञान नही है।

अनेकात्मक वस्तुके वस्तुत्वके ही कारणस्वरूप सत्त्व और पररूपासत्त्व की व्यवस्था—विशेषवादने जो यह कहा था कि पदार्थ अपने प्रदेशमे है दूसरेके प्रदेशमे नहीं है यह बात अनेकातके कारण नहीं किन्तु इतरेतराभावके कारण है। यह बात भी युक्त नहीं जचती क्योकि इतरेताभावका अर्थ क्या है ? यह तो पदार्थोंका ही निजस्वरूप है कि अपने प्रदेशमे रहे दूसरेके प्रदेशमे न रहे, यह तो पदार्थमे स्वय पडा हुआ है। इतरेतराभाव और क्या चीज है ? दो अगुली हैं छोटी बडी। छोटी अगुलीमे बडी अगुली नही है, बडी अगुलीमे छोटी अगुली नहीं है, तो यह इन्ही अगुलियोका स्वरूप हुआ ना कि इसमें कोई तीसरा व्यवस्था करने आया है इतरेतराभाव या और कुछ कि एकमें दूसरा नही आ सकता। अरे इसका स्वरूप ही यह है कि वृत्ति अपने स्वरूपसे रहती है और परके स्वरूपसे नहीं रहती। स्याद्वादमे मूल बात बतायी गई है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है। यह बात तो जरा दिल लगाकर सुननी पडेगी। कभी भी समझें। इसके समझे बिना तो निर्मोहता का मार्ग नही मिल सकता। और, जब तक जीव निर्मोह नही हो सकता तब तक उसे शान्ति नही है।

निर्मोहताका उपाय यथार्थज्ञान—जीवका मोह कैसे गले, इसका उपाय क्या है ? ज्ञान। जैसे कही पडी तो थी सीप और जान गए चांदी तो अब यह चांदी का लोभी पुरुष बहुत विकल्प करता है। मैं इसे उठा लूं। उसके लिए दौडता भी है अथवा यहां वहां तकता भी है, समयकी बाट जोहता है। और, कही उसे यह ज्ञान हो जाय कि अरे वह तो सीप है तो देखो सारी विकलतायें उसकी दूर होती हैं ना। इसी गृहस्थको यह भ्रम हो गया कि यह स्त्रीका जीव मेरा कुछ लगता है, ये पुत्रादिक परिजन मेरे कुछ लगते हैं। यह अज्ञान अंधकार बन गया तो अब यह पुरुष उनके लिए अपनी भी जान न्योछावर कर देता है। और, खुद भूखा रहता है, बडे-बडे परि-

श्रम करता है। कभी शांति नहीं पाता, क्योंकि उसे भ्रम लग गया है ना। अरे तुम उनके लिए क्या परिश्रम करते हो ? जो तुम कर रहे हो परिश्रम अर्थात् उनकी जो नौकरी कर रहे हो, सेवा कर रहे हो, इसमें उनका खुदका पुण्यका उदय है। स्त्री पुत्रोंका ऐसा विशेष पुण्य है कि यह पुरुष तो रात दिन पिलेगा दुकानमें यहां वहां और स्त्रीको पालनामें बैठाये रहेगा न तो स्त्रीसे रोटी बनवायगा न और कोई काम लेगा। बस यह स्त्री दिन भरमें दसों बार साड़ी बदलेगी और इधर उधर घूमे फिरेगी बतलावो उस पुरुषसे अधिक पुण्यका उदय उन स्त्री पुत्रादिकका है या नहीं ? है। तो फिर क्या इतनी उनकी फिकर की जा रही है ? लेकिन भ्रम लगा है ना कि इन्हें मैं ही तो पालता हूं, ये मेरे ही तो कुछ लगते हैं बस इस भ्रमके ही कारण इस पुरुष को रात दिन जुतना पड़ता है। शांति कहां मिल पाती है ?

ज्ञानप्रबोध द्वारा नीराग होनेका उदाहरण —जब लक्ष्मणजीका देहान्त हो गया तो रामचन्द्रने लक्ष्मणके मृतक देहको ६ माह तक लिए रहे। बहुतसे लोगों ने रामचन्द्रजीको समझाया, पर उनकी बुद्धि तो उस समय जरा क्षोभमें थी सो उन्होंने किसीकी न सुनी। एक देवने पत्थरपर कमल लगानेका काम दिखाया तो रामचन्द्रजी ने पूछा भाई ! यह क्या कर रहे हो ? अरे इस पत्थरपर कमल बो रहे हैं। अरे कहीं पत्थरपर कमल भी लग जाते हैं क्या ? अरे तो कहीं मुर्दा शरीर खाता पीता भी है क्या ? इसनेपर भी रामचन्द्र जी कुछ न समझ सके। एक देवने कोल्हूमें बालू पेलनेका काम दिखाया। रामचन्द्रने पूछा यह क्या कर रहे हो ? अरे इस कोल्हूमें बालू पेलकर तेल निकालेंगे। अरे कहीं बालूमेंसे तेल भी निकला करता है क्या ? अरे कहीं मुर्दा शरीरमेंसे बोलचाल भी निकला करता है क्या ? इसपर भी रामचन्द्र जी कुछ समझ न सके। तीसरे प्रयोगमें यह दिखाया कि मुर्दा बैलोंको गाड़ीमें जोत रहे हैं। रामचन्द्रजीने पूछा भाई ! यह क्या कर रहे हो ? अरे इन मुर्दा बैलोंको गाड़ीमें जोत रहे हैं। अरे कहीं मुर्दा बैल भी गाड़ीमें जोते जाते हैं क्या ? अरे कहीं यह मुर्दा देह भी खा पी सकता है क्या ? लो इस बार रामचन्द्र जीकी गुत्थी सुलझी, तुरन्त प्रबोध हुआ, ज्ञान तो था, पर व्यासंग हो गया था। उसके बाद फिर वे इतना अडिग रहे कि सीताजीके जीव प्रतीन्द्रने भी नाना हाव भाव करके रामचन्द्र जीको डिगाना चाहा, इसलिए कि रामचन्द्र जीका तपश्चरण अभी भंग हो जाय, यह अभी मोक्ष न जायें आगे हम और ये दोनों मोक्ष जायेंगे। लेकिन उस समय रामचन्द्र भी न डिगे। तो जब जीवका भ्रम मिटता है तब शान्ति प्राप्त होती है। भ्रम मिटने का साधन है तत्वज्ञान। तत्वज्ञानका साधन है स्याद्वाद। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है, पर रूपसे सत् नहीं है। यह पदार्थका ही धर्म है न कि इस व्यवस्थाको बनाने के लिए कोई इतरेतराभाव आया।

वस्तुत्व न मानकर इतरेतराभाव द्वारा स्वरूपसत्व पररूपासत्वकी

व्यवस्था करनेमे आपत्ति— इतरेतराभावका अर्थ बताया कि एकमे दूसरा नहीं। चौकीमे पुस्तक नहीं। तो पुस्तकमें चौकीका अभाव है चौकीमें पुस्तकका अभाव है यह अभाव इसकी व्यवस्थायें बना रहा है। लेकिन अभाव कोई अलग पदार्थ नहीं है। चौकीमें ही स्वय ऐसा गुण है, ऐसी सत्ता है कि वह अपने प्रदेशसे है और दूसरेसे नही है। तभी तो यह निर्णय बनेगा कि मेरा आत्मा मेरेमें ही है। दूसरेके आत्माका मेरेमे कोई सम्बन्ध नही। वे अपने स्वरूपसे हैं। जब पदार्थोंकी यह बात निज तत्वकी बात ध्यानमें आती है तब वहां मोह नही रहता। किससे मोह करना। कौन है मेरा। मेरे ज्ञानानन्द स्वरूपके अतिरिक्त लोकमें कुछ है ही नही। अन्तर्दृष्टि करके जरा ध्यान मे लावो, मोह मोहमें ही सारा जीवन गवां दोगे तो क्या फायदा मिलेगा? लोग असमयमें मर जाते हैं। अपनी भी कल्पना करो। अबसे दो चार वर्ष पहिले ही मर गये होते तो इस सकलमे कहा होते? फिर कहां रहता यह समागम? क्या तब मर न सकते थे? बच गये तो हम दुनियांके लिए नही बचे अपने लिए बचे, ऐसा मान कर धर्म साधनामे लगना चाहिए। धर्मका यदि सहारा न रखा तो मनुष्य जन्मका पाना न पाना बेकार है। इसलिए ज्ञानका अर्जन करना और धर्म पालन करना यह मुख्य काम हैं। वैभवमें क्या दम है। पुद्गलका ढेर है। इस पुद्गलके ढेरसे मेरे आत्मा को क्या लाभ है? आत्माका लाभ सम्यक्त्व ज्ञान और चारित्रमें है, ऐसे रत्नत्रय धर्मकी सेवा करके अपना जीवन सफल करना चाहिए।

वस्तुत्त्वदृष्टिसे ही अन्योन्याभावका अवरोध— वैशेषिकसिद्धान्तवादियोंने स्याद्वादके तरीके और मोक्षके स्वरूपपर अपना पक्ष बताया था। उसके उत्तरमें कह रहे हैं कि एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें जो अभाव होता है वह वस्तुकी खासियत है। इतरेतराभावके कारण एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव है यह बात सही नही है। इतरेतराभावकी बात कहना तो फलित सिद्धान्त है। जैसे यह चौकी पुस्तकमे नही, पुस्तक चौकीमें नहीं, इसकी व्यवस्था करने वाला इतरेतराभाव नही है, किन्तु वस्तु की सत्ता ही स्वय अपने आपमे व्यवस्था कर लेती है। अब ऐसी व्यवस्थित वस्तुवोको निरखकर यह कहना कि उसमे इसका अभाव है, इतरेतराभाव है तो यह तो फल बताया गया है। कोई इतरेतराभाव जिसकी सत्ता हो और वह व्यवस्था करे ऐसी बात नही है। यदि इतरेतराभावको कोई वास्तविक चीज माना जाय तो बतावो कि वह इतरेतराभाव इस चौकीसे अभिन्न है या भिन्न है अर्थात् चौकीमें पुस्तकका अभाव है यह पुस्तकाभाव चौकीमे अभिन्न है क्या? अगर अभिन्न है तो चौकी कभी नष्ट हो जाय तो इसका अर्थ है कि पुस्तकाभाव नष्ट हो गया तो पुस्तक उत्पन्न हो जाना चाहिये, पर ऐसा तो नही। यदि कहो कि चौकीसे वह इतरेतराभाव [पुस्तकाभाव] भिन्न है तब फिर भिन्न ही रह गया तो चौकी और पुस्तकमे अन्तर कैसे डालोगे? इस कारण इतरेतराभाव अलग कोई है और वह व्यवस्था करता है यह सही नही है, वस्तु अनेकांतात्मक है, यह सि[illegible] है। अब देखिये! जब तक वह

निर्णय न हो जाय किसीको कि प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक है वह व्यापार प्रवृत्ति नहीं कर सकता। पदार्थ वस्तुत तो अवक्तव्य है न उसमें कोई धर्म बना सकते न उसमे कुछ वर्णन बन सकता लेकिन अवक्तव्य अखण्ड वस्तुमे जब हम कोई परिज्ञान करना चाहते हैं तो उसका तरीका यह है कि हम स्याद्वादके द्वारा अपेक्षा लगाकर उसमें धर्मको देखें। ऐसा किए बिना यथार्थ निर्णय नही हो सकता। फिर दूसरी बात यह कि यह कहकर जो शंकाकारने खण्डन किया था कि कोई भी पदार्थ अन्य कार्योंका अकर्ता नहीं है यह तो इतरेतराभावसे बनता है। तो यहाँ पहिले तो कार्य-कर्तृत्व ही सिद्ध नही कर सकते, क्योकि पदार्थ अगर सर्वथा नित्य है तो कार्य कैसे होगा अनित्य है तो कार्य क्या हो सकता।

क्रमानेकान्तसे मुक्तमे मुक्तत्वके प्रतिपक्ष धर्मकी सिद्धि -यह कहना ठीक नही कि फिर तो मुक्तिमे भी अनेकान्त लगावें कि मुक्त जाव मुक्त भी हैं और ससारी भी हैं। यह दूषण नही हैं। एकांत दो प्रकारके होते हैं क्रमानेकांत और अक्रमानेकात। क्रमानेकांतकी अपेक्षामे यह कह सकते कि यह जीव पहिले ससारी था अब मुक्त है। अनेकांतमे जब हम ऐसे क्रमकी दृष्टि रखेंगे तो यह भी कह सकते। और फिर इस सम्बन्धमें सीधी बात यह है कि मुक्तके साथ ससारी प्रतिपक्षमें नही आता, किंतु मुक्तके साथ अमुक्त प्रतिपक्षमे आता है। प्रभु सिद्ध भगवान मुक्त भी हैं अमुक्त भी। मुक्त तो रागद्वेषसे छूट जानेके कारण है और अमुक्त अपने ज्ञानादिक गुणोंसे हैं। मुक्तके मायने जो छूट जावे। प्रभु सिद्ध भगवान छूट भी चुके और नही भी छूटे। छूटे तो कर्मोंसे, पर अपने स्वरूपसे ज्ञानसे आनन्दसे इनसे तो नही छूटे। तो वहाँ कह सकते हैं कि प्रभु मुक्त भी हैं और अमुक्त भी हैं।

अनेकांतमे भी अनेकान्तरूपता ऐसा भी कहना योग्य नही कि तब तो अनेकांत में 'भी' अनेकात लगालो कि अनेकान्त 'भी' है और एकात 'भी' है। कहते हैं कि यह बात भी सही है, इसमें दूषणकी बात नही है। अनेकात अनेकांत 'भी' है और अनेकांत ही है ऐसा एकान्त नही है ऐसा अनेकान्त 'भी' मान लो। इसलिए यहा दूषण नही आता। कैसे मानते हम एकान्त कि अनेकांतसे, प्रमाणसे किसी वस्तुको हमने जाना, अब उस जानी हुई वस्तुमें जो एक-एक धर्म है, जो नयोके द्वारा जाना जाता है प्रतिपादित किया जाता है तो नयोकी दृष्टिसे वह अनेकात एकातका अविनाभावी है, अनेकांत एकान्त बिना नही हो सकता। सुनयोका एकान्त जब मान लिया जायगा तब, हाँ हम अनेकात कह सकते। इससे यह कहना कि अनेकात भावनासे यह जान लिया, मोक्षशिलाके ऊपर एक शुद्ध शरीरको प्राप्त करता है उसका नाम मोक्ष है, यह कहना ठीक नही है। मुक्ति मोक्ष शिलापर पहुँचनेसे नही होता, किंतु स्वभाव विशुद्ध हो जाय और सर्व उपाधियां दूर हो जायें तब मोक्ष कहलाता है।

विकल्पनिद्राकी परेशानी दूर करनेके लिए जागरण—ये ससारी प्रा-

सब परेशान हैं। कोई राग करके, कोई द्वेष करके परेशान है, कोई अज्ञानसे परेशान है। इस संसारमें जो भी समागम दिख रहे हैं इनको अपनाकर ये जीव दुःखी हो रहे हैं। इनके ये दुःख कैसे मिटें इसका उपाय उन्हें जरूर करना होगा। और, इसके उपाय करनेका अवसर है यह मनुष्य भव। श्रेष्ठ मन मिला है, बुद्धि भी मिली है, जैन धर्मका समागम प्राप्त हुआ है, बडे बडे ऋषिसन्तोंने तपश्चरण करके बडी साधना करके जो अनुभव प्राप्त किया था करुणा करके उन्होंने वह अनुभव ग्रन्थोंमें लिख दिया है वे हमें आज प्राप्त होते हैं। तो कितना सुन्दर अवसर है, और जब संसारके लगावपर दृष्टि डालते हैं तो यह व्यासङ्ग कितना असारभूत काम है। एक जीवका दूसरे जीवके साथ सम्बन्ध क्या है। जब पूर्ण सत् प्रत्येक जीव है, किसी जीवका सत्व किसीकी उपेक्षाको रखकर नहीं है तो किसीको कोई लोग कैसे जानें? पहिले दो बातोंपर ध्यान देना है। जिसे सारा मोही जगत मानता है कि यह मेरा अमुक है, मेरा कुटुम्ब है, मेरा वैभव है, ऐसा जो ममकार करता है तो विचारना चाहिए कि वस्तुस्थिति क्या हो सकती है। और ये जीव ममकार क्यों किये जा रहे हैं। ममकार करने वाले लोग भी आखिर मरते हैं, बिछुडते हैं, तो फिर ममकारकी दृष्टिसे भी ममकार सारभूत चीज नहीं है। स्वरूपदृष्टिसे भी सारभूत चीज नहीं है। अनन्त जीवों मेंसे अटपट कुछ जीव घरमें इकट्ठे हो गए तो उन्हें मान लिया कि ये मेरे हैं, किसी जीवकी कषायसे अपनी कषाय मिल गई तो उसे मान लेते कि यह मेरा मित्र है, वस्तुतः कोई किसीका यहाँ मित्र है क्या? कोई किसीका कुछ कर सकने वाला है क्या? सब अपनी अपनी कषायके अनुसार चेष्टा करते हैं। तब यहा किसमें अपने चित्तको रमाया जाय। विकल्प करना व्यर्थकी हैरानी है।

मोह चिन्तासे लाभकी अशक्यता—जब यह स्पष्ट है कि यहा कोई किसी का मित्र नहीं, अगर कषायसे कषाय मिल गयी तो मित्र मान लिया और अगर अपनी कषायसे दूसरेकी कषाय विरुद्ध दिखी, तो उसे अपना विरोधी मान लिया। वस्तुतः यहा न कोई किसीका मित्र है न कोई किसीका विरोधी है। फिर उस ही रफ्तारमें बहे जाना, जो कुछ रफ्तार हम पहिलेसे ही करते आये हैं, जो ढङ्ग बनाया है ममकार करते रहना, अपनेको जलाना, अपनेको बरबाद करना, उस ही वेगमें, उस ही पद्धतिमें रहे तो अपना भला नहीं है। अपनको साहस करना होगा कि वस्तुतः मुझे दुनियाका कोई भी पुरुष नहीं जानता। यदि आप मेरे स्वरूपको जानते हैं तो आपके लिए मैं विषय नहीं रहा, आपके लिए चैतन्यस्वरूप रहा विषय। और यदि नहीं जानते यथार्थतः मेरे स्वरूपको तो जिसे जानते होंगे अपने मनसे कल्पनायें करके, आप उसके प्रति मित्रता या बैरका विकल्प कर सकते। यही बात सब जीवोंकी है। तो जब सब काम हमें अपने आप ही अकेलेसे अपनको करना है तो हमें क्यों न कुछ विशेष अपना ध्यान रखना चाहिये। दूसरेके विकल्प-विकल्पमें ही समय गुजरे, जिसे कहते हैं मोह चिन्ता, पर जीवोंके सम्बन्धमें मग्न होकर उनके ही विकल्प बनाये रहना, यह तो

अधमाधम चिन्ता कहलाती है। उसमें अपनेको लाभ नही मिलनेको है। अपना लाभ मिलेगा खुदको खूब ध्यानमे रखे—मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ, ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानमात्र कहनेमे जो कुछ समझानेके लिए कहा जाता है वह सब गर्भित हो जाता है। अपने आपके उपयोगको इस तरह बनायें कि यह ज्ञानज्योति है केवल ज्ञानप्रकाशमात्र, जाननमात्र है। जिस जाननमे रूप, रस, गध, स्पर्श तो नही है, जिस जाननमें केवल एक अमूर्त आनन्दभाव आता है।

स्वका सवेदन हो सकनेका कारण—हम चूंकि जानन सदा किया करते हैं, चाहे किसी प्रकार करें, सो हम जाननके स्वरूपका परिचय पा सकते हैं। यद्यपि कोई भी अमूर्त पदार्थ हमारे देखनेमे नही आ रहा, हम उसको स्पष्ट जान भी नही सकते। लेकिन ये अमूर्त पदार्थ चूंकि ये स्वय ही हैं इसलिए स्वय जाननेमें आ सकते हैं। हम धर्म, अधर्म, आकाश काल द्रव्यको नही जान सकते हैं। वे अमूर्त हैं। उसके विषयमें हम चिन्तन करते हैं, आगमके अनुसार, युक्तियोंके अनुसार। अन्य अमूर्त पदार्थ स्पष्ट सम्वेदनमें आ जाय अपने अनुभवमें आये कि यह है, ऐसा तो नही होता तो उन्हीं पदार्थोंकी भाँति अमूर्त मैं भी हूँ। आकाशकी भाति अमूर्तिक मैं भी हू लेकिन मैं चेतन हूँ और स्वयपर सब बातें बीतती हैं इस कारणसे मैं अपने अन्दरकी बातोंको तत्त्वको, गुणोको, अवगुणोंको, स्वरूपको चेत सकते हैं उसका परिज्ञान कर सकते हैं।

स्वके ज्ञानमात्र अनुभवनकी आदेयता—हम सामायिकमें अधिकतर इस ओर ध्यान दें कि अपने चित्तको अपने आपमें मग्न करदें, परके विचारोको, विकल्पोंको अन्य किन्ही पदार्थोंको ध्यानमे न लायें। कोशिश करें ऐसी कि जो बाह्य पदार्थ ज्ञानमें आते हैं उनको न आने दें। अपने उपयोगको बदल दें, किसी भी परतत्त्वको ध्यानमें न लायें, आतें हैं ध्यानमें तो झट यहाँ ही बातें करें। तुमसे मेरा क्या भला होनेका है। तुम क्या मेरे साथी हो सकते हो ? तुमसे मेरा क्या हित सम्भव है ? मत परेशान करो। मेरे दिलसे निकलकर विराम लो। तो परका विकल्प तोडकर विश्रामसे बैठनेका यत्न करें और अपने अन्दर ऐसा निरखनेका भाव बनायें कि मैं ज्ञानमात्र हू। केवल ज्ञानस्वरूप जाननमात्र और ऐसी स्थितिमें लगेगा ऐसा कि कुछ मंद मदसा उजेला है, एक सामान्य प्रकाश है, चेतनताको लिए हुए है। कुछ उसमें प्रतिभास तो है, वह प्रतिभासस्वरूप है, उसमें दूसरेका प्रतिभास नही आ रहा, मगर खुद प्रतिभास स्वरूप है, ऐसा एक सामान्यतया ज्ञानप्रकाश ज्ञानमें लेनेका यत्न करें। यह यत्न हो सका तो समझिये कि दुर्लभ मानव जीवन सफल कर लिया, यह अनुभव न बन सका तो हमने वह कुन्जी नही प्राप्त कर पाई, जिसके प्रतापसे संसारके संकट सदाके लिए मिट सकते हैं। अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेके यत्नमें लगाना चाहिये और बाहरी बातें—कुछ थोडासा नुकसान हो गया तो क्या हो गया ? धनका नुकसान हो गया या कोई सम्मान-अपमान सम्बन्धी नुकसान हो गया तो ये तो तुच्छ बातें हैं। ये कोई

महत्त्वपूर्ण बातें नहीं हैं। हो गया तो हो गया। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम जितने समय अपनेको ज्ञानप्रकाशमात्र अनुभव कर सके उतना हमने लाभ पाया और इसी स्वरूपसे चिगकर बाह्यकी ओर खिंचकर हम कुछ भी श्रम कर डालें दुनियाको दिख भी जाय कि बड़ा श्रम किया, इसने बड़ा उपकार किया, यह बड़ा कर्मठ है। लेकिन उन बातोंसे, उन दिखावटोंसे आत्माको कुछ लाभ नहीं होनेका। आत्माका लाभ तो बस इसीमें है कि अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव किया जाय।

विशुद्ध ज्ञानका प्रसाद—स्वयमें विराजा हुआ वह परमात्मतत्त्व जो शक्तिरूपसे है उसकी झलक होगी, उससे भेंट होगी, और उस समय जो एक अलौकिक आनन्द प्रकट होगा बस उस अनुभवके बाद फिर जगतके असार विषय न रुचेंगे। जब तक निज सहज आनन्दकी अनुभूति न होगी तब तक बहुत कोशिश करे कोई, कि मैं विषयोंसे विरक्त हो जाऊं विषयोंमें हमारी रुचि न रहे, पर मूलतः रुचि हटती नहीं। और, कभी हट भी जाय तो वह एक मनके विषयको रुचि बढ़ाकर हटती है। तब लोकमें प्रशंसा लूटना, इस ओर दृष्टि जाती है। जब तक अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करनेके प्रसादसे उत्पन्न हुए आनन्दका अनुभव नहीं प्राप्त होता। तब तक वास्तविक मायनेमें विषयोंसे रुचि नहीं हट पाती। तो क्या चीज प्राप्त करना है, ज्ञानमात्र अनुभव करना है, इसके लिये हमें तत्त्वज्ञान चाहिए। तत्त्वज्ञानका उपाय है स्याद्वाद। सर्वप्रथम स्याद्वादसे ही हमें निर्णय प्राप्त होता है। निर्णय पानेके बाद फिर उसका जो अवक्तव्यरूप है, वस्तुस्वरूपका जब उसके दर्शन हो जाते हैं तो उस अवक्तव्य निज तत्त्वमें प्रवेश कर जावे, जिसमें सम्यक् एकांत भी छूट जाते। समस्त विकल्प छूट जाते, प्रमाण, नय, निक्षेपकी कल्पनायें भी छूट जाती। जब एक अभेद हो गया उन तत्त्वसे जो इस निर्णयसे प्राप्त किया जाता जो कि उद्देश्यमें था तो फिर सर्व विकल्प छोड़कर आत्मलीन होनेकी बातमें क्या सन्देह रहता है। तो स्याद्वादसे निर्णय होता, निर्णयके बाद यह बुद्धि उत्पन्न होती कि यह हेय तत्त्व है, इसमें न लगना, यह आदेय तत्त्व है, इसमें अपनेको लगाना और उस आदेय तत्त्वमें आदरके प्रतापसे फिर उस भव्यके जो अन्तःप्रकाश पैदा होता है, उससे समाधि बनती है, निर्विकल्प समाधि अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट रूपसे हो तो फिर वहाँ कैवल्य प्राप्त होता है। उस ही परम विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है।

गुणोच्छेदवादियोंद्वारा परमात्मलयकी मोक्षस्वरूपताके निराकरणका उद्योगारम्भ—अब यहाँ विशेषवादी जिनके मोक्षका स्वरूप यह है कि आत्मामेंसे ज्ञान सुख दुःख इच्छा आदिक सब नष्ट हो जायें आत्मा केवल एक चित्स्वरूप रहे, उसमें कोई प्रवृत्ति न रहे, परिणमन न हो औपाधिक बातें न हों तो उसका नाम मोक्ष है अर्थात् ज्ञानरहित आत्माकी अवस्थाका नाम मोक्ष है, ऐसा मोक्षस्वरूप मानने वाले वैशेषिक पुनः कहते हैं कि मोक्ष तो गुणोच्छेदनका ही नाम हो सकता है। आत्मा

कोई एक ज्ञानात्मक नही, जो उस ज्ञानात्मक आत्माके विकासका नाम मोक्ष कहा जाय। जो एक सिद्धान्त यह मानता है कि आत्मामें जब एकत्वका ज्ञान होता है, जब परमात्मामे लय होता है उस हीका नाम मोक्ष है, यह असङ्गत है।

ब्रह्माद्वैतवादमे मोक्षका स्वरूप—ब्रह्माद्वैतसिद्धान्तमे एक ब्रह्म ही तत्त्व है, उस ब्रह्मतत्त्वका परिज्ञान जब नही होता तो यह जीव संसारमे रुलता है। तथा जब यह जानता है कि मेरी सत्ता अलगसे कुछ नही है उस ही ब्रह्मस्वरूपका मुझपर प्रकाश पडता है तब मेरी सत्ता होती है। मेरी सत्ता अलग नहीं है, ऐसा जानकर अहंकार छोड देता है तब परमात्मामें लीनता होती है, यही मोक्ष है। जब तक यह जीव अपनी सत्ता न्यारी समझता है कि मैं स्वतंत्र सद्भूत हू तो इसे अहंकार जगता है। जब यह जान लेता कि मेरी सत्ता नही है अलगसे, ब्रह्मका ही प्रकाश मुझपर आता है तब मैं कुछ चेष्टावान हुआ करता हूँ ज्ञानवान हुआ करता हूँ। मैं तो अलग कुछ वस्तु नहीं यो एक आत्माके एकत्वको जब जान जाता है कि लोकमे सर्वत्र केवल एक ही ब्रह्म है, दूसरा कुछ नहीं है तो ब्रह्मके एकत्वको जाननेके बाद अपने आपमें उस ब्रह्मस्वरूपपर न्योछावर कर देता है। उसमे लीन हो जाता है तब इसका मोक्ष कहलाता है।

भेदप्रतिषेधपूर्वक आत्माके सर्वैकत्व पर प्रश्नोत्तर—ब्रह्माद्वैतवादके विरोध मे वैशेषिक कह रहे हैं कि आत्माके एकत्वका ज्ञान ही मिथ्यारूप है। कैसे है आत्मा, एक? आत्मा अनन्त हैं और गुण भी अनन्त हैं। कर्म भी अनन्त हैं। सामान्य विशेष समवाय ये एक एक हैं। अभाव भी अलग पदार्थ हैं इस प्रकार पदार्थोंकी व्यवस्था है। आत्मा एक है ही नहीं। फिर उसका एकत्व मानना, कल्पनायें करना जबरदस्ती कि सारे लोकमे एक आत्मा ही आत्मा छाया है यह तो मिथ्यारूप है, वह मोक्षका साधक नही हो सकता। ब्रह्माद्वैतवादी कहता कि नही। आत्मा ही एक वास्तविक सत् है उसके सिवाय अन्य भेदमें प्रमाण काम नहीं करता, ये सब भेद कल्पनासे हो गए हैं। प्रत्यक्ष तो पदार्थ निरखना भेदको नही। अज्ञानसे ये सब न्यारे-न्यारे पदार्थ माने हुए हैं। जो ज्ञान होता है कि आत्मा अनन्त हैं। जो जो भी ज्ञान किए जा रहे हैं ये सब कल्पनासे किए जा रहे हैं क्योंकि प्रत्यक्ष तो विधिको, एकको विषय करता है। प्रत्यक्ष चीजको विषय करता है। ये ५ पदार्थ रखे हैं ऐसा जो ५ का जानना है और इससे इतनी दूर दूर रखे हैं, ये एक दूसरेसे न्यारे-न्यारे हैं, इनको प्रत्यक्ष ज्ञान नही जाना करता, इन्हें तो कल्पना जानती है, जिसे स्याद्वादी लोग भी कहते हैं कि यह श्रुतज्ञानका विषय है, मति ज्ञानका विषय नही है। ये पदार्थ इतने हैं, ये पदार्थ ऐसे-ऐसे भेद वाले हैं, ये सब भेद श्रुतज्ञानसे जाने जाते हैं। सो प्रत्यक्ष तो केवल विधिको जानता है। तो प्रत्यक्षसे तो आत्मा जान लिया जायगा मगर इतने पदार्थ हैं, न्यारे-न्यारे यह प्रत्यक्षसे नहीं जाना जा सकता।

आत्माके एकत्वका यथार्थरूप और आत्मस्वरूपकी एकत्व कल्पनातीतता - अब ब्रह्माद्वैत और वैशेषिकके परस्पर वादविवादके पश्चात् स्याद्वादी कहता है कि यह कहना ठीक है, आत्माके एकत्वका ज्ञान होनेसे परमात्मस्वरूपमे लय होता है। लेकिन आत्माका एकत्व क्या है ? सर्व लोकमे केवल एक ही आत्मा है। यह एकत्व नहीं कहलाता। किंतु प्रत्येक आत्मामे जो स्वरूप बसा हुआ है वह स्वरूप सबका समान है वह स्वरूप एक है यह नही कि मेरे आत्माका स्वरूप और तरहका है। अन्य आत्माओका स्वरूप और तरहका है। तो उनका जो स्वरूप है चैतन्यमात्र, उस एकको जान लिया जाय, तब परमात्मस्वरूपका लय होता है। उस चैतन्यस्वरूपको न हम एक कह सकते न अनेक कह सकते, क्योकि जहा एक कहे तो वहा भी एक व्यक्ति बन जायगा वह स्वरूप। चैतन्यस्वरूप एक है। तो कितना बडा है या तो सर्वलोक व्यापी है या एक देहमे विराजा इतना है या कुछ भी कल्पना करो। उस चैतन्यस्वरूपके बारेमे अगर हम एक भी कहते हैं तो भी उसके प्रयोगको, सीमाभेद व्यक्तिपना बन जाता है। चैतन्यस्वरूपको हम अनेक कहते हैं तब तो स्पष्ट ही व्यक्तिपना आ जाता है। चैतन्यस्वरूपका अनुभव सख्या, आकार आदिक विकल्पसे नही हो सकता। वह चित्स्वरूप मात्र है, न एक है न अनेक। जैसे यह चित्स्वरूप परपदार्थोंसे निराला है, रागादिक भावोंसे न्यारा है उन रूप मैं नहीं हू ऐसे ही, आत्मामे उत्पन्न होने वाले मतिज्ञान आदिक छुटपुट ज्ञान भी यह मैं नहीं हू मैं चित्स्वरूप हूँ। कर्मक्षयसे उत्पन्न हुआ केवल ज्ञानरूप व्यक्तिया भी मैं नही हूँ। मैं शाश्वत हूँ ये तो कर्मोसे प्रकट होते हैं। ऐसा और आगे भी यदि यह विचारा जाय कि चलो मैं केवल ज्ञानरूप भी नही मानता, मतिज्ञानादिक रूप तो हूँ ही नही, रागादिक रूप हूँ ही नही। परपदार्थों रूप हूँ ही नहीं, किन्तु मैं चित्स्वरूप तो हूँ। आचार्य सतजन स्पष्ट कहते हैं कि जब तक एकपनेका सकल्प रहेगा कि मैं एक चित्स्वरूप हूँ तो एकत्वका सकल्प भी हमें उस चिदनुभूतिमें बाधक ही बनेगा। वह तो विकल्प जालोसे रहित केवल वह तो वही है। निर्विकल्प होकर अन्तः जो जाना गया वह तो वही है। ऐसे उस चैतन्यस्वरूपका दृढतम बोध होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसमें किसी भी प्रकारका विवाद नही है।

सहज विश्राममे सहजस्वरूपका उद्बोधन - भैया ! अपनेको जानना चाहिए। यदि कोई पुरुष ऐसा साहस बनाये कि मुझे तो किसीकी नही सुनना, किसी की नही मानना। धर्मके नामपर भी कोई ऋषि अपनी गाते हैं कोई अपनी गाते हैं, तो एक बार हमें किसीकी भी बात न सुनकर अपने आपका निर्णय करना चाहिए कि मैं क्या हूँ। बड़ी ईमानदारीसे करे किसीका भी पक्ष न रखकर, परका विकल्प हटाकर किसी परको अपनेमे स्थान न देकर यदि विश्राममें बैठें तो वह अपनेमें अनुभव कर सकता है। ये पशु पक्षी ऋषि संतोकी बातें कहा सुनते हैं, उनका कहा अर्थ जानते हैं। उनको जो भी अनुभव होता है वह किसके बलपर होता है। निष्पक्ष ही तो उनका विश्राम होता है उस ही विश्रामके बलसे उनके अनुभूति जगती है फिर

उसके बाद ये साधक स्वयं जानेंगे कि किन संतोंकी वाणी कितनी चित्स्वरूपकी अनुभूति कराने वाली है स्वयं समझ जायेंगे। तो हमे हर प्रकारसे आगम पढकर ऋषियों संतोंकी वाणी सुनकर कोशिश यह करना है कि हम अपनेको अनुभव करें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। केवल ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसी एक धुन बनायें, और कुछ न रुचे। गुप्त ही गुप्त। किसीको कुछ दिखाना नही, किसीमें कुछ बनना नही। मैं किसीके लिए कुछ हूँ ही नही। दुनियाके लिए मेरी सत्ता नही अपनेमें ही अपने ही सहज साम्राज्यको जानूं और अनुभव करता रहू ऐसी ज्ञानमात्र अनुभवनेकी हमारी धुन बने तो इसमें हम अपना जीवन सफल कर सकते हैं और जन्ममरणकी यह परम्परा मिट सकती है, संसारके संकटोंसे सदाके छुटकारा रखना हो सकता है।

शब्दाद्वैतावगमकी मोक्षोपायताका निराकरण—एक शब्दाद्वैतवादका सिद्धान्त है जो यह मानता है कि जगतमें सब कुछ शब्द ही शब्द है। शब्दमय सारा विश्व है और ऐसा समझनेकी प्रक्रिया है कि देखो ना जैसे कि लोग कहते हैं कि सब कुछ ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञानके सिवाय और कुछ नही। जैसे ज्ञानमें आया कि यह महल, यह चौकी, यह मनुष्य आदि तो ये सब हैं नही, केवल विचार है कल्पना है, ज्ञानसे यह मालूम पड़ता है। जैसे स्वप्नमे सभी चीजें जो भी दिखती हैं वे सत्य मालूम होती हैं पर वे कुछ भी सत्य नही हैं। वहा तो केवल ज्ञान ही ज्ञान है इसी प्रकार यह विश्व जो दिख रहा है, यह कुछ नही है, केवल ज्ञान ही ज्ञान है। तो जैसे ज्ञानाद्वैतवादी सारे विश्वको ज्ञान ही ज्ञान मानते हैं। जरा अब निरखे तो सही कि ज्ञान जो यहा उत्पन्न होता है वह शब्दसे बीधा हुआ ही उत्पन्न होता है। कोई ज्ञान ऐसा समझमें नही आता कि उसके साथ शब्द न हो। जैसे हम आप किसी भी चीजको जानते हैं तो जाननेके साथ ही उसके नाम रूप आदिकका कुछ भीतरमें अन्तर्जल्प होता है तो सारे ज्ञान शब्दोंसे बींधे हुए है इसलिए जगत शब्दमय है। और इस तरहका ज्ञान हो जाय तो मोक्ष हो जायगा। इसके समाधानमे संक्षेपमे ही समझ लीजिये कि यह सारा जगत केवल शब्दमय है इसकी सिद्धि नही है। कदाचित् जबरदस्ती ऐसा मान भी लिया जाय तो वैसा जान लेनेसे आत्मामें प्रभाव क्या पड़ा कि जिससे मोक्ष हो गया। तो शब्दाद्वैत कोई परमार्थ सत्व ही नही है और फिर मोक्षका साधक बताना, इसका तो कोई सम्बन्ध ही नही बैठता है।

मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकृतिवादका मन्तव्य—अब मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकृतिवादी कहते हैं कि प्रकृति और पुरुषमें भेद की उपलब्धि होना यही मोक्षका कारण है और मोक्ष भी क्या है। चैतन्यमात्र स्वरूपमें अवस्थित रह जाना इसका नाम मोक्ष है। यहाँ इतना संक्षेपमें जान लीजिये कि प्रकृति मायने मूलभूत एक अचेतन, पुरुष मायने आत्मा। आत्मा और अचेतन प्रकृतिके भेद विज्ञान होनेसे मोक्ष होता है। और, जो मोक्ष होता है उसका स्वरूप भी क्या

है ? चैतन्यमात्र स्वरूपमें आत्मा रह गया। विवरण कर रहे हैं वे स्वयं कि प्रधान जितनी प्रवृत्ति करता है वह पुरुषके प्रयोजनका सम्पादन करनेके लिए करता है पुरुष का काम बने आत्मापर यह प्रधान बड़ा मेहरबान है इसीसे मानो इस प्रकृतितत्त्वका प्रधान नाम पड़ा है। अब पहिले प्रकृति और पुरुषका संक्षिप्त स्वरूप जानो। पुरुषके मायने है आत्मा केवल चैतन्यस्वरूप और प्रकृतिके मायने हैं एक ऐसा अचेतन तत्व जिसका यह सारा ठाठबाट है। उस प्रकृतिसे ही ज्ञान, इन्द्रिय, शरीर, अहंकार आदिक उत्पन्न होते हैं। पुरुष तो, आत्मा तो केवल चित्स्वरूप मात्र है और यह प्रकृति प्रधान है जो कि ये सब खटपटें करता है। यह प्रधान पुरुषको खुश करनेके लिए काम किया करता है। तो प्रकृतिका सारा काम पुरुषके प्रयोजनके लिए है; और वह पुरुषका प्रयोजन अथवा पुरुषार्थ —पुरुषार्थ शब्दका अर्थ है पुरुषका अर्थ, पुरुषका प्रयोजन। वह दो प्रकारका है। शब्दादिक विषयोंकी उपलब्धि हो जाना, जैसे वर्तमानमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक भोगना। देखिए यह प्रधान बड़ा उपकारी है इस आत्माका हर प्रकारसे उपकार करना चाहिए, इस प्रधानने मानो यही व्रत ले रखा है। जब यह पुरुष भोग सेवनमें राजी है तो भोगसाधन भी यह प्रधान संपादित है। तो एक पुरुषार्थ है शब्दादिक विषयोंकी उपलब्धि हो जाना और दूसरा है पुरुष और प्रकृतिका विवेक हो जाना। इस दूसरे पुरुषार्थसे आत्माका मोक्ष होता है। तो पुरुषमें व प्रधान में विवेक पैदा हो जाय, कर्ममें व आत्मामें, प्रकृतिमें व चैतन्यमें विवेक आ जाय यह भी प्रधान सम्पादित करता है। तो प्रधानके द्वारा किए गए दो पुरुषार्थ हैं—एक तो भोग विषयोंके साधनोंकी उपलब्धि कराना और दूसरे —पुरुष और प्रकृतिमें विवेक उत्पन्न कराना। जब प्रकृति और पुरुषमें विवेक उत्पन्न हो जाता है यह प्रकृति है यह आत्मा है ऐसा भेद विज्ञान हो जाता है तो इस पुरुषार्थके सम्पन्न होनेपर फिर यह प्रधान शरीरका सम्पादन नहीं कराता है, इसीका नाम मोक्ष है।

मुक्तके प्रति प्रकृतिके अनुपसर्पणके कारणका प्रकृतिवादमें कथन— जब आत्माने यह समझ लिया कि यह प्रधान तो बड़ा दुष्ट था, यह प्रकृति तो बड़े खोटे स्वभावकी थी इसने तो जन्ममरण कराया, दुःखोंमें रखा तो फिर यह प्रकृति कि इस आत्माने तो मुझे दुष्टरूपसे परख लिया है कि यह मैं प्रकृति दुष्ट हूं, तो फिर यह प्रधान अर्थात् प्रकृति उस पुरुष अर्थात् आत्माके पास नहीं फटकती, अर्थात् आत्मा के पास नहीं आता, न आत्माके लिए शरीर सम्पादन करता है। इस विधिसे आत्मा का मोक्ष होता है। प्रकृतिवादी कह रहे हैं—अच्छा, देखिये समयसारमें भी लिखा है कि प्रकृति चेतन्यताके लिए, आत्माके लिए उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। उससे भी तो यही बात आयी ना। प्रकृतिके उत्पन्न होनेके मायने क्या कि यह प्रकृति भोग साधन शब्दादिक विषयोंके रूपमें परिणम जाय ताकि यह आत्मा राजी रहे और इसे आनन्द प्राप्त हो। तो पुरुषके प्रयोजनके लिए ही यह प्रकृति उत्पन्न हुई ना और जब यह प्रकृति नष्ट होती है तो भी आत्माके लिए नष्ट होती है अर्थात् इस प्रकृतिने इस

आत्माको भेदविज्ञान करा दिया, प्रकृति और पुरुषमे विवेक करा दिया। विवेक करने से अब यह आत्मा स्वतन्त्र हो गया और मुक्त हो गया। प्रधान तो नष्ट हो गया। नष्ट हो जाय पर उसकी तो यह आदत है कि सब काम पुरुषके लिए करे। तो प्रकृति पुरुषके लिए उत्पन्न होती है और पुरुषके लिए नष्ट होती है इस तरहमे इस प्रधान द्वारा जब प्रकृति और पुरुषका विवेकोपलम्भ हो जाता है तब आत्माका मोक्ष होता है और वह मोक्ष इस ही स्वरूप है कि आत्मा अपने चैतन्य स्वरूपमात्रमे अवस्थित रह गया, अब ज्ञानका कोई काम नही रहा।

प्रकृतिका असत्त्व होनेसे प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भके मोक्षकारणत्वकी सिद्धिका अभाव—उक्त मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमे अब समाधान देते हैं कि पहिले तो प्रधान ही कुछ है सत्, यह बात नही सिद्ध होती है। प्रधान असत् है। लोकमे केवल ६ जातिके ही तो पदार्थ हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। प्रधान क्या चीज हुआ? जितने कार्य होते हैं वे अपने अनुकूल उपादानसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। यहाँ कितने परस्पर विरुद्ध कार्य ज्ञात हो रहे हैं, कोई ज्ञानादिक है तो कोई रूप रस आदिक कार्य है और कोई रूप रस आदिक कार्य है तो कोई इन्द्रिय कार्य है। और गतिहेतुत्व स्थिति हेतुत्व परिणमन हेतु व आदिकी ओर तो दृष्टि ही नहीं गई। तो जितने कार्य हो रहे हैं वे कार्य अपने अपने उपादान द्रव्यके अनुसार हो रहे हैं। प्रधान कोई अलगसे तत्त्व नहीं है। अथवा मान भी लो कि प्रकृति कोई है तत्त्व प्रकृतिका अर्थ जरा जल्दी समझनेके लिए कर्म मान लीजिए। जिन कर्मोंके उदयके निमित्तसे ये शरीर, इन्द्रिय आदिक मिलते हैं कर्मोंका क्षयोपशम होनेपर आत्मामे ये ज्ञान होते हैं। तो यह विश्वकी सब चहल पहल इस प्रकृतिकी है, आत्माकी नही है। यों प्रकृतिका स्वरूप माना गया है।

पुरुषस्थ निमित्तकी अपेक्षा बिना प्रकृतिकार्य माननेपर मुक्तमे भी देहसम्पर्कका प्रसङ्ग—मान भी लो प्रकृति कोई तत्त्व है तो अब यह बतलावो कि यह प्रकृति जो सारे काम किया करती है शरीर, इन्द्रिय ज्ञान आदिक उत्पन्न करनेके तो ये सब काम पुरुषमें होने वाले किसी निमित्तकी अपेक्षा करके यह प्रकृति करती है या आत्माका निमित्त पाये बिना ही यह प्रकृति काम करती है? ये दो विकल्प रखे गए। यदि कहो कि आत्माके किसी निमित्तकी अपेक्षा किए बिना ही यह प्रधान स्वतन्त्रतासे अपने बलसे सारे इन ज्ञानोंको शरीर सम्पादनको, समस्त कार्योंको किया करता है तब फिर मुक्त आत्माओमे भी शरीर सम्पादन कर दे। जब आत्माकी अपेक्षा बिना ये प्रकृति शरीर बनादे, भोग बनादे, इन्द्रिय बनादे ज्ञान बनादे तो अनपेक्ष प्रधान सर्वत्र कार्य करे, मुक्तोके भी शरीर लगा दे।

उपेक्षा रखकर भी प्रकृतिका कार्य होना माननेपर मुक्तमे प्रकृति

कार्यत्वका प्रसङ्ग—यदि कहो कि प्रकृतिने अपेक्षा रखकर काम किया, तो क्या विवेकानुपलम्भका अपेक्षा रखकर प्रधान कार्य करता है या अदृष्टकी अपेक्षा रखकर प्रधान तत्व (प्रकृति) कार्य करता है ? मतलब यह है कि जब विवेक नही पाया गया आत्मामे कि प्रकृति अलग तत्व है और आत्मा अलग तत्व है, तो प्रधानने शरीर जुटा दिया गया, ऐसी अपेक्षा रखकर प्रकृति शरीर जुटाती है या अदृष्टकी अपेक्षा रखकर प्रधानने शरीर जुटा दिया। जैसा अदृष्ट जिसके साथ लगा हुआ है उसे यह प्रकृति शरीर इन्द्रिय, भोग, ज्ञान आदिक वैसा ही जुटाती है। यदि कहो कि विवेकका अनुपलब्धि होनेसे प्रकृति शरीरका सम्पादन करती है तो विवेककी अनुपलब्धि तो मुक्त जीवोमे भी है। देखिए—जैसे भव्यत्वका अभाव सिद्ध जीवोमे भी है और संसारके ठेकेदारोमे भी है तो इसी प्रकार विवेकका अभाव विवेककी अनुत्पत्ति रूपसे है और मुक्त आत्मावोमें विवेकोपलब्धिका अभाव विनाशरूपसे है, इसमे विवेकका उपालम्भ था पहिले। जब यह ज्ञानी योगी हुआ कुछ साधनामे हुआ तो इसकी विवेकोपलब्धि थी फिर मुक्त होनेपर कैवल्य हुआ, विवेकोपलब्धि नष्ट हुई। सो विवेककी अनुपलब्धि ससारी जीवोमे है और मुक्त जीवोमे भी विवेकानुपलम्भ है। फिर प्रकृति मुक्त जीवोमें भी शरीर समादन करदे, यह आपत्ति आती है। यदि कहो कि अदृष्टकी अपेक्षा रखकर यह प्रकृति जीवोको शरीर चिपकाया करती है तो फिर मुक्त आत्मावोमे भी शरीर लगा देना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिमे शक्तिरूप अदृष्ट भी अवस्थित है।

दुष्टतया विज्ञान होनेपर भी अचेतन प्रकृतिके कार्यके निरोधकी अशक्यता—अब इस बातपर विचार करते हैं जो यह कथा था कि इस पुरुषने जब यह जान लिया कि यह प्रकृति दुष्ट है तो दुष्टरूपसे जानी यह प्रकृति, इसके इतना बल नही होता कि पुरुषके पास फिरके। जैसे कोई दुष्टिनी कुष्टिनी स्त्री है, वह ऊपर से ठीक ठाक जचती थी और उसपर कोई पुरुष आसक्त हो गया था, उसके उस स्नेह मे कुछ दिन रहनेके बाद जब उसे पता पडा कि यह तो अनेक अङ्गोसे कुष्टिनी है, यह दुष्टिनी है, ठीक नही है, बुरी है। तो बुरी है, ऐसा जब जान लिया उस स्त्रीने कि हमारी इस बातको इस पुरुषने समझ लिया है तो फिर उस स्त्रीको हिम्मत उस पुरुषके पास जानेके लिए नही पडती। इसी प्रकार इस प्रकृतिने जब आत्माको जान लिया कि यह दुष्ट है प्रधान, कर्म। तो जब जान लिया कि प्रकृति दुष्ट है तो ये प्रकृति, कर्म अब हिम्मत नही कर पाते उस आत्माके पास जानेके लिए, शरीर और भोग जोडनेके लिए, क्योंकि इसने जान लिया कि मैं दुष्ट हूँ तो यह प्रकृति जरा शर्म वाली है तो उस पुरुषके पास नही जा सकती है। यह कहना भी तुम्हारा अयुक्त है, क्योकि प्रकृति तो अचेतन मानी गयी, और अचेतनमे यह ज्ञान कैसे सम्भव हो जायगा कि मैं इस पुरुषके द्वारा दुष्टरूपसे जान ली गई हूँ। इस आत्माने मुझे बुरा जान लिया है कि यह दुष्ट है, इसकी प्रकृति खराब है। यह ज्ञान प्रकृतिमे सम्भव

नहा है। तब ज्ञान उत्पन्न न हो सकनेसे यह प्रकृति सबके लिए समान है तब मुक्त जीवोंमें लगना चाहिए क्योंकि जान जाय कोई तो वह तो दब जायेगा। इस समझ लिया कि इसकी प्रकृति ठीक नहीं, दुष्ट है तब फिर वह न जाएगी लेकि प्रकृतिमें तो ज्ञान ही नहीं है।

प्रकृतिका चेतयिताके निमित्त उत्पाद और विनाशका भाव - प्रकृति वादियोने जो यह उदाहरण दिया था कि समयसारमें भी तो लिखा है कि "प्रकृति भी चेतनके लिए उत्पन्न होती है विनष्ट होती है।" सो उपालम्भ ठीक नहीं, क्योंकि इस प्रकार यह भी तो लिखा है कि आत्मा भी प्रकृतिके लिए उत्पन्न होता और विनष्ट होता। तो यहाँ अर्थका अर्थ प्रयोजन नहीं है, किन्तु अर्थका अर्थ निमित्त है। निमित्त शब्दका और प्रयोजन शब्दका कुछ भाव एक समानसा है फिर भी अन्तर है जैसे कोई कहे ना, कि मैं तो इनके अर्थ मिला, मैं तो इनका निमित्त मिला तो अर्थ और निमित्तका कहीं कहीं करीब-करीब एकसा अर्थ है लेकिन इसमें भेद है। प्रयोजनका प्रयोग तो जानकार पुरुषोंमे होता है। जैसे अग्निने पानी गरम किया तो क्या यह कह सकेंगे कि अग्नि पानीके प्रयोजनके लिए जल रही है ऐसा कोई प्रयोग नहीं करता प्रयोजन शब्दका प्रयोग चेतनमे होता है और अग्निके निमित्तसे पानी गरम हुआ, ऐसा प्रयोग चलता है। तो आत्मा और प्रकृति [कर्म इन दोनोंका परस्पर] निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। यह बात दिखाई गई है कि प्रकृति आत्माका निमित्त पाकर उत्पन्न होती है, विनष्ट होती है और आत्मा प्रकृतिका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है याने नवीन-नवीन पर्यायोंमें आता है और विनष्ट होता है याने पूर्व विभावको विलीन करता है अथवा बरबाद होता है। तो यह कहना भी युक्त नहीं है कि "प्रकृतिने आत्माको भेद विज्ञान कराया और भेदविज्ञान करानेके बाद जब यह प्रकृति जान लेती है कि आत्मा को मैंने मोक्ष समझ लिया तो यह शात हो जाती है, उसे शरीर सम्पादन नहीं करती, अत प्रकृति और पुरुषके बीचमें अन्तर दिखा देनेका उपाय मोक्ष है यह बात घटित नहीं होती।

विवेकोपलम्भके पश्चात् भी सदेहस्थितिकी सभवता—फिर भी मान लो भेदविज्ञान हो गया और भेदविज्ञानकी पराकाष्ठा भी जिस जीवमें हो, सम्यग्दृष्टि जन हो, साधुजन हो, तो भेदविज्ञानकी पराकाष्ठा अपनी हो गयीं फिर वह भी अभी शरीरके साथ रह रहा है। तो भेदविज्ञान मोक्षका कारण नहीं हुआ। भेदविज्ञान होने के बाद उसका आचरण होवे, भली प्रकार अवस्थित रह जाय कि किसी भी विभावकी तरङ्गमें न आये ऐसी अवस्था प्राप्त हो तब मोक्ष होता है। तो उसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रकी पूर्णतासे मोक्ष होता है। न कि भेदविज्ञानमात्रसे।

गुणोच्छेदकी मोक्षस्वरूपतापर विचार—यहाँ मोक्षस्वरूपके प्रकरणमें

सभी दार्शनिकोंकी बात रखी एक उस मोक्षस्वरूपको तो सबने चाहा, जो एक सङ्कटों से छुटकारारूप है। मोक्षका सीधा अर्थ है सङ्कटोंसे छुटकारा पाना। तो यह तो सभी दार्शनिकोंको इष्ट है। सङ्कटोंसे छुटकारा पानेका नाम मोक्ष है पर उस मोक्षके स्वरूपमें और मोक्षके उपायोंमें जो उनकी चर्चायें हैं वे कोई तो मूलमें सत्यार्थकी निकट चर्चायें थी और फिर अनेक दर्शनोंके शास्त्र जब रचे गए उत्तरोत्तर तो धीरे-धीरे फिर उनमें एकान्तकी पुट और बढ़ जानेसे फिर जरा विशेष खराबी होगई। मान लीजिए वैशेषिक मानता है कि आत्मामें ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हो जाना इसका नाम मोक्ष है तो कौनसी बुरी बात कह दी? अब जो हमारे परिचित ज्ञान हैं, उनको ही ज्ञान जान जाय तब कोई भी विरोधकी बात नहीं है। जो क्षायोपशमिक ज्ञान है, विकल्प रूप ज्ञान है उनका उच्छेद मोक्षमें हो ही जाता है तो निकटता थी कभी, लेकिन उस मान्यताके शास्त्र बनानेके बाद जब उनके कानून बने, अब निबद्ध हो गए वे दर्शन तब अन्तर आ गया। निबद्ध हुए बिना जिनकी यह बुद्धि उत्पन्न हुई होगी वे कुछ निकट थे।

आनन्दाभिव्यक्ति और विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोक्षस्वरूपताका विचार

जिसने माना कि मोक्षका स्वरूप आनन्द है और आनन्दगुणकी जो अभिव्यक्ति है उस का नाम मोक्ष है, आनन्दरूप आत्मा है इसमें कौनसे विरोधकी बात है। आत्मा आनन्दस्वरूप है ही और उस आनन्दकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है, लेकिन यह दर्शन निबद्ध होनेसे पहिले जिस किसी भी ऋषि सन्तके चित्तमें यह बात आयी थी वे निकट थे जब इनका निबन्धन हुआ, तब एकान्त आया। आत्मा तो आनन्दमात्र है और वह अपरिणामी है, उसमें कोई तरङ्ग नहीं उसका कोई परिवर्तन नहीं उसका कोई भोग नहीं, अनुभव नहीं, बस आनन्द स्वरूप है। स्वरूप भी अब देखिये—जिन दार्शनिकों ने माना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है उसमें कौनसा विरोध है? अशुद्धता मिट गई रागादिक दूर हो गए, अब मात्र ज्ञान ही ज्ञान रह गया वह मोक्ष है। निकटता थी, किन्तु जब प्रणयन हुआ तो उसमें युक्तियां दिखानी पड़ी और कुछ बनानी पड़ी तो विशुद्धज्ञानका स्वरूप यह बन बैठा कि प्रत्येक समयमें एक एक ज्ञान पदार्थ उत्पन्न होता रहता है। ज्ञानका आशय नहीं है कि उनका आधारभूत कोई एक आत्मा है। प्रत्येक समयमें होने वाला ज्ञान एक-एक पदार्थ है। अब इन ज्ञान सन्ततियोंमें यह भ्रम रहता है कि मैं तो वही हूँ जो पहिले था, तो इसे संसारमें रुलना पड़ता है। जब ज्ञान यह जान जाय कि मैं तो क्षणिक हूँ, एक समय वाला हूँ, मेरा तो यह स्वरूप है, पूर्वापर न कोई सम्बन्ध है न उसकी सत्ता है, तो ऐसा ज्ञान होने पर वह सन्ततिका छेद कर देता है फिर आगे उसकी परम्परा समाप्त हो जाती है तो मोक्ष हुआ। यहां ज्ञानका आधारभूत आत्मतत्त्व नहीं माना गया, फिर मोक्षस्वरूप किसका बने।

आत्मैकत्वज्ञान और प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भमें मोक्षकारणताकी

युक्ततापर विचार—अद्वैतवादका सिद्धान्त है कि आत्माके एकत्वका ज्ञान होनेसे परमात्वस्वरूपमें लय हो जानेका नाम मोक्ष है। इसको समतामें जैनदर्शनने यह माना कि आत्माके एकत्वका याने कैवल्य स्वरूपका ज्ञान होनेसे निज कारण परमात्मामें जो लीनता होती है उसका नाम मोक्ष है, इसमें कौन सी विरुद्ध बात है? एकत्व विभक्त आत्माका तो उपदेश दिया ही जाता है। आत्मा यह एकत्व जब जाना गया पहिले तब तो निकट होने पर प्रणयनके बाद जब अपना सारा मुक्तिपावन बना लिया गया तो वह एकत्व सब विश्वमें केवल एक है और उसका ज्ञान होना मोक्षका उपाय है। यहां आत्माको सर्वैक मान लिया गया, तब यहाँ किसका मोक्ष कराना, किसका संसार होना ये सब बातें आ जाती हैं। प्रकृतिवादीने यह माना कि प्रकृति और पुरुषमें जब विवेक हो जाता है, भेदविज्ञान हो जाता है तब उसे मोक्ष मिलता है। तो भेदविज्ञान बिना किसीने मोक्ष पाया क्या? मोक्षके उपायमें मुमुक्षुको सर्वप्रथम द्रव्यकर्म और भावकर्म-आत्मा स्वरूप, चैतन्य इनमें भेद विज्ञान करना ही होता है लेकिन जहाँ प्रकृतिका ही स्वरूप सारे विश्वका आधारभूत कोई एक तत्त्व है जो त्रिगुणात्मक है आदिक समझा गया है वह उपादान निमित्त वाली विधियोंमें संगत नहीं बैठता है और पुरुषका भी जो स्वरूप बताया गया है, केवल चिन्मात्र ज्ञान भी वहाँ नहीं है, ज्ञान भी प्रकृति का धर्म है तब वहाँ बंध मोक्षकी व्यवस्था नहीं बन पाती है। और सब तरहसे विचार करनेपर यह व्यवस्था सिद्ध हुई कि आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है। जब अनादिसे ही विभावोंकी परिणति होनेके कारण परमें आकर्षण है, परमें दृष्टि उलझी है तो इससे यह जन्म मरणकी परम्परा चल रही है। जब भेदविज्ञान हो और परतत्त्वोंसे हटें, स्वमें लगें तो इसकी रागादिक मलिनतायें दूर होंगी और इसके ज्ञानादिक गुणोंका पूर्ण विकास होगा, इसीका नाम मोक्ष है और यही आत्माकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है।

नैयायिकाभिमत मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें वैशेषिकका कथन—अब यहाँ नैयायिक मोक्षका स्वरूप कहते हैं कि मुक्त अवस्थामें आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है इसका नाम मोक्ष है। इसके प्रतिपक्षमें विशेषवादी कहते हैं कि यह तो इसका स्वरूप ही है किन्तु वह स्वरूप विशेषगुणसे रहित है। ज्ञानादिक गुणोंसे रहित अपने आत्मामें अवस्थान होता है, चिद्रूपमें अवस्थान होना घटित भी नहीं होता है, क्योंकि चिद्रूपता अनित्य है। चिद्रूपताके मायने बुद्धि। बुद्धि अनित्य होती है। बुद्धिका विनाश होता है इस कारण आत्मा चिद्रूपमें अवस्थित रह ही नहीं सकता मुक्त होनेपर यह भी क्योंकि जो बुद्धिइन्द्रिय आदिकके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध रखता है, इन्द्रिय प्रकाश आदि सब सामग्री हो तो बुद्धि उत्पन्न होती है, न सामग्री हो तो बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकार इन्द्रिय आदिक बाह्य साधनोंसे अन्वय व्यतिरेक रखने वाली बुद्धि नित्य कैसे मानी जा सकती है। तो बुद्धि कहो या चिद्रूपता कहो, दोनों एक ही बात हैं। तब अनित्य चिद्रूपमें अवस्थित एक तो हो नहीं सकता और ऐसी अनित्य बुद्धिमें अवस्थित हो भी तो उसे मोक्ष माना नहीं जा सकता।

आत्मासे चिद्रूपताकी भिन्नता व अभिन्नताके विकल्पोमे विशेषवादी द्वारा यौगाभिमतका निराकरण— अब नैयायिक कहते हैं कि वह तो आत्मस्वरूप है, जो चेतन है, चिद्रूपता है वह आत्माका स्वरूप है तो यह बतलावो कि वह आत्मा से भिन्न है कि अभिन्न। जो बुद्धि इन्द्रिय आदिक साधनोसे हुई हो उसे भी मान लें तो यह बतलावो कि वह बुद्धि चिद्रूपता आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है। यदि कहो कि आत्मासे अभिन्न है तो फिर यह पर्यायमात्र हुआ। नाम ही अलग रख दिया। पदार्थ तो एक रहा। चाहे आत्मा कहो चाहे बुद्धि। जब आत्मा और बुद्धि दोनो अभिन्न हो गए तब वहा कौन गुण रहा कौन गुणी रहा? वे तो एक ही रूप हो गए। जो आत्मा सो ही चिद्रूपता। और, ऐसी आत्माको नित्य माना ही है और उससे अभिन्न, ऐसे उस चिद्रूपताको भी तुमने नित्य माना है उसमे बुद्धि ज्ञान नहीं आ सकता, वह तो एक चित् है। यो समझिये कि कहने मात्रको है। पर उसमे गुण आये, बुद्धि आये ऐसा आत्माका स्वरूप ही नही है। यदि वह चिद्रूपता आत्मासे अभिन्न है तो वह एक ही बात हो गई। अगर भिन्न है तो आत्मासे भिन्न होनेपर फिर चिद्रूपता आत्माकी क्या रही? आत्मा नित्य है। जो आत्माका स्वरूप हो सो नित्य होगा। बुद्धि तो अनित्य ही रही। और फिर भेद माननेपर सयोगादिकके साथ अनैकान्तिक दोष होगा, सयोग आदिक भी नैयायिकोने आत्मधर्म माना तो आत्मधर्म होनेपर भी नित्य नही है तो चिद्रूपता आत्माका धर्म भी मान लो ऐसे भी वह नित्य नही हो सकता।

गुण गुणीका तादात्म्य न बताकर विशेषवादी द्वारा यौगाभिमतका निराकरण— गुण गुणीका तादात्म्य सम्बन्ध नही हो सकता। गुण गुणी दोनो अलग अलग सत् है विशेषवादमे। जैसे प्रसिद्ध है ना कि आत्मामे ज्ञान है तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। ज्ञान है सो आत्मा है। विशेषवाद यह नही मानता। आत्माकी जुदी सत्ता है और ज्ञानकी जुदी सत्ता है फिर गुणगुणीका समवाय सम्बन्ध होता है। द्रव्यका सयोग सम्बन्ध होता है तो ये सब व्यवस्थाएं सम्बन्धसे बनती है। किन्तु आत्मा गुणीका ज्ञान गुणसे तादात्म्य नही है इस कारण आत्मस्वरूपसमवस्थान नही बन सकता। सो बुद्धि आदिक विशेष गुणोंके उच्छेदका ही नाम मोक्ष है। यही तत्वज्ञान है। ऐसा सही ज्ञान उत्पन्न करें कि जहा सुख दुःख बुद्धि आदि गुण अवगुण ये सब नष्ट हो जायें, आत्मा केवल एक रह जाए उसका नाम मोक्ष है। विशेषवादियोने ऐसा नैयायिकोंके मोक्षस्वरूपका निराकरण करते हुए अपना पक्ष रखा।

यौगाभिमत आत्मस्वरूपसमवस्थानरूप मोक्षस्वरूपकी युक्तता व अयुक्तता—अब उक्त चर्चाके समाधानमें कहते हैं कि यह जो कहा गया है कि स्वरूप मे, चैतन्यमात्रमे अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है। यह बात युक्त भी है अयुक्त भी है। युक्त तो इस प्रकार है कि मोक्ष कहते ही उसे हैं कि परतत्त्वोसे, परभावोसे उपाधियो से छुटकारा हो जाय, केवल अपने चैतन्यमात्र स्वरूपका अनुभवन रहे, चेतनामात्र

रहे, वह युक्त ही बात है और अयुक्त इस कारण है कि चैतन्यमात्रका जो यह अभिप्राय बनता है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि कुछ न रहे, केवल एक चैतन्यमात्र रहे तो ऐसा चैतन्यमात्र कोई स्वरूप नहीं है। मोक्ष होनेपर अनन्त ज्ञानादिक स्वरूपमय जोकि चैतन्य वस्तु हैं उनमें अवस्थायें होती हैं और विशुद्ध ज्ञानपनेको मोक्षपनेका साधन कहा गया है तथा पूर्व विशुद्ध ज्ञानको मोक्षका साधन कहा गया है। कुछ भी सत् हो, सत्में द्रव्यत्वके ही कारण यह गुण है जो प्रतिसमय परिणमन करता ही रहेगा। ऐसी वस्तुकी कल्पना करना कि जहाँ परिणमन कुछ भी नहीं होता, यह तो ख्यालमात्र है और ऐसा ख्याल करनेमें इस दार्शनिककी कोई मायाचारी या बेईमानी आदिक नहीं है। उनके कथित उस स्वरूपको सावधानीसे सुनो। आ मुक्त अवस्थामें स्वरूप रहता है, सावधानीसे निरखें, चिन्तन करे तो चिन्तन करते-करते यह तो विद्वज्जनोको विदित ही होता है कि वहाँ विकल्प विभाव तरङ्गे कुछ नहीं रहते हैं, तो जहाँ विकल्प विभाव तरङ्गे ये कुछ नहीं है तो क्या है ? एक सामान्य प्रतिभास। सो वहाँ यदि कुछ आये तो उससे प्रभुतामें लाछन आ जायगा, एक द्वैतकी बाधा आ जायगी। इसलिए यह ज्ञान भी नहीं है यो अभिमत बन गया। तब फिर वह किसरूप है ? वह तो चित्‌रूप है। जो चित है सो ही चित् है।

योगाभिमत मोक्षस्वरूपकी युक्तता व अयुक्तताका अन्तर्दृष्टिसे विवरण

जैसे एक अध्यात्मयोगमे ज्ञानदृष्टि बनानेके लिए अन्त दृष्टि बनानेके लिए यह कहा जाता है कि वह न रागयुक्त है न रागरहित है, वह तो एक चित् है इसी प्रकार सभी अशुद्ध शुद्ध पर्यायोंके बारेमे कहा जाता है वह न मिथ्यादृष्टि हैं न सम्यग्दृष्टि हैं। वह तो चित् है। तो जैसे स्वभावदृष्टि करानेके लिए स्वभावका दृढतम परिज्ञान परिचय करानेके लिए, जैसे स्वभावके स्वरूपका वर्णन होना है-ऐसा ही वर्णन सुनकर इस ही रूप चित्‌को सब दृष्टियोंसे मान लिया गया, तब यह भी मान लिया गया कि मोक्ष होनेपर ऐसा ही चित् रहना है। लेकिन, अध्यात्म योगियोने इस स्वभावदृष्टि करते समय यह विरोध नहीं रखा कि मेरा कोई परिणमन नहीं है, हा उस समय प्रयोजन स्वभावदर्शनका-था सो परिणमनोकी उपेक्षा की, उनको न निरखा, उनको उस समय विकल्पोंमे न-लिया, एक स्वभावमात्रको ही निरखा। यहाँ दार्शनिकने जो चैतन्यस्वरूप समवस्थानका नाम मोक्ष कहा है तो वहा चिद्रूपका अर्थ केवल वह चित् है जिसे कुछ स्वभावदृष्टिसे बताया जा सकता है। परन्तु वह स्वभाव तो एक लक्ष्यकी चीज है, स्वभाव ऐसा ही कोई स्वतन्त्र सत है यो बात नही। जो सत है उसका शाश्वत धर्म यह भी है कि वह परिणमनशील भी है। तो उस चित्स्वरूपका परिणमन है मोक्ष। लेकिन वह परिणमन ऐसा सम है कि उन परिणमनोंको निरखकर भी परिणमन समझमे नहीं आता। लोग परिणमन तब समझ पाते हैं जब कुछसे कुछ बन जाय। कुछ परिवर्तन समझमें आये। तो सदृश और सम जो परिणतियाँ हुई हैं उन्हे निरख कर लोग परिणमन नही समझ सके और उस स्वभावरूपको सुनकर तो परिणमनकी

कोई बात ही नही है। इस वातावरणमे एक कूटस्थ अपरिणामी चिद्रूपका ख्याल बनाया गया है। तो बुद्धिकृतदोष नही किया दार्शनिकने परन्तु सावधानीकृतदोष तो है। उस दृष्टिसे चूक गए जो एक वस्तुके स्वरूपको बताने वाले हैं। तो चिद्रूप अवस्था होनेका नाम जो मोक्ष कहा गया है वह कूटस्थ अपरिणामीरूपसे माननेपर तो अयुक्त है और अनन्तज्ञानादिक चतुष्टय स्वरूपमे वर्तते रहनेरूपसे चैतन्यमात्रमे अवस्थान करनेका नाम मोक्ष है यह युक्त है।

आत्मसर्वज्ञत्वके प्रतिपक्षमे प्रकृतिवादका मतव्य अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति, आनन्द ये आत्माके अस्वरूप नही हैं। ऐसा यदि हो तो सर्वज्ञपनेका विरोध हो सकता है। क्योकि आत्मामे ज्ञान तो रहा नही। स्वरूप समवस्थान ही आत्माका मोक्ष हो गया फिर सर्वज्ञ कौन रहा ? यह बात सुनकर प्रकृतिवादी कहता है कि ठीक है सर्वज्ञ आत्मा नही हो सकता है, सर्वज्ञ तो प्रकृति हुआ करती है। आत्मा तो चिद्रूप है, ज्ञानादिक तो प्रकृतिके धर्म हैं। तो सर्वज्ञ प्रकृति ही बनती है, आत्मा सर्वज्ञ नही है यह ठीक है इसमे क्या आपत्ति है ? समाधानमे कहते हैं कि नही; प्रकृति अचेतन है। अचेतनसे यदि सर्वज्ञ बनने लगे तो आकाश क्यो नही सर्वज्ञ बन जाता ? आकाश अचेतन है, अचेतन सर्वज्ञ हो तो आकाश भी सर्वज्ञ बनने लगे। यदि कहो कि ज्ञानादिक भी तो अचेतन हैं इसलिए ज्ञान प्रकृतिका स्वभाव बन गया। प्रकृतिका धर्म चूंकि प्रकृति अचेतन है इसलिये अचेतन ही होना चाहिये। यही तो आपने कहा है कि अचेतन प्रकृतिसे जो भी बात बनेगी वह सब अचेतन बनेगी। तो ज्ञान भी अचेतन है, प्रकृतिसे ज्ञान हुआ, पूर्ण ज्ञान हुआ, लो प्रकृति सर्वज्ञ होगयी आत्मा तो चैतन्यमात्र है।

ज्ञानको अचेतन माननेपर आपत्तियाँ – अब प्रकृतिके सर्वज्ञत्वकी शङ्काका समाधान करते हैं—ज्ञान अचेतन है यह भी नही कह सकते, क्योकि वह अचेतन है, यह कैसे सिद्ध करोगे ? यदि कहो कि अनुमानसे सिद्ध करेंगे - ज्ञानादिक अचेतन हुआ करते हैं क्योकि ये उत्पन्न होते हैं। जैसे घटपट आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं तो अचेतन हैं ऐसे ही ज्ञानादिक भी उत्पन्न होते हैं तो ये भी अचेतन हुए। आत्मा ही एक मात्र चेतन है, क्योकि वह कूटस्थ अपरिणामी है। तो ये ज्ञानादिक भी अचेतन सिद्ध होते हैं। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात युक्त नही है, तुम्हारा हेतु सदोष है अनेकान्तिक दोष सहित है। जो-जो उत्पन्न हो वे वे सब अचेतन हो जाये तो अनुभव भी तो उत्पन्न होता है लेकिन अनुभवको तो तुमने अचेतन नही माना। ज्ञान और अनुभव ये विशेषवादमे जुदे-जुदे तत्त्व हैं। अनुभवको तो चेतन कहा और ज्ञानको अचेतन कहा है। उन्होंने चैतन्य और ज्ञानमे क्या अन्तर डाला है इसको कुछ समझना है तो इस तरह समझ लीजिये कि जैसे ज्ञान और दर्शन माने गए हैं तो ज्ञानका काम तो जानना है, पर दर्शनका काम जानना नही है, दर्शन अनुभवात्मक होता है। यह अनुभव ज्ञानानुभव जैसा नही कहा जा रहा। यद्यपि ज्ञान और दर्शन दोनो अनुभवात्मक हैं,

किन्तु जो विकल्प सहित ज्ञान है ऐसे ही ज्ञानका काम तो जानना है यह तो विशेष-वादमें अचेतन है, ज्ञानमें चेतनकी चेत नहीं है पर अनुभव चेतन है। तो जो जो उत्पन्न हों वे वे सब अचेतन होते हैं ऐसा अनुमान बनानेमें अनुभव भी अचेतन बन बैठेगा। वह चेतन होनेपर भी उत्पन्न हुआ करता है, ऐसा माना है। अनुभव उत्पन्न हुआ करता है यह बात अप्रसिद्ध भी नहीं है क्योंकि जो जो परापेक्ष होते हैं वे वे उत्पन्न हुआ करते हैं ऐसा नियम है। जैसे बुद्धिको परापेक्ष माना है ना, कि इन्द्रिय प्रकाश आदिक अनेक साधनोंकी अपेक्षा करके बुद्धि उत्पन्न होती है तो परापेक्ष होनेके कारण जैसे बुद्धिको उत्पन्न माना जाता है इसी प्रकार अनुभव भी परापेक्ष है। अनुभव कैसे होता है? अनुभव कहते हैं आत्मा के द्वारा चेतन हो। आत्मा चेते उसका नाम अनुभव है, पर आत्मा अनुभवसे कब चेतना है? जब ज्ञान किसी विषयका निश्चय करदे और ज्ञानके द्वारा निश्चित किया गया अर्थ जब इस आत्माके समक्ष आता है तो बुद्धि द्वारा निश्चित किये गए अर्थको यह आत्मा चेतता है अर्थात् अनुभवता है। तो आत्मा जो यह अनुभव बना वह ज्ञाननिर्णयकी अपेक्षा करके बना तो परापेक्ष हुआ। जो जो परकी अपेक्षा करें वे सब उत्पत्तिमान हैं। जो जो उत्पत्तिमान हैं वे वे तुमने अचेतन माने हैं सो अनुभवको भी अचेतन माननेका प्रसङ्ग आ जायगा।

ज्ञानकी चैतन्यस्वरूपता—ज्ञानको अचेतन बतानेवाले अनुमानको बाधने वाला यह अनुमान है कि ज्ञानादिक चेतन हैं क्योंकि ये स्वसम्वेदन प्रत्यक्षरूप हैं स्वसम्वेदनमें जाना जाता है कि यह ज्ञान क्या है। तो जो जो स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे जाने गए वे सब चेतन होते हैं, यदि कहो कि ज्ञान तो अचेतन ही है पर चेतनका सम्बन्ध मिलनेसे ज्ञान में चेतनताकी प्रसिद्धि हो गयी है, लोग इस ज्ञानको चेतन कहने लगे हैं, क्योंकि तो ज्ञानका चेतनसे सम्बन्ध होता यह भी कहना मात्र है क्योंकि ज्ञानका संसर्ग चेतनसे हो जानेपर इस कारण ज्ञानमें चेतनता आयी, तो शरीरको संसर्ग इस चेतनसे है। तो इसको चेतन क्यों नहीं कहा? जब चेतनका सम्बन्ध होनेसे ज्ञान जानने लगेगा तो चेतनका सम्बन्ध पाकर शरीर भी जानने लगे ज्ञान करने लगे। यदि कहो कि वह जो संसर्ग है ज्ञानका वह अनूठा है वह शरीरादिकमें नहीं पाया जाता है, कि वह अनूठापन क्या है सिवाय इसके कि आत्माके साथ तादात्म्य है। जो भिन्न भिन्न चीज है उसका एकके साथ दूसरेका अनूठापन क्या? यदि है ऐसा कोई खास सम्बन्ध तो तादात्म्य सम्बन्ध ही है। ज्ञानका आत्माके साथ कथंचित् तादात्म्यसम्बन्ध है। जो ज्ञानस्वभाव है उसका तादात्म्य है पर ज्ञानका जो परिणमन है उसे निरखकर भिन्न माना जा रहा है और उसका उच्छेद माना जा रहा है वे सब ज्ञान परिणमन जिस काल आत्मामें होते हैं उस काल आत्मामें तन्मय है। तो कथंचित् तादात्म्यके सिवाय और यह संसर्ग क्या कहला सकता है।

ज्ञानकी आत्मस्वभावरूपता—यदि यह कहो कि वह अदृष्टकृत है, ज्ञान

जिसका सम्बन्ध आत्मासे हुआ यह अदृष्टके द्वारा हुआ तो कहते कि अदृष्टकृत तो शरीर भी है। जैसे अदृष्टकृत ज्ञान है सो ज्ञानका सम्बन्ध चेतनसे हो गया ऐसे ही अदृष्टकृत तो शरीर भी है। उसका भी सम्बन्ध चेतनमे मानलो। फिर उस चेतनके सम्बन्धसे शरीरमे बोध किया जाना चाहिये। इससे ज्ञानादिक अचेतन नही है वे सव स्वसम्वेद्य हैं। जैसे अपने अपने अनुभव अपने अपने द्वारा जाननेमे आते है तो वे चेतन हैं इसी प्रकारसे यह ज्ञान भी चूँकि स्वसम्वेद्य है इस कारण चेतन हैं। तो ज्ञान चेतन है और आत्माका स्वभाव है क्योंकि चेतन है। जैसे अनुभव चेतनात्मक है तो आत्मा का स्वभाव माना गया है इसी प्रकार ज्ञान भी चेतनात्मक है इस कारण आत्माका स्व भाव है। और जैसे ज्ञान आत्माका स्वभाव है ऐसे ही सुख भी आनन्द भी आत्माका स्वभाव है। तो जैसे ज्ञानका पूर्ण विकास मोक्ष अवस्थामे होता वैसे ही आनन्दका भी पूर्ण विकास मोक्ष अवस्थामे होता है। जब मोक्ष नाम है ज्ञानानन्दके चरण पूर्ण विकासक तो ज्ञान अथवा आनन्द आत्माका स्वभाव न हो तो मोक्षमे ज्ञान और आनन्द की अभि व्यक्ति ही नही हो सकती है। जैसे दु ख आत्माका स्वभाव नही है तो मोक्षमे दु खकी व्यक्ति तो नही है। रागादिक आत्माके स्वभाव नही तो वे मोक्षमे तो नही रहते इसी तरह ज्ञान और आनन्द भी मोक्षके स्वभाव नही होते, आत्माके स्वभाव न होते तो उनका प्रकट पना मोक्षमें भी नही हो सकता था।

मोक्षकी अनन्तानन्दात्मकता —यह नि सन्देह मानना चाहिये कि मोक्ष आनन्दात्मक है क्योकि चेतनात्मक होनेपर यह समस्त दु खोसे रहित रहा करता है, यह जो हेतु दिया गया है उसमे एक नियम और साथ जुडा हुआ है। चेतन होकर दु.ख रहित है इसलिए मोक्ष सुखस्वरूप है। अन्यथा अर्थात् चेतनात्मक-होनेपर यह न कहते तो ये घट,पट, खम्भा आदिक पुद्गल पदार्थ इनमे भी हेतु घट जाता; ये भी दु.खरहित हैं इन्हे कहाँ दु ख है इस लए कहा कि चेतनात्मक होकर दु ख रहित है। केवल इतना ही कहते कि चेतन होनेसे मोक्ष सुख स्वरूप है। तो उसकी तो यह चर्चा ही चल रही थी। इस आत्माको ये चेतन मान ही रहे थे। विशेषवादी भी चेतन मान रहे हैं। नैयायिक भी चेतन मानते हैं। सांख्य भी चेतन मानते हैं पर उस चेतनमात्रसे सुख स्व रूपकी सिद्धि तो नही मान रहे हैं इसलिए इसमें दोनो बातें सोची गई हैं। जो समस्त सकल विकल्प सकोचकर ध्यान अवस्थामे आये हैं ऐसे योगीजन भी दु ख रहित हैं, वे भी आनन्दस्वरूप होते हैं यह भी प्रतीतिसिद्ध हो रहा है तो मोक्षभी चेतन्यात्मक है, दु खोसे रहित है अतएव सुखस्वरूप है। जो जो चेतन हैं, दु खरहित हैं वे आनन्दरूप ही हुआ करते हैं, साथ ही वे वह आनन्द अनन्त हैं ज्ञान भी अनन्त है क्योकि आत्मा एक स्वभाव होकर फिर आवरण रहित है। जो जो तत्त्व आत्मामें स्वभाव होकर निराव- रण हुआ करते हैं वे सब असीम विकसित होते हैं। जैसे ज्ञान आत्माका स्वभाव है और ज्ञानावरण नष्ट हो गया तो पूर्ण ज्ञान प्रकट होगा ही, इसी प्रकार आनन्द स्व- भाव है और उसके बाधक हैं मोहनीय आदिक कर्म जब ये मोहनीय आदिक कर्म नष्ट

होते हैं तो वहाँ सुख प्रकट होता ही है। तो मोक्ष अवस्थामें सुख स्वरूपना है, न कि वह आनन्द रहित है और ज्ञानरहित है। वहाँ प्रतिबन्ध नहीं रहा यह बात सिद्ध ही है मोहनीय आदिककर्म अब मोक्षमें नहीं रहते हैं। इससे यह बात मानना चाहिये कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द अनन्त शक्ति इस चतुष्टय स्वरूपका लाभ होनेका नाम मोक्ष है, ऐसे मोक्षके लिए जीवोंको उत्सुकता जगती है।

मोक्षकी और सकल प्रत्यक्षज्ञानकी निरावरणरूपता—यहां जीव बन्धन अनुभव कर रहे हैं। बन्धन बडा विचित्र है। कोई लोग समझते हैं कि हम बन्धनमें नहीं हैं पर बन्धन उनका चल रहा है। जैसे देशवासी लोग जब आजाद हुए तो अपने को यह अनुभव करने लगे कि हम तो स्वतंत्र हो गए, पर कहाँ स्वतन्त्र हैं ? न जाने कितनी-कितनी तरहकी चिन्तायें लदी हुई हैं, एक बडा बन्धनसा रात दिन अनुभव किया करते हैं। बहुतसे धनिक लोग जिनके पास सभी प्रकारके आरामके साधन हैं, ब्याजसे किरायेसे व अन्य साधनोंसे बहुत बहुत आय होती रहती है, तो वे सोचते हैं कि हम तो बिल्कुल स्वतन्त्र हैं, किसीके आधीन नहीं हैं पर ऐसा सोचना उनका मिथ्या है, रात दिन भोगविषयोंकी अनेक प्रकारकी आशायें किया करते हैं यह उनका बन्धन ही तो है। जब तक जीवके आशा लगी है तब तक बन्धन है। तो बन्धनसे छूटनेका नाम मोक्ष है। इसके लिये हमे यहीं कहीं बैठे हुएमें, सामायिकमें अथवा किसी भी स्थितिमे रहते हुए यह अभ्यास करना होगा कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। मुझमे अन्य कोई उपाधि स्वरूप रूप नहीं पडा है। मैं सबसे विविक्त केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हूँ, ऐसा स्वभावका चिन्तन करनेका, उसे अपनानेका अभ्यास करना होगा और यह निज ज्ञानानन्दस्वरूपके चिन्तनका, दर्शनका अभ्यास करना होगा। ऐसा अभ्यास तत्काल भी शान्ति प्रदान करता है और इसकी धारणा इसका संस्कार उत्तरोत्तर बहुत समय तक शान्तिका कारण है और बढ़कर सदाके लिए शान्तिरूपका कारण बन जाता है। इससे हम इस अभ्यासको करें पर्याय बुद्धिको हटायें। इस देह, आकार, नाम आदिकको ये मैं नहीं हू, ऐसा बारबार भाव बनानेका अभ्यास करें तो इस भावनाके प्रसादमे ऐसा प्रकाश होगा, ऐसा अनुभव होगा कि यह इच्छा नष्ट हो जायगी। बस यही मोक्षमार्ग है। उसका उपाय यह रत्नत्रय है। तो इससे आत्म विश्वास, आत्मज्ञान और आत्माके उस ही प्रकार ज्ञातारूप रहनेका आचरण ये जब पूर्ण हो जाते हैं तब वहाँ मोक्ष होता है, जहा ज्ञान, दर्शन शक्ति, आनन्द पूर्ण प्रकट होते हैं, इसीका नाम मोक्ष है। इसमें ज्ञान निरावरण रहता है और उस ज्ञानको सकलप्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

स्त्रीके मोक्षाविकलहेतुत्वकी असिद्धि —अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यह तो ठीक है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्द आनन्द स्वरूपके लाभ होनेका नाम मोक्ष है। किन्तु वह पुरुषके ही होता है यह बात अयुक्त है। यह

श्वेतपट कह रहे हैं, क्योकि उनके सिद्धान्तसे मोक्ष जो हैवह स्त्रियोके भी हुग्रा करता है, इसमे वे अनुमान देते हैं कि स्त्रियोंको मोक्ष होता है। क्योकि सम्पूर्ण कारण मिलजाने से जैसे पुरुषोका मोक्ष होता है इसी प्रकार स्त्रियोको भी जब समस्त कारण मिल जाते हैं तो उनका मोक्ष निश्चित है। यह हेतु असिद्ध नही है अर्थात् स्त्रियोको समस्त कारण मिल जाते हैं यह बात सही है। अब इस शकाका समाधान करते हैं कि यह कहना युक्त नही है कि स्त्रियोको भी मोक्ष होता है क्योकि स्त्रियोके मोक्ष हेतुभूत अविकल कारणत्व असिद्ध है। ज्ञानादिक परम प्रकर्ष जो मोक्षके कारणभूत हैं अर्थात् ज्ञान अधिक होना प्रकृष्ट होना उत्कृष्ट होना, चारित्र उत्कृष्ट होना यह बात स्त्रियोमे सम्भव नही है क्योकि परम प्रकर्षताकी बात है। जैसे जो जो चीजें परम प्रकर्षताको लिए हुए होती हैं वे स्त्रियोमे नही पायी जा सकती। जैसे ७ वी पृथ्वीमे नरकमे जानेका कारणभूत पापप्रकर्ष स्त्रियोमे नही हो सकता। सप्तम नरकमे स्त्री मरकर नही जाती पुरुष ही जा सकते हैं, क्योकि वह परम प्रकर्षता वाली बात है, तो इसी प्रकार ज्ञान और चारित्र कहीं परम प्रकर्ष प्राप्त होता है जब मोक्ष होता है तो परम प्रकर्ष रूप होने वाले ज्ञान और चारित्र ये स्त्री जनोमे नही पाये जा सकते।

स्त्रीवेदके भावप्रकर्षताका अभाव—अब यहाँ शकाकार कहता है कि यदि स्त्रियोमे ७ वें नरकके जानेका कारणभूत पापोकी प्रकर्षता नही पायी जाती है तो न पायी जाय उससे मोक्षके कारणभूत ज्ञान चारित्रकी परम प्रकर्षता न होनेमे क्या आया अर्थात् यदि पाप उत्कृष्ट स्त्रियोसे नही बनता तो मोक्षका कारणभूत भी ज्ञान चारित्र उत्कृष्ट स्त्रियोंमे नही बनता। इसका क्या सम्बन्ध, क्योकि कार्योंके साथ कारणका अविनाभाव होता है। व्याप्यके साथ व्यापकका अविनाभाव होता है। कोई नरक नही जा सकता इसलिए मोक्ष भी नही जा सकता। इसका क्या सम्बन्ध है, इसमे अन्वयव्यतिरेकको कौन सी बात है। यदि किसी अन्य बातके अभावमें अन्य बातका अभाव मान लिया जाय तो इसमें तो बडी आपत्ति आयगी। कोई कहे कि यहाँ घोडा नही है इसलिए तीन लोक भी नही हैं। तो यो अटपट कुछ भी कहा जा सकता। जैसे कि कह दिया कि स्त्रियोके पापकी प्रकर्षता नही है, तो मोक्षके कारणभूत ज्ञान चारित्रकी प्रकर्षता नही है। कोई कह बैठेगा कि यहाँ हमारा लडका नही है तो सारी दुनिया नही है, यो अटपट जो चाहे कह सकते हैं, इसपर उत्तर देते हैं कि भाई ऐसा नियम है कि जिस वेदके मोक्षका कारणभूत परम प्रकर्ष होता है उस ही वेदके सप्तम नरकमे जानेके कारण पापोका भी परमप्रकर्ष होता है। जैसे पुरुष वेदकी बात पुरुषवेदमे मोक्षके हेतु उत्कृष्ट पाये जा सकते है। तो पुरुषवेदमे ही सप्तम नरकमे जानेके कारणभूत पाप भी उत्कृष्ट हो सकता है। यहाँ चरमशरीरी पुरुषोको दोष नही दिया जा सकता कि भाई चरमशरीरी जो पुरुष हैं जिनको उसी भवसे मोक्ष जाना है वे मोक्षमे जानेके भावोंका प्रकर्ष तो कर लेंगे, पर सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पाप नही कर सकते हैं। यह दोष यो नही है कि हम तो पुरुष सामान्यकी बात कह रहे हैं। पुरुषवेद वालेके

ऐसी योग्यता है कि उसके भाव बढे तो वे मोक्ष भी जा सकते हैं और भाव गिरे तो वे ७ वें नरकमे भी जा सकते हैं। विपरीत नियम सम्भव नही है कि जो ७ वें नरकमे जा सकता है और वह मोक्ष भी जा सकता है, ऐसा उल्टा नियम तो लागू नही होता, क्योंकि सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पाप नपु सक वेदमे भी होते हैं पर नपु सक वेदसे भी अर्थात् नपु सक लोग भी मोक्षमें नही जा सकते। मोक्ष तो केवल पुरुषोके ही माना गया है, इसलिए इस ओरसे नियम लगाना है कि जिस वेदपे मोक्षके उत्कृष्ट कारण सम्भव है। उस वेदवालेके सप्तम नरकमें जानेके कारण भी हैं। जो सप्तम नरक जा सके वह मोक्ष जा सके यह नहीं कहा जा रहा और जो सप्तम नरक नहीं जा सकता जिस वेदसे उस वेदसे मोक्ष तो सम्भव ही नहीं है। इससे स्त्री वेदसे भी यदि परम प्रकर्प मोक्षका कारण बन जाय अर्थात् ज्ञान चारित्र उत्कृष्ट हो जाय तो यह मानना पडेगा कि वह सप्तम नरकमे जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पापको भी करने लगेगा।

पर्यायोकी विभिन्न योग्यतायें—ससारमें अनेक प्रकारके भव हैं। उन भवो मे अपनी जुदो-जुदी योग्यता है। पशुपक्षी पर्यायमें कोई आया हो तो वह तो मोक्षका साधन नही बना सकता। मनुष्य भव पाकर भी मनुष्य भवमें स्त्री देहमे इस प्रकारके कोमल शरीर और पुरुषमें असम्भव विभागोकी योग्यता वाला आत्मा है कि उसके मुक्तिका साधन सम्भव नही है। तो जैसे स्त्रीवेदमें मोक्षके कारण उत्कृष्ट नही बन सकते, लेकिन उनका हेतु यह नही है, योग्यता ही इन दोनो वेदोमें ऐसी है कि उनके भाव इतना अन्दरमे मलिनताको लिए हुए हैं कि बहुत कुछ धोनेपर भी, उज्वल होने पर भी उतनी उतनी स्वच्छता नही उत्पन्न हो पाती कि मोक्षका उत्कृष्ट साधन उनके बन सके। सप्तम नरकमे जानेके कारणभूत पापोकी उच्चता नपु सकमे नही है, यह भी नहीं कह सकते। ये दोनो ऐसी योग्यता वाले हैं कि इनमे मोक्षहेतु पूर्ण नही आ सकता है अथवा जो युक्त अनुमान बनाया गया है कि जहा सप्तम नरकमे जानेके कारणभूत पापोकी उच्चता सम्भव नहीं है उस अनुमानमें इस हेतुसे मोक्षकी परम प्रकर्षताका स्त्रीमे निषेध नही किया जा रहा बल्कि परम प्रकर्षत्वके नातेसे दृष्टान्तमें साध्यकी व्याप्ति की जा रही है। इसमे कहीं दोष नही आता।

स्त्रियोमे मायाचारकी परमप्रकर्षता नही किन्तु बहुलता—यदि कहो कि यह कहना तो गलत है कि स्त्रियोंमें किसी भी बातकी उत्कृष्टता नही हो सकती, उनमें मायाचारकी तो अति उत्कृष्टता है। इतनी उत्कृष्टता न पुरुषवेदमे सम्भव है, न नपु सकवेदमे। उनके मनमे कुछ, वचनमें कुछ और कायकी चेष्टायें कुछ ये उत्कृष्टतासे पायी जाती है। उत्तर देते हैं कि यह भी कथन ठीक नही। आगममे जो मायाचारकी बात बताई गई है स्त्रीजनोंमें, उसका कारण यह है कि मायाचार बहुलता से होता है। उत्कृष्टताकी बात नही है। अनेक लोगोंमें अनेक प्रकारके मायाचार

चलते है पर वे मायाचारमे उत्कृष्टता पा लें यह बात आगममे नही कही गयी। वैसे अनेक कथन ऐसे हैं कि उत्कृष्ट मायाचार तो पुरुषोंने किया। जैसे इतने बडे कठिन प्रसङ्गमे जब कि रावणने यह प्रण कर लिया था कि मैं दशरथ और जनकका शिर ही उडा दूंगा ताकि न राम–सीता उत्पन्न होगे न मेरा (रावण) का मरण होगा। यह बात जब दशरथ और जनकके मन्त्रियोने सुना तो उन्होने इतना प्रबन्ध किया कि दशरथ और जनकको गुप्त कर दिया और ठीक उन जैसी ही सही मूर्ति लाखकी बनवा कर रख दी और लोगोका आवागमन वर्जित कर दिया विभीषणने भाईके मोहमे आकर उन दोनोका कतल कर दिया और समुद्रमें फेक दिया। पर वे तो कृत्रिम अचेतन लाखकी मूर्ति थी। यद्यपि यह मायाचार बुरे आशयका न था, तो भी यह देखिये, ऐसे ऐसे बडे बडे ऊँचे ऊँचे मायाचारी लोग हो गए, तो मायाचारकी उत्कृष्टता स्त्रियो में होती है जहाँ यह भी कहा गया, वहाँ बहुत प्रकारके मायाचार स्त्रीजनोमे होते हैं यह बताया गया है अन्यथा पुरुषो की तरह स्त्रियोके भी सप्तम नरकमे गमनका प्रसङ्ग आ गया अथवा जो हेतु दिया गया है उस हेतुमे इतना और बढ़ा दीजिये कि मायाके परम प्रकर्षके अतिरिक्त अन्य परम प्रकर्षता स्त्रियोमे सम्भव नही है। इस तरहका विशेषण लगाकर यदि यह हेतु बनाया जाय तो दोष नही है। कषायकी उत्कृष्टता पुरुषोमे सम्भव है। भले ही बहुत जल्दी समझमे ऐसा आता कि क्रोध मान, माया, लोभ आदिक कषायें स्त्रियोमे अधिक है पर उन स्त्रियोसे भी अधिक कषायें पुरुषोमे सम्भव हैं। जितनी उत्कृष्टतामे इन कषायोंके काम पुरुष कर सकते उतनी ही उत्कृष्टता के साथ स्त्रीजन नही कर सकती है। बहुलताकी बात अवश्य पायी जाती है। इससे ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष जो कि मोक्षका कारण है वह स्त्रीवेदमे सम्भव नही है। इस कारण तुम्हारा यह हेतु असिद्ध है कि स्त्रीवेदसे मोक्ष होता है क्योंकि समस्त कारण इकट्ठे हो जाते हैं। ज्ञानादिक जिस प्रकार पुरुषवेदमे उत्कृष्टताको लिए हुए प्रमाणसे सिद्ध होता है उस प्रकारकी उत्कृष्टताको लिए हुए ज्ञानादिक स्त्रीवेदियोंमें सम्भव नही होते अर्थात् यदि स्त्रीवेदमे ज्ञानादिक प्रकर्षरूपसे आ जायें तो फिर परम प्रकर्षता नपुंसकोमे भी उस प्रकारसे आ जाय और ऐसा होनेपर फिर नपुंसकोके भी मोक्षका प्रसङ्ग होगा।

स्त्रियोमे मोक्षहेतुभूत संयमका अभाव— संयम जो मोक्षका हेतुभूत है वह स्त्रियोमें असम्भव है। स्त्रियोका संयम मोक्षका कारणभूत नही होता क्योकि उनके संयम ऋद्धिविशेषका भी कारण नही बनता। मोक्षकी बात तो दूर रहो, ६४ ऋद्धियोंमें जो विशेष ऋद्धि हैं उनकी भी स्त्रीजनोमे सम्भावना नही है। तब फिर केवलज्ञान जैसी उत्कृष्ट समृद्धि की पात्रता उन स्त्रीजनोमें कैसे हो ? जबकि संयम सांसारिक लब्धियोका कारण नही बन सकता वहां फिर समस्त सङ्कटोंके दूर होजाने के स्वरूप मोक्षरूपी उत्कृष्ट लब्धि कैसे सम्भव है। स्त्रीजनोमे मोक्षके हेतुभूत कारणो का संयम नही माना गया है। तो ये सब बातें इस बातको प्रसिद्ध करती हैं कि ऐसा

उत्कृष्ट सयम स्त्रियोके सम्भव नही जैसे कि पुरुष जनोके सम्भव है। समस्त ग्रन्थोंका त्याग कर दें, लज्जा आदिक सब प्रकारके विभावोका भी परिहार करदे ऐसी बात स्त्री जनोमे सम्भव नही है। इसी कारण जो उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधि है, शुक्लध्यान है, वह शुक्ल ध्यान स्त्रीजनोमे सम्भव नही है। इस बातको सुनकर पुरुष जन तो यह शिक्षा ले सकते हैं कि जितना उत्कृष्ट भव पाया है और कैसी निरोगता पाई है या अनेक किस्मकी ऐसी व्याधियां जो पुरुषोमे असम्भव हैं, स्त्रियोमे ही सम्भव हैं वे व्याधियाँ नही हैं। तो ऐसी स्थितिको पाकर पुरुष जनोको आवश्यक है कि वे धर्मसाधन में अपनेको अधिक जुटायें और स्त्रीजन यह शिक्षा ले सकते हैं कि हमको अभी अपने आत्माकी स्वच्छताकी तैयारी करनेका काम बहुत पडा हुआ है हम बहुत कुछ निम्न दशाओको तो पार कर चुके पर अब भी बहुतसी बातें मोक्ष मार्गके लिये करनेको पडी हुई हैं। इनका अधिक ध्यान देना है, अधिक स्वच्छता उत्पन्न करनेका यत्न करना है।

स्त्रियोमे मोक्षहेतुभूत उत्कृष्ट सहननका अभाव इस प्रसङ्गमे यह कहा जा रहा है कि मोक्ष स्त्रीशरीरसे सम्भव नही है, पुरुष शरीरसे सम्भव है। तो इसमे इस कारणसे परस्पर विवाद सम्भव नही है कि आजके समयमे न पुरुष जनोका मोक्ष है और न स्त्री जनोका मोक्ष है इसका कारण यह है कि वह सहनन ही नही है। देखिये ! ध्यानकी निश्चल स्थितिके लिए उत्कृष्ट सहननकी भी आवश्यकता है। यद्यपि सहनन हममे नही है, शरीरकी बात शरीरमे है, आत्माकी बात आत्मामें है, लेकिन यहा प्रसिद्ध निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धको कौन मना कर सकता है ? वस्तुस्वरूपकी बात यह है और जीव अजीवकी बात तो प्रकट ही है कि जीवमे अजीव नही। मगर जीव जीवोमे भी एक दूसरे जीवके कुछ परिणमनको कर सकने वाला नही है। इतना ही नही, एक जीव तो दूसरे जीवके किसी भी परिणमनके लिए निमित्त भी नही बनता। जीवके कार्योंके लिए शुभ हो, अशुभ हो, उनके लिए अजीव निमित्त बन जाते हैं मगर जो जीवपदार्थ हैं, जीवद्रव्यकी जो कृतियाँ हैं वे दूसरे जीवोकी कृतियोमे कारण नही बन पातीं। जो यहा कुछ स्पष्टरूपमे प्रकट सा मालूम होता है कि किसी के उपदेशसे अनेक लोग तिर जाते हैं तो तिर जाने वालोंने किसका आश्रय लिया ? जीवका आश्रय नही लिया किन्तु उपदेशकके जो वचन थे उन वचनोका आश्रय लिया है। तो पुद्गल ही तो आश्रय बना, जीवके लिए तो अन्य जीव आश्रय अथवा निमित्त भी नही बन पाते। पुद्गलमे भी मोटरूपमे नजर आता है, एक स्कध है और उस स्कन्धमे अनन्त परमाणु हैं, उनमे एक परमाणु दूसरे परमाणुमे रूप, रस, गध, स्पर्श परिणति क्रिया ये कुछ नही डाल सकता है। तो वस्तुस्वरूपकी बात तो यह है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है लेकिन जितने उत्कृष्ट काम होते हैं, पूर्ण स्वभावविकासकी बात नही कह रहे हैं, स्वभावविकासरूप बात होनेपर भी जिसमे कुछ विभवोका भी समर्ग है ऐसी परिणतिया कोई आश्रय और निमित्तका सन्निधान पाकर होती हैं। जिनका सहनन उत्कृष्ट है, जीवोके द्वारा किए गये उपसर्गों

की सहनशीलता विशेष है ऐसे सहननधारी पुरुष , उत्कृष्ट ध्यानके पात्र बन पाते हैं। तो उत्कृष्ट सहनन स्त्रीवेदमे नही माना गया है, वहा केवल ३ सहनन होते हैं। कर्म-भूमिया महिलाओकी बात कह रहे हैं भोगभूमिया महिलावोकी बात नही कह रहे हैं। भोगभूमिया स्त्रीपुरुष दानोको मोक्ष नही है, पर कर्मभूमियां महिलाओमे ३ अतिम सहनन हो सकते हैं। वहा आदिके ३ सहनन नही माने गए हैं। तो ऐसे शरीरमे उत्कृष्ट ध्यानकी पात्रता नही होती। चचलता तो उत्कृष्ट बन सकती है किंतु स्थिरता उत्कृष्ट नही बन सकती।

स्त्रियोमे पञ्चम गुणस्थान तकके सयमकी पात्रता—हां सयममात्रकी बात यदि कहते हैं कि स्त्रीजनोंके सयम होना है, तो हां होता है, उनका उत्कृष्ट सयम आर्याव्रत तक माना गया है। आर्याव्रतमे यद्यपि भावोकी उत्कृष्टताको लेकर निरखा जाय कि इन भावोमे उत्कृष्ट भाव कितने हो पाते हैं उनकी दृष्टिसे उन्हे मुनिवत् कहते हैं। पर करणानुयोगकी दृष्टिसे पचम गुणस्थान ही माना गया है। छठा गुण-स्थान स्त्रीजनोमे सम्भव नही है। गुण शब्दका अर्थ यह है कि श्रद्धा और चारित्र गुणोका विकास ? श्रद्धागुणके विकासकी भी बात यह है कि स्त्री जब क्षायिक सम्य-क्त्व उत्पन्न नही करते और उसके पहिले मनुष्य आयुका बन्ध कर लेते हो तो वे मनुष्य भोगभूमिमे जाते हैं पर वहां भी वह पुरुष ही तो होगा ? स्त्रीवेदमे इसकी भी उत्कृष्टता नहीं मानी गयी है। चारित्रकी उत्कृष्टता तो सम्भव ही क्या है ?

सवस्त्रसयमसे मोक्षकी असिद्धि—मोक्षका कारणभूत उत्कृष्ट सयम स्त्री जनोमे इस कारण नही है कि उनका सवस्त्र सयम है। सवस्त्र सयममे उत्कृष्टता नही बन सकती। सयमकी उत्कृष्टता तो निर्ग्रंथ अवस्थामे ही सम्भव है। तो समस्त सयम पना हेतु असिद्ध नही है, स्त्रियोमे कभी निर्ग्रन्थ सयम नही देखा गया है और न आगममे बताया गया है। और ऐसा भी करना युक्त नही कि आगममे नही बताया गया फिर भी मोक्ष सुखकी अभिलाषासे स्त्रीजन वस्त्रोका त्याग करदें तो यह आज्ञाका उल्लघन करनेसे तो मिथ्यात्वकी आराधना बन जावेगी। सम्यक्त्व भी उनके नही रहा। तो जहां सम्यक्त्व ही नही रहा, उसका नाम सयम पड ही नही सकता। ऐसा भी नही कह सकते कि पुरुषोका तो निर्वस्त्र सयम हेतु बनेगा और न स्त्रियोका सवस्त्र सयमहेतु बनेगा। यह बात क्यो युक्त नही हैं कि मोक्षका स्वरूप एक प्रकारका है और जिस प्रकारके कारणोंसे मोक्ष हो सकता है तो उस मोक्षके कारण भी एक प्रकारके हो सकते हैं। यदि इस प्रकारकी हठ करोगे कि पुरुषमे तो अवस्त्र सयमसे मोक्ष होता है और स्त्री जनोका सवस्त्र सयमसे मोक्ष होता है तो ऐसा जब कारणभेद डालते हैं तो उनका कार्य जो मोक्ष माना गया उसमे भी भेद पड जायगा और फिर जैसे स्वर्ग सोलह हैं, अनेक स्वर्ग हैं तो इसी प्रकार मोक्ष भी अनेक हो जायेंगे। कोई निम्न दर्जे का मोक्ष कोई उत्कृष्ट दर्जेका मोक्ष, फिर तो जो देश सयमीजन हैं उनको भी मुक्ति

हो जायेगी और अगर ऐसा मान लो कि होने दो मुक्त, गृहस्थोकी भी मुक्ति होती है तब फिर साधु भेष ग्रहण करना अनर्थक हो जायगा। पर ऐसा नही है। तो सवस्त्र सयम पालन करने वालोकी मुक्ति नही है। गृहस्थ लोग सवस्त्र हैं तो उस सवस्त्र अवस्थामे कहा उनकी मुक्ति होती ? परम प्रकर्ष प्राप्त ज्ञान और चारित्र सवस्त्रधारी सयमके साथ नही आ सकते। और फिर यह बात बतलावे कि सवस्त्र सयममें भी मुक्ति होती है यह तुमने कैसे जाना ? श्वेताम्बरोसे पूछा जा रहा है। कहोगे कि हमने तो आगमसे जाना तो तुम्हारा आगम तुम्हारे लिए ही तो प्रमाण है, अन्य जनोके लिए तो आगमाभास है। वह तो अप्रमाण है। यदि किसीका भी आगम हो और उसे कोई दूसरा प्रमाण मान ही ले ऐसा नियम बनाओ तो यज्ञ अनुष्ठान, पूजन, होम, हवन आदिक ये भी अनेकोने अपने आगममे कहे हैं तो उनके इस हिंसा आदिक अनुष्ठानको भी मानना पडेगा इसलिए आगम तुम्हारा तुम्हारे पास है युक्तियोसे सिद्ध करें और सहायक योगमे बताई गई मुख्य युक्तियोसे सिद्ध करिये। जो सवस्त्र सयमधारी हैं उनकी मुक्ति सम्भव नहीं है। सो जो अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप मोक्षका लाभ है यह पुरुषोमे ही सम्भव है।

साधुजनोसे अवन्दनीय सपरिग्रह होनेसे स्त्रीमुक्त्यभाव स्त्रिया मोक्षके कारणभूत सयमसे सम्पन्न नही होती हैं क्योकि स्त्रिया साध्वी व्रत लेवें, तो भी साधु पुरुषोके द्वारा वन्दनीय नही होती। इससे सिद्ध है कि स्त्रियोका सयम मोक्षका कारण भूत नहीं हैं। और इसका अनुमान प्रमाण है कि स्त्रियोको मोक्ष नहीं है, क्योकि वे साधुवोके द्वारा वन्दनीय नही हैं। यह हेतु असिद्ध नहीं है, श्वेताम्बरोंके ग्रन्थोंमें ही खुद लिखा है कि यदि १०० वर्षकी भी दीक्षित आर्यिका हो तो उस आर्यिकाके द्वारा एक दिनका भी दीक्षित साधु पूज्य होता है। वह आर्यिका एक दिनके दीक्षित साधुको भी नमस्कार करेगी इससे सिद्ध है कि स्त्रीजनोका सयम मोक्षका कारणभूत नहीं है और भी हेतु दे रहे हैं कि स्त्रियां वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनो प्रकारके परिग्रहोंसे युक्त रहा करती हैं इस कारण उनका सयम मोक्षका कारणभूत नही है। जैसे कि गृहस्थोका सयम मोक्षका कारणभूत नही है इसी प्रकार स्त्रियां भी बाह्य और आभ्यंतर परिग्रहों से युक्त हैं। स्त्रीजनोंके द्वारा बाह्य और आभ्यतर परिग्रह सर्वथा त्यागे नही जा सकते इस कारण उनका सयम मोक्षका कारणभूत नही है।

वायुकायहिंसापरिहारार्थ वस्त्राधानकी विडम्बित युक्ति—यहाँ श्वेताम्बर लोग कह रहे हैं कि वे स्त्रियां इसलिए वस्त्र रखती हैं कि शरीरमें रहती है गर्मी तो शरीरकी गर्मीके कारण वायुकायके जीवोकी विराधना हो जायगी। तो शरीरकी गर्मीसे वायुकायके जीवोका घात न हो जाय। उनके घातके निवारणके लिए वे स्त्रिया वस्त्र पहिनती हैं। यद्यपि अपने शरीरमें अनुराग रच नही है फिर भी उन जीवोकी हिंसा न हो जाय इस भावनासे प्रेरित होकर वे स्त्रियां वस्त्र धारण करती हैं। तो

श्वेताम्बरोंके इस कथनका उत्तर देते हैं कि शरीरकी गर्मीसे वायुकायके जीवोंका घात न हो जाय इस कारण वस्त्र धारण किया जाता है तो पुरुषोंमे अगर निर्ग्रन्थवृत्ति हो जाय वस्तु त्याग करनेकी वृत्ति हो जाय तो फिर इस हेतु से वे हिंसक सिद्ध हो गए। तो अगर ऐसा मानोगे कि वायुकायके जीवोंकी हिंसा न होने पाये इस उद्देश्यसे वे स्त्रिया वस्त्र पहिनती हैं तो फिर इसमे साधुवोंके हिंसाका प्रसग आ जायगा। यदि वे निर्ग्रन्थ मुद्राधारी साधु शरीरमे वस्त्र न धारण करनेसे वायुकायके जीवोंकी हिंसा कर रहे हैं तो फिर अरहतदेवने निर्ग्रन्थताका वीतराताका उपदेश क्यो दिया सीधे यही कह देते कि वस्त्रधारी गृहस्थ भी मुक्तिके पात्र होते हैं। अरे जब वस्त्र सहित गृहस्थ मुक्तिके पात्र हो गए तो तुम्हारे आगममे जो आचेलक्य, औद्देशिक आदि हैं वे सब व्यर्थ हो जायेंगे। जो १० प्रकारके सयम बताये हैं वे फिर व्यर्थ हो जायेंगे। और फिर यह बात है कि ग्रहण कर भी ले व अ तो जतुवोंकी हिंसा तो बराबर रही आयी क्योंकि वस्त्रके द्वारा हाथ तो सदा ढके न रहेंगे। पैर उघडे रहेगे तो हाथ पैरोंकी गर्मीसे जीव हिंसा बराबर रह तब तो जीव हिंसाका परिहार नही किया जा सकता। वस्त्र ग्रहण करनेसे तो हिंसा अधिक होगी।

घातोपकरण वस्त्रके विधानमे अनेक आपत्तियाँ —घातका उपकरण होने पर भी यदि उन वस्त्रोंको स्वीकार कर रहे हैं तो केश बाल आदिकका फिर लुचन न करना चाहिये। क्योंकि वहा पर भी जुवा लीख वगैरह हैं, उन केशोंका लोच करनेसे तो उन जीवोंको बाधा आ जायगी। और फिर कभी उपवास भी न करना चाहिये क्योंकि पेटमे जो कीडे पडे होगे तो उनको उपवास करनेपर बडा कष्ट होगा। वस्त्रोंके धारण करनेसे वस्त्रोंका धोया, सुखाया, फैलाया तो वस्त्रमे हवा भी लगी तो वस्त्रोके फैला देनेसे उत्पन्न हुई जो हवा है उससे फिर आकाश प्रदेशमे रहने वाले जन्तुवोंको बाधा हुई। स्त्री बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंसे सहित हैं इस कारण मोक्षके कारणभूत सयमके धारण करने वाली नही हो सकती हैं। इन सब बातोंको समझनेसे स्त्री पर्यायमे और पुरुष पर्यायमे बडा अन्तर समझमे आ रहा होगा। यह तो मोक्ष मार्गकी बात है पर उनके झझट लगे भी कितने बडे हैं और उनको कितने समयपर कष्ट हुआ करता है, सो वह किसी पुरुषमे सम्भव नही है। तो स्त्री पर्यायमे भी अपनी हट आप हैं और पुरुष पर्यायमे आप हैं तो उन्हे एक धर्मपालनसे प्रेरणा मिलनी चाहिये कि देखो हमको बडा दुर्लभ मानव जीवन प्राप्त हुआ है, अब हम अपने ज्ञानकी आराधनामें ऐसा बल दें कि अब हमारा जन्म किसी भी नीची पर्यायमे न हो। स्त्रीजन सुनकर अपनेमे धर्मपालनका यो साहस बनायें कि अभी हमको कुछ और गति बढाना है मोक्षमार्गमे चलनेके लिए इस स्त्री पर्यायसे न प्राप्त होगा। उसके हेतुवोंको देते हुए इस समय यह हेतु चल रहा कि चूंकि वे स्त्रियाँ वस्त्र पहिनती हैं इस कारण समस्त सयममे मुक्ति सम्भव नही है, यह बहानेकी बात ठीक नही कि वस्त्र धारण करनेसे शरीरकी गर्मीसे उत्पन्न हुए जीव न मरेंगे। यदि ऐसा कहोगे तो फिर मुनिजनोंको विहार करनेके लिए

मना क्यो नहीं किया गया। मुनिजन तो निर्ग्रन्थ मुद्राधारी होते हैं। उनके शरीरमें गर्मीके कारण जीवोकी हिंसा सभव है सो हिंसापरिहारके लिये वस्त्राधान मानोगे तो इसमे तो विरोध आयगा।

वस्त्र हिंसाका व क्षोभका कारण होनेसे सवस्त्रसयमसे मुक्तिकी असिद्धि – जैसेकि यज्ञका अनुष्ठान पशुवोकी हिंसा करने वाला होनेसे त्याज्य है इसी प्रकार वस्त्रग्रहण भी हिंसाके विषय होनेसे त्याज्य है। वाह्य और आभ्यतर समस्त परिग्रहोका त्याग करनेसे सयम बनता है। ये परिग्रह हिंसा, क्षोभ और अन्तरङ्ग मूढ़ता के कारण बनते हैं। इस कारण अन्य उपकरण भी त्याज्य है। इसके सम्बधमे और भी कहा कि जब वाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह नहीं रहे, सब प्रकारके परिग्रहोका त्याग हो गया उसका नाम है सयम। मनमे क्षोभ रहना सम्भव है, कोई वस्त्र फट जाय तो उसकी याचनाका भाव हो सकता है मांगनेका भाव बन सकता है। तो जहाँ याचनाका भाव आया बस याचना हो चुकी। वस्त्र फट जाय तो उसके धोने सुखाने, सीने आदि की जरूरत पडती है और उन कार्योंके करते हुएमे क्षोभ भी करना पडता है। तो जहाँ इस प्रकारके परिग्रह सम्बन्धी क्षोभ उत्पन्न होते है वहाँ सयम हो ही नही सकता। तो इन वस्त्रोका ग्रहण करना सयमका घातक ही है। जब तक सकल परिग्रहोका त्यागकर निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण नही की जाती जब तक सयम टिक नहीं सकता। ऐसी निर्ग्रन्थ मुद्राका धारण करना पुरुषोमे ही सम्भव है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति अनन्त आनन्दकी प्राप्तिका नाम मोक्ष है, ऐसा मोक्ष पुरुषोके ही सम्भव है।

लज्जावेदनामन क्षोभनिवृत्यर्थ वस्त्राधानकी युक्तियोंका निरसन— लज्जाकी निवृत्तिके लिए वस्त्रादिक ग्रहण किये जाते हैं तो यो भी कहा जा सकता कि काम पीडा आदिककी शान्तिके लिए फिर कामिनी आदिकका ग्रहण क्यो नही कर लिया जाय ? और फिर जिस-जिस चीजके बिना पुरुषोको पीडा उत्पन्न हो फिर वे सब चीजें ग्रहण करना चाहिये जहाँ कुछ भी वेदना हो उसकी शान्ति करनेके लिए साधन जुटा लेना चाहिये। यदि यह कहो कि वस्त्रका टुकडा ग्रहण करने पर भी वास्तवमे वे विरक्त हैं तो यो क्यो नही कह दिया जाता कि स्त्रीमे रमने पर भी वास्तवमें वे साधु विरक्त ही हैं। इससे वस्त्र ग्रहण करना रचमात्र भी युक्त नही है। यह भी नही कह सकते कि अपने मनको क्षोभ न हो जाय इसलिए वस्त्र ग्रहण करते हैं तो कहते हैं कि जब उसके वाञ्छा ही नही है, वाञ्छाका कारण नही है तो फिर क्षोभका निषेध कैसे सम्भव है ? अरे वह पर्याय ही ऐसी है कि जहाँ आभ्यतर राग रहता ही है। लज्जा होना यह भी तो एक कषाय है। इस कषायका विनाश स्त्री पर्यायमे हो ही नही सकता इस कारण स्त्रियोंका वस्त्र ग्रहण करना अनिवार्य है। जहाँ वस्त्र ग्रहण है वहाँ तद् विषयक राग है इस कारण सवस्त्र सयममे मुक्ति नही हो सकती और फिर एक क्षोभ की निवृत्तिके लिए वस्त्रोका ग्रहण करना मान रखा है यह बात तो अयुक्त है। साधुवो

की निर्ग्रन्थ मुद्राको देखकर तो उसमे किसीको राग नही उत्पन्न होता । कारण कि उनका शरीर देखनेमे मलिन है । वे स्नान नही करते, किसी भी प्रकारका शृ गार नही करते । मलिनता उनके देह पर अधिक बसी है इसीलिए तो उन्हे स्वयके शरीरको देख ' राग नही होता, वास्तविकता यह है । इससे मानना चाहिये कि जो वस्त्र ग्रहण ये जाते हैं वे परिग्रह कहलाते हैं । तो जहा निर्ग्रन्थता नही है वहाँ न तो सयम नता है और न मोक्षकी प्राप्ति ही सम्भव है । श्वेताम्बर लोग सवस्त्र भी मोक्ष मानते और इसी कारण भी सवस्त्र मुक्तिका समर्थन है और यहाँ तुमने बताया कि कोई ृहस्थ भी हो सवस्त्र और किसी क्षण उसका भाव बडा ऊँचा बन जाय तो उसका भी मोक्ष सम्भव है । इसी आधारपर बहुत वस्त्रोको रखना भी धीरे-धीरे एक सम्मत मान लिया गया ।

सवस्त्र मुक्ति माननेके कारणकी घटना—श्वेताम्बर सिद्धान्तमे साधुके यह वस्त्र रखना कबसे शुरु हुआ ? तो उसका प्रतिपादन है कि करीब हजार वर्ष पहले कोई १२ वर्षका अकाल पडा उस अकालके समयमे लोग सयमसे न रह सके । तो आहार किए बिना गुजारा सम्भव नही है, आहार तो करना ही पडता है । अब किस तरह आहार करें ? दिनमे आहार करने जायें तो दान देने वाले लोग परेशान होजायें, रात्रिमे आहार लेने जायें तो उसमे भी अनेक विघ्न आये । कही कुत्ते लोग उन भिक्षा मागने वालोके पीछे लग जायें, कही छोटे-छोटे बच्चे लोग उनके पीछे लग जायें । ऐसा वह दुर्भिक्ष काल था । ऐसे दुर्भिक्षके समयमे भिक्षा लेने जाना भी असम्भव हो गया था । तो ऐसे समयमे वे सर्वदा वस्त्र पहिनकर भिक्षा लेने जाने लगे । नग्नरूपमें भिक्षा लेने जाना कठिन बन गया था । तो अब भी श्वेताम्बर शास्त्रोमे चर्याके प्रसङ्ग मे एक वस्त्र पहिनकर जाना कहा है । एकवस्त्र रख सकते हैं दो प्रकारके साधु बताये हैं एक जिनकल्पी और एक स्थविरकल्पी । जिनकल्पी साधु तो उनका नाम है जो तीर्थंकरके समान निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु रहे और जो वस्त्रसहित साधु रहे वे स्थविर कल्पी साधु कहलावे । श्वेताम्बरोंके आगममे जिनकल्पी साधु सर्वोत्कृष्ट हैं, उनके नीचे फिर सवस्त्र साधुवोकी कक्षा मानी गई है । फिर उन निर्ग्रंथ और सवस्त्रमे परस्पर ऊँच-नीचपनका कुछ व्यवहार चलने लगा तब फिर सवस्त्र मुक्ति और सवस्त्रका अधिक विधान प्रसिद्ध कर दिया और आजके समयमे तो अनेक तरहके वस्त्रोके नाम विधानमे रख दिये गए हैं । भला बतलावो जहाँ वस्त्रोका सग्रह हो वहाँ उनके रखने उठानेका विवाद न होगा क्या ? अरे इन पर वस्तुओके सग्रह विग्रह करनेसे इस आत्माका कुछ भी भला न होगा ! कहा तो यह आत्मा निर्विकल्प अखण्ड ज्ञानानन्द-रूप है इसका वह ज्ञानानन्द स्वरूप इस एक उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधिके द्वारा ही सिद्ध हो सकता है । और कहा ऐसे उपकरण बना लिये कि जिसमे विकल्प भी बहुत सम्भव हैं, तो वस्त्र धारण करके मुक्ति पुरुषोमे भी असम्भव है और स्त्रीजन तो वस्त्र बिना रह ही नही सकते । आगममे विधान हो नहीं है तो जो सवस्त्र हैं उनका सयम

मोक्षका हेतुभूत नही है। सवस्त्र पुरुषोकी जो आराधना है उससे मोक्ष प्राप्त न होगा। मोक्ष तो प्राप्त होगा रत्नत्रयकी पूर्ण साधनामे।

पिच्छौषधादि ग्रहण करनेमे रागपोषणका अभाव—यहाँ यह भी नहीं कह सकते कि तब तो पिछी आदिक उपकरण भी न ग्रहण करना चाहिये। पिछी जन्तुरक्षा के लिए है। जगलमे मोरके द्वारा अपने आप छोडे हुये ३–४ पिच्छ अगर ले लिए तो वे तो जतुरक्षाके लिए हैं। न वहाँ राग है न वाह्यमें कोई आरम्भ है। हाँ बहुतसे पिच्छ इकट्ठे करके पिछी बनाई जाती है यह न था पहिले, पिच्छग्रहण वैराग्य का साधनभूत था। रोगनिवृत्यर्थ औषधि ग्रहण करना भी अवैध नही है। शरीरमें वस्त्र ग्रहण करनेसे ममकार आ जाता है। इस तरहसे औषधि ग्रहण करनेमें ममकार नही आता। औषधि भी ग्रहण करते हैं तो वह रोगके ग्रहण करनेमें कारणभूत है। उसमें निर्ग्रन्थता समाप्त नही होती। वह भी ममताके लिए नही है। हाँ वस्त्रका धारण ममताके लिए है। तो वस्त्र धारण करके जो सयम है वे मुक्तिका कारण नही हो सकते। तो जो–जो लोग वस्त्र पहिने हो उन उनका मोक्ष नही। स्त्रीजनोंमें निर्वस्त्रता कभी सम्भव ही नही है, स्त्रीजनोके मुक्तिका सर्वथा निषेध है। मुक्ति होना तो पुरुषोमे ही सम्भव है। पुरुष हीं निर्ग्रन्थ होकर वीतरागी होकर अनन्त ज्ञान दर्शन, आनन्द, शक्तिके चतुष्टयको प्राप्तकर मुक्त हो जाते हैं।

उत्कृष्ट सयमके लिये वस्त्रकी अवैधता—मोक्षके साक्षात् उपायोमे परम नैर्ग्रंथ्य अवस्थाकी आवश्यकता है वहा वस्त्रादिक न चाहिये। इसपर शङ्काकारने यह कहा था कि जैसे पिछी औषधि आहार इनका ग्रहण करते हैं इसी प्रकार वेदनाप्रतिकारके लिए वस्त्रको भी ग्रहण कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमे यह कहा गया कि वस्त्र तो जतुरक्षाके काम नही आते प्रत्युत 'ममेद' भावका सूचक है, किन्तु ये औषधि और पिच्छिकायें जीवन व जतुरक्षाके लिए हैं, क्योंकि इनमें ममताभाव नहीं आता है और फिर कोई जब उत्कृष्ट निर्ग्रन्थता अवसर होता है तो फिर पिछीकी भी जरूरत नही रहती। जैसे जिन्होंने ६–६ माहका योगका धारण किया, एक–एक वर्षका तपश्चरण किया था और तपश्चरणके बाद मुक्त हो गए तो वहा पिच्छिकाका क्या ग्रहण है? और आहार औषधि आदिक सिद्धान्तके अनुसार लिए जायें जिनके उद्गम आदि दोष नही लगते वे रत्नत्रयकी आराधनाके ही कारण बनते हैं। ऐसे निर्दोष रत्नत्रय की आराधनाके ही कारण बनते हैं। ऐसे निर्दोष रत्नत्रयकी आराधनाके हेतुभूत आहार औषधि आदिक ग्रहण किए जाते तो उससे मोक्षहेतु नष्ट नही होता, क्योंकि ऐसे आहार औषधिके ग्रहणमे रागादिक अन्तरग परिग्रह भी नही उत्पन्न होते और बहिरग परिग्रह भी नही आते। जैसे कि वस्त्रमे कोई श्रृङ्गारकी बात होती है तो कुछ मनको व्यासक्त बनाना जाता है तो उसमें परिग्रहकी बात आती है, पर इसमें परिग्रह की बात नही है। ये तो मोक्षके हेतुके उपकारक ही हैं।

सविधि ग्राहारादिके ग्रहणमे अवैव्रताका अभाव— आहार ग्रहण न करे तो जीवन न रहे जीवन न रहे तो बीचमे आत्मघात हुआ तो न जाने क्या भव मिले, साधना न बन सकेगी। आहार ग्रहण किए बिना यदि बीच कालमें ही विपत्ति आगई तो आत्मघात बन गया। पर वस्त्रमे तो किसी पुरुषके लिए ऐसा नही है कि वस्त्र ग्रहण न करे तो उसपर आपत्ति आये या आत्मघाती बने और आहार तो त्याग भी दिया जाता है। कोई षष्ठ उपवास करता, कोई षष्ठभक्त त्याग करता, कोई अनेक उपवास करते तो मुमुक्षुजन वस्त्र भी त्याग देते हैं पर स्त्रियोके द्वारा वस्त्र नही त्यागे जाते आहार औषधि लेते हैं पर त्याग भी तो दि । जाता है ऐसा स्त्रियोके लिए वस्त्र का प्रसङ्ग नही आता कि स्त्रीजन वस्त्र लेकर कभी उन समस्त वस्त्रोको त्याग भी देती हैं। इससे चूँकि स्त्रिया निर्ग्रंथतामे नही आ सकतीं, उनमें सवस्त्र सयम रहता है अतएव उनका सयम मोक्षका कारण नही है।

वस्त्र ग्रहणमें मूर्च्छाका अपरिहार होनेसे महाव्रतकी अकल्प्यता – अब शकाकार कहता है कि वस्त्रके सिवाय बाकी समस्त परिग्रहोका त्याग होनेसे इन स्त्रियो के महाव्रत हो जाता है। सबका त्याग हो गया तो निर्ग्रन्थ अवस्था आ गयी, एक वस्त्र को छोडकर सबका त्याग होनेका नाम निर्ग्रन्थता है। यदि ऐसा कहोगे तो हम ऐसा कह देंगे कि लोभ कषाय के अलावा अन्य सब कषायोका त्याग कर देनेसे अकषाय हो जायेंगे। वस्त्र ग्रहण करने पर भी ममताका परिणाम नही है, ऐसी निर्ग्रन्थता रह जायगी यह बात सम्भव नही है। कोई बुद्धिपूर्वक हाथसे गिरे हुए वस्त्रको उठाये, धरे और कहे कि मेरे मूर्छा नही है उस बाता कौन चेतन श्रद्धान कर सकेगा ? वस्त्रग्रहण करें और फिर भी कहे कि मूर्छा नही है, ममता नही है यो यो स्त्रीको भी रखे। काम सेवन करे और कहे कि मेरे इच्छा नही है तो ऐसा भी अनिष्ट प्रसग फिर हो सकेगा, इसलिए वस्त्रके ग्रहण करनेमे दोनो प्रकारकी निर्ग्रन्थता नही रहती। न बाह्य परिग्रहो का त्याग बना न अन्तरङ्ग परिग्रहोका त्याग बना। जब निर्ग्रथता नही हो सकती तो स्त्रियोके मोक्ष नही हो सकता।

स्त्रियोमे बाह्याभ्यन्तर आकिञ्चन्य न हो सकनेसे स्त्रीमुक्तिकी असिद्धि भैया ! जो भी नवीन कार्य होता है वह कारणजन्य होता है क्योकि कार्य होनेसे। कुछ भी चीज बनाई जाती है, तो कारणोसे बनती है। मोक्ष मायने छुटकारा। पहिले छुटकारा न था, अब छुटकारा हो जाय, नवीन स्थिति है, एकदम परिवर्तित जो स्थिति है, यद्यपि उसमे शुद्ध आशय है लेकिन अशुद्धसे एकदम शुद्ध अवस्थामे आना यह तो नवीन कार्य है, वह बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कारणपूर्वक होगा। तो मोक्षके लिए अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारण क्या है ? आकिञ्चन्य। बाह्य और अन्तरङ्ग-आकिञ्चन्य होना यही है मोक्षका हेतु। स्त्रियोमे ये दोनो ही आकिञ्चन्य नही रह सकते, फिर कैसे मोक्ष हो ? तो जो हेतु दिया गया कि स्त्रियोके मोक्ष होता है अविकल

सयम होनेसे तो यह बात असिद्ध है उसका कारण पूर्ण नहीं मौजूद है इसलिए मुक्ति नहीं है।

आगमसे भी स्त्रीमुक्तिकी सिद्धिका अभाव -यह भी नहीं कह सकते कि आगमसे स्त्रीमोक्ष सिद्ध हो जायगा। स्त्रियोंकी मुक्ति बताने वाला कोई आगम नहीं है। शकाकार जिसे आगम मानता है वह तो आगम मानता रहे पर आगम तो वही माना जायगा जो दोनोके द्वारा सम्मत हो। यह भी शका नहीं कर सकते कि दिगम्बर सिद्धान्तके आगमसे भी यह सिद्ध है कि स्त्रियोको भी मोक्ष होता है क्योंकि यह लिखा है -नकिपु वेद वेदता जो पुरिसा खवगसेढिमारूढा, सेसादये णवि तहा झाणु वजुत्ता य सिज्झंति। अर्थात् पुरुष वेदका अनुभव करने वाला पुरुष क्षपक श्रेणीपर आरूढ होकर मोक्ष जाता है और स्त्रीवेद नपुसक वेदसे भी ध्यानमे उपयुक्त होकर मोक्ष जाता है। करणानुयोगमे बताया है कि स्त्री वेदका उदय ९ वें गुणस्थान तक है, पुरुष वेद भी ९ वें गुणस्थान तक है। ८ वें गुणस्थानमें क्षपक श्रेणी प्रारम्भ होती है। जब स्त्रीवेदसे क्षपक श्रेणीमें चढे और मुक्त हो गए तो स्त्रीमुक्ति तो सिद्ध हो गयी। समाधान देते है कि इसका अर्थ यह है कि साधु पुरुषोके द्रव्यसे तो सब पुरुष वेदी ही हैं लेकिन भाववेदकी अपेक्षा किसी साधुके स्त्रीवेदका उदय है किसीके पुरुषवेदका और किसीके नपुसक वेदका। तो जिनके स्त्री वेदका उदय है वे उत्कृष्ट परिणामोमे आकर क्षपक श्रेणी माड लें तो ९ वें गुणस्थानमे स्त्रीवेदका क्षय करके मुक्त हो जायेंगे। क्षय तो दोनो वेदोमे करना पडता है पर जिनके स्त्रीवेदका उदय है वे पहिले अन्य वेदोका क्षय करके फिर स्त्रीवेदका क्षय करके मुक्तिका उपाय धारते हैं तो इससे स्त्रीमुक्ति सिद्ध नही हुई। पुरुषोमें ही मोक्षकी सिद्धि होती है। समाधानमे यह कहा गया है कि इसमे जो दो श्रेणियां हैं उपशम श्रेणि व क्षपक श्रेणि, सो उपशमश्रेणिमे भी तीनो वेदका सम्बन्ध है और क्षपक श्रेणिमे भी तीनो वेदोंका सम्बन्ध है सो, उदय तो भावोका हुआ करता है द्रव्यका उदय नहीं होता। द्रव्य, शरीरमे यह पुरुष है यह स्त्री है इस प्रकारका भेद कराने वाला कर्मोदय कोई नहीं माना गया। पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसक वेद ये मोहनीय कर्मके उदयसे होते हैं नामकर्मसे नही। ये सब जीव विपाकी प्रकृतियाँ हैं।

अस्त्रीत्व हेतु और एक आगमाशोद्धरणसे स्त्रीमुक्तिनिरसन अब अनुमानसे भी समझ लीजिये कि स्त्रियोको मुक्ति नही है क्योंकि वे स्त्रियाँ हैं अन्यथा स्त्रीपना उनमे न होता। आगममे यह बताया गया श्वेताम्बर सिद्धान्तमें भी रत्नत्रयकी आराधनामे मुक्ति जघन्यसे तो ७-८ भवसे होती है और उत्कृष्टसे दो तीन भवसे होती है। यहा रत्नत्रयकी आराधनामे मुख्यता सम्यक्त्व लिया गया होगा, अन्यथा समग्र रत्नत्रय लिया जाय तो इसका अर्थ यह है कि उसकी मुक्ति उसी भवमे हो जाय ऐसा नहीं हो सकता है। तो सम्यग्दर्शनकी आराधना की किसी जीवने और वह

जल्दी ही मोक्ष भी जायगा तो दो तीन भव तो लगेंगे ही। तो वह स्त्रीवेदमे उत्पन्न न होगा। पुरुषवेदमे उत्पन्न होकर मोक्ष जायगा। स्त्रीवेदसे मुक्ति नही होती। शंकाकार कहता है कि देखो अनादि मिथ्यादृष्टि भी कोई जीव है तो पूर्वभवको विशुद्धि से जब अशुभकर्मोंकी निर्जरा कर दिया तो रत्नत्रयकी आराधना करके मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। इसमे कोई। विरोध नही है। समाधान देते हैं कि अशुभकर्मोंकी निर्जरा करे। उसकी ही तो यह बात है। और अशुभकर्मोंकी निर्जरा हो तो इसका अर्थ है कि स्त्रीवेदादिक अशुभकर्मोंकी निर्जरा हुई तब फिर स्त्रीवध नही रहा, अब रत्नत्रय की आराधना करके मुक्त चले जायेंगे। यह बात श्वेताम्बरोने इसपर कहा कि रत्न त्रयकी आराधना करके दो तीन भवोमे ही जीव मोक्ष जाता है। तो इसके खिलाफ रतचक्रवर्ती आदिककी तरह ऐसे जीव पाये गए हैं कि अनादि मिथ्यादृष्टि थे, उस भवमें सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया उस ही भवमे सम्यकचारित्र किया और उस ही भवमे मुक्ति प्राप्त की। जब अनादि मिथ्यादृष्टि भी उससे पहिले भवमे समस्त कर्मों को दूर करके हुआ ना, अब यह निकट भव्य, और उसी भवमे रत्नत्रयकी आराधना करे तो मोक्ष हो जायगा। उत्तरमे कहते हैं कि पूर्व भवमे जो अशुभकर्म निर्जीर्ण कर चुके उसकी बात कह रहे हैं कि जो स्त्रीवेद अशुभकर्म है उनकी निजरा हो गयी, अब स्त्रीवेदके रूपमे उत्पत्ति नही हो सकती। अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री पर्यायमे उत्पन्न नही होता। यह सिद्धान्त दोनो जगह समान है। सम्यक्त्व होनेके बाद यह जीव स्त्री पर्यायमें नही उत्पन्न होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्त्री वेद अशुभकर्म उसका निर्जरण न होनेपर फिर दूसरे भवमे स्त्रीवेदसे मुक्ति कही गई है। स्त्रीवेदकी निर्जरा हो जायगी तो स्त्रीपर्यायमे मोक्ष कहा सम्भव हुआ।

पुरुषादन्यत्वात् स्त्रीमुक्तिका निषेध—स्त्रीपर्यायसे मोक्ष नही है क्योकि वह पुरुषसे भिन्न है। जैसे नपु सक पुरुषोसे भिन्न होते हैं, उनकी भी मुक्ति उस पर्याय से नहीं है। नपु सक मोक्ष जायें, यह तो श्वेताम्बरोंने भी नही माना, ऐसा माननेका कारण यह हो सकता कि हिजडोकी सख्या बहुत थोडी है, उनके बहुमत हो नहीं सकता इसलिए नपु सकमे मोक्ष जाननेकी जरूरत पडी। स्त्रियोकी सख्या पुरुषोसे भी भी अधिक है एक तो पुरुषोकी भांति स्त्रियोकी बहुसम्मति होनेसे ये आगम बना दिये और स्त्रियोको भी यदि मोक्ष कहा जाय तो वस्त्रसहित साधुवोके समर्थनमे बल मिलेगा कि साधुजन वस्त्र भी पहिने रहे तो भी ऐसा सयम पा सकते हैं जिससे उन्हे मुक्ति प्राप्त हो। लेकिन चूँकि वे पुरुषोसे अन्य हैं इसलिये उनको मुक्ति नही। अन्यथा पुरुषोसे अन्य होनेपर भी स्त्रियोको मुक्ति कही जाय तो नपु सकोको भी मोक्ष मानो। यह भी नही कह सकते कि पुरुषोको भी मोक्ष नही है क्योकि वे स्त्रियोसे भिन्न हैं। यह यों नही कह सकते कि पुरुषोका मोक्ष तो श्वेताम्बर दिगम्बर दोनो सिद्धान्तोंने माना है। पर जहाँ केवल एकका ही आगम है स्त्रीमुक्ति बताने वाला वह आगम दिगम्बरके प्रति प्रमाणभूत नही हो सकता। क्योकि आगमकी प्रमाणता देकर कोई

वस्तुस्वरूप सिद्ध किया जाना हो तो वही आगम बताया जा सकता जो वादी प्रतिवादी दोनोके द्वारा सम्मत हो ।

मोक्षकी उत्कृष्ट ध्यानफलता होनेसे स्त्रीमुक्तिका निषेध –अब अन्य भी अनुमान कीजिये । स्त्रियोके मोक्ष नहीं है क्योंकि मोक्ष उत्कृष्ट ध्यानका फल है । मोक्ष ऊँचे ध्यानका फल है सो चूंकि स्त्रियोंके उत्कृष्ट ध्यान नही बनता अतः वे ७वे नरकमे भी नही जा सकतीं । उत्कृष्ट आर्तध्यान हो रौद्रध्यान हो, उसका फल है सप्तम नरकमे गमन । तो ध्यानकी उत्कृष्टता चाहिए । सप्तम नरकमे जानेके लिए जैसे उत्कृष्ट आर्त रौद्र ध्यान हैं इसी प्रकार मोक्ष जानेके लिये उत्कृष्ट धर्मध्यान एवं शुक्ल ध्यानकी आवश्यकता है । ये चीजें स्त्रियोके बन नही सकती । इससे सिद्ध है कि स्त्रियोके मोक्ष नही है ।

देहलक्षणसे स्त्रीमुक्तिनिषेधकी सूचना –आगममे स्त्रीशरीर और पुरुष शरीरमे बडा अन्तर बताया गया है । लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योकी उत्पत्ति स्त्रियोके शरीरसे होती ये मनुष्य गर्भज नहीं होते । मनुष्य योनिका उदर है जो लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य होते हैं । वे मनुष्य हैं और जहाँ तक कि सज्ञी पचेन्द्रिय हैं, भले ही वे श्वासमें १८ बार जन्म-मरण कर लें और उनके थोडे ही भव होते हैं लेकिन इस मनुष्यभवमे वे अधिक समय चल नहीं सकते कि दो चार मिनट चलते रहें ख़त्म हो जाते हैं सज्ञी । ये सज्ञी हैं, पञ्चेन्द्रिय है, सम्मूर्छन वाले लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य स्त्रियोकी कोख आदिसे उत्पन्न होते हैं । यह भेद है जो स्त्री पुरुषके अन्तर बताने वाले हैं तो स्त्रियोको मुक्तिकी बात कहना युक्त नहीं होती है ।

स्त्रीमुक्तिनिषेधक कारणोका उपसहार स्त्रियोकी मुक्तिका निषेध ये अनेक कारण सिद्ध करनेमे समर्थ हैं । एक तो उनके मोक्षके हेतुभूत सयमसम्बन्धी समस्त कारण नहीं चल पाते हैं । मोक्ष होनेमें जो जो साधन, जो जो परिणाम चाहिए वे स्त्रियोमें सम्भव नहीं हैं । न उनमे उत्कृष्ट विशुद्धि बनती है न उनमे उत्कृष्ट सहनन बन सकता है । दूसरे उनमें मायाकी बहुलता रहती है उत्कृष्ट माया की अधिकारी स्त्रिया अति गोपनीय मायाचार करनेमे पुरुषोमे भी अधिक समर्थ हैं । ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष स्त्रियोमे सम्भव नहीं है । स्त्रियोंको श्रुतकेवली तक की बात स्त्रियोको नहीं कही गयी तो केवलज्ञानकी बात कहना यह कैसे युक्त हो सकता है । ऋद्धि आदि विशेषका कारणभूत सयम स्त्रियोमे नही होता तो मुक्तिका साधनभूत सयम कहांसे चले ? चूंकि स्त्रियोका सयम सवस्त्र सयम है अत मुक्तिकी पात्रता नही । जैसे पुरुषोमे बताया कि वे सवस्त्र सयम भी लेते हैं, इस प्रकारकी दो बातें स्त्रियोमे सम्भव नहो हैं और स्त्रीजन चाहे सैकड़ वर्षोंकी दीक्षित हो एक दिनका दीक्षित पुरुष भी उनके द्वारा पूज्य वदनीय होता है । यह भाव भी यह सिद्ध करता

कि स्त्रियोंमे उत्कृष्ट सयम नही बन सकता। वस्त्रके धारण करनेसे अनेक हिंसायें होती हैं ममता आदि जगनेके बडे भयङ्कर परिग्रह भी लद जाते हैं। यह मेरा, यह अमुकका वस्त्र है इस प्रकारके रागद्वेषका बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। उस समय आत्म-चिन्तनकी बात ध्यानमे नही आती, समता परिणाम वहां नही रह सकता। तो वस्त्र धारण करनेके कारण ये अन्तरङ्ग परिग्रह भी इस जीवमे लद जाते हैं। वस्त्र धारण करनेका कुछ यह प्रयोजन भी नही है कि जिसके बिना जीवन नहीं टिकता। जो जीवन सयम धारण करनेके लिए आवश्यक था। वस्त्र धारण करने आदिककी बातें ममतादि जागृत होनेकी सूचना देता है। धर्मके हेतुमे वस्त्रका रच भी उपयोग नही है इससे सवस्त्र सयममुक्तिका साधक नही हो सकता, यह बात युक्तियोसे भी सिद्ध है, आगमसे भी सिद्ध है। तब यह मानना चाहिए कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त आनन्द, अनन्त शक्तिके चतुष्टय-स्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है। जहा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति, अनन्त वीर्य आदिकका पूर्णरूपेण लाभ है वह पुरुषोमे ही सभव है स्त्रियोमे सभव नही है, यह बात भली प्रकार सिद्ध होती है।

सूत्रका मूल प्रकरण—यद्यपि यह प्रसङ्ग स्त्रीमुक्तिके निषेधके लिए न था, इसका मूल प्रकरण तो एक निरावरण प्रत्यक्ष ज्ञानके सिद्ध करनेका चल रहा था कि सामग्रीविशेषसे जब समस्त आवरण दूर हो जाते हैं तो ऐसे अतीन्द्रियज्ञान उत्पन्न होते हैं, जो सम्पूर्ण रूपसे समस्त सत् पदार्थोंको जानते हैं। प्रत्यक्षज्ञानकी सिद्धिके सम्बन्ध मे अनेक क्रमश विवाद उत्पन्न होते-होते उन विवादोंके सिलसिलेमे यह विवाद चला कि मोक्षका लक्षण यहीं मान लीजिये अनन्त ज्ञानादिक चतुष्टयके लाभका नाम मोक्ष है, किन्तु यह मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है, स्त्रियोंके मोक्ष सम्भव नही। इस प्रकारका विवाद उत्पन्न होनेपर यह प्रमाणित किया गया है कि स्वरूपलाभ उत्कृष्टरूपसे होनेका नाम मोक्ष है, और वह मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है।

आत्महितके पथमे वस्तुत्वकी परीक्षाका आवश्यक स्थान-आत्माका हित चैतन्यभवके शुद्ध पर्वतनेसे है, अर्थात् रागद्वेष मोह विकल्प विचार इन सबसे रहित केवल जाननमात्र रहनेमे है। जिसमे केवल अपने आपके स्वरूपका जानन ही चलता हैं रहता है और सहज ही जो चाहे जानन स्वभावके कारण अन्य पदार्थ जानन मे चलते रहते हैं ऐसी स्थितिमे ही आत्माका हित है। यह स्थिति कैसे प्राप्त हो इस के लिये दो तरहसे प्रयुक्ति लगानी होती है—एक तो सत्यका आग्रह रखनेसे और दूसरे तत्त्वोका असहयोग करनेसे यह स्थिति प्राप्त होती है। अर्थात् अपना जो सत्य स्वरूप है, अपने चैतन्यमात्र अस्तित्वमे जो कुछ स्वरूप है उस रूप ही अपने आपको मानने और जानने और उस ही प्रकार रहनेमे अपना एक आग्रह हो, सकल्प हो, यही मात्र एक रुचि है। एक तो इस सत्याग्रहकी जरुरत है, दूसरे आत्मामे जो परतत्त्व, औपाधिक भाव या बाह्य क्षेत्रमे स्थित पर तत्त्व हैं, उन सबके साथ असहयोग नही,

वे सब अनर्थ रूप हैं, भिन्न हैं। उनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। मैं उनसे निराला एक चैतन्य मात्र हूँ। इस ही सत्यके आग्रहके बलसे परद्रव्योंका असहयोग हो जाता है। ये दो बातें जब क्रमसे व युगपत् हो जाती हैं तब आत्मस्वरूपमें मग्नता होती है जिसमें ज्ञाता द्रष्टाकी स्थिति बनती है। तो आत्मीय स्थिति हितरूप है। और उस स्थिति के पानेके लिए सत्यका आग्रह और असत्यका असहयोग चाहिये। अब ये दोनों बातें कैसे हों? इसीको इन शब्दोंमें कह लीजिये—उपादान और हानि। सत्यका तो आग्रह हो और असत्यका त्याग हो। ये दोनों कैसे हों इन दोनोंका उपायभूत है उपेक्षा और इन सबसे सम्बन्ध रखने वाली बात है अज्ञाननिवृत्ति। ये सब कैसे हों? इस सब का उपाय है—वस्तुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो। तो इन सब हितरूप बातोंके लिए यह आवश्यक हुआ कि हम पदार्थोंके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करें, इसीको कहते हैं अर्थसंसिद्धि। पदार्थकी समीचीन सिद्धि। जैसा उनका स्वरूप है उस प्रकार उनका परिचय होजाना इसे कहते हैं अर्थसंसिद्धि। अर्थसंसिद्धि होती है परीक्षासे। जब हम सभी पदार्थोंके स्वरूपका परिचय करें तो उनमें परीक्षा होगी। यह बात ऐसी है क्या? तो उनकी परीक्षा होना आवश्यक है क्योंकि परीक्षा किये बिना जो भी ज्ञान किया वह ज्ञान दुर्बल रहेगा और जहाँ परीक्षापर उत्तीर्ण हो गया वह ज्ञान विधिनिषेधसे अस्ति-नास्तिसे जब उसका भली प्रकार निर्णय हो गया तब वह ज्ञान दृढ हो जाता है। परीक्षा होती है प्रमाणसे। तो कल्याणके लिए परीक्षा सबसे पहिले आवश्यक हुई। परीक्षासे ही हम यह निर्णय कर सकते हैं कि यह मार्ग हितरूप है और यह अहितरूप है। पदार्थका स्वरूप इस प्रकार नहीं है, पदार्थका स्वरूप ऐसा ही है।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचनका संचार—आत्महितके पथमें वस्तुत्वकी परीक्षा आवश्यक होनेसे पूज्यश्री माणिक्यनन्दी आचार्यने परीक्षाका जिसमें दिग्दर्शन है परीक्षा से सुन्दर-सुन्दर उपायोंका जिसमें दिग्दर्शन है, जैसे कि शरीरका श्रेष्ठ अङ्ग मुख है इसी तरह परीक्षाके उपायोंमें जो श्रेष्ठ उपाय है उनका वर्णन करने वाले सूत्रोंकी रचना की है और इसी कारण इस ग्रंथका नाम परीक्षामुखसूत्र है। इस परीक्षामुख-सूत्रपर अनन्तवीर्याचार्यने प्रमेयरत्नमाला टीका लिखी है। उन सूत्रोंमें जो प्रमेय भरा है, उन सूत्रोंमें जो प्रमेयका संकेत होता है जो कि रत्नकी भाँति हैं, ऐसे प्रमेयरत्नोंकी माला बनाई है और फिर इसी सूत्रपर विस्तृत टीका प्रभाचन्द्राचार्यने की है, प्रमेय-कमलमार्तण्ड अर्थात् जो और भी मर्म प्रमेयमें भरे हुए हैं उन सब मर्मों कमलोंको विकसित करनेके लिए यह मार्तण्ड अर्थात् सूर्यकी तरह है। तो परीक्षाप्रधान इस ग्रंथ में वर्णनका प्रारम्भ किया गया है प्रमाणके स्वरूपके परिभाषण से। तो प्रथम ही प्रमाणके स्वरूपके परिभाषणसे सम्बन्धित समस्त तर्क वितर्कोंका प्रतिपादन है।

प्रमाणके स्वरूपका परिभाषण—प्रमाण होता है ज्ञान और ऐसा ज्ञान जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये। ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है क्योंकि ज्ञानमें

ही यह सामर्थ्य है कि वह हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये, अतएव ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। प्रमाणके स्वरूपके सम्बन्धमे अनेक विवाद उठे, किसीने कहा कि बहुतसे कारक जुड जायें उसका नाम प्रमाण है। जैसे प्रकाश आत्मा इन्द्रिय ये सारे इकट्ठे हो गए तो ये प्रमाण बन गये, पर सब इकट्ठे हो जानेपर भी क्या प्रमाणता उन सब कारकोमे है अथवा किसी एकमे है ? सब मिल करके प्रमाणका रूप नही बना। प्रमाणका रूप बनता है किसी एक मे। जैसे प्रकाश इन्द्रिय, आत्मा ये तीन इकट्ठे हुए तो ज्ञान तो बना परन्तु यह तो बतावो कि वह ज्ञान वह प्रमाण किसी एकका परिणमन है अथवा तीनोका ? जो अचेतन है उसमे प्रमाणता नही आ सकती तब किसीने यह छेडकी कि इन्द्रिय और पदार्थका जो सम्बन्ध है वह प्रमाण है, यह भी यो ठीक नहीं बैठना था कि इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध न होनेपर भी ज्ञान होता है और कभी कभी ज्ञान नही भी होता। ज्ञान करने वाला कोई जुदा ही तत्त्व है। तब किसीने यह प्रसङ्ग छेडा कि इन्द्रियका व्यापार प्रमाण है, सम्बन्ध प्रमाण नही है। क्योकि उसके प्रामाण्यमे तो सङ्ग देखा गया। कभी इन्द्रियार्थका सम्बन्ध होनेपर भी ज्ञान नही होता, कभी सम्बन्ध विना भी होता, पर इन्द्रियके व्यापार बिना तो ज्ञान नही होता, यह भी बात ठीक नही बैठी क्योकि ये इन्द्रियाँ अचेतन हैं, इनके हलन चलनका व्यापार भी एक अचेतन क्रिया है, वह भी ज्ञानरूप नही है, वह भी इस ज्ञाताके ज्ञानके बननेमे मात्र बाह्य साधक कारण है तब किसीने कहा कि आत्माका व्यापार प्रमाण है लेकिन वह आत्मा है अज्ञानी अचेतन। उसका व्यापार अचेतन है। तो अचेतनरूप व्यापार है तो प्रमाण नह हो सकता और चेतनरूप यदि व्यापार है तो वही बात आयी, ज्ञानमाण। तब किसीने और-और प्रकारसे भी प्रमाणके सम्बन्धमे बात रखी, लेकिन सिद्ध यह हुआ कि जो स्वपरव्यवसायी ज्ञान है वही प्रमाण हो सकता है। प्रमाणका प्रयोजन है हितकी प्राप्ति हो और अहितका परिहार हो। इन दो बातोके करनेमे समर्थ ज्ञान ही होता है।

ज्ञानका स्वपरनिर्णयाकत्व-- वह ज्ञान निर्णयात्मक होता है वहाँ सशय विपर्यय अनध्यवसाय ये दोष नही होते। जिस ज्ञानमे निर्णय भरा हो वही ज्ञान प्रमाणरूप होता है। तो निर्णयकी बात सुनकर यहाँ क्षणिकवादी एक यह आशङ्का रखते हैं कि निर्णय तो माया है, निर्णय तो अपरमार्थ है, सत्य तो एक निर्विकल्प तत्त्व है, वही वास्तविक प्रत्यक्ष ज्ञान है। जो ज्ञान निर्णय रखता हो वह सविकल्प है और मायारूप है। ज्ञान तो एक निर्विकल्प चेतनरूप रखा करता है, पर यह बात यो नही बनती कि निर्णयात्मक ज्ञानके विना वस्तुस्वरूपकी पुष्टि नही हो सकती क्या मायारूप ज्ञानसे वस्तुस्वरूपकी परीक्षा होगी ? तब उस वस्तुस्वरूपकी बात सुनकर कोई बोल उठा-- तो बतलाओ वस्तुस्वरूप क्या है ? अरे वही प्रमाण है और वही वस्तुस्वरूप है, अन्य कुछ नही है और ज्ञानके साथ कुछ न कुछ शब्द उठा करते हैं। शब्द सहित ज्ञान बनता है। तो ज्ञान भी क्या चीज है ? शब्द ही ज्ञान कहलाया। शब्दात्मक जगत

है, शब्दात्मक ज्ञान है, इसलिए एक शब्दाद्वैत ही तत्त्व है। शब्दानुविद्धता ज्ञानमें होनी है, यह एक पक्ष आया, लेकिन यह बात युक्त यों नहीं है कि जितने शब्दानुगमी ज्ञान हैं वे सब छद्मस्थोंके ही कोई कोई ज्ञान हैं, वहाँपर भी ज्ञान और शब्द एक नहीं हो जाते। वहा भी वे दो तत्त्व हैं लेकिन ज्ञानके साथ श्रुतबोधका व्यक्त करने वाले अन्तर्जल्प होते हैं, वहा भी प्रामाण्य बोधमें है। तब यही सिद्ध हुआ कि स्वपरव्यवसायी ज्ञान ही प्रमाण होता है और उसमें स्वका भी निर्णय भरा है। जो भी ज्ञान पदार्थको ठीक समझता है वह अपना निर्णय करता हुआ ही रहता है। कोईसा ज्ञान ऐसा नहीं है कि जो पदार्थकी तो व्यवस्था बनाये और अपने बारेमें संशय रखे कि यह जो ज्ञान हुआ है वह सही या नहीं। अगर ज्ञानमें संशय है तो उस ज्ञानके द्वारा जिस पदार्थको जाना है उस पदार्थमें भी संशय हो बैठेगा, इसलिए ज्ञान वही प्रमाण है जो स्वका निर्णय रखे और परका भी निर्णय रखे।

अर्थसद्भावके विरोधपर विचार—यहाँ किसीने यह भी छेड़ की कि स्व और पर ऐसी दो बातें कहीं है ही नहीं। जो कुछ है वह सब एक है और वह ब्रह्मस्वरूप है ब्रह्मके अतिरिक्त जगतमें और कुछ नहीं है, लेकिन ब्रह्म ही केवल एक तत्त्व है तब वही रहा आये, फिर यह सब कुछ दृश्यमान समागम ये व्यवहार ये विडम्बनायें ये खटपट कहाँसे हो उठे? कोई कहे कि ये सब मायासे उत्पन्न हुये तो माया भी कोई चीज है ना, अगर नहीं है, असत् है तो असत्से कुछ नहीं हुआ करता। तब एक ही तत्त्व है यह बात तो न रही। तो इसपर क्षणिकवादी बोले कि ब्रह्म तो तत्त्व नहीं किन्तु एक ज्ञान ही तत्त्व है। जो कुछ है वह सब एक है। जो कुछ है वह सब ज्ञान है और वह क्षण-क्षणमें नया-नया पैदा होता है। जो दिख रहे हैं भींट ईंट मकान वगैरह, ये सब क्या हैं? ये कुछ नहीं हैं। ये हमारे ज्ञानकी कल्लोल हैं, सब ज्ञानात्मक हैं सब प्रतिभासस्वरूप है। तो ज्ञान ही मात्र एक तत्त्व है लेकिन यह बात नहीं बनती कि ज्ञानका काम फिर क्या रहा? ज्ञान किसे कहते हैं? ज्ञान जाननेको कहते हैं और जानना किसी विषयका ही हुआ करता है। कुछ भी बात ज्ञेय तो होना ही चाहिये। ज्ञेयके बिना ज्ञानका कोई स्वरूप नहीं बनता। इस विषयपर बहुत चर्चा चली। तब उसी सिद्धान्तका कोई दूसरा अनुयायी कहता है कि ज्ञान ही तत्त्व है, यह तो समझना माध्यम है, यह भी इस रूपमें ठीक नहीं किन्तु शून्य ही तत्त्व है। जब हम उस ज्ञानके स्वरूपपर विचार करते हैं कि वह ज्ञान केवल जिसमें कोई परपदार्थ नहीं है, प्रतिभासमें ज्ञान ही ज्ञान है तो ऐसी दृष्टिमें कुछ भी नजर नहीं आता तो आखिर ज्ञानमात्र ही तत्त्व है यह तो उपाय है पर तत्त्व वास्तवमें शून्य है। उस शून्यका परिज्ञान करनेसे ही आत्माके संकट दूर होते हैं। तब इसी सिद्धान्तका एक अनुयायी बोला कि शून्य ही तो नहीं। शून्य ही सब कुछ है तो फिर करना क्या रहा? शून्य तत्त्व नहीं किन्तु ऐसा चित्रित ज्ञान जिस ज्ञानमें ये समस्त आकार प्रतिबिम्बित होते हैं ऐसा चित्रि विचित्र ज्ञान ही एक स्वरूप को रखकर तत्त्व बनता है। इतना कुछ वर्णन करनेके बाद जो

कुछ भौतिकवादी लोग सुन रहे थे उनसे आखिर न रहा गया तो बोले कि यह सब प्रलाप मात्र है। ज्ञान क्या है ? एक विद्युत है, बिजली है जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि वायु आदिक अनेक सयोगोसे उत्पन्न हुई है उसका कोई अलग अस्तित्त्व नही है लेकिन यह बात भी यो सिद्ध न हो सकी कि कोई किसी रूप परिणमता है तो अपनी जातिका उल्लघन न करके ही परिणमता है। ये भौतिक पदार्थ स्वय ज्ञानशून्य है। ये मिलकर परिणमे तो ज्ञानरूपताको उत्पन्न नही कर सकते।

ज्ञानके स्वत्वपर चर्चा— इस ज्ञानके सम्बन्धमे जिसका कि स्वरूपके परिभाषणके द्वारसे वर्णन किया है। अनेक लोग अनेक प्रकारके आशय रखते हैं। किन्हीका आशय है कि ज्ञान क्या है ? पदार्थका आकार है वह ज्ञान है। ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होते हैं और पदार्थका आकार लिए हुए होते हैं। ज्ञानका आधारभूत कोई स्वतत्र आत्मा नहीं है। तब इन साकार ज्ञानवादियोका भी समाधान दिया गया कि स्वय कुछ नही है तो आकार आया किसमे ? किसने उसको ग्रहण किया। पदार्थने आकार तो सौंपा पर ग्रहण किसने किया ? उस ग्राहक तत्त्वको माने बिना तो यह बात बन नही सकती और आकार सौपनेकी भी बात भी अयुक्त है यो सक्षेप रूपम इन सब अज्ञानवादियों का कुछ सकेत दिया है। इसके स्वरूप और विसम्वादोमे तो बहुत समय लगा है पर एक साधारण रूपसे यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान ही प्रमाण है और और उस ज्ञानमें दोमुखी आभा है स्वका भी निर्णय रखे और परका भी।

ज्ञानप्रयोगमे स्वपर प्रकाशकत्वकी झाकी— जैसे लोग बोलते ही हैं कि मैं अपने ज्ञानके द्वारा इन जीवोको जानता हूँ तो इसमे कितनी चीजोका प्रतिभास आ गया ? मैं जानता हू, इसमे मैंका भी प्रतिभास हुआ। जीवोको जानता हूँ, तो जीवोका भी प्रतिभास हुआ ज्ञानके द्वारा जानता हू तो उसे निजी साधनका भी प्रतिभास हुआ। जिसने यह कहा कि ज्ञान स्वय-स्वयको नही जानता, अन्य ज्ञानके द्वारा जाना जाता है, लेकिन जो ज्ञान स्वयको न जाने, दूसरे ज्ञानके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानमें स्पष्टता नही आ सकती। तथा अभी जिस ज्ञानसे हमने जाना उस ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य ज्ञान चाहिये और उस अन्य ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य ज्ञान चाहिये, तो ज्ञान का ही स्वरूप बनना कठिन हो जायगा, फिर पदार्थोंके जाननेका तो अवसर ही कब आयगा ? इससे यह निर्णय रखना चाहिये कि ज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञानसे ही वस्तु के स्वरूपकी परीक्षा है। जैसे दीपक है वह अपने आपको भी उजेलेमे रखता है और अन्य पदार्थोंको भी ज्ञान उजेलेमे करता है, इसी तरह ज्ञान स्वयंका भी ज्ञान करता है और अन्य पदार्थोंका भी ज्ञान करता है।

ज्ञानका स्वतः व परतः प्रामाण्य- यह ज्ञान ठीक है ऐसी ठिकाई अर्थात् इसका प्रामाण्य कभी-कभी तो स्वयमेव हो जाता है। जिन चीजोको हम रोज-रोज

देखते रहते है, बहुत बार जानते रहते हैं उन चीजोका जब कभी हम ज्ञान करते हैं तो उनकी प्रमाणता हमारे ज्ञानमें स्वयमेव हो जाती है। जैसे जिस मार्गसे रोज जाते हैं तो उस मार्गमे थोडी दूर चलकर नदी अथवा कुवां मिलता है, वहा वह ज्ञान करता है कि यहाँ नदी है ही और उसका निर्णय करनेमे उसे अधिक सोचना नही पडता। तुरन्त सही ज्ञान होता है और जिस मार्गसे कभी गये ही नही उस मार्गसे जानेका मौका पड गया और लग गयी प्यास तो अब सोचते हैं कि कहीं पानीका ठिकाना हो जाय कही दूर पर मेढकोकी आवाज सुनायी दी, सोचा कि वहां जल होगा। चलता गया। आगे चल कर उसे फूटे घडे नजर आये तो निर्णय कर लिया कि यहाँ पानी अवश्य है, थोडी दूर जाकर उसे कोई महिला या पुरुष पानी भरकर लिए जाता हुआ दिखा। तो उस पुरुष की प्रमाणता पर से हुई।

प्रमाणके भेदोकी चर्चा ज्ञान स्व और परका जानने वाला होता है यह सिद्ध करनेके बाद फिर उस ज्ञानके भेद बताये गए हैं कि ज्ञान दो तरहके होते हैं–एक प्रत्यक्ष ज्ञान और एक परोक्ष ज्ञान। जो स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं और जो अस्पष्ट जाने उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। किसी ही साधनसे ज्ञान होता हो या तो वह स्पष्ट जानने वाला होगा या अस्पष्ट। इस तरह प्रमाणके दो भेद न मानकर क्षणिकवादी कहता है कि प्रमाण दो तरहका तो है पर वह है प्रत्यक्ष और अनुमान। लेकिन ये भेद यो ठीक नही बैठते कि भेद किये जाते हैं इस ढगसे कि जिसका भेद करना है उसका कोई अश छूटे नही, तो भेद बनता है पर प्रत्यक्ष और अनुमान इतना ही मात्र भेद करनेमे जो अन्य ज्ञान हैं स्मरण है प्रत्यभिज्ञान है तर्कवितर्क हैं ये सब तो उसमें नही आये। कोई कहे कि एक ही प्रमाण है–प्रत्यक्ष जो आँखे देखा, जो नजरमें आया वही एक ज्ञान है। तो कहते हैं कि उस प्रत्यक्षकी भी सिद्धि प्रत्यक्षमात्रसे नही की जा सकती एक ही ज्ञान है–प्रत्यक्ष। इसका तो अर्थ है कि जो हमे जानकारीमे आया वही तो है अन्य कुछ नही। भला बतलावो दूसरेका जो आत्मा है उसमे भी ज्ञान है कि नही? उसका ज्ञान हमें कैसे हो? प्रत्यक्षसे तो होता नही, तुमने अपना जैसा भाव समझकर अनुमानसे ही तो जाना। तो न केवल प्रत्यक्ष यो कह सकते, न प्रत्यक्ष, अनुमान यो कह सकते। किसीने तीन भेद किये किसीने चार पाच। किसीने प्रत्यक्ष अनुमान आगम अर्थापत्ति, उपमान अभाव भेद किये पर ये सब भेद त्यक्ततर हैं व पुनरुक्त हैं। उपमान तो प्रत्यभिज्ञानमें सामिल होता है। यदि उपमानको अलग प्रमाण मानते हो तो विसदृशताका ज्ञान किस प्रमाणमे आयगा। अर्थापत्ति अनुमानमें गर्भित होता है, अभाव सभीमें गर्भित होता है। जिसके द्वारा अभाव जाना है अभाव उसमे सामिल होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञानके स्वरूपकी चर्चा— प्रत्यक्षके भेदकी कुछ आलोचना करके अब प्रत्यक्षके स्वरूपके निर्णयपर उतरें। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो निर्मल ज्ञान हो। विशद ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और पदार्थके आँख और पदार्थके सम्बन्धसे प्रत्यक्ष

नहीं कह सकते। यह ज्ञान आत्मासे ही उत्पन्न होता है, कहीं पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं होता, कहीं प्रकाश आदिक कारणोंसे उत्पन्न नहीं होता। और यह ज्ञान जब एकदेश स्पष्ट रहता है तब तो कहते हैं साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। और उसके ज्ञानको आवरण करने वाले कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाता है, उस समय जो सर्वका ज्ञान होता है वह कहलाता है पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान। उस ज्ञानको कर्मोने ढका है अर्थात् कर्मोंके आवरणका निमित्त पाकर ज्ञानस्वरूप निर्मल व पूर्ण अवस्थामे नहीं रहता आया है। संयमसे, सम्यक्त्वसे, तत्त्वज्ञानसे, उपायोसे उन कर्मोंका सम्वर होता और निर्जरा होती। तब आवरणका अपाय होता और यह ज्ञान सबका जानने वाला होता है।

निरावरण ज्ञानके सर्वज्ञत्वपर किये गये विरोधपर विचार—यहाँ ईश्वरकर्तृत्ववादीने यह कहा कि कर्मोका आवरण दूर होनेसे सर्वज्ञता नही होती, किन्तु कोई अनादिमुक्त सदा शिव ईश्वर ही है वही सदा से सर्वज्ञ रहता आया। उस एक को छोडकर कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता। वह सर्वज्ञ इस कारण है कि वह सारे विश्वको करने वाला है। जो सबको न जाने वह सबको कर कैसे सकता। इस सम्बन्ध मे विस्तार रूपसे समाधान दिया गया कि पदार्थ इस प्रकार नही बना करते हैं। पदार्थोंकी योग्यतासे ही हुआ करती है। ईश्वर तो अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्द शक्ति-मय विशुद्ध पवित्र चेतन है। तब प्रकृतिवादी यह बोलते हैं कि ऐसा अनादिमुक्त ईश्वर तो सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि आवरणके दूर होनेपर ही सर्वज्ञता प्रकट होती है। मगर वह आवरण प्रकृतिपर छाया है और आवरण दूर होनेपर प्रकृति सर्वज्ञ बनता है। क्योंकि प्रकृति सबका करने वाली है, इस सम्बन्धमे विस्तारसे निराकरण होनेपर फिर कोई सेश्वर प्रकृतिवादी कहते हैं कि केवल प्रकृति नही बनाती जगतको, किन्तु प्रकृतिका सहयोग पाकर ईश्वर बनाता है। इस सम्बन्धमें भी विचार किया गया कि जब प्रकृतिमें भी कर्तापन नहीं है ईश्वरमे भी कर्तापन नही है तो मिल करके भी भी कर्तापन नहीं हो सकता। जब ये दोनो नित्य है तो नित्यमे कभी विकार नहीं होता तो इनम सहयोगसे भी कुछ अतिशय आ नही सकता, कैसे यह सम्भव है कि इस जगतकी रचना बराबर इस क्रमसे होती चली जाय, जहा कोई गडबडी न हो और न यह अव्यवस्था हो कि रचना प्रलय अवस्थिति सब एक साथ न हो। ये सब व्यवस्थाये तो पदार्थके स्वरूपके ही कारण हैं, और पदार्थके स्वरूपका निर्णय करानेके लिये इस ग्रन्थमे प्रतिपादन हुआ है।

ज्ञानके निर्णयका महत्त्व—यहा तक प्रमाणके स्वरूपके परिभाषणसे प्रारम्भ करके यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान ही तक हितरूप है, ज्ञान ही प्रमाण है, उस ज्ञानका ही हमे निर्णय करना है। ज्ञानसे ही हम समस्त परपदार्थोंका निर्णय करते हैं, अत हमे उस ज्ञानकी खोज करना चाहिए, ज्ञानका निर्णय करना चाहिए। प्रथम तो उस ज्ञानका ही स्वरूप जानें कि वह ज्ञान क्या है जिस ज्ञानके द्वारा हम इ

समस्त पदार्थोंको जानते रहते हैं। वह ज्ञान मैं ही हूँ, मेरेसे अलग ज्ञान नहीं है, मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानस्वरूपको छोड़कर मेरा और कोई स्वरूप नही है। जो हित रूप है, शरण— रूप है, सर्व व्यवस्था करने वाला है, अपने लिए पूरा महत्व रखता है वह सब मैं ही तो हूँ। मैं अपने आपकी शरणमे आऊ तो मुझे हित मिल सकता है और मैं अपनी शरणको छोडकर, अपने ज्ञानस्वरूपको छोड़कर बाहरी चीजोंमे लगूं तो मेरी ऐसी ही घटनायें, जन्म मरण करना बना रहेगा जहाँ मेरा कुछ भी हित नही है।